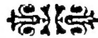


प्रकाशक

प्रो० कंठमणि शास्त्री 'विशारद'

सचालक

विद्याविभाग काँकरोली



मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

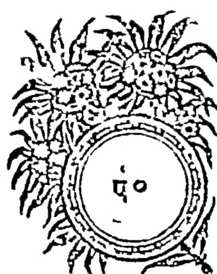
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ

कविवर पं० कुमारमणि शास्त्री

(जीवनी और उनके ग्रन्थ)

जन्म



कुमारमणि शास्त्री के पिता का नाम शास्त्री हरिवल्लभ भट्ट था। यह श्रीवत्सगोत्री पंचप्रवरान्वित ऋग्वेदी शाकल-शाखाध्यायी तैलंग ब्राह्मण थे। इनका 'पोतकूचि' उपाह्व था। कुमारमणि ने अपने वंश का परिचय इस प्रकार दिया है—

"माधव पण्डितराज रुद्रगण-शिष्ट मनीपि यज्ञभद्रम्।
मधुसूदन कवि पण्डित मुख्यान्प्रणमामि पूर्वभवान्॥
हरिवंशजं, चतुर्भुज—पौत्र, बुधरुद्रगणस्य नप्तारम्।
श्रीमत्पितामहमहं कण्ठमणिं नौमि महितगुणम्॥
पितुरग्र्य सहपित्रा नत्वा निरवद्यविद्यवेदमणिम्।
विरचयति सूक्तिसमद्भ मान्ध्रकुलीन. कुमारमणि ॥

इनके पिता पं० हरिवल्लभ शास्त्री माधव पण्डितराज के

---

* अप्रकाशित 'रसिक रञ्जन' सप्तशती।

वंशज, प॰ कण्ठमणि शास्त्री के द्वितीय पुत्र थे। यह हरिवल्लभजी प्रसिद्ध पौराणिक, धर्मशास्त्रज्ञ तथा हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं+। इनके पूवपुरुष दक्षिण-भारत से १४ से १५वीं शताब्दी के बीच में आकर उत्तर-भारत मध्यप्रान्त म बस गए थे।

कुमारमणि कवि का जन्म स० १७२० से ०५ के भीतर मानना चाहिये। यद्यपि 'शिवसिह सरोज' के आधार पर मिश्रबधु विनोद के प्रथम संस्करण म इनको दास-काल (सं॰ १७६१ से १८१०) का कवि माना गया था, पर वह मेरे सशोधन उपस्थित करने पर द्वितीय सस्करण में सुधार दिया गया है। उक्तजन्म संवत् मानने में इनकी ग्रन्थ-रचना का काल ही मुख्य है, जो कवि की प्रौढावस्था का द्योतक है। कवि के रचित 'रसिक-रज्जन' तथा 'रसिक रसाल' की रचना क्रमश सं० १७६५ और १७७६ में पूर्ण हुई है। प्रस्तुत विषय में ग्रन्थकार यह लिखते हैं—

'कथिता 'कुमार' कविना प्रथिता रसिकानुरज्जने प्रथित।
सप्तशती शरपएमुखमुखसिंधुविधिश्रिते (१७६५) राधे।।" र० र०
रससागररवितुरगविधु (१०७६) सम्वत मधुर वसन्त।
विकस्यौ "रसिक रसाल ' लखि हुलसत सुहृद व सन्त।।" र० र०

कवि का उक्त ज० स० मानने में दूसरा कारण कम से कम सं० १७७९ तक उनकी उपस्थिति भी है। कवि का स्वहस्त लिखित 'किरणावलि' नामक ग्रंथ प्राप्त होता है, जो उक्त

+ देखा—'आन्ध्रजातीय हिन्दी कवि' नामक शाघ्र प्रकाशन हानेवाला ग्रन्थ

सं० में लिखा गया है। उक्त आधारों से यह निसंदिग्ध हो जाता है कि—कवि कुमारमणि का जन्म सं० १७२० से २५ के भीतर हुआ है।

अध्ययन और पांडित्य

पं० कुमारमणि का शास्त्राध्ययन वाजपेयी उपनामक भारद्वाजगोत्री मंडन कवि के द्वितीय पुत्र पं० पुरुषोत्तम जी के पास हुआ था। 'रसिक रंजन' में कवि ने अपने गुरु का स्मरण इस प्रकार किया है—

"मण्डन-तनूजमनुजं जयगोविंदस्य वन्द्य गुणवृन्दम्।
श्रीमन्त पुरुपोत्तममिव गुरु पुरुपोत्तमं वन्दे॥"

'रसिक रसाल' में कवि ने इसी विषय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"सुर-गुरुसम मंडन-तनय बुध जयगोविंद ध्याइ।
कवित-रीति गुरु-पद परसि अरु पुरुपोत्तम पाइ॥"

उक्त दोनों पद्यों के आलोचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि—कवि कुमारमणि के हिंदी-भाषा-शास्त्र के पं० जयगोविंद वाजपेयी और संस्कृत-साहित्य के गुरु उनके लघु भ्राता पं० पुरुषोत्तम वाजपेयी थे। कवि मंडनजी तथा उनके उक्त दोनों पुत्र हिंदी एवं संस्कृत-साहित्य के प्रकाण्ड पंडित और कवि हुए हैं *।

---

* देखो—'आन्ध्रनामीय हिंदी काव' नामक शीघ्र प्रकाशित होनेवाला ग्रन्थ।

'रसिक रसाल' एवं 'रसिकरंजन' के परिशीलन से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि—कुमारमणि का पण्डित्य दोनों भाषाओं में समान रूप से प्रकाशमान था । उनके स्वार्थ स्वहस्त-लिखित आकरग्रथों से उनके अन्य शास्त्रीय प्रकाण्ड वैदुष्य का भी परिचय मिलता है । पौराणिक वृत्ति इनकी वंशपरंपरागत थी, अत तद्विषयक विद्वत्ता में सन्देह तो हो ही नहीं सकता । कहने का तात्पर्य यह कि—कवि कुमारमणि की प्रतिभा जिस प्रकार काव्य में आबाध रूप से धावमान होती थी, उसी प्रकार वह अन्यविषयक शास्त्रों में भी कुण्ठित न थी । दोनों भाषाओं के पाण्डित्य से तो उन पर सोना सुगन्ध' ही कहावत चरितार्थ होती है । हिन्दी-भाषा-विषयक साहित्य के रीति-ग्रन्थ-निर्माण से हम उन्हें भाषा का आचार्य कह सकते हैं । जिस पद पर अभी तक हिंदी-साहित्य ने उन्हें समासीन नहीं किया है । इसका एकमात्र कारण उनके ग्रन्थ 'रसिक रसाल' का प्रचाराभाव ही कहा जा सकता है । पर वह दिन दूर नहीं है, जब इस ग्रन्थ के प्रकाशित होते ही कवि को उक्त पद साहित्य-जगत द्वारा सहर्ष प्रदान किया जायगा ।

परिवार

कवि कुमारमणि के लघु भ्राता का नाम 'वासुदेव' था उनके नाम का स्मरण उन्होंने 'रसिकरंजन' में किया है ।

यह वासुदेव भट्ट अच्छे पौराणिक एवं साहित्यज्ञ होने के साथ ही साथ कवि भी थे। *

वासुदेव भट्ट का स्वर्गवास अल्प वय में ही हो गया था जिसके मर्मान्तक शोक से सन्तप्त कुमारमणि की लेखनी अपना उद्गार इस प्रकार प्रकाशित करने को बाध्य हुई थी—

> हा! विनयशील शालिन् शीलितशास्त्रार्थं, गण्यसामर्थ्य!
> भ्रातर्जातः किमु मां प्रविहाय विहायसः पथिकः। र० र० ५८०
> काव्यसखे! पदवाक्यप्रमाणपरिहीन दीन निखिलगते।
> विकलमिव भवसि लोके शोके नव वासुदेवस्य॥ र० र० ५८१

उक्त दोनों आर्याओं का भाव सहृदय पाठकों के कोमल हृदय पर सीधी ठेस पहुँचाता हुआ कवि की वियोग-जन्य व्यथा का निदर्शन कराता है। उक्त वासुदेव कवि की निर्मित एक 'सप्तशती' थी, जिसके उदाहरण देकर कुमारमणि ने "अनुजसप्तशत्याः" इस पद से उसका स्मरण किया है। कवि ने 'रसिकरसाल' में भी एक स्थान पर अपने भ्रातृ-वियोग का उल्लेख किया है—

> मन मदा मिलि कीन्हो निवास,
> 'कुमार' विलास हुलास घनेरो,
> संग मिले निसिवासर न्यान,
> न आन गन्यो सुख दुःख निवेरो।

---

* देखो—'कान्यकुब्जीय हिन्दी कवि' नामक ग्रन्थ।

भाई चले, परलोक तुम्हें,
नहिं दौरन भौ हिय मेरो करेरौ ;
जानि बनौ अपमान मनौं,
दृग मूंदि न देखत आन मेरौ ॥ ८ । ६२

उक्त सवैया में कवि को हार्दिक भ्रातृ-वियोग का शोक उच्छलित हो रहा है। उत्प्रेक्षालंकार के साथ कवि ने क्या ही अच्छे ढंग से इस वियोग को परिदर्शित किया है! उक्त दोनों आर्या तथा सवैया से यह विदित होता है कि कुमारमणि का अपने अनुज पर कितना सहज स्नेह था। इसके साथ यह भी विज्ञात होता है कि कवि के अनुज वासुदेव साधारण व्यक्ति नहीं, प्रत्युत शास्त्र के कृतश्रम विद्वान् थे। आर्याओं के विशेषण इस कथन की पुष्टि के लिये पर्याप्त हैं।

इन्हीं वासुदेव अनुज के स्वर्गवास हो जाने पर कवि कुमारमणि ने 'रसिकरंजन' का संग्रह किया है, जो उनकी स्मृति के अर्थ किया गया विज्ञात होता है। इस विषय में ग्रन्थकार की एक आर्या इस प्रकार है —

अनुजन्मवासुदेवाभिधबुधतोपाय विविधिरसपोषम् ।
मरसार्यासूक्तिमयं 'रसिक-मनोरंजनं' कुर्मः ॥ र० रं०

इसी सूक्ति-संग्रह से 'कुमारमणि' तथा 'वासुदेव' कवि की स्वतंत्र आर्या सप्तशतियों के साथ 'मधुसूदन-सप्तशती' तथा अन्य कवियों की स्वतंत्र आर्याओं का भी हमें पता लगता

है इस ग्रंथ में उल्लिखित २-३ कवियों का छोड़ शेष का तो नाम भी साहित्य-संसार में प्रकट नहीं हुआ है। प्रस्तुत सग्रह से हमें बहुत कुछ साहित्य का परिज्ञान हुआ है, जो कालवश या तो लुप्त हो गया है, अथवा किसी निभृत-कोण में छुपा हुआ पड़ा है।

प० कुमारमणि को अपने लघु भ्राता के वियोग के समान अपनी धर्मपत्नी का वियोग भी सहना पड़ा था, जो रसिक-रंजन की निम्नलिखित आर्याओं से ज्ञात होता है—

अयि गेहैकान्तपात्र ! नव्यदशे ! सुमुखि ! संवृतस्नेहे !
मद्गेह दीपक लिके ! कथमुपयातासि निर्वाणम् ॥ र-रं १८२
त्वां हरता हतविधिना हृदय मे व्यरचि शैलपारमयम्।
गृहिणि ! वदेति च गृहशुकवाग्वज्रणापि तदभेदि ॥ १७६

प्रथम आर्या यद्यपि 'लीलावतीकार' की है, तथापि प्रकरण-वश द्वितीय आर्या के साथ उसका सामञ्जस्य बैठाते हुए कहना पड़ता है कि—कवि कुमारमणि ने अपने पत्नी-वियोग को लक्ष्य कर हो ऐसा लिखा है। द्वितीय आर्या तो स्वयं ग्रंथ-कर्ता की ही है। अतः तद्विषय में कोई सन्दिग्ध प्रसग नहीं रह जाता। कवि की धर्मपत्नी किस गोत्र की थीं, कुछ पता नहीं चला है।

प्रथम पत्नी के दिवंगत हो जाने पर कुमारमणि ने अपना द्वितीय विवाह किया या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता।

कवि के भोजराज और कृष्णदेव नामक दो पुत्र हुए। उक्त

दोनो पुत्रों का जन्म सं० १७६०-६५ के लगभग निर्धारित होता है। ※

कुमारमणि ने अपने 'रसिकरंजन' में 'मातुल जनार्दन' की आर्याओं का संग्रह किया है जिससे कहना पड़ेगा कि उनके तन्नामधेय एक मामा थे। उत्तर-भारतीय आन्ध्र-जाति में तत्कालीन जनार्दन नामक दो कवि हुए है जिनमें एक पद्माकर के पितामह जनार्दन, तथा दूसरे गोस्वामी जनार्दन (बीकानेर) थे। इनका जन्म समय १७१८-२० के लगभग निर्धारित किया गया है। ※

उक्त कवि के क्षेमनिधि नामक शिष्य थे, जो पद्माकर के पितृव्य एवं मोहन भट्ट के लघु भ्राता थे। इन्होंने स्वहस्त-लिखित ग्रंथ में प्रस्तुत प्रकरण इस प्रकार लिखा है —

"इति श्रीसंक्षेपभागवतामृते श्रीकृष्णचैतन्यचरिते श्री-कृष्णामृतं नाम पूर्वखण्डं समाप्तम् । सं० १७८० आषाढ शुक्लाष्टम्या बुधवासरे। श्रीमद्गुरुकुमारमणि लिखितानुसारेण क्षेमनिधिना लिखितम्।

पौषे वलक्षपक्षे पक्षतिभृगुवासरेऽलेखि
नेत्राङ्कसिन्धुसिन्धुज (१७९२) वर्षे प्रभो प्रीत्यै ॥

क्षेमनिधि के शिष्य होने से यह भी अनुमान होता है कि उनके बड़े भ्राता मोहनभट्ट (पद्माकर के पिता) भी कुमार-मणि के समीप अध्ययन करते रहे हों।

※ देखा — आन्ध्रजातीय हिंदी-कवि' नामक पुस्तक।

राज्याश्रय

यह हम पहले कह चुके हैं कि—कुमारमणि का सर्वव्यापी पाण्डित्य था, यह जिस प्रकार काव्य कला के मर्मज्ञ एवं सिद्धहस्त कवि थे, उसी प्रकार संस्कृत के प्रत्येक विषय के शास्त्रों में भी इनकी अबाध गति थी। पौराणिक वृत्ति इनकी वंश-परंपरागत थी। अतः यत्र तत्र इनके परिभ्रमण करते रहने में कोई सन्देह नहीं है। इसी प्रसंग तथा अपने काव्य-चमत्कार के कारण इनका अनेक राज्यों में आवागमन और सम्मान होता रहा होगा। मेरे स्व० पितृव्य श्रीकृष्णशास्त्रीजी द्वारा मुझे यह ज्ञात हुआ था कि कुमारमणि को 'झारखंड' में सम्मान से कुछ भूमि प्राप्त हुई थी जो आगे चलकर वंशजों की उपेक्षा तथा राज्य-क्रान्ति के कारण हस्तान्तरित हो गई।

कुमारमणि ने 'रसिकरसाल' में कईबार 'रामनरेंद्र' का गुण गाया है। तद्विपयक कुछ पद्य इस प्रकार हैं—

'रामनरपाल को निहारि रन ज्याल ज्वाल—
जुर्ले विकराल दिगपाल मुसकात हैं ॥'

''रामनरिंद की फौज पयान०'' ''रामजू की जसलता०''

''रामनरिंद तिहारे पयान०'' इत्यादि

इससे अवगत होता है कि किसी 'राम' नामधारी नरेश के यह आश्रित थे, अथवा उसके यहाँ इन्हें सन्मान प्राप्त होता रहता था। संभव है 'रसिक रसाल' उन्हीं 'राम' नामधारी

नरेन्द्र की आज्ञा से बनाया गया हो, पर प्रारंभ में इसका कुछ संकेत न होने से इसे सत्य नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

यहाँ प्रस्तुत 'रामनरेंद्र' के विषय में कुछ विचार कर लेना असङ्गत न होगा। निम्न-लिखित ग्रन्थकारों ने इस पर जो प्रकाश डाला है, वह इस प्रकार है—

(१) मिश्रबंधु-विनोद (पत्र ५६८) में न० ६९२ पर 'राम राय'-नामक कवि का परिचय लिखा है, जिसका कविता-काल स० १७६० लिखा है, साथ में यह भी लिखा है कि यह कहीं के राजा थे।

(२) हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (ना० प्र० सभा) प्रथम भाग मे (पत्र २५) कुमारमणि का जन्म संवत् १८०३ तथा स्थान गोकुल, एव वल्लभ भट्ट का पुत्र और दतिया-नरेश का आश्रित लिखा है। इसमें उक्त सं० १८०३ गलत है, और वल्लभ भट्ट के स्थान पर हरिवल्लभ चाहिये। दतिया-नरेश के आश्रय का उल्लेख होने से संभव है रामराय, रामसिंह नामक कोई तत्कालीन वहाँ के राजा हुए हों।

(३) नं० २ की पुस्तक (पत्र ३१) में एक खण्डन कवि का परिचय दिया गया है, जिसका स० १७८१—१८१६ के लगभग माना है, और उन्हें राजा रामचंद्र दतिया-नरेश के समकालीन बतलाया है।

उपस्थित उद्धरणों से यह निश्चित होता है कि कवि कुमार-मणि के समकालीन, हिन्दी-काव्य के प्रश्रयदाता ही नहीं

प्रत्युत स्वयं कवि रामराय अथवा रामचद्र, किंवा रामसिंह नामक दतिया के राजा थे, संभवत यही कवि कमारमणि के आश्रयदाता रहे हों। दतिया राज्य के आश्रय की पुष्टि इस से और भी अधिक होती है कि— सम्प्रति भी कवि कुमार-मणि के वंशज, इस लेखक के पितृचरण पूज्य बालकृष्ण शास्त्रीजी को भी दतिया से राजगुरु का सम्मान प्राप्त है। इसी प्रकार पूर्व में भी (सन् १८५७ के गदर के समय) बान पुर के उजड़ जाने पर कमारमणि के वंशज पं० बिहारीलाल शास्त्रीजी * कवि भी दतिया में आकर बसे थे, और उन्हें राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। संभव है, वंशपरम्परा द्वारा इस राज-गुरु के सम्बन्ध और आश्रय को प्रचलित कराने का श्रेय पं० कुमारमणि को हो। अस्तु यह निःसन्दिग्ध है कि कवि कुमारमणि रामनरेंद्र के द्वारा सम्मानित हुए थे, अथवा वह उनके आश्रित होकर रहे हों। कुमारमणि के पूर्वपुरुषों को सागर जिले में धर्मसी, केनरा आदि ग्राम जयसिंहदेव राजा द्वारा प्रदान किये गये थे। जिनमेंसे प्रथम ग्राम अब भी उनके वंशजों के पास माफीरूप में है। सागर जिला और बुन्देलखंड ये दोनो परस्पर संयुक्त हैं—अतः स्थायी निवास-स्थान सागर जिले का गढ़-पहरा ग्राम होने पर भी कवि कुमारमणि का आवागमन बुन्देलखंड में चालू रहा होगा, और इसी कारण उन्हें वहाँ की रियासतों में राज्य-सन्मान समय-समय पर प्राप्त होता होगा।

* देखो—'मान्भजानाय हिन्दी कवि'

इसी प्रसंग में दतिया रियासत में उनकी आवभगत हुई हो, और वहाँ के काव्य-कला-प्रेमी रामनरेंद्र ने उन्हें सम्मानित किया हो, और इसी लिये कवि ने इस सम्मान-गौरव से प्रभावित होकर यत्र-तत्र उदाहरणों में उनके यश का वर्णन किया होगा।

इसके अतिरिक्त कुमारमणि को अन्यत्र कहाँ-कहाँ राज्य सम्मान प्राप्त हुआ, हम कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि तद्विषयक कोई प्रमाण उपस्थित नहीं होता। हाँ, स्वर्गवासी मेरे पितृव्यचरण पं० श्रीकृष्ण शास्त्रीजी के द्वारा मुझे ज्ञात हुआ था कि कविवर कुमारमणि को 'झारखंड' में कुछ भूमि प्राप्त हुई थी। इस 'झारखंड' का नामोल्लेख रसिक रसाल में भी एक स्थल पर हुआ है।

कुछ भी हो, पं० कुमारमणिशास्त्री कुछ तो अपनी पौराणिक आजीविका से, कुछ अपने पाण्डित्य से एवं कुछ अपनी वंशपरम्परा, प्राप्त भूमि की आजीविका से अपना योगक्षेम चलाने में परमुखापेक्षी नहीं थे, इस कारण यदि उन्हें किसी नृपति-विशेष के आश्रय की आवश्यकता न भी हुई हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। उन्होंने अपना काव्यमय जीवन बनाया था, और उसी की स्थायी स्थापना कर वह अपने नश्वर देह को छोड़ते हुए भी अजर अमर बन गये थे। वास्तव में एक संस्कृत-श्लोक के अनुसार कवियों का जरा-मरण-रहित यश काय ही उनका वास्तविक स्वरूप है।

कुमारमणि ने अपना पाञ्चभौतिक देह कब छोड़ा, इसका निश्चित काल ज्ञात नहीं हुआ है। हाँ, स० १७७९ में उनकी हस्तलिखित, पूर्व वर्णित पुस्तक से उनकी इस समय तक की स्थिति मे कोई सन्देह नहीं रहता।

कवि के समकालीन और पूर्ववर्ती कुछ कवि

कविकुमारमणि-कृत 'रसिक रसाल' ग्रन्थ के दोप-प्रकरण मे कुछ हिन्दी के कवियों के उदाहरण दिये गये हैं, जिससे मानना पड़ेगा कि वे कवि कुमारमणि के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती थे। यह प्रथम ही कहा जा चुका है कि रसिक रसाल की पूर्ति स० १७७९ में हुई है। इस आधार पर जिन कवियों के नाम नीचे लिखे जाते हैं, उनका समय (कविता-काल) इसके पूर्व ही सिद्ध होगा, अधिक से अधिक ग्रन्थ-रचना के समय तक उनकी प्रसिद्ध मानी जा सकती है। निम्नलिखित कवियों के समय-निर्धार के विषय में हम मिश्रबंधु-विनोद के आधार पर उनका समय देते हैं—जिसमे कुछ कवियों का समय 'रसिक रसाल' की पूर्ति के बाद आता है। हम कह नहीं सकते कि मिश्र बंधुओं का दिया हुआ समय ठीक है अथवा नहीं। संभव है, एक ही नामधारी दो कवि हुए हों, जिनमें एक का उदाहरण 'रसिक रसाल' मे दिया गया हो और दूसरे का पता विनोदकार को लगा हो, परन्तु जहाँ तक निश्चित है 'रसिक रसाल' में नामोल्लेख होने से 'विनोद' के प्रदत्त समय का सुधार होना चाहिये। उक्त कवियों की नामावली इस प्रकार है—

(१) 'जगदीश—रचना-काल सं० १८६२ *

(२) 'केशवदास'—जन्मकाल सं० १६१८

(३) 'वेनी'—प्रथम सं० १६६० के लगभग, द्वितीय का र सं० १७५५

(४ 'गग'—प्रथम सं० १५६० से १६१०, द्वि० १६२७

(५) 'सविता'- जन्म काल १८०३ कविता काल सं० १-३० (झारखड के कृष्ण साहि के यहाँ)

(६) 'ब्रह्म'—स० १८०३

(७) मुरलीधर'—ज० स० १७४० क० काल १७३०

(८) 'कासीराम'—ज० सं० १७१८ क० काल १७४०

(९) 'गदाधर'—सं० १७७५ के लगभग

(१०) 'मतिराम'—सं० १७१६ के लगभग

(११) केसवराय'—प्रथम बघेलखंडी सं० १७५४, द्वि० बुन्देलखण्डी सं० १७५३ (छत्रसाल के)

(१२) 'मनिकंठ'—सं० १७५४ के पूर्व।

प्रस्तुत कवियों के समय का वास्तविक निर्णय करना इतिहासज्ञ साहित्य-विद्वानों का कर्तव्य है। जहाँ तक इनके समय की रूप-रेखा मिली है उसे उद्धृत करने का यथासाध्य प्रयत्न किया गया है।

जिस प्रकार कुमारमणि के 'रसिक रसाल' से हिंदी कवियों

* रेखाङ्कित संवत् पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

की पृष्ठ-लिखित नामावली ली गई है, उसी प्रकार उनके 'रसिक-रंजन' नामक आर्यासप्तशती-संग्रह से संस्कृत के निम्न-लिखित कवियों का हमें पता लगता है, और उनकी सुमधुर काव्य-सुधा चखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। दुर्भाग्य यह है कि अभी तक एतन्नामधारी कवियों का न तो साहित्य-जगत् को पता ही था, और न उनके ग्रंथों की उपलब्धि ही। 'रसिक-रंजन' मे निम्न-लिखित कवियों की आर्याओं का संग्रह स्थान-स्थान पर किया गया है, और उसके साथ ही साथ एक दो आर्यासप्तशतियों का भी पता लगता है—जिनकी यथा-स्थान संसूचना की गई है। शोक इस बात का है कि उक्त ग्रंथों का या कवियों के काव्यसंग्रहों का कुछ भी पता अभी तक नहीं लगा है। अस्तु। नामावली इस प्रकार है*—

(१) कुमारमणि—स्वतन्त्र आर्यासप्तशती, जिसे कवि ने "मदीयसप्तशत्याः" से सम्बोधित किया है।

(२) गोवर्धनाचार्य—सप्तशती उपलब्ध होती है।

(३) चिन्तामणि दीक्षित—कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता।

(४) मातुल जनार्दन— ,, ,,

(५) जयगोविन्द वाजपेयी—इनके तीन ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं—(१) कवि-कल्पद्रुम (संस्कृत हिन्दी),

---

* जीवनचरित्र के लिये देखो 'आन्ध्रजातीय संस्कृत कवि' नामक अप्रकाशित ग्रन्थ

(२) कविसर्व्वस्व (हिन्दी),
(३) रसकौस्तुभ (,,)।

(६) बालकृष्ण भट्ट—कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता।

(७) बाणभट्ट—प्रसिद्ध है।

(८) मधुसूदन कवि पण्डित —कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता।

(९) वासुदेव—अनुजसप्तशती का नाम मिलता है।

(१०) लीलावतीकार—प्रसिद्ध है।

(११) प्राञ्चः (केचन) अप्रसिद्ध है।

(१२) नव्य (कश्चित्) ,, ,,

(१३) कश्चित् (अज्ञात) ,, ,,

उपरिलिखित सभी कवि आन्ध्रजातीय थे, यह भी ज्ञात होता है।

कुमारमणि और पद्माकर

कवि कुमारमणि के जीवनचरित्र में लिखा जा चुका है कि इनके शिष्य क्षेमनिधि थे, जो कवि पद्माकर के पितृव्य थे, अत संभव है, पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट ने भी कुमारमणि के समीप हिन्दी-साहित्य-शास्त्र का अध्ययन किया हो, और इसी कारण पद्माकर को भी कुमारमणि के निर्दिष्ट पथ का अनुगामी बनना पड़ा हो। जगद्विनोद और पद्माभरण की रचना के समय पद्माकर के ध्यान-पथ में कुमारमणि का 'रसिक-रसाल' ग्रन्थ होगा, अथवा उन्होंने उनकी अख्याति

से लाभ उठाया होगा। 'रसिक-रसाल' काव्यप्रकाश का प्रायः अनुवाद है। अतः यह भी संभव है कि पद्माकर का पाठ्य ग्रन्थ ही वह रहा हो, पर यह निःसंदिग्ध है कि पद्माकर की कविता पर कुमारमणि के काव्य की छाया पड़ी है और अच्छी प्रकार पड़ी है—फिर चाहे वह इच्छाकृत हो अथवा अनिच्छा-कृत।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिये कुछ थोड़े से उदाहरणों का अवलोकन ही पर्याप्त होगा। पाठक देखें कि पद्माकर ने कुमारमणि के काव्य का किस प्रकार अपहरण किया है—

'रसिक-रसाल'—

दोऊ ढिग है बाल इक, आँखिन नाँखि गुलाल।
अक माल दूजी लई चूमि कपोलनि लाल ॥ ४ उ० ६७ ॥

'जगद्विनोद'—

मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सुदृग मिचावनी के ख्यालनि हितै-हितै।
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य-धन्य दूसरी को,
औचक अचूक मुख चूमत चितै-चितै ॥ ७४ ॥

उक्त दोनों पद्य 'ज्येष्ठा-कनिष्ठा' नायिका के उदाहरण-स्वरूप हैं, जिनमें कवियों ने अपने कल्पना-कौशल का परिचय दिया है। यद्यपि दोनों ने ज्येष्ठा-कनिष्ठा के लक्षण पृथक्-पृथक् लिखे हैं, जो एक दूसरे से भिन्न हैं, जिसकी गहराई में हमें यहाँ उतरने की आवश्यकता नहीं है। हमें तो केवल यह कहना है कि

पद्माकर ने उक्त भाव में कुछ दूसरा चोला चढाकर भावापहरण किया है। पद्माकर के पक्षपाती कवि यद्यपि उनके "मुद्दग-मिचावनी क ख्याल" में "नैसुक नवाई ग्रीवा" इत्यादि के कारण पद्माकर की वाहवाही के "औचक अचूक" पुल बाँध सकते हैं, पर 'रसिक-रसाल' में "आँखिन नाखि गुलाल" की सूझ विलक्षण है और नायक की तात्कालिक कृति का उदाहरण है, जिसमें उसे अपेक्षित समय प्राप्त हो जाता है। पद्माकर ने आधे कवित्त में उसकी भूमिका बाँधी है और कुमारमणि ने उसे दोहे के भीतर सुन्दर और अनुपम ढंग से कह डाला है। इसे हम भावापहरण कह सकते हैं।

कुछ पाठक इसे बलात्कार की धाँधली कहकर पद्माकर के लिये न्याय माँग सकते है, पर हम भी अपने कथन की पुष्टि करे विना नहीं रह सकते। लीजिये द्वितीय उदाहरण—

'रसिक रसाल'—

> सोर को राग छुट्यो कुच को, मिटि गो
>
> अधरारस देख्यो प्रकासहि ;
>
> अंजन गो दृग कंजन ते वनु ,
>
> रूपत तेरो रुमंच हुलासहि।
>
> नैकु हितू जन को हित चीन्हों न ,
>
> कीन्हों अरी! मन मेरो निरासहि।
>
> बावरी! बावरी न्हान गई कै ,
>
> पर्हौ न गई उहि पीव के पासहि॥ १ ठ० ११॥

'जगद्विनोद'—

घाइ गई केसरि कपोल कुच गोलन की,
पीक-लीक अधर-अमोलनि लगाई है,
कहै 'पद्माकर' त्यौं नैनहू निरंजन में
तजत न कंप देह पुलकनि छाई है।
बाद मति ठानैं झूठवादिनि भई रा अब,
दूतिपनो छोड़ि धूतपन में सुहाई है,
आई तोहि पीर न पराई महापापिन तू,
पापी लौं गई न कहूँ वापी न्हाइ आई है ॥ १२८ ॥

उक्त सवैया और कवित्त में क्रमश अर्थ का मिलान करते-करते अर्धांश तक भावानुवाद का परिज्ञान कर सकते हैं। आगे चलकर कुछ अभिप्राय बदल गया है, पर अन्तिम चरणों में केवल शब्दों का हेरफेर हो रह जाता है। क्या यह भावापहरण नहीं है? जगद्विनोद के उक्त पद्य पर क्या रसिक-रसाल के उक्त सवैया की छाया स्पष्ट नहीं झलकती? कौन इसे अस्वीकार कर सकता है? कहना पड़ेगा, पद्माकर ने कुमारमणि की सूझ से काम लेकर अपना काम चलाया है।

हाँ! स्मरण होता है, कई सहृदय व्यक्ति इसे अनुचित पक्षपात कह सकते हैं और तदर्थ एक संस्कृत का श्लोक उपस्थित कर सकते हैं, जिसके यह दोनों पद्य अनुवाद-स्वरूप हैं। वह श्लोक इस प्रकार है—

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो,
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः;

मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे,
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।

हमें इस कथन के मानने में कोई विप्रत्तिपत्ति नहीं है, और उसका कारण स्पष्ट है कि उक्त दोनों कवियों की यह सूझ मौलिक नहीं है। परन्तु कुमारमणि ने इसे ध्वनि के उदाहरण में लिखा है—जैसा कि 'रसिक-रसाल' के लिये काव्यप्रकाश का अनुवाद होने के कारण आवश्यक था, पर पद्माकर ने इसे 'अन्यसुरतिदुःखिता' नायिका के उदाहरण मे लिखा है, और उसे 'रसिक रसाल' से लेकर परिवर्तित रूप में ला रक्खा है।

पद्माकर का कवित्त यद्यपि श्लोक का पूरा अनुवाद कहा जा सकता है और इससे उनकी पीठ ठोकी जा सकती है, परन्तु हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि ध्वनिप्रकरण का उदाहरण होने से कुमारमणि का उक्त सवैया पद्माकर के कवित्त और मूल श्लोक दोनों से ही बढ-चढ गया है। "मिथ्यावादिनि! दूति बान्धवजनस्याज्ञात पीडागमे" इस वाक्य और उसके अनुवाद—"बाद मति ठानें झूठवादिनि भई री अब, दूतपनो छोड़ि धूतपन में सुहाई है" की अपेक्षा "नेकु हित उन को हित चीन्हों न कीन्हों अरी मन मेरो निरासहिं" इस कुमारमणि के पद्यांश में कितनी मधुरता और ध्वनि है, जो काव्य को अतिशय चमत्कृत कर रही है। अस्तु। 'तुष्यतु' न्याय से इस विवाद को छोडकर भावपहरण

के दो उदाहरण और उपस्थित किये जाते हैं, जिसका अपलाप नहीं किया जा सकता है—

'रसिक-रसाल'—

रूप सों बिचित्र कान्ह मित्र को विलोकि चित्र
चित्रित भई त चित्र पूतरी सुभाई है ॥ ३उ०२५ ॥

'जगद्विनोद'—

मोहन मित्र को चित्र लखें
भई चित्र हा सी तो विचित्र कहा है ॥३२७॥

पद्माकर के इस शब्द और भाव के अपहरण को कहाँ तक कोई छिपा सकता है—नीचे के पद्य के शब्द उच्चैर्घोष से अपने स्थान का परिचय दे रहे हैं। कवि ने कुछ शब्दों मे परिवर्तन कर किस प्रकार 'रसिक-रसाल' के माल को उदरसात् कर लिया है। उक्त उदाहरण 'चित्र-दर्शन' के हैं। अतः कहना पड़ेगा कि पद्माकर ने निःसंकोच होकर इस सुंदर भाव-पूर्ण 'कान्ह-चित्र' को चुराया है—इसमें वह अपने लोभ का सवरण नहीं कर सके हैं।

प्रस्तुत भावापहरण प्रकरण में एक उदाहरण और दिया जा कर यह विषय समाप्त किया जायगा। आइये और देखिये—

'रसिक-रसाल'—

फूल पहार के भार भरी
इक डार है 'नंद-कुमार' नवाई ॥ ४ उ० १८ ॥

'जगद्विनोद'—

निज निज मन के चुनि सबै फूल लेहु इक बार ;
यहि कहि कान्ह कदंब की हरषि हिलाई डार ॥२१०॥

दिनदहाडे की इस चोरी के लिये और क्या प्रमाण चाहिये ? वह उदाहरण स्वय अपना प्रमाण है।

कदंब की डाल पर चढ़कर अपनी प्रियतमाओं को पक्षपात-हीन होकर प्रसन्न करने के लिये नायक की दक्षिणता की सुन्दर भावोत्पत्ति कुमारमणि के मस्तिष्क से ही हो सकती है, उसे चुराकर पद्माकर ने अपने लिये धन्यवाद का गट्ठर बाँधा है। पर है यह 'पराया माल' ही। आखिर बरामद हो ही गया है।

इन्हीं कारणों से कहना पड़ता है कि पद्माकर ने कुमारमणि के सुन्दर भावों का अपहरण किया है और उससे ख्याति प्राप्त की है।

विज्ञ जनों के सम्मुख कुछ शब्दापहरण के निदर्शन रखकर हम यह और बतलाना चाहते हैं कि पद्माकर ने कुमारमणि के शब्दों को यथावत् अपने काव्य में स्थान ही नहीं दिया है, प्रत्युत उनके द्वारा अपने छंदों की पूर्ति भी की है। प्रथम एक उदाहरण अर्थापहरण का दे देना भी अप्रासंगिक न होगा।

'रसिक-रसाल'—

रचि सनाह जो प्रेममय तिय पहुँचै प्रिय पास।
निज पास पिय को बुलावे सोऊ अभिसारिका कहत हैं।

'जगद्विनोद'—

बोलि पठावै वियहि कै पिय पै आपुहि जाय ॥ २२७ ॥

'रसिक-रसाल' के उक्त पद्य और गद्यभाग को मिलाकर पद्माकर ने अपने दोहे का कलेवर बनाया है, जो छंद के आवरण से आवृत होने पर भी अपनी वर्णसंकरता को छिपा नहीं सका है। अस्तु। अब शब्दापहरण की झाँकी देखिये—

'नायक' के उदाहरण में पद्माकर का यह कवित्त प्रसिद्ध है—

ठौर ठकुराई को जु ठाकुर ठसकदार

नन्द को कन्हाई सो सुनन्द को कन्हाई है ॥ जग० २८० ॥

क्या इस पद्य के रेखांकित पद का अनुमान पाठक कर सकते हैं कि वह कहाँ का है? क्या यह पद्माकर का मौलिक शब्द है? नहीं। कुमारमणि 'रसिक-रसाल' में नायक के उदाहरण में ही इसे इस प्रकार लिख चुके हैं—

कुँवर कन्हैया लोक ठाकुर-ठसक को ॥ ४ उल्लास १ ॥

'ठाकुर-ठसक' के नगीने को चुराकर पद्माकर ने अपने कवित्त के आभरण में यद्यपि फिर बैठा दिया है और ठकार के शब्दालंकार में छिपाकर उसे अपनाने की कोशिश की है, पर 'रसिक-रसाल' के अवलोकन से प्रकट हो जाता है कि यह 'ठाकुर-ठसक' का संयोग कुमारमणि-कृत है।

अब आगे चलकर एक दूसरा उदाहरण लीजिये—

'रसिक-रसाल'—

है उपमेय परसपरहि सोई है उपमान ॥ ८ उ० १२ ॥

'पद्माभरण'—

उपमेयोपम परस्पर उपमेयहु उपमान ॥ २७ ॥

दोनों के रेखांकित पदों पर ध्यान देने से विदित हो जायगा कि 'रसिक-रसाल' के लक्षण में ही कुछ परिवर्तन कर 'पद्माभरण' का उक्त लक्षण बना लिया गया है।

एक अन्य उदाहरण दिया जाता है, जिसमें एक शब्द ही क्या दोहा का अर्धांश तक उड़ा लिया गया है—

'रसिक-रसाल'—

रतिरस सों पिय संग सों जाके कछु परतीति।
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत कविता रीति ॥ ५ उ० ५३ ॥

'जगद्विनोद'—

पति की कछु परतीति उर धरै नवोढा नारि।
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत विबुध विचारि ॥ ३८ ॥

'कछु परतीति' से लेकर 'बरनत' तक पद्यांश पद्माकर ने उड़ा लिया है। इस चोरी के समय उन्हें पुनरुक्ति का भी ध्यान नहीं रहा है—'नवोढा नारि' और 'नवोढ तिय' यह दोनों शब्द एक ही पद्य में दो बार आ गये हैं। इन प्रत्यक्ष उदाहरणों के सम्यगालोचन करने के बाद कौन साहित्यज्ञ समालोचक इससे नकार कर सकता है कि पद्माकर के काव्य पर कुमारमणि की छाया नहीं पड़ी है?

उक्त उदाहरणों के अर्थ, भाव और शब्द सभी इसका संकेत करते हैं कि पद्माकर की सूझ या वर्णन-शैली स्वतंत्र न

होकर परतंत्र है—वह मौलिक नहीं है, कहीं से लाकर रक्खी गई है। गवेषणा-पूर्ण दोनों कवियों के काव्यावलोकन से और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, पर उससे ग्रन्थ के कलेवर वढ़ जाने का भय है, और परीक्षा के लिये एक दो दाने ही पर्याप्त हैं। पद्माकर के ऐसा करने अथवा उनसे ऐसा हो जाने का भी कारण है, वह है, उनके पाठ्य ग्रंथ में रसिक-रसाल की संभवता। कुमारमणि ने साहित्य-जगत् में उतनी अधिक प्रसिद्ध नहीं पाई, जितनी पद्माकर ने। वर्तमानकालीन साहित्य-पारखियों ने तो कुमारमणि का कोई स्थान साहित्य में निश्चित ही नहीं किया है, पर पद्माकर तो इस विषय में काफी प्रख्यात हो चुके हैं, और वह भी अपने देशाटन, राजसम्मान तथा काव्यात्मक आजीविका से। 'रसिक-रसाल' की अनुपलब्धि अथच विशेष प्रख्याति का अभाव भी कुमारमणि को विस्मृति के पट में छिपाये रहा है। इन सब कारणों से पद्माकर के 'करतब' छिपे रह गये हैं और कुमारमणि को साहित्य में उचित स्थान न देने का अन्याय हो गया है।

कुमारमणि-कृत ग्रन्थ

(१) 'रसिक-रंजन'

कुमारमणि शास्त्री का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ रसिक-रंजन' है, जिसमें साहित्य के २१ विषयों पर सुन्दर, सरस संस्कृत-आर्याओं का संग्रह है। इसे सप्तशती शब्द से स्वयं

कवि ने सम्बोधित किया है। खेद है कि उक्त ग्रन्थ मध्य एवं अन्त भाग में कुछ अपूर्ण उपलब्ध होता है। ग्रन्थ के विषय-निदर्शनार्थ कवि स्वयं इस प्रकार लिखता है—

"काव्यं कृष्णस्तुतिरथ सयोगवियोगनायिकाभेदा ।
उद्दीपनरसचेष्टाशिक्षोपालंभनं प्रेम ॥ १३ ॥
सापत्न्यमानमङ्गं हास्यं ग्रामे गुणास्तथान्योक्तिः ।
सदसज्जनदुःखनयाश्चित्रमिहोक्तैकविंशतिरमिके:" ॥ १४ ॥

अर्थात् 'रसिक रंजन' में काव्य, कृष्णस्तुति, संयोग, वियोग, नायिका-भेद, उद्दीपन, रसचेष्टा, शिक्षा, उपालंभ, प्रेम, सापत्न्य, मान, अङ्ग, हास्य, ग्रामगुन, अन्योक्ति, सज्जन, असज्जन, दुःख, नय (नीति) तथा चित्रकाव्य इन २१ विषयों पर आर्याओं का संग्रह है।

ग्रंथ मे कुमारमणि-रचित कितनी ही आर्याएँ हैं, जिन्हें कवि ने अपनी स्वतंत्र सप्तशती से उद्धृत किया है। इसी प्रकार अन्य कवियों की आर्याओं का इतना सुन्दर संग्रह अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। हम यह प्रथम कह आये हैं कि इस आर्या-संग्रह से २-३ प्राचीन आर्या सप्तशतियों के साथ ही अन्य अज्ञात कवियों की कविता का भी पता लगता है, जिसमें एक ही श्रीवत्सवंश की तीन सप्तशतियों की नामावली तो इस प्रकार है—(१) मधुसूदन-सप्तशती, (२) कुमारसप्तशती, (३) वासुदेवसप्तशती। मधुसूदनजी को 'कविपण्डित' की उपाधि थी, और यह कवि

के पूर्वज थे। इनकी आर्याएँ इतनी ओज-पूर्ण एवं सुन्दर हैं, जिनके लिये गर्व किया जा सकता है।

प्रस्तुत विषय में इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि सम्प्रति जो गौरव आर्याओं के निर्माण के लिये गोवर्धनाचार्य को दिया जा रहा है, उससे अधिक नहीं, तो वही गौरव प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशित होने पर उसके रचयिता को भी दिया जा सकता है। हम विस्तार-भय से उन आर्याओं के कुछ उदाहरण यहाँ नहीं देते, और उनका यहाँ लिखना भी एक प्रकार से "गंगा की गैल में मदार के गीत" वाली कहावत को चरितार्थ करना है।

आर्यासंग्रह 'रसिक-रजन' में जहाँ तक मेरा विश्वास और ध्यान तथा निश्चय है, आंध्रजातीय संस्कृत-कवियों की ही आर्याओं का संग्रह है। इस विषय का स्पष्टीकरण मैंने "आंध्रजातीय संस्कृत-कवि" नामक ग्रंथ में कवियों का परिचय लिखते समय किया है—जो अभी तैयार किया जा रहा है, अतएव अप्रकाशित है।

प्रस्तुत 'रसिक-रंजन' की पूर्ति सं० १७६५ में हुई थी। यह ग्रंथ सौभाग्य से कुमारमणि के स्वहस्त से लिखा हुआ ही मेरे परंपराऽऽगत पुस्तकालय में उपलब्ध हुआ है।

(२) 'कुमार-सप्तशती'

कुमारमणि की रचित स्वतंत्र आर्यासप्तशती का नामोल्लेख हमें रसिकरंजन में मिलता है। कवि ने अपनी आर्याओं को

लिखते समय "मदीया" "मम" "मदीयसप्तशत्या" इन शब्दों से उनका उद्धरण दिया है, अतः कवि की एक स्वतंत्र 'आर्या-सप्तशती' अवश्य ही होना चाहिये—जो अभी तक अप्राप्त है। यह सप्तशती—'रसिक-रंजन' से प्रथम बनाई गई थी। और इसी कारण इसका उसमें उल्लेख पाया जाता है। 'रसिक-रंजन' मे उद्धृत कुमारमणि की आर्याओं से इस ग्रंथ की महत्ता, मधुरता एवं गंभीरता का सहज ही परिचय मिल जाता है। यदि यह ग्रंथ प्राप्त होता तो इसे गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती की प्रतिद्वंद्विता में अवश्य स्थान मिलता।

(३) 'रसिक-रसाल'

कवि कुमारमणि की अंतिम उपलब्ध किंतु सर्वप्रथम भाषा-काव्य-रचना का नाम 'रसिक-रसाल' है। इसकी पूर्ति सं० १७७९ में हुई है। ग्रंथकार ने इसके विषय में इस प्रकार लिखा है—

काव्य - प्रकाश विचार कछु भाषा में रचि हाल;
पढ़ित सुकवि 'कुमारमनि' कीन्हो रसिक-रसाल।

प्रस्तुत ग्रंथ के परिचयार्थ में कुछ भी न लिखकर पाठकों का ध्यान अग्रिम लेख पर आकृष्ट करना चाहता हूँ, जिसे मेरे आदरणीय मित्र पं० श्रीकृष्णजी गोस्वामी ने 'रसिक-रसाल' के लिये लिखा है। प्रस्तुत लेख विद्वतापूर्ण, गवेषणामय एवं बहुत कुछ वास्तविकता को लिये हुए है। कहना पड़ेगा कि मेरे मित्रवर ने इस विषय मे अच्छा श्रम उठाया है और

काफी बुद्धि-वैशद्य से कार्य लिया है। उक्त मित्र मेरे सजातीय बन्धु, हिन्दू-विश्वविद्यालय के स्नातक, एम्० ए० उपाधिधारी हैं। आपने अँग्रेजी, हिन्दी एवं संस्कृत में एम्० ए० किया है—सम्प्रति आप बीकानेर स्टेट की ओर से गंगानगर में सुपरिन्टेन्डेन्ट-पद पर कार्य कर रहे हैं। आपने काव्य-साहित्य का अच्छा परिशीलन किया है। 'रसिक-रसाल' के लिये इतना लम्बा-चौड़ा एवं गंभीर आलोचनात्मक परिचय लिखने का कष्ट आपने केवल मुझ अकिंचित्कर मित्र की एक बार की सूचना पर ही उठा लिया था, आपके आगत पत्रों से मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि आप इसे जिस उत्साह से जिस पैमाने पर लिखना चाहते थे, समयाभाव एवं साहाय्याभाव से उसे वैसा नहीं लिख पाये हैं। इस साहाय्याभाव में आपने जिन साहित्यिक महारथियों की परोत्कर्षा, सहिष्णुता का दिग्दर्शन मुझे कराया था, वह एक स्मरणीय होते हुए भी अप्रकाशनीय है। इस पत्र-व्यवहार से मुझे इस वस्तुस्थिति को मानने के लिये विवश होना पड़ा है कि सम्प्रति हमारे हिन्दी-साहित्य के वातावरण में वह सुखद समय नहीं आया है, जिसमें पारस्परिक गुण-ग्राहकता, सौजन्य एवं अनसूया से कार्य किया जाता हो। जो प्रसिद्ध साहित्य-प्रकाशक हैं, और जिन्हें साहित्यिक महारथी माना जाता है, वे स्वकीय प्रसिद्धि के आगे किसी को कुछ भी नहीं समझते, वे नहीं चाहते कि कोई व्यक्ति

ध्येय तात्त्विक विवेचन व सिद्धांत-स्थापन करना था, पर हिंदी में ऐसे ग्रंथ लिखनेवालों का ध्येय अपनी कवित्व-शक्ति तथा रसिकता दिखलाना था। संस्कृत में तो बहुत-से आचार्य बड़े ही भावुक और उच्च कोटि के कवि भी थे, परंतु हिंदी में ऐसे कवि आचार्य-कोटि को पहुँचे हों, इसमें बहुत संदेह है। कहा जा सकता है कि इस कमी के कारणों में, हिंदी-साहित्य की प्रारंभिक अवस्था, आश्रयदाताओं की रुचि की भिन्नता, तात्कालिक युग का वातावरण, हिंदी की साहित्यिक भाषा के स्थिर रूप का अभाव आदि-आदि थे, फिर भी, कारण चाहे जो हो, निष्पक्ष रूप से यह मानना पड़ेगा कि हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथ लिखनेवालों में अधिकांश आचार्यता का प्राय अभाव ही था। इसका एक मोटा सा सबूत यह है कि तद्विषयक ग्रंथों में जो लक्षण दिए हैं, वे बहुधा क्लिष्ट, अपूर्ण और गलत भी हैं, परंतु उन लक्षणों के जो उदाहरण दिए गये हैं, वे बहुधा बहुत सरस, भावपूर्ण एवं मँजे हुए हैं। कहीं-कहीं तो वे ऐसे हृदयग्राही हैं कि संस्कृत-ग्रंथों में वैसे उदाहरण कम पाये जाते हैं।

हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथों में शास्त्रीय दृष्टि से यदि मौलिकता कहीं दिखाई पड़ेगी, तो उदाहरणों में ही, लक्षणों व वार्त्ताओं में नहीं। जिसका कारण पहले बताया ही जा चुका है।

हम हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथों के स्थूल रूप से तीन विभाग कर सकते हैं—

१. जिनमें काव्य के सारे अंगों पर प्रकाश डाला गया है;

२. जिनमें रस-भेद व भाव-भेद का ही वर्णन है;

३. जिनमें केवल 'अलकार' का विषय ही दिया हुआ है।

पहली श्रेणी में चिंतामणि त्रिपाठी का 'कविकुलकल्पतरु', कुलपति मिश्र का 'रसरहस्य', देव का 'शब्दरसायन', कुमारमणि का 'रसिक-रसाल', श्रीपति का 'काव्य-सरोज', भिखारीदास का 'काव्यनिर्णय', सोमनाथ का 'रसपीयूषनिधि', रूपसाहि का 'रूप-विलास', रतनकवि का 'फतेहभूषण', जगतसिंह का 'साहित्य-सुधानिधि', प्रतापसाहि का 'काव्यविलास आदि ग्रंथ मुख्य हैं।

दूसरी श्रेणी में मतिराम का 'रसराज', केशवदास की 'रसिक-प्रिया', सुखदेव मिश्र का 'रसार्णव', उदयनाथ कवींद्र का 'रसचंद्रोदय', गजन का 'कमरुद्दीनखाँ हुलास', भूपति का 'रस-रत्नाकर', सैयद ग़ुलामनबी का 'रसप्रबोध', करन कवि की 'साहित्य-चंद्रिका', देवकीनंदन का 'शृंगारचरित्र', थान का 'दल्लेल-प्रकाश', बेनीप्रवीन का 'नवरसतरंग', पद्माकर का 'जगद्विनोद', भौन का 'रसरत्नाकर', शिवनाथ का 'रसवृष्टि', ये मुख्य हैं।

तीसरी श्रेणी में केशव की 'कविप्रिया', मतिराम का 'ललित ललाम', भूषण का 'शिवराज-भूषण', जसवंतसिंह का 'भाषा-भूषण' सूरतिमिश्र की 'अलंकार-माला', श्रीपति की 'अलंकार-गंगा', ऋषिनाथ की 'अलंकार-मणिमंजरी,' रसिक-

सुमति का 'अलंकार-चंद्रोदय', भूपति का 'कंठाभरण', दत्त की 'लालित्यलता', दलपतिराय वंशीधर का 'अलंकार-रत्नाकर', रघुनाथ का 'रसिकमोहन', दूलह का 'कविकुल-कंठाभरण', शिव का 'अलकार-भूपण', गुमान का 'अलंकार-चंद्रोदय', ब्रह्मदत्त का 'दीपप्रकाश', शमुनाथ का 'अलंकार-दीपक', वैरीसाल का 'भापाभरण', रामसिंह का 'अलंकारदर्पण', चंदन का 'कव्याभरण', कलानिधि का 'अलंकार कलानिधि', देवकीनंदन का 'अवधूतभूपण', मान का 'नरेंद्रभूषण', बेनी का 'टिकैतराय-प्रकाश', भौन का 'शृंगाररत्नाकर', गुरुदीन का 'वागमनोहर', पद्माकर का 'पद्माभरण', रामसहायदास का 'वाणीभूपण', उत्तमचद भडारी का 'अलंकार-आशय', गदाधर-भट्ट का 'अलंकार चंद्रोदय' प्रतापसाहि का 'अलकार-चिंतामणि', लेखराज का गंगाभूपण', और लछिराम का 'राम-चंद्रभूपण' आदि मुख्य हैं।

नायिका-भेद और अलंकार पर लिखे गए ग्रंथों की संख्या बहुत बड़ी है, और दशाग काव्य पर लिखे हुए ग्रंथों की बहुत थोड़ी। दशाग-काव्य पर जो ग्रंथ लिखे गए हैं, उनमे चिंतामणि त्रिपाठी का 'कविकुल-कल्पतरु', श्रीपति का 'काव्य-सरोज', कुलपति का रस-रहस्य', भिखारीदास का 'काव्य निर्णय' और कुमारमणि का 'रसिक-रसाल' कविता तथा विवेचन शैली की दृष्टि से बहुत अच्छे हैं। इनमें कुलपति मिश्र का 'रस-रहस्य' एवं भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' छप गया है।

दशांग-काव्य पर जो भी ग्रंथ लिखे गये हैं, उनमें किसी
खास एक ही ग्रंथ का आश्रय नहीं लिया गया है। साधारण-
तया काव्य लक्षण, उसके विभेद, शब्दशक्ति का विषय, काव्य
के गुण दोषादि का विचार काव्यप्रकाश के आधार पर
लिखा गया है, रस-भाव-भेद का प्रकरण साहित्यदर्पण,
दशरूपक आदि के आधार पर और अलंकार का प्रकरण
चंद्रालोक, कुवलयानंद के आधार पर।

कुमारमणि के 'रसिक-रसाल' में काव्य के लक्षण, प्रयोजन,
गुण-दोष, शब्द-शक्ति आदि का विचार काव्यप्रकाश के
मतानुसार दिया गया है, रस भेद भाव-भेद, नायक नायिका-
भेदादि साहित्यदर्पण दशरूपक के आधार पर, और अलंकार
का विचार कुवलयानंद की शैली व आधार पर।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिंदी-साहित्य में नाटक
का शास्त्रीय रूप कभी प्रकट ही नहीं हुआ, और इसोलिये
उनमें नाट्यशास्त्र के प्रकरण का प्राय अभाव ही रहा है।
रसिक-रसाल मे भी इसीलिये इस प्रकरण का कोई अध्याय
नहीं है। आधुनिक युग मे नाटक की तरफ अवश्य कुछ
लेखकों का ध्यान गया है, परंतु नाट्यशास्त्र पर अभी तक
प्रामाणिक ग्रंथों का प्राय अभाव ही है। प्रस्तुत ग्रंथ रसिक-
रसाल में दश उल्लास हैं, और उनमें वर्णित विषय
ये हैं—

१. त्रिविध काव्य-निरूपण

प्रथम उल्लास—काव्य-निरूपण

इसमे काव्य के प्रयोजन, हेतु और भेद बताए गए हैं। लक्षण और उदाहरण काव्यप्रकाश में दिये हुए लक्षण और उदाहरण के अनुवाद ही हैं* यथा—काव्य का प्रयोजन बताते हुए लिखा है—

अर्थ धर्म जस कामना लहियत मिटत विषाद।
सहृदय पावत कवित में ब्रह्मानंद सवाद॥

---

*प्रस्तुत रसिक-रसाल ग्रंथ काव्यप्रकाश का प्राय अनुवादरूप है ग्रंथकर्ता स्वय इस बात को अपने शब्दों में इस प्रकार लिखता है, जिस पर लेखक ने प्राय' ध्यान देने का कष्ट नहीं उठाया है। और, इसीलिये स्थान-स्थान पर इसका उल्लेख किया है—

"काव्यप्रकाश विचार कछु भाषा में रचि हाल।
पंडित सुकवि कुमारमणि कीन्हो रसिक-रसाल॥

—संपादक।

काव्यप्रकाश में यही प्रयोजन इस प्रकार लिखा है—

काव्यं यशसे ऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

इन दोनों का विचार करने पर ज्ञात होगा कि काव्यप्रकाश के 'कान्ता सम्मिततया उपदेशयुजे' इस एक प्रयोजन को कुमारमणि ने छोड़ दिया है। काव्य का एक प्रयोजन यह भी निर्विवाद है कि वह मनुष्य को स्त्री की तरह मधुरालाप से उपदेश देता है। रसिकरसाल में काव्य के इस प्रयोजन को स्थान न देकर एक बड़ी भारी कमी रख दी गई है।

इसके आगे ग्रंथ में काव्य की उत्पत्ति के साधन लिखे हैं। यथा—

शक्ति शास्त्र लौकिक सकल परवीनता समेत।
कवि शिक्षा अभ्यास भनि कवित उपज को हेत॥

इसी साधन को काव्यप्रकाश में यों लिखा है—

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

यानी दोनों ग्रंथों में जो तीन कारण काव्योत्पत्ति के दिए हुए हैं—१. शक्ति, २. लोक और शास्त्र के अनुशीलन से प्राप्त की हुई निपुणता और ३. काव्य-मर्मज्ञ पुरुषों की शिक्षा के अनुसार अभ्यास करना—वे एक से हैं।

फिर काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

उपजत अद्भुत भाव जो शब्द-अर्थ रमनीय ।
सोई कहियतु कवित है सुकवि-कर्म कमनीय ॥

यह लक्षण साहित्यदर्पण और रसगंगाधर के लक्षणों को मिलाकर बनाया हुआ है। साहित्यदर्पण मे रसात्मक वाक्य को और रसगंगाधर में रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा गया है।

आगे चलकर काव्य के भेद किए हैं, और इसमें भी काव्य-प्रकाश का अनुकरण किया गया है। काव्य के तीन भेद किए हैं। यथा—१. ध्वनि, २ अगुरुव्यङ्ग्य गुणीभूतव्यङ्ग्य और ३ चित्र। यही तीन भेद काव्यप्रकाश मे भी किए गए हैं। इनके लक्षण भी काव्यप्रकाश में जो दिए गए हैं, वही रक्खे हैं, और उदाहरण भी काव्यप्रकाश में उदाहरण स्वरूप दिए हुए पद्यों के अनुवाद हैं।

काव्यप्रकाश में ध्वनि (उत्तम काव्य) का लक्षण यह दिया हुआ है—'इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्यध्वनिर्बुधै कथित.।' इसी को रसिकरसाल में यों दिया है—'वाच्य अरथ ते व्यंग जँह सुन्दर अधिक विशेष'।

काव्यप्रकाश में इसी का उदाहरण 'नि शेषच्युतचन्दनम्' इत्यादि पद्य दिया है, और उसी का अनुवाद रसिक-रसाल में "खोर को राग छुट्यो" इत्यादि पद्य दिया है।

मध्यम काव्य (अगुरुव्यङ्ग्य) का लक्षण काव्यप्रकाश में "अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्य' व्यङ्ग्ये तु मध्यमम्" यह दिया

हुआ है, और इसी का अनुवाद "काव्य अरथ ते व्यंग जँह सुन्दर अधिक न लेष" रसिक रसाल में दिया हुआ है। इसका उदाहरण काव्यप्रकाश में "ग्रामतरुणं तरुण्या" इत्यादि पद्य है, और रसिकरसाल में इसी का अनुवाद "बैठी जहाँ गुरु नारि०" इत्यादि पद्य दिया है।

चित्रकाव्य का लक्षण रसिक-रसाल में नहीं दिया है, परन्तु उसके जो दो भेद उदाहरण-रूप दिए हैं—शब्दचित्र और अर्थचित्र—उनमें काव्यप्रकाश का ही सिद्धान्त है।

द्वितीय उल्लास—चतुर्विध व्यंग्य कथन

काव्यप्रकाश के द्वितीय और तृतीय उल्लास में शब्दार्थ-निरुपण और अर्थ-व्यञ्जकता का निर्णय किया गया है। उसी विषय को संक्षेप में रसिक-रसाल के इस उल्लास में कहा गया है। यथा—शब्द की तीन शक्तियाँ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना, व्यंग्य के अभिधामूलक और लक्षणामूलक ये दोनों भेद व इनके भी अवान्तर भेद, आदि-आदि। इनके लक्षण-उदाहरणादि भी काव्यप्रकाश के आधार पर अथवा उसके अनुवाद हैं।

तृतीय-चतुर्थ-पंचम उल्लास—रसव्यंग, भावानुभाव और आलंबन-उद्दीपन-विभाव-निरुपण।

रसिक-रसाल के ये तीनों उल्लास अधिकतर साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद के आधार पर लिखे हुए हैं। लक्षण और

उदाहरण भी साहित्यदर्पण मे दिए हुए लक्षण और उदाहरण के अनुवादमात्र से ही हैं। कहीं-कहीं काव्यप्रकाश का आधार भी लिया गया है।

प्रधान रूप से काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण दोनों ही में आठ ही रस माने गए हैं यथा—शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र, करुण, भयानक, वीभत्स और अद्‌भुत। काव्यप्रकाश में "शान्तोऽपि नवमो रस." कहकर नवम 'शान्त' रस का, और साहित्यदर्पण में किसी-किसी के मत के अनुसार दशवें रस 'वत्सल' का भी उल्लेख कर दिया गया है। इन्हीं दोनों के आश्रय से रसिक-रसाल में ० रसों का विवेचन किया गया है।

षष्ठ उल्लास—मध्यम काव्य निरूपण

रसिक-रसाल के इस उल्लास में मध्यम काव्य (गुणीभूत-व्यंग्य) के वही आठ भेद दिए हुए हैं, जो काव्यप्रकाश व साहित्यदर्पण में दिए हैं।

सप्तम उल्लास—चित्रकाव्य-निरूपण

इसमें शब्दालंकार और रीति—गौड़ी, वैदर्भी, पाचाली आदि—का वैसा ही विचार किया गया है, जैसा कि काव्यप्रकाश साहित्यदर्पण में है।

अष्टम उल्लास-अर्थालङ्कार

इसमें अर्थालंकारों का वर्णन है। अलंकारों के नाम, सख्या, क्रम, लक्षण व उदाहरण की दृष्टि से यह उल्लास कुवलयानंद के आधार पर लिखा गया है। अलंकारों के लक्षण और

अवांतर भेद प्रायः वे ही दिए गए हैं, जो कुवलयानंद में। कहीं उनका आशय लेकर परिवर्द्धित रूप में भी उदाहरण दिए गए हैं।

कुवलयानंद में लुप्तोपमा का यह उदाहरण दिया हुआ है—

तडिद्गौरीन्दुतुल्यास्या कर्पूरन्ती दृशो म ;
कान्त्या स्मरवधूयन्ती दृष्टा तन्वी रहो मया ।
यत्तया मेलनं तत्र लाभो मे यश्च तद्रतेः ;
तदेतत्काकतालीयमवितर्कितसम्भवम् ।

वही रसिकरसाल में इस प्रकार दिया हुआ है—

छन छवि भोरी गोरी विधु सो वदन,
तन, सोहत मदन तिय कांति अभिराम है। इत्यादि

इसी प्रकार कुवलयानंद के उपमेयोपमा के लक्षण और उदाहरण का प्राय. अनुवाद रसिक-रसाल में दिया गया है। कुवलयानन्द के न्यूनताद्रूप्य रूपकालंकार के उदाहरण 'अचतुर्वदनो' का अनुवाद रसिक-रसाल में इस तरह दिया गया है—

एक सरूप सनातन हौ गुरु ग्यान सनातन न्यान बखानै ।
तीसरे नैन बिना हरदेव हौ सेवक मोप विधायक मानै ॥
द्वै भुज केसव के अवतार कुमार कहै गुरु हो पहिचानै ।
एक ही आनन चारिहु वेद के गायक हौ कमलासन जानै ॥

इसी प्रकार अन्य लक्षण और उदाहरण भी समान रूप से रसिक-रसाल में मिलेंगे।

नवम-दशम उल्लास—काव्य-गुण-दोष-विचार

रसिकरसाल के इस उल्लास में काव्य के तीन गुण ओज, प्रसाद और माधुर्य और सोलह दोष (१. श्रतिकटु, २ च्युत-संस्कृत, ३. अप्रयुक्त, ४ असमर्थ, ५ निहतार्थ, ६. अनुचितार्थ, ७. निरर्थ ८. अवाच्य, ९ अश्लील, १०. संदिग्ध, ११ अप्रतीत, १२. ग्राम्य. १३. नेयार्थ, १४. संश्लिष्ट (क्लिष्ट), १५. अविमृष्ट-विधेयांश और १६ विरुद्धमतिकार) वे ही हैं, जो काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण में दिए हुए हैं।

च्युतसंस्कृत-दोष के विषय में लिखा है कि यह दोष संस्कृत में ही पाया जाता है। असल में च्युतसंस्कृत दोष वहीं होता है, जहाँ कोई प्रयुक्त शब्द ऐसा हो, जो उस भाषा के व्याकरण के नियमों के प्रतिकूल प्रयुक्त हुआ हो, अथवा जिसका स्वरूप ऐसा हो, जो व्याकरण से सिद्ध न हो सके। हिंदी-भाषा का वस्तुतः उस समय कोई स्थिर रूप नहीं था, अतएव उसका कोई व्याकरण भी नहीं था और इसलिए इस दोष का निर्वाह इस भाषा में न हो सका।

कुमारमणि की कविता

मिश्रबंधुओं ने कुमारमणि को पद्माकर की श्रेणी में रक्खा है। श्रेणी के लिहाज से किसी कवि की जाँच करना यहाँ हमारा प्रयोजन नहीं है और न मिश्रबंधुओं की श्रेणी के औचित्यानौचित्य का विवेचन ही। परंतु कविता के गुणों को देखते हुए यह निर्भीक होकर कहना पड़ेगा कि कुमारमणि की

कविता बहुत उच्च श्रेणी की है, और उसमें भाव-प्रौढ़ता के साथ-साथ शब्दालंकार और अर्थालंकार, दोनों ही का अच्छा और यथोचित सन्निवेश है। भाषा की दृष्टि से भी उसमें शब्दों की इतनी तोड़-मरोड़ नहीं है, जितनी अनुप्रासप्रियता के कारण पद्माकर ने की है। कुमारमणि की कविता में जहाँ अनुप्रास का प्राधान्य है, वहाँ भी प्रसाद-गुण वर्तमान है और भाषा स्वच्छ है। उदाहरणों की कमी नहीं है, और रसिकरसाल में वस्तुतः अनेक पद्य इस बात के साक्षी हैं कि कुमारमणि किस दर्जे के कवि थे। कुछ उदाहरण हम यहां दिए देते हैं, जिन्हें देखकर पाठक स्वयं इस कथन की सत्यता का अनुमान लगा सकते हैं*।

कृष्णाभिसारिका का उदाहरण—

नीलपट लपटी लपट ऐसी तन तैसी,
निपट सुहाई मृगमद खौर हेरिए।
नेकु उघरत अंग छवि की तरंग वढ़ै,
घन संग जामिनी में दामिनी निवेरिए॥
'सुकवि कुमार' मार भूप की मसाल मानो,
गई कुंज—जाल तहाँ छाई है अँधेरिए।
खोल मुखचद चदमुखी लखै जाही ओर,
ताही ओर ओर महताब-सी उजेरिए॥

* प्रस्तुत विषय में हम पाठकों का ध्यान भूमिका के उस प्रकरण पर आकृष्ट करना चाहते हैं, जिसमें 'कुमारमणि और पद्माकर' की कविता के विषय पर कुछ लिखा गया है।—संपादक

सकल तारुण्य का उदाहरण—

नेह मद छाई चितवन चतुराई त्यों,
कुमार सुकुमारता ः मालती विसारिए।
गति गरवाई चुलि छाई है गुराई गात,
बातनि सरसताई सुधानिधि धारिए॥
प्यारी के निहार पानि पगनि दगनि लाली,
कोकनद कांति त्यौं गुलाब वार डारिए।
आनन समान नाहीं होत याही दुख माँह,
मुख माँह छाँह छवि-नाह के निहारिए॥

वत्सल-रस का उदाहरण—

चैन सुन्यो बन तें हरि आए बने नट-वेष की भाँति गही है।
मात जसोमति द्वारहि दौरि गई सुत देखन कों उमही है॥
कान्हर को मुख चूमति घूमति जाइ हिए निधि मानो लही है।
आँचर पोंछति गोरज धूलि है फूल हिए सुख भूलि रही है॥

शांतरसानुभाव का उदाहरण—

जनम गवायौ बादि जित तू सवाद विष,
विषयन मदन विषाद हू अघाइगौ।
कहत 'कुमार' सनसार है असार ताहि
मानि सुखसार अघ औगुन हू छाइगौ॥
चचल अचंक मन रंचक न जानौ कान्ह,
भवपारावार बीच नीच तू समाइगौ।

हरि-नाम-गुन कों बिसारि धारि औगुन कों,

घरी-घरी बूड़त घरी-सी बूढ़ आइगौ ॥

बीभत्स-रस का उदाहरण:—

गरदा से परे मुरदानि के रदासे, तहाँ

सीन्हें अंक बैठ्यो सिरदार रंक प्रेतु है।

लै-लै मुख कोरें ओरें आवति निकट, दोरें

दाँत काढ़ि आँत काढ़ि कीन्हो हार हेतु है ॥

पीठ जंघ अच्छनि कपोलनि प्रमथ भच्छि,

आतुर छुधा सों रच्छु ह्वै रह्यो अचेतु है।

हाडनि हू चाखि ढारै नाँखिन हीं आँखिन हीं,

मूँदि संग माँखिन ही मास भख लेतु है ॥

इस तरह के अधिकांश उदाहरण रसिक-रसाल में यत्र-तत्र भरे पड़े हैं।

रसिक-रसाल की शैली

शैली की दृष्टि से कहा जा सकता है कि—कुमारमणि ने काव्यप्रकाश अथवा साहित्यदर्पण की शैली का अनुसरण किया है, और यही शैली विषय-निबंध की दृष्टि से परंपरागत भी है। रसिक-रसाल में पहले लक्षण दिया गया है, फिर उदाहरण। जहाँ विषय अथवा लक्षण को स्पष्ट करने की आवश्यता दिखलाई पड़ी है, वहाँ कवि ने वृत्ति (वार्ता) दे दी है। लक्षण और उदाहरण पद्य में हैं तथा वार्ता गद्य में। यही शैली तत्कालीन हिंदी के अन्य आचार्य कवियों ने भी बरती है। यथा—

मध्यम काव्य का उदाहरण—

लक्षण—

वाच्य अर्थ तें व्यंग जँह सुन्दर अधिक न होय,
अगुरु व्यंग्य सो नाम कहि मध्यम काव्य विचार।

उदाहरण—

बैठी जहाँ गुरु नारि समाज में,
गेह के काज में हैं वस प्यारी। इत्यादि।

वार्ता—

"इहाँ संकेत-स्थान कान्ह गए, हौं न गई, इहि व्यंग्य तें वाच्यार्थ सुन्दर है।"

इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ में अन्यत्र भी विपय का स्पष्टीकरण किया गया है। कहीं-कहीं हिंदी के लक्षण न कहकर संस्कृत के ग्रथों के लक्षण ज्यों-के त्यों रख दिए गए हैं। जहाँ आठ सात्त्विक भाव बताए गए हैं, वहाँ रसमंजरी के "स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः" आदि श्लोक का उद्धरण दे दिया गया है।

इसी प्रकार तैंतीस व्यभिचारी भावों का निदर्शन कराते हुए काव्यप्रकाश का "निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूया मदश्रमाः" इत्यादि श्लोक का उल्लेख कर दिया गया है *।

---

* मेरे ध्यान से विपय की स्पष्टता एव प्रसिद्धि होने के कारण कवि ने उसके अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं समझी है। सपादक

कुमारमणि का सिद्धान्त

यह ऊपर कह दिया गया है कि रसिकरसाल किसी खास सिद्धान्त को लेकर नहीं रचा गया है, और न हिंदी-भाषा के रीतिग्रंथों में इस प्रकार के शास्त्रार्थ की गुंजाइश ही थी, क्योंकि जिस उद्देश्य को दृष्टिगत करके रीतिग्रंथ लिखे गए हैं, वह बिलकुल भिन्न था। कवित्व-शक्ति-प्रदर्शन तथा रसिकता का परिचय देना उस समय के आश्रयदाताओं की रुचि के सर्वथा अनुकूल था, और जो गुण, शैली, शास्त्रार्थ, व्युत्पत्ति और सिद्धान्त-प्रतिपादन इत्यादि आचार्यत्व के परिपोषक गुण थे, उनकी आश्रयदाताओं के यहाँ प्रायः पूछ नहीं थी। समय का प्रभाव अवश्य पड़ता है, अतः तदनुसार हिंदी-कवियों ने आचार्यत्व का डंका संस्कृत-भाषा को लेकर बजाया, और अपने कवित्व तथा रसिकता का परिचय हिंदी-भाषा में ही देकर आश्रय व उदरपूर्ति का साधन प्राप्त किया। यही कारण था कि—तत्कालीन हिंदी के कवियों ने संस्कृत-साहित्य के सिद्धांतों को ज्यों-का-त्यों लेकर उन्हीं पर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया। उस परिस्थिति में इसकी गुंजाइश कहाँ थी कि—कोई कवि अपने सिद्धांत को लेकर उसकी विवेचना के लिये शास्त्रार्थ के झगड़े में पड़ता। हिंदी-साहित्य के रीतिग्रंथ के लेखकों ने—जिनकी गणना आचार्यों में की जाती है—वस्तुतः स्वतंत्र रूप से किसी सिद्धांत की स्थापना नहीं की है। यदि कहीं कुछ दिखाई पड़ता है, तो वह काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण

अथवा रसगंगाधर की झलक-मात्र है, जो यत्र-तत्र बिखरी हुई सी मिलती है।

रसिकरसाल में भी इसी प्रकार से स्वतंत्र रूप से किसी खास सिद्धांत का विवेचन नहीं है। काव्यप्रकाश, साहित्य-दर्पण आदि के मत को हिंदी-भाषा में समझाया गया है। संस्कृत-साहित्य में आचार्यों ने विशेषतया काव्य-लक्षण, तात्पर्यवृत्ति, रस-लक्षण, रसों की संख्या, रस का अनुभव अथवा चर्वणा कैसे होती है, एक अलंकार का दूसरे में समावेश, उनमें से किसी एक के भेद का निराकरण, आदि विषयों पर बड़े प्रौढ़ और विशद शास्त्रार्थ किए हैं, और उनमें मौलिकता, वैज्ञानिकता एवं पाण्डित्य तथा सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। हिंदी-साहित्य में वैसे शास्त्रार्थ की झलक भी नहीं पाई जाती। फिर रसिकरसाल में भी इस तरह के विवेचन की आशा रखना व्यर्थ है*।

रस के विषय में कुमार-मणि ने जो—

"लौकिक और अलौकिकै द्वै जानहु रस-ठौर।
लौकिक लोक-प्रसिद्ध अरु कवित नृत्य में और ॥"

---

* कुमारमणि का केवल उद्देश यही था कि—वह काव्यप्रकाश के शास्त्रार्थ को हिंदी भाषा-भाषियों के सम्मुख रखते। इसी कारण उन्होंने 'रसिक रसाल' की रचना की है। "काव्यप्रकाश विचार कछु भाषा मे रचि हाल" आदि दोहा इसी अर्थ का स्पष्टीकरण करता है। अत कवि काव्यप्रकाश के अतिरिक्त अन्य किसी स्वतंत्र सिद्धान्त का प्रतिपादन करने मे स्वतन्त्र नहीं था। सपादक

आदि जो ४-५ दोहे लिखे हैं, वे भी स्वतन्त्र न होकर संस्कृत के सिद्धांतों की छाया हैं। पिछले दो दोहों में शृंगार-रस की उत्तमता स्थापित की गई है, और नायक-नायिकाओं के भेद-प्रभेद, उनके विलासादि, आलम्बन-उद्दीपन-विभावादि, अनुभव, संचारी आदि का जो आगे रसिकरसाल में वर्णन किया गया है, उसकी पुष्टि इस विचार से की गई है कि—पाठक उसमें निरी रसिकता ही न देखें; बल्कि उसको उस श्रद्धा से देखें, जिससे श्रीकृष्ण भगवान् की लीलाएँ देखी जाती हैं।

संस्कृत-साहित्य में भरत मुनि के काल से लेकर जगन्नाथ पंडितराज के समय तक इन साहित्यिक सिद्धान्तों का इतना सूक्ष्म व विस्तृत विवेचन हो गया है कि—न तो कोई युक्ति, सिद्धान्त अथवा मत ही बाकी बचा है, और न नये अन्वेषण अथवा बारीकियाँ निकालने की कोई गुंजाइश ही रह गई है। ऐसी स्थिति में अपेक्षाकृत बहुत ही कम पनपे हुए हिंदी-साहित्य के आचार्यों अथवा कवियों से यह आशा रखना कि वे अपना ही राग गा निकलेंगे, और उसको श्रद्धा के साथ सुननेवाले विद्वान् मौजूद रहेंगे, दुराशा-मात्र ही है।

हिंदी-साहित्य में रीति-शास्त्र के अन्य आचार्य और कुमारमणि

खेद का विषय है कि जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य के प्रमुख आचार्यों के ग्रंथ मुद्रित हो जाने से सुलभ हो गये हैं,

उसी प्रकार हिंदी-साहित्य के आचार्यों के ग्रन्थ अद्यावधि सुलभ नहीं हुए हे। प्रथम तो बहुत-से छपे ही नहीं हैं, और यदि कुछ छप भी गये हैं, तो वे इतने दुष्प्राप्य हैं कि सर्व-साधारण तक उनकी पहुँच नहीं हैं। कुछ प्राप्य भी हैं, तो वे एकाङ्गी हैं और उनसे एक आचार्य की दूसरे आचार्य से उत्तमता या हीनता की विवेचना नहीं की जा सकती। बहुत-से जो छपे हैं, वे या तो अलंकार पर हैं या नायिका-भेद पर।

प्रारंभ में उन आचार्यों का नाम बतला दिया गया है, जिनके ग्रंथ उत्तम कोटि के हैं, और जिन्होंने काव्य के सब अंगों पर कुछ न कुछ लिखा है, परंतु वे ग्रंथ प्रेस तक नहीं पहुँच सके हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उत्साही और साहित्य-"प्रेमी सज्जन उनके छपवाने का बीड़ा उठावें। उक्त ग्रंथों के आधुनिक शैली से मुद्रित और प्रकाशित होने पर हिंदी-काव्य साहित्य का बड़ा उपकार होगा।

हिन्दी साहित्य के पारखी भिखारीदास को उच्च श्रेणी का आचार्य समझते हैं, परतु यह बात कहाँ तक उचित एवं दृढ है, इस विषय में यहाँ एक-दो शब्द लिख देना अनुचित न होगा।

वास्तव में हिन्दी-साहित्य के रीति-शास्त्र तथा संस्कृत-साहित्य के रीति-शास्त्र में कोई भेद नहीं है। भाव, सिद्धान्त, परिभाषा, उदाहरण आदि सारी बातें वही हैं, जो सस्कृत-ग्रंथों में हैं, केवल भाषा ही नाम मात्र की हिन्दी है। इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में आचार्य-पद उन्हीं को प्राप्त हुआ है, जिन्होंने

संस्कृत के रीति-शास्त्र के विषय को उसमें लिख दिया है। हिन्दी-साहित्य-ग्रंथों में इस नकल को जितनी पूरी मात्रा में दिखाया गया है, समालोचकों ने उसी हिसाब से उस आचार्य की गुरुता और लघुता का परिमाण निकाल लिया है। ऐसी स्थिति में हिन्दी के इन आचार्यों के काम की ठीक परख वही कर सकता है, जिसे संस्कृत के अलंकार-शास्त्र का पूरा ज्ञान हो। खेद का विषय है, आजकल हमारे हिन्दी-साहित्य के बहुत-से समालोचकों की समालोचनाओं में कई त्रुटियाँ ऐसी दिखाई पड़ती हैं, जिनसे तुरन्त ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उनको संस्कृत-साहित्य का ज्ञान कितना है।

संस्कृत-साहित्य में काव्यप्रकाश' और 'साहित्यदर्पण' इस विषय के अच्छे एवं प्रामाणिक ग्रंथ हैं, और उन्हीं के आधार पर हमारे हिन्दी-साहित्य के आचार्यों ने ग्रंथ लिखे हैं।

भिखारीदास का काव्यनिर्णय और कुमारमणि का रसिक-रसाल अधिकतर काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण के आधार पर ही लिखे गये हैं। परन्तु विषय-प्रतिपादन करने में और परिभाषा के उल्लेख करने में, दोनों में बड़ा अन्तर है। रसिक-रसाल में संस्कृत-साहित्य के इन ग्रन्थों का विषय करीब-करीब ठीक ही दिया गया है, परन्तु काव्यनिर्णय में बड़ी कमी है। काव्यनिर्णय में बहुत-से स्थान ऐसे मिलेंगे, जहाँ लक्षण अथवा परिभाषा अपूर्ण हैं अथवा अशुद्ध किंवा भ्रामक हैं।

इसी तरह और भी कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। काव्यनिर्णय के किसी अच्छे सटीक संस्करण में इन त्रुटियों का पूरा विवेचन किया जा सकता है, स्थानाभाव के कारण यहाँ ऐसा नहीं किया जा सकता।

एक बात यहाँ खास तौर पर कह दी जाती है। विश्व-विद्यालय तथा अन्य शिक्षा-संस्थाओं में पाठ्यक्रम में और ऊँची परीक्षाओं में काव्यनिर्णय पाठ्यपुस्तक रक्खी जाती है; उद्देश्य यही होता है कि विद्यार्थी को साहित्य-शास्त्र का इससे कुछ ज्ञान हो जावे। परंतु 'काव्यनिर्णय' की त्रुटियों को देखते हुए ऐसा होना बड़ा कठिन है।

हिन्दी का समस्त साहित्य-शास्त्र अथवा रीतिशास्त्र संस्कृत के एतद्विषयक शास्त्र की बिलकुल नक़ल ही है; और इस नक़ल के लिहाज से, हमारी समझ में, काव्यनिर्णय का स्थान बहुत नीचे है। बहुत से और भी कई ग्रंथ हैं, जिनमें इस विषय का अच्छा, युक्तियुक्त विवेचन किया गया है इसलिये उनमें से किसी एक को पाठ्यक्रम के लिये चुना जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों को इस शास्त्र का वास्तविक ज्ञान हो सके। विद्या-प्रेमी और विद्या हितैषी लोगों को तद्विषयक ग्रंथों के प्रकाशनार्थ जरूर प्रयत्न करना चाहिए। संस्कृत-साहित्य के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण को पढ़ लेने पर इस शास्त्र का काफ़ी अच्छा ज्ञान हो सकता है, और उच्च परीक्षाओं में इन्हीं दो ग्रंथों का मान है, परंतु हिंदी-साहित्य में

ऐसे कोई दो ग्रंथ अभी तक दुनिया के सामने नहीं आये हैं, जिनको पढ़कर हमें इस विषय का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सके। कहा जाता है कि सोमनाथ ने समग्र काव्यप्रकाश का अच्छा अनुवाद किया था। और भी कई कवियों ने काव्य-प्रकाश के अनुवाद किए हैं। रसिकरसाल भी इस विषय का वस्तुतः एक उत्तम ग्रंथ है, और इससे भी विद्यार्थियों के इस विषय की कमी पूरी हो सकती है ; आशा है, हिंदी-साहित्य के हितैषी लोग 'रसिकरसाल' का उचित आदर करेंगे*।"

रसिकरसाल का प्रकाशन



सी कवि ने ठीक कहा है—"सज्जनःपर फलानि समायम।" यह यही उक्ति प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन से चरितार्थ होती है।

आज से १४ वर्ष पूर्व जब मैं अपना विद्यार्थि-जीवन समाप्त कर गृहस्थ बम्बई जाकर रहा (सं० १९८० की बात है), मेरे हृदय में स्वकीय पूर्वपुरुष 'कुमारमणि' कवि के प्रस्तुत ग्रंथ के मुद्रण कराने की अभिलाषा जागरूक हुई। हिंदीसाहित्यसम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के कारण हिंदी-साहित्य के प्रति रुचि होना स्वाभाविक ही था, इधर जातीय उन्नति का जोश हिलोरें ले रहा था। फलतः दोनों के सम्मिश्रण ने 'रसिकरसाल' के प्रकाशनार्थ उत्साह उत्पन्न कर दिया। लेखनी लेकर बैठा, तो दो मास के भीतर ही ग्रंथ की प्रेस-कापी तैयार कर ली। उसे सब प्रकार की सामग्री से सुसज्जित कर किसी संस्था की प्रतीक्षा करने लगा, जो इसे प्रकाशित कर मेरे उत्साह को द्विगुणित कर दे।

नागरी-प्रचारिणी सभा काशी से तदर्थ पत्र व्यवहार किया

गया, और उसे देखने के लिये ग्रंथ की प्रतिलिपि भेज दी गई। आशा थी कि ग्रंथ अब प्रकाशित हुए विना न लौटेगा। पर... कुछ दिनों बाद उत्तर मिला—"अभी हमारे पास कार्य अधिक है। हम छापने को विवश हैं।" मेरा विचार था कि यह ग्रंथ नागरी-प्रचारिणी सभा को दे दूँ, यदि वह इसे प्रकाशित कर दे;.पर मेरा मनोरथ मेरे पास ही रह गया। क्या किया जा सकता था? उसके पास भी तो विशाल अप्रकाशित हिंदी-साहित्य प्रकाशित करने को पड़ा हुआ है?

इधर से निराश होकर मैंने उक्त ग्रन्थ हिंदी-साहित्य सम्मेलन के पास भेजा। वहाँ से वह निरीक्षणार्थ पं० पद्मसिंह शर्माजी के पास भेजा गया। कुछ दिनों लिखा-पढ़ी की दौड़धूप करने पर शर्माजी के अभिप्राय के साथ साहित्यसम्मेलन का भी उत्तर मिल गया। सम्मेलन के सामने हिंदी-प्रचार और परीक्षा-प्रचार का कार्य था। हाँ, पद्मसिंह शर्माजी के अभिप्राय से मुझे ग्रंथ की मौलिकता, उपादेयता तथाच प्रकाशन की आवश्यकता के प्रति और भी अधिक विश्वास बढ़ गया। उनके पत्र से ग्रंथ की शैली किस प्रकार रखनी चाहिये, यह विदित हो गया। उन्होंने लिखा था कि "कवि का अभिप्राय उन्हीं के शब्दों में प्रकट कर देना चाहिए।" बात यह हुई थी कि—रसिकरसाल की वर्तमानकालिक उपयोगिता हो जाने के लिये मैंने उसमें यत्र-तत्र आनेवाले गद्यांश को 'खड़ी बोली' का रूप दे दिया था, जो मुझे अब ज्ञात हुआ है कि वह मेरी

अनधिकार चेष्टा थी। सम्भव है कि आज तक वह मेरे पास उपलब्ध नहीं होता। अस्तु।

उक्त अभिप्राय और दोनों ओर से 'हरा झंडा' प्राप्त किये जाने पर मैंने निश्चय किया कि अभी न तो ग्रंथ के प्रकाशन का ही समय आया है और न कवि की प्रसिद्धि का ही। अतः जब कवि के 'भाग्योदय' होंगे, सब प्रकार का प्रबन्ध स्वतः हो जायगा।

जिस समय मैंने 'मिश्रबन्धु विनोद' पढ़ा मुझे 'कुमारमणि' का संशोधित परिचय उसके द्वितीय संस्करण में भेजना पड़ा। उस समय उसमें मिश्रबन्धुओं ने ग्रंथ के लिये अपना अच्छा अभिप्राय व्यक्त किया था। मैंने 'कुमारमणि' के विशेष चरित्र के परिज्ञानार्थ उनकी लिखित तथा स्वकीय हस्तलिखित पुस्तकालय की पुस्तकों का परिशीलन कर यत्र-तत्र से ऐतिहासिक सामग्री संकलित की, जिसके फल-स्वरूप पाठकों की सेवा में कवि की जीवनी दी जा सकी है। इसके बाद 'रसिकरसाल' की प्रेस-कापी मेरे उत्साह के साथ एक बस्ते में बंद, मुख छिपाये गत १२ वर्षों तक पड़ी रही।

काल-चक्र ने कहिये अथवा मेरे भाग्य ने कहिये, मुझे काकरोली-नरेश गो० श्री१०८ श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज के अध्यापन कार्य पर नियुक्त किया, आज उस कार्य को करते मुझे उतना ही समय व्यतीत हुआ है।

स्वनाम-धन्य उक्त महानुभाव एक योग्य धर्माचार्य, विद्वान्,

तथा साहित्य-विद्या-कला-प्रेमी नवयुवक हैं। आपकी विद्याभि-रुचि, उत्साह, उदारता तथाच कार्य-तत्परता से ही कांकरोली-जैसे स्थान मे विद्या को विकसित होने का सद्भाग्य अधिगत हुआ है।

आपके उदार आश्रय में सं० १६८५ में विद्याविभाग की स्थापना हुई, और उसके अंतर्गत अन्य संस्थाओं को उद्भवित होने का अवकाश मिला, जिनमें से 'श्रीद्वारकेश कवि मण्डल' भी एक है। द्वारकेश कवि मण्डल के द्वारा सं० ८६-६० की समस्या-पूर्तियों का संग्रह 'कविता-कुसुमाकर' नाम से दो भागों में प्रकाशित हुआ, जिसमें कुछ नवीन कवियों की संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं की सुललित कृतियों का समावेश था। कहना होगा कि हमारे कथित प्रयत्न का साहित्यिकों ने सराहा, और हमें पूज्य आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का भी शुभ अभिप्राय उक्त ग्रंथ पर प्राप्त हुआ।

किन्हीं मित्रों के परामर्शानुसार हमें यह अनुभव हुआ कि समस्या-पूर्तियों से साहित्य की ठोस सेवा नहीं होती, उसके लिये प्राचीन साहित्य-ग्रन्थों का प्रकाशन होना चाहिए, जो लुप्त होते जाते हैं,। जिसका कारण उनकी अप्रकाशित अवस्था है। प्राचीनता के प्रति प्रतिदिन जागरूक होनेवाली लोकाभि-रुचि के प्रदर्शन ने भी हमारे इस अनुभव को दृढ किया, और हमारे सम्मुख किसी प्राचीन साहित्य-ग्रंथ के प्रकाशन की कल्पना मूर्तिमती होने लगी।

होने के कारण अभी तक अज्ञात एवं अनुपलब्धप्राय है था। सम्प्रति हमारे सामने एक ही लक्ष्य था, और वह था 'कवि कलानिधि और उनके ग्रंथ को किसी प्रकार साहित्य संसार के समक्ष लाने का।' इसमें कहाँ तक सफलता मिली है, यह या तो दयामय श्रीहरि ही जानते हैं, या जानेंगे सहृदय सज्जन, जो साहित्य-सुधा के प्यासे हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

कांकरोली
चै० शु० १ सं० १९९४

विनीत—
पो० कण्ठमणि शास्त्री, विशारद
का० वे० शा० शु० स०



* विद्याविभाग के रजताब्दी-महोत्सव का आयोजन हो जाने पर (सं० १९९४ के कार्तिक मास के आसपास) ऐसे ग्रंथों की कांकरोली में एक प्रदर्शनी की जायगी, जो वहां के विद्याविभागान्तर्गत 'सारस्वत भण्डार' में सुरक्षित हैं। इसकी विशाल सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी।—सम्पादक

ग्रन्थ-प्रकाशन

पौत्रकर्षि, आन्ध्र विप्रकुल-तिलकायमान,
जिनकी सुशाखा शाकल, वेद ऋक जान्यौ है;
प्रवर प्रसिद्ध पंच, गोत्र वत्स शील सुध—
भट्ट 'हरिवल्लभाभिधेय' पहिचान्यौ है।
तनुज तदीय 'गढपहरा'* निवासी विज्ञ,
पण्डित 'कुमारमणि' भूप-सनमान्यौ है;
उनको विशाल हास कीर्तिमय काव्य-कर्म,
'रसिकरसाल' ये प्रकाश मध्य आन्यौ है।

बालकृष्ण† चरणानुचर
तद्वंशज, बुध-दास;
कियो कण्ठमणि ग्रंथ को
सुमुद्रण, मंजु प्रकाश।
वेद भक्ति-युग चंद्र (१९९४) मित
सवत मधुर वसंत,
मुदित 'रसिक-रसाल' लखि
विलसतु सुहृद व संत।

विधेय—

कांकरोली
वैशाख शुक्ल ९५
सं० १९९४

पो० कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'
'देशिकेन्द्र'

---

* 'गढपहरा'-ग्राम सागर ज़िला
† पितृचरण प० बालकृष्ण शास्त्रीजी दतिया नरेश-राजगुरु

होने के कारण अभी तक अज्ञात एवंच अनुपलब्धप्राय हैं *। सम्प्रति हमारे सामने एक ही उद्देश्य था, और वह था 'कवि कुमारमणि और उनके ग्रंथ को किसी प्रकार साहित्य संसार के समक्ष लाने का।' इसमें कहाँ तक सफलता मिली है, यह या तो दयामय श्रीहरि ही जानते हैं, या जानेंगे सहृदय सज्जन, जो साहित्य-सुधा के प्यासे हैं।

ॐ शान्ति शान्ति. शन्ति।

कांकरोली चै० शु० १ सं० १९९४	विधेय— पो० कण्ठमणि शास्त्री, विशारद का० वे० शा० शु० म०



---

* विद्याविभाग के दशाब्दी-महोत्सव का आयोजन हो जाने पर (सं० १९९४ के कार्त्तिक मास के आसपास) ऐसे ग्रंथों की कांकरोली में एक प्रदर्शनी की जायगी, जो वहाँ के विद्याविभागान्तर्गत 'श्रीसरस्वती-भण्डार' में सुरक्षित हैं। इसकी विशाल सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी।—संपादक

ग्रन्थ-प्रकाशन

पोवर्कूर्षि, आन्ध्र विप्रकुल - तिलकायमान ,
जिनकी सुशाखा शाकल, वेद ऋक जान्यौ है ;
प्रवर प्रसिद्ध पंच, गोत्र वत्स शील बुध—
भट्ट 'हरिवल्लभाभिधेय' पहिचान्यौ है ।
तनुज तदीय 'गढपहरा'* निवासी विज्ञ ,
पण्डित 'कुमारमणि' भूप - सनमान्यौ है ,
उनको विशाल हाल कीर्तिमय काव्य-कर्म ,
'रसिकरसाल' ये प्रकाश मध्य आन्यौ है ।

बालकृष्ण† चरणानुचर
तद्वंशज, बुध - दास ;
कियो कण्ठमणि ग्रंथ को
मुद्रण, मंजु प्रकाश ।
वेद भक्ति-युग चंद्र (१९९४) मित
संवत मधुर वसंत ,
मुद्रित 'रसिक-रसाल' लखि
विलसतु सुहृद् व संत ।

विधेय—

कांकरोली वैशाख शुक्ल १५ सं० १९९४	पो० कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद' 'देशिकेन्द्र'

---

* 'गढपहरा'-ग्राम सागर जिला

† पितृचरण प० बालकृष्ण शास्त्रीजी दतिया-नरेश-राजगुरु

कवि कुमारमणि शास्त्री का वंश

—— :*: ——

मुख्य पूर्व पुरुष—

१ माधव पण्डितराज, २ रुद्रण, ३ बलभद्र, ४ मधुसूदन कविपण्डित

—— * ——

पं० रुद्रणाचार्य
|
पं० चतुर्भुज शा०
|
पं० हरिवंश शा०

- १ पं० वेदमणि शा०
- २ पं० कण्ठमणि शा०
  - पं० हरिवल्लभ शा०
    - १ * पं० कुमारमणि शा०
      - पं० भोजराज शा० (हरिजन)
        - पं० नारायण शा०
          - पं० बिहारीलाल शा०
            - १ पं० मुकुन्द शा०
              - १ पं० बालकृष्ण शा०
                - † पं० कण्ठमणि शा०
              - २ पं० श्रीकृष्ण शा०
                - पं० गोपालकृष्ण
              - ३ पं० हरिकृष्ण शा०
                - पं० हृषीकेश शा०
              - ४ पं० उपेन्द्र शा०
                - पं० पुरुषोत्तम शा०
                - पं० दामोदर शा०
            - २ पं० नारायण शा०
            - ३ पं० यदुनाथ शा०
            - ४ पं० श्रीनिवास शा०
      - पं० कृष्णदेव
    - २ पं० वासुदेव शा०

---

* रसिकरसाल-ग्रन्थकर्ता

† रसिकरसाल ग्रन्थसम्पादक

रसिकरसाल-विषयानुक्रमणिका

इति विषयानुक्रमणिका



श्रीहरिः

प्रथम उल्लास

मङ्गलाचरण

कवित्त

गोपिन को मीत, सुर - नर - नाग - गीत,
गुन - गननि प्रतीत, पीतपट कटि धारे है;
मंजुल मुकुट, कंध कामरी, लकुट कर,
वन भटकत, नट - वेष को सु धारे है।
वच्छन को चारक, उचारक निगम को,
"कुमार" परिचारक के काजहिं सम्हारे है,
एकै मतिधारी लोक - वेद - निरधारी न्यान,
गिरिवरधारी, कान्ह ठाकुर हमारे हैं॥ १ ॥

सवैया

नन्दकुमार "कुमार" सनातन, हौ भवसातन ज्ञान त्रिसेख्ये।
ईछत रावरी सेवा सरूप परीछत कै कै परीछत पेखे।
पूरन ब्रह्म परे पर तैं परमानँद हौ, परमानँद देखे।
ज्यो सविता सब तारन में अवतारन में अवतार यौं लेखे॥ २ ॥

दोहा

सुरगुरु - सम मण्डन - तनय, बुध जयगोविंद ध्याइ।
कवित - रीति, गुरु - पद परसि अरु पुरुपोतम पाइ ॥ ३ ॥
काव्यप्रकाश - विचार कछु रचि भाषा में हाल।
पण्डित सुकवि "कुमारमनि" कीन्हौ "रसिकरसाल" ॥ ४ ॥

काव्य-प्रयोजन

दोहा

अर्थ - धर्म - जस - कामना लहियतु, मिटत विषाद।
सहृदय पावत कवित में ब्रह्मानन्द सवाद ॥ ५ ॥
तातैं कविता - ज्ञान मे कीजे जतन विवेक।
न्यारौ वेद - पुरान तैं शब्द सुखद यह एक ॥ ६ ॥

काव्योत्पत्ति को हेतु

दोहा

शक्ति, शास्त्र, लौकिक सकल, परवीनता समेत।
कवि-शिक्षा, अभ्यास भनि कवित उपज को हेत ॥ ७ ॥
उपजत अद्भुत वाक्य जो शब्द अर्थ रमनीय।
सोई कहियतु कवित है, सुकवि कर्म कमनीय ॥ ८ ॥
ध्वनि इक अंगरु व्यंग पुनि चित्र नाम निरधार।
उत्तम, मध्यम, अधम कहि त्रिविध सुकाव्य विचार ॥ ९ ॥

काव्य ध्वनि

दोहा

वाच्य अर्थ ते व्यंग जहँ सुन्दर अधिक विशेष।
पण्डित तासों ध्वनि कहत, उत्तम काव्य सुलेख ॥ १० ॥

सवैया

खौर को राग छुट्यौ कुच को, मिटिगौ अधरारँग देख्यौ प्रकास हि।
अंजन गौ दृग-कंजनि ते, तनु कंपत, तेरौ रुमंच हुलास हिं।
नेकु हितू जन को हित चीन्हौ न कीन्हौं अरी मन मेरो निरास हिं।
बावरी ! बावरी न्हान गई पै तहाँ न गई उहिं पीउ के पास हिं ॥११॥

इहाँ चतुरा उत्तमा नायिका के कहिबे में स्नान काज वाच्यार्थ तें, पीउ पास सुरत ही को गई, यह 'उहि पिउ' पद ते व्यग्यार्थ प्रधान सुदर है। तदनुसार तें रतिकार्य रसाग प्रभृति व्यग्य जानिये।

मध्यम काव्य

दोहा

वाच्य अर्थ ते व्यग जहँ सुन्दर अधिक न लेख।
अगुरु व्यंग सो नाम कहि मध्यम काव्य विशेष ॥ १२ ॥

सवैया

बैठी जहाँ गुरुनारि - समाज में गेह के काज में है बस प्यारी।
देख्यौ तहाँ बन तें चलि आवत नन्दकुमार "कुमार" बिहारी ॥

लीन्हे लखी कर-कंज में मंजुल मंजरी वंजुल कुंज-बिहारी।
चन्द-मुखीमुखचन्दकी कान्तिसुभोर के चंद-सी मंद निहारी॥१३॥

इहाँ "कान्त सकेत स्थान गये, हौं न गई" यह व्यंग्य तें वाच्यार्थ सुंदर है।

चित्र-काव्य

सवैया

राम नरिन्द की फौज के धाक हिये हहरी जल छीन ज्यों मच्छी।
दीह दरीनि दुरी गिरि कच्छनि सिंघनि दीनता लच्छि न भच्छी॥
तच्छन एक कहूँ थिरलच्छ न लच्छ छनच्छबि सी तन लच्छी।
गौनअलच्छित,गच्छतींतच्छन,वंच्छतीपच्छ,विपच्छमृगच्छी॥१४॥

अर्थ-चित्र

कवित्त

विमल बिसाल हिमगिरि आलबाल लसै,
जाके मूल शेष के सहस फन जाल हैं,
रामजू की जस-लता दिन-दिन बाढ़ी जाके,
बिलासनि निवास कैलास-सृङ्ग डाल हैं।
डार गंगधार तिहुँलोक-गति निरधार,
कहत "कुमार" सुर-सरिता प्रवाल हैं,
मोतीहार हार नखतावलि अपार चंद्र-
सुधा को अधार फल फूल की प्रभा लहैं॥ १५॥

इहाँ अर्थालंकार रूपक-प्रधान है।

इतिश्रीहरिवल्लभभट्टात्मज - कुमारमणि - कृते
रसिकरसाले त्रिविधकाव्य - निरूपणं
नाम प्रथमोल्लास ॥ १ ॥



द्वितीय उल्लास

उत्तम काव्य के भेद

दोहा

जामधि व्यंग प्रधान सो उत्तम काव्य बताय।
शक्ति लच्छणा मूल सो द्वैविध व्यंग जताय॥ १॥
वस्तु - रूप रस - रूप त्यौ भूपन - रूप प्रमान।
शक्ति-मूल जो व्यंग है तीन भाँति इमि जान॥ २॥
व्यंग लच्छणा मूल सो द्वैविध गनि इह ठौर।
अर्थान्तर-संक्रमित इक अधिक तिरस्कृत और॥ ३॥
व्यंग सकल इमि पंचविधि गन्यौ, कवित के ठाम।
रस व्यंग सु अलच्छ-क्रम और लच्छ-क्रम नाम॥ ४॥

अर्थ-व्यंग जानिबें को वृत्ति-विचार कहियतु है —

दोहा

रचै शब्द में अर्थ कौं बोध सुवृत्ति प्रमान।
शक्ति लच्छना व्यंजना तीन नाम सौ जान॥ ५॥
तहँ वाचक अरु लाच्छनिक व्यंजक शब्द समर्थ।
वाच्य, लच्छय अरु व्यंग्य तह क्रम ते उपजत अर्थ॥ ६॥
शक्ति - वृत्ति तें मुख्य तँह वाच्य अर्थ है होत।
लख्यौ शक्तिसम्बन्ध में कहि लच्छयार्थ उदोत॥ ७॥

अनियत बोध जु शब्द मे उपजत भाँति अनेक।
जानि व्यंजना-वृत्ति तें व्यंग्य-अर्थ सुविवेक ॥ ८ ॥

वाच्यार्थ

दोहा

जाको जँह संकेत है तँह सुनि शब्द समर्थ।
विन विलम्ब जो समुझिये वहै वाच्य है अर्थ ॥ ६ ॥

यथाः—

निरखि नद जसुमति विकल व्याकुल गोपी-ग्वाल।
गर्व सर्व हरि को हरयौ कर धरि गिरि गोपाल ॥१ ॥

इहाँ वाच्यार्थ है। तथा प्रकरण तें 'हरि' शब्द मे इन्द्र वाच्यार्थ है।

अनेकार्थ में वाच्याथ को निर्णय—

दोहा

गनि संयोग[1] वियोग[2] पुनि सहचर[3] तथा विरोध[4]।
अर्थ[5] प्रकर्नरु[6] चिन्ह[7] कछु और शब्द सँग[8] बोध ॥११॥
त्यौं समर्थता[9] योग्यता[10] पाइ देश[11] समयादि[12]।
अनेकार्थ सम्बन्ध में वाच्य कीजिये यादि ॥१२॥

क्रम तें, यथा—

कवित्त

चक्रधरै हरि[1] युद्ध-जय कौ, विषम डीठ[2],
हीन हर देव को मनोरथ अकृत कै,

काम राम लछमन[३] के, राम अरजुन[४] से
सहाय कपिराज[५] काज कोन्हे हैं प्रभूत के।
सिन्धु[६] को उतरि, हरि सीता[७] को कलेस, जारि
कनक[८] को पुर, भय मेंटे पुरुहूत के,
मन ते अगौन गौन ल्याइ पहुँचाइ द्रौन[९],
कौन कौन विक्रम बखानौ पौन-पूत[१०] के ॥१३॥

इहाँ (१) चक्र-सयोग तें हरि = विष्णु (२) विषम डीठ वियोग तें हर = महादेव (३) लक्ष्मण सहचर तें राम = दाशरथि, (४) विरोध तें रामार्जुन, परशुराम, कार्तिवीर्य (५) अर्थ ते कपिराज = बाली, सुग्रीव, (६) प्रकरण तें सिन्धु = सागर, (७) दुःख-चिह्न तें सीता = जानकी, (८) पुर शब्द सयोग तें कनक = हेम, (९) सामर्थ्य तें द्रौन = गिरि, (१०) योग्यता तें पौन-पूत = हनुमान वाच्य है। यथा वा—

दोहा

अगनित मनिगन सम जगति गगन अँगन में ज्योति[११]।
विभा विभावसु[१२] में सरस विभावरी में होति ॥१४॥

इहाँ (११) गगन देश तें ज्योति = नक्षत्र, (१२) रैन समय तें विभावसु = अग्नि, वाच्य है।

जहाँ प्रकरणादि न होंइ, तहाँ दोऊ अर्थ व्यंग है। यथा—

दोहा

घन वनमाल, विसाल छवि सखि! घनकांति गँभीर।
केलि-धाम, अभिराम लखि स्याम कलिन्दी-तीर ॥१५॥

(१) शब्दशक्तिभव

दोहा

शब्द फिरै जो फिरत सो शब्दशक्ति-भव लेख।
शब्द फिरै थिर व्यंग्य सो अर्थशक्ति-भव देख ॥१८॥

जैसे पयोधर शब्द में जो उरोज व्यग्य है सो तात्पर्य मेघ, घनादि शब्द कहैं नाहीं होत, यातें शब्द शक्ति-भव है।

(२) अर्थशक्ति-भव। यथा—

दोहा

ईखन सुषमा-पान कों सुख चाहत कत बाल।
निरखत पिय मुख-चन्द ये रहत न सूधे हाल ॥ १६ ॥

इहाँ मुख-चद्र अर्थ तें नैननि मे कमल-तुल्यता, पान ते छवि में सुधा-तुल्यता व्यग्य है, आनन-विधु, छवि-पान इत्यादि पर्याय हू के कहै होत है। यातें अर्थशक्ति-भव है। व्रीडाभाव हू व्यग्य है। एक पद मे ये दोऊ भेद हैं।

वाक्य मे (३) उभयशक्ति-भव होत है। यथा—

सवैया

ज्यौ भरम्यो न रम्यो कित हू नित ही चित हूँ त्रय-ताप तपायौ।
वेद पुराननि ढूँढि फिर्‌यौ रचि तीरथ सयम नेम उपायौ॥
कु जनि आजु 'कुमार' मिल्यौ जु अहीर की छोहरियानि छिपायौ।
पीर हरी हिय धीर धर्‌यौ व्रज-वीथी पर्‌यौ हरि हीरा हौं पायौ॥

इहाँ चौथी तुक के वाक्य ने "हीरा पायौ' जो परमानन्द पाइबो व्यंग्य है, सो उभयशक्ति-भव है।

शक्तिभव अलंकृति व्यंग्य, यथा—

सवैया

राम नरिन्द! तिहारे पयान, धुकै धरनीधर धारनहारे।
भीषम ग्रीषम सूरज तेज प्रताप के ताप के पुंज पसारे॥
रोष सतोष निहारत ही अरि गंजन हौ जन-रंजन भारे।
दुज्जन सज्जन को तुम हीं रन-रुद्र, दया के समुद्र निहारे॥२१॥

इहाँ रुद्र=भयानक वा उग्र। दया के समुद्र=मर्यादा-युक्त, वा मुद्रादानी, यह अर्थ तें रुद्र से समुद्र से हो यह उपमा व्यंग्य है।

रसव्यंग्य अनेक भाँति हैं, सो आगे कहिबी।

लक्षणा-मूल (१) अर्थांतरसंक्रमित व्यंग्य। यथा—

दोहा

समुझन गूढ़ो मूढ जन, तहि धन को परकास।
तिनहि सिखावत आवन हि जोबन विविध विलास॥२२॥

इहाँ सिखाइबो चेतन धर्म है, ताते अचेतन जोबन धन में लच्छित है, तामें थिर प्रयास सीखिबो व्यंग्य है, सो प्रकट ही है।

कहूँ लच्छनामूल व्यंग्य अप्रकट है। यथा—

सवैया

आनि अचानक आनन में विकसी मुसक्यानि की बानी सुहाई।
नैननि में चपलाई "कुमार" वसीकर गौन बसी गरवाई॥

कान्ति प्रकास उरोज-कलीनि लसी बिलसी बसि बैन सुधाई।
अंगनि देखी लुनाई जुन्हाई सी छाई अछाई नई तरुनाई॥ २३॥

इहाँ बिकसिबौ फूल धर्म है, बसिबौ प्रभृति चेतन धर्म है—सो आनन, नेत्र, गति, उरोज, वचन, जोवन प्रभृति मे लच्छित है। तहाँ बिकसिवे मे सुगन्ध फैलिबौ, बसिवे में नित्यानुराग, बिलसिवे में युक्तानुराग, मिलन, योग्यता प्रभृति गूढ व्य ग्य है।

लक्षणा-मूल (२) अत्यंत-तिरस्कृत व्यंग्य। यथा—

सवैया

कीन्हीं भलाई भली हमसों, सु कहा कहिये जग में जस लीजौ।
जाहिर है घर बाहिर रीति प्रतीति यहै पर-स्वारथ छीजौ॥
काज सुधारत ही सबको निसि बासर एपे सदा सुख कीजौ।
हौ जगदीस सौं माँगौं असीस जु कोटि बरीसक लौं तुम जीजौ॥

इहाँ विपरीत लच्छना सों अपकारी सों उक्ति है। हम सों लटाई करी, बिराने लटे कौ। आप धन छीजौ सर्व बिसामी हौ, दुख देखौ, वेगि मरौ इत्यादि व्यग्य रूढ है।

व्यग्य के प्रकटता के हेतु—

दोहा

वक्ता, श्रोता, काकु, थल, वाक्य, अर्थ, ढिग और।
देश, समय, प्रकरन प्रभृति रचत व्यंग्य बहु दौर।२५॥

(१) वक्ता के विशेष तें व्यंग्य। यथा—

सवैया

तोहि गई सुनि कूल कलिंदि के, हौंहु गई सुनि हेलि इहारी।
भूली अकेली "कुमार" कहूँ डरपी लखि कुंजन-पुंज अँध्यारी॥
गागर के जल के छलकै, घर आवत लौं तन भीजिगौ भारी।
कंपत त्रासनि ये री बिसासिनि! मेरी उसास रहै न सम्हारी॥२६॥

इहाँ कहैया (वक्ता) के विशेष तें स्वेद, कम्प, उसास प्रभृति सुरत-कार्य दुराइबो व्यंग्य है।

(२) सुनैया (श्रोता) के विशेष तें व्यंग्य। यथा—

सवैया

सूनौ पर्यौ सब मन्दिर है, बस रैनि पधारियो पंथ! सवेरे।
मेरी रहै इत सेज लखौ, उत सोवत सासु, सुनै जु न टेरे॥
सूझत साँझ परै तुमको न "कुमार" कही यह बात उजेरे।
पंथियमीत! डराति हौ जो कहुँ गात गिरौ जिनि ऊपर मेरे॥२७॥

इहाँ श्रोता के विशेष ते सभोग कीबौ व्यंग्य है।

(३) काकु जो स्वरविशेष तातें व्यंग्य। यथा—

दोहा

मोहन-मोहन को रचति भूषन दरपन जोहि।
बिन-भूषन हू तरुनि वे पिय हिय लेहि न मोहि?॥२८॥

इहाँ प्रीतम मोहिबे को लील्य विलासादि भूषण और हैं यह काकु तें व्यंग्य है।

(४) अर्थ-विशेष तें व्यंग्य । यथा—

सवैया

माह रहै खुनस्यानी, अहै गुरु-नारिन में छन हू न छमै है।
कैसे सखी! उत खेलन आइये, काज "कुमार" सबै घर मैं है॥
औसर चौसर के गुहिबे को न, कुंजकलीनि हू बीनि इमै है।
धाम के काम कहूँ बिसराम बनै दिन माँझ के साँझ समै है॥२६॥

इहाँ अर्थ तें तथा कामी को (ढिंग) पाइ बाहिर मिलाप न बनिहै, यहै व्यग्य है। और कुज थल तें, चौसर इहि मिस तें, धाम इहि देश तें, साँझ समय तें, घर ही मिलाप बनिहै, यह उपदेशहू व्यग्य है।

(५) अन्यढिंग पाइ व्यंग्य विशेष। यथा—

दोहा

मेरे कंकन-लाल-तन लाल! लखत हौ ईठि।
हौं वह, वे तुम, पै न अब वह सनेह की डीठि॥ ३०॥

इहाँ मेरे ककन-रतन में सखी-प्रतिबिम्ब देखि औरै डीठि हती, सखी गयें औरे डीठि भई, यह प्रच्छन स्नेह कहिबौ व्यग्य है।

(६) प्रकरण तें व्यंग्य। यथा—

दोहा

दई! इहाँ ठाड़े कहाँ? यह भय-ठान मसान।
सुत-सनेह तजि जाउ घर, हिय रचि कठिन पखान॥३१॥

यथाच—

सवैया

गीध की बातनि तासौं सनेह, तजौ जिय जो उपजें सुख गाहे।
काज को ख्याल न जानिये हाल जु मेटै रचै छिन मे मन चाहे॥
भूत परेत को साँझ समौ, यह देखौ घरीक धौं होत कहा है।
सोनो-सौ गात सलोनो सुजात तजै सुत जात लजात न काहे॥३२॥

इहाँ गीध दिन ही मे भच्छनकाज-छम है, सो लोगनि टारतु है। स्यार राति महँ भच्छन-छम है, तातें दिन भर राख्यौ चाहतु है।

यह व्यग्य अपनी अपनी कार्य-सिद्धि गृध्र गोमायूपाख्यान प्रकरण ही तें है।

(७) कहूँ चेष्टा विलासादि तें व्यंग्य। यथा—

दोहा

इमि उरोज मुख ओज इमि ये दिन एसे नैन।
एसी वैस बनी बनी रची सची-सी ऐन॥ ३३॥

इहाँ नृत्य आदि मे हस्तकादिचेष्टा हो ते उरोज, मुख, वैस प्रभृति मे दाडिम, चन्द्रादि की उपमा, तथा अगुलिगननादि मे वैस प्रमा-नादि व्यग्य हैं।

यथाच—

सवैया

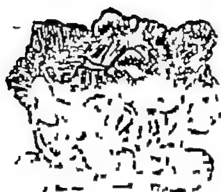
प्यारे! इसारति दीनी विलोकि कें प्यारी तहाँ दृग चाह सौं दीनै।
केलि विलासनि सौं सरसानी हँसै अरसानी सनेह नवीनै॥

नैन चलाय 'कुमार' त्यौ चंचल ओढि लियौ मुख अंचल झीनै।
बैंदी सु धारि सिधारि गली, उर ऊपर धारि दुवौ भुज लीनै॥

इहाँ चेष्टा ही तें निद्रासमय मे आगम, प्रनाम, विदा कीवौ, भेंट कीवौ प्रभृति व्यंग्य है।

—— o: ——

इति श्रीहरिवल्लभ भट्टात्मज-कुमारमणि-कृते रसिकरसाले
चतुर्विधव्यंग्य-कथनं नाम
द्वितीयोल्लासः। २॥



तृतीय उल्लास

शब्द-शक्तिभव रस-व्यंग्य

रसबोध में विभावानुभावादिको क्रम नाहीं लक्षित होत, शतपत्र-भेदरीतितें तातें अलक्षितक्रम नाम है औरव्यंग्य लक्षितक्रम नाम है।

रस-व्यंग्य के भेद

दोहा

रस अनुभाव दुहून के त्यौं आभास बखान।
भाव संधि सम उदय त्यौं भाव सबलता जान॥ १॥
रस बिन भाव, न भाव बिन रस, यह लख्यौ विशेष।
स्वादु विशेषहि तें सबै भाव प्रभृति रस लेख॥ २॥
आनँद अंकुर रूप तब भाव थाइ संचारि।
विभावादि कहवाइ वह बढ़ि रस होत विचारि॥ ३॥
ज्यौं मरिचादि सितादि मिलि पानक स्वादु विशेपि।
विभावादि थाई मिलै रसै होत त्यौं देखि॥ ४॥
लौकिक तथा अलौकिकै द्वै जाँनहु रस ठौर।
लौकिक लोक-प्रसिद्ध त्यौं, कवित नृत्य में और॥ ५॥
शृंगारादिक लोकगत कवित नृत्य में ल्याइ।
होत अलौकिक हैं सबै रस आनन्द बढाइ॥ ६॥
सकल-लोक रस के सिरै आनँद-लोक विलच्छ।
रसै एक अनुभवत हैं पंडित सहृदय दच्छ॥ ७॥

आनँदवृंद सुकान्ह रस जगत ताहि कौ रूप।
तातें तिय पुरुषादि-गत सब रस कान्ह-सरूप ॥ ८ ॥
वहै थाइ संचारि वह, वह विभाव अनुभाव।
रस स्वरूप सब कान्ह इक लख्यौ अभेद सुभाव ॥ ९ ॥
मिलि विभाव अनुभाव तहँ संचारी मिलि भाव।
रति प्रभृतिक थिरभाव पुनि रस को रचत भन्याव ॥१०॥
गनि सिंगार रस, हास रस, करुन, रौद्र अरु वीर।
वत्सल, भय, वीभत्स त्यौं अद्भुत, शांत सुधीर ॥११॥

शृंगार-रस-लक्षण

दोहा

कृष्ण देव, रँग श्याम त्यौं रति थाई शृंगार।
गनि संयोग वियोग द्वै तासु भेद निरधारि ॥१२॥

(१) सयोग शृंगार

दोहा

जहाँ परसपर अनुसरत दरस-परस सुखसार।
पिय-प्यारी कौ मिलन तहँ गनि सँयोग सिगार ॥१३॥

यथा—

सवैया

दोऊ मिले रस के बस बातनि हास विलासन के रचि बैननि।
आपनी-आपनी चाह "कुमार" दुरावत ताहि प्रतीति की सैननि ॥
कंज दियौ कर ता मिस प्रीतम प्यारीकी बाँह गही सुख चैननि।
लाज लही तिय नाहीं कही पे निहारि रही अधमूँदे से नैननि॥१४॥

इहाँ नायक-नायिका आलम्बन हैं। विलासादि उद्दीपन, भुजा-क्षेप कटाक्षादि अनुभाव हैं, व्रीडा, हर्षादि संचारी। इन मिलि पूर्ण रति स्थायी सुहृदय-हिये शृ गार-रस होत है, एसे सब रस होत है ऐसे सब रसहूँनि जानिए।

संयोग के द्वै भेद

दोहा

प्रथम भ ो संयोग में भयौ न विरह विचार।
अमित विप्रलम्भक तहाँ रस सिंगार निरधार ॥१५॥

यथा—

सवैया

केलि कै रंग रची र्रात दूसरै द्यौस मिले नव संग तमी के।
आनन में श्रम के जल की झलकी कन काँतिन भाँति कमी के॥
आरसी मे प्र तिविम्ब भई यौं "कुमार" लखी छवि साथ रमी के।
इंदु सों प्रीति करी अरविन्द मनो अरविन्द में विन्दु अमी के॥१६॥

दूसरो भेद लक्षण

दोहा

जैसे वसन कषाय में चढ़त अधिक रंग जोग।
त्यों वियोग पर होत है अधिक सुखद संयोग ॥१७॥

यथा—

सवैया

लोचन नीर अन्हाय के सायक पंच को ताप सह्यो तन सूरो।
सेज विधान तज्यौ परिधान "कुमार" बिसारोई पान कपूरो॥

आनँदवृंद सुकान्ह रस जगत ताहि कौ रूप।
तातें तिय पुरुषादि-गत सब रस कान्ह-सरूप ॥ ८ ॥
वहै थाइ संचारि वह, वह त्रिभाव अनुभाव।
रस स्वरूप सब कान्ह इक लख्यौ अभेद सुभाव ॥ ९ ॥
मिलि विभाव अनुभाव तहँ संचारी मिलि भाव।
रति प्रभृतिक थिरभाव पुनि रस को रचत भन्याव ॥१०॥
गनि सिंगार रस, हास रस, करुन, रौद्र अरु वीर।
वत्सल, भय, वीभत्स त्यौं अद्भुत, शांत सुधीर ॥११॥

शृंगार-रस-लक्षण

दोहा

कृष्ण देव, रँग श्याम त्यौं रति थाई शृंगार।
गनि संयोग वियोग द्वै तासु भेद निरधारि ॥१२॥

(१) संयोग शृंगार

दोहा

जहाँ परसपर अनुसरत दरस-परस सुखसार।
पिय-प्यारी को मिलन तहँ गनि सँयोग सिंगार ॥१३॥

यथा—

सवैया

दोऊ मिले रस के बस बातनि हास-विलासन के रचि बैननि।
आपनी-आपनी चाह "कुमार" दुरावत ताहि प्रतीति की सैननि ॥
कंज दियौ कर ता मिस प्रीतम प्यारीकी बाँह गही सुख चैननि।
लाज लही तिय नाहीं कही पे निहारि रही अधमूँदे से नैननि॥१४॥

इहाँ नायक-नायिका आलम्बन हैं। विलासादि उद्दीपन, भुजा-क्षेप कटाक्षादि अनुभाव हैं, व्रीड़ा, हर्षादि संचारी। इन मिलि पूर्ण रति स्थायी सुहृदय-हिये शृंगार-रस होत है, एसे सब रस होत है ऐसे सब रसहूँनि जानिए।

संयोग के द्वै भेद

दोहा

प्रथम भेद संयोग में भयौ न विरह विचार।
अमित विप्रलम्भक तहाँ रस सिंगार निरधार ॥१५॥

यथा—

सवैया

केलि कै रंग रची रति दूसरै द्यौस मिले नव संग तमी के।
आनन में श्रम के जल की झलकी कन काँतिन भाँति कमी के॥
आरसी में प्रतिबिम्ब भई यौं "कुमार" लखी छवि साथ रमी के।
इंदु सों प्रीति करी अरविन्द मनौ अरविन्द में बिन्दु अमी के॥१६॥

दूसरौ भेद लक्षण

दोहा

जैसे वसन कषाय में चढ़त अधिक रंग जोग।
त्यौं वियोग पर होत है अधिक सुखद संयोग ॥१७॥

यथा—

सवैया

लोचन नीर अन्हाय के सायक पंच को ताप सह्यौ तन सूरौ।
सेज विधान तज्यौ परिधान "कुमार" बिसारौई पान कपूरौ॥

ऐसे वियोग मिलै सुघरी सुखपूर अपूरब भौ बढ़ि रूरौ।
साध्यौ महातप ताकौ दुहूनि मिलेई मिल्यौ फल आनँद पूरौ॥१८॥

वियोग शृंगार-लक्षण

दोहा

परिपूरन रति है जहाँ इष्ट संग नहिं देखि।
विप्रलंभ शृंगार तहँ मानत सुकवि विशेषि॥१९॥
पूर्वरागतें मानतें त्यौं प्रवासते ल्याइ।
उत्कंठा तें श्राप तें पाँच भाँति सुबताइ॥२०॥

पूर्वानुराग-लक्षण

दोहा

सुनै लखै बाढ़त विरह बिन मिलाप अनुराग।
विरह जु तरुणी तरुन को भनि सो पूरब राग॥२१॥
थिर न [1]सोभि, सोभित [2]न थिर, थिर सोभित [3]अनुराग।
नील[1], कुसुम[2], मंजीठ रँग[3] त्रिविध सु पूरवराग॥२२॥

यथा—

कवित्त

बैठी कर मंजन झरोखै तू निहारि जब,
　　तब तें "कुमार" बढ्यौ अभिलाषवृंद है,
रूप गरबीली बाल हाल सुधि कीन्ही क्यों न,
　　दीन सुधि-हीन भौ अधीन नँदनंद है।

प्यारे को मृदुल मन मुसक्यानि फासी डारि,
फेर-फेर हन्यौ दृग - कोरनि अमंद है ;
अलक गुननि बाँधि, भृकुटी जँजीर साँधि,
उरज गुरज बीच राख्यौ करि बंद है ॥२३॥

दोहा

दूति, सखी, बंदी मुखहिं गुन को सुनबौ जानि।
चित्र, स्वप्न, साछात त्यौं दरसन तीन प्रमानि ।२४॥

(गुण श्रवण) यथा—

सवैया

छैल छबीले की बात सुनै छकि सी रहै मादक मानौ पियो है।
ताहि को नाम "कुमार" सुहात है ताही को गीत कवित्त कियो है॥
रूप बखान सलोन कियौ तब तें सुनिबेही कौ नेम लियो है।
कान्हर के गुनगान नितू सुनि ही सुनि कीनौ निसून हियो है॥२५॥

लिखिबौ त्रिविध है।

(१ चित्र-दर्शन) यथा—

कवित्त

कागद में पाटी में 'कुमार' भौन भीतिन में,
चतुर चितेरिन सौं लिखति लिखाई है,
आरसी निहारि निज मूरति को अनुहारि,
मिलिबौ विचारि चित्त रीझति रिझाई है।
जकी सी छकी सी अनमिष डीठ ह्वै रही सी,
बोलति न डोलति थकी सी मोह छाई है ;

रूप सौं विचित्र कान्ह-मित्र को विलोकि चित्र,
चित्रिनि भई तू चित्र पूतरी सुभाई है ॥२६॥

(२ स्वप्न-दर्शन)

दोहा

फनि, नर, किन्नर, सुर, कुवँर लिखे लखे सब ओर।
है दधिचोर किसोर कौ यह किसोर चित-चोर ॥२७॥

(३ साक्षात् दर्शन) यथा —

कवित्त

झूलति हिंडोरे में थकी सी तू निहारि प्यारो,
चित भयौ थकित लखत रूप तेरौ है,
कहत "कुमार" धार त्रिवली ललित पैरि,
रोमराजी भौंर पर्‍यौ भ्रमत घनेरौ है।
कुच गिरि चढ़त चकित ह्वै चिबुक बीच,
तिल की चिलक छवि छलक में फेरौ है।
बेसर उरझि रही अलक विलोकि तेरी,
ललक उरझि रह्यौ रीझि मन मेरौ है ॥२८॥

मानतें विरह

(१ लघुमान)

दोहा

जानि आन तिय छाँह निजु दर्पन में पिय पास।
रूसि रही पिय हँसि गही लही दुहुन रस-रास ॥२९॥

(२ मध्यम मान) यथा—

सवैया

धोखे परोसिनि वाम को नाम सुन्यौ पिय के मुख मानि सही तैं।
खेलति चौपर प्रीतम पास "कुमार" न त्यौं रसरास लही तैं ॥
काहे को ठानति नींद बहान हहा ! नहि मानत मेरी कही तैं ।
बानि परी, कहा जानि परी रिसतानि परी पट जो अबही तैं॥३०॥

(३ गुरु मान) यथा—

सवैया

रैनि जग्यौ हठ देखि घनो अलसान लग्यौ मनौं केलि दियौ है।
भोर लौं जागि "कुमार" सखी पछिताई पछाँह को छोर लियौ है॥
प्रीतम पाँय परयौइ चह्यौ, न कह्यौ सखि माने, यौं मान कियौ है।
तेरे कठोर उरोज की संगति जानिये ओर कठोर हियौ है ॥३१॥

(मान छुड़ावन के भेद)

दोहा

साम, दाम, नति, भेद रचि विरस, रसांतर ठानि ।
मान छुड़ावन के कहे छह उपाय ये जानि ॥३२॥
साम प्रभृति जहँ बनत नहिं तहाँ विरस को लेखि।
त्रास, हास करि मान को त्याग, रसान्तर देखि ॥३३॥

प्रवासवियोग-लक्षण

दोहा

दूरदेश-थिति तें जहाँ बनै न मिलिबौ जोग।
भयौ, होत, ह्वैहै तहाँ त्रिविध प्रवास-वियोग ॥ ३४ ॥

रूप सौं विचित्र कान्ह-मित्र को विलोकि चित्र,
चित्रिनि मई तू चित्र पूतरी सुमाई है ॥२६॥

(२ स्वप्न-दर्शन)

दोहा

फनि, नर, किन्नर, सुर, कुवँर लिखे लखे सब ओर।
है दधिचोर किसोर कौ यह किसोर चित-चोर ॥२७॥

(३ साक्षात् दर्शन) यथा—

कवित्त

झूलति हिंडोरे में थकी सी तू निहारि प्यारो,
चित भयौ थकित लखत रूप तेरौ है,
कहत "कुमार" धार त्रिवली ललित पैरि,
रोमराजी भौंर पर्‍यौ भ्रमत घनेरौ है।
कुच गिरि चढ़त चकित ह्वै चिबुक बीच,
तिल की चिलक छवि छलक में फेरौ है।
बेसर उरझि रही अलक विलोकि तेरी,
ललक उरझि रह्यौ रीझि मन मेरौ है ॥२८॥

मानतें विरह

(१ लघुमान)

दोहा

जानि आन तिय छाँह निजु दर्पन में पिय पास।
रूसि रही पिय हँसि गही लही दुहुन रस-रास ॥२६॥

(२ मध्यम मान) यथा—

सवैया

धोखे परोसिनि बाम को नाम सुन्यौ पिय के मुख मानि सही तैं।
खेलति चौपर प्रीतम पास "कुमार" न त्यौं रसरास लही तैं॥
काहे को ठानति नींद बहान हहा ? नहिं मानत मेरी कही तैं।
बानि परी, कहा जानि परी रिसतानि परी पट जो अबही तैं॥३०॥

(३ गुरु मान) यथा—

सवैया

रैनि जग्यौ हठ देखि घनौ अलसान लग्यौ मनौं केलि दियौ है।
भोर लौं जागि "कुमार" सखी पछिताई पछाँह को छोर लियौ है॥
प्रीतम पाँय परचौइ चह्यौ, न कह्यौ सखि माने, यौं मान कियौ है।
तेरे कठोर उरोज की संगति जानिये ओर कठोर हियौ है॥३१॥

(मान छुड़ावन के भेद)

दोहा

साम, दाम, नति, भेद रचि विरस, रसांतर ठानि।
मान छुड़ावन के कहे छह उपाय ये जानि॥३२॥
साम प्रभृति जहँ बनत नहिं तहाँ विरस को लेखि।
त्रास, हास करि मान को त्याग, रसान्तर देखि॥३३॥

प्रवासवियोग-लक्षण

दोहा

दूरदेश-थिति तें जहाँ बनै न मिलिबौ जोग।
भयौ, होत, ह्वै है तहाँ त्रिविध प्रवास-वियोग॥ ३४॥

(१ भयो [भूत] वियोग) यथा—

सवैया

कीन्ही हरीन सुध्यौ सुहरी सुधि औसर हू मे हरी धरनी के।
औधि बिसूरि बिसूरि "कुमार" बढ़ी जिय पीर सरोजमुखी के॥
चाप चढ़्यौ घन में लखि कै, तन ताप बढ़्यौ बिन आगम पी के।
वारि विमोचत वारिद, लोचन वारि है मोचत लोचन ती के॥३५॥

(२ वर्तमान विरह) यथा —

सवैया

वारक जाहि निहारि 'कुमार" सुजीवन जीवन आपनौ कीजै।
नंद को नंद सु आनँदकंद बिदेस चल्यौ तन छीन है छीजै॥
जो बिन जीवन जीवन नाहिं सु बात सुनै हिय नाहिं पतीजै।
जीवन है बिन जीवन हू व्रजजीवन हू बिन जो अब जीजै॥३६॥

(३ भविष्यति वियोग) यथा—

कवित्त

प्रात सुनै जात परदेस कान्हप्यारे! तुम,
प्यारी के विरह ताप हिये न समाति है,
जानति "कुमार" मिलि बिछुरे को दुःख नाहिं,
पूछति फिरति सखियानि अकुलाति है।
आधौई न बीत्यौ जाम आधे तन कीन्ही काम,
कैसे धौं बितावै वाम आगे द्यौस, राति है,
संग हू परी पे खरी तलफति तलप में,
अलप सलिल परी सफरी दिखाति है॥ ३७॥

यह कार्यवश तें है।

(गुरुवश तें वियोग) यथा—

कवित्त

बरषा विषमताई दुचिताई दूनी सूनी-
सेज में "कुमार" चित-चेत विसराइये;
गुरुजन कठिन सठ न जाने पर-दुख,
पिय परवस परदेस रह्यौ छाइये।
धीरज हिरात सुनि नीरद की धीर धुनि,
उसीर-गुलाब-नीर ल्याये पीर पाइये,
सीरे उपचार और ताप को प्रचार घटै,
सीरे उपचार बढ़ी ताप क्यौं घटाइये॥ ३८॥

(४) उत्कंठा तें विरह, विरहोत्कंठिता के भेद में जानिये।

(५) श्राप तें विरह, मेघदूतादि में है, तथा पांडु प्रभृति में है।

ऐसे संभ्रम लज्जादिहू तें वियोग :—

यथा—

दोहा

मिलि कुंजन बिछुरे घरी बरसत घन घिरि घोर।
ग्रीषम-ताप घटी न, पै बढ़ी ताप दुहूँ ओर॥ ३६॥

यथाच—

सवैया

कैसे "कुमार" सुहात कहूँ बिन देखे दिखात, दसौं दिस सूनौ।
लेत उसासन होत उदास तपै तन जैसे परै जल चूनौ॥

(१ भयो [भूत] वियोग) यथा—

सवैया

कीन्ही हरीन सुध्यौ सुहरी सुधि औसर हू में हरी धरनी के।
औधि विसूरि बिसूरि "कुमार" बढ़ी जिय पीर सरोजमुखी के॥
चाप चढ़्यौ घन में लखि कै, तन ताप बढ़्यौ बिन आगम पी के।
वारि विमोचत वारिद, लोचन वारि है मोचत लोचन ती के॥३५॥

(२ वर्तमान विरह) यथा —

सवैया

वारक जाहि निहारि "कुमार" सुजीवन जीवन आपनो कीजै।
नंद को नंद सु आनँदकंद बिदेस चल्यौ तन छीन है छीजै॥
जो बिन जीवन जीवन नाहिं सु बात सुनै हिय नाहि पतीजै।
जीवन है बिन जीवन हू ब्रजजीवन हू बिन जो अब जीजै॥३६॥

(३ भविष्यति वियोग) यथा—

कवित्त

प्रात सुनै जात परदेस कान्हप्यारे ! तुम,
प्यारी के विरह ताप हिये न समाति है,
जानति "कुमार" मिलि बिछुरे को दुःख नाहिं,
पूछति फिरति सखियानि अकुलाति है।
आधौई न बीत्यौ जाम आधे तन कीन्ही काम,
कैसे धौं बितावै वाम आगे द्यौस, राति है,
संग हू परी पे खरी तलफति तलप में,
अलप सलिल परी सफरी दिखाति है॥ ३७॥

यह कार्यवश तें है।

(गुरुवश तें वियोग) यथा—

कवित्त

बरषा विषमताई दुचिताई दूनी सूनी-
सेज में "कुमार" चित-चेत विसराइये,
गुरुजन कठिन सठ न जाने पर-दुख,
पिय परबस परदेस रह्यौ छाइये।
धीरज हिरात सुनि नीरद की धीर धुनि,
उसीर-गुलाब-नीर ल्याये पीर पाइये,
सीरे उपचार और ताप को प्रचार घटै,
सीरे उपचार बढ़ी ताप क्यों घटाइये ॥ ३८ ॥

(४) उत्कंठा तें विरह, विरहोत्कंठिता के भेद में जानिये।

(५) श्राप तें विरह, मेघदूतादि में है, तथा पांडु प्रभृति में है।

ऐसे सम्भ्रम लज्जादिहू तें वियोग —

यथा—

दोहा

मिलि कुंजन्न बिछुरे घरी बरसत घन घिरि घोर।
ग्रीषम-ताप घटी न, पै बढ़ी ताप दुहुँ ओर ॥ ३९ ॥

यथाच—

सवैया

कैसे "कुमार" सुहात कहूँ बिन देखे दिखात, दसौं दिस सूनौं।
लेत उसासन होत उदास तपै तन जैसे परै जल चूनौं ॥

(१ भयो [भूत] वियोग) यथा—

सवैया

कीन्ही हरींन सुध्यौ सुहरी सुधि औसर हू में हरी धरनी के।
औधि बिसूरि बिसूरि "कुमार" बढ़ी जिय पीर सरोजमुखी के॥
चाप चढ़्यौ घन में लखि कै, तन ताप बढ़्यौ बिन आगम पी के।
वारि विमोचत वारिद, लोचन वारि है मोचत लोचन ती के॥३५॥

(२ वर्तमान विरह) यथा —

सवैया

वारक जाहि निहारि 'कुमार" सुजीवन जीवन आपनो कीजै।
नंद को नंद सु आनँदकंद बिदेस चल्यौ तन छीन है छीजै॥
जो बिन जीवन जीवन नाहिं सु बात सुनै हिय नाहिं पतीजै।
जीवन है बिन जीवन हू ब्रजजीवन हू बिन जो अब जीजै॥३६॥

(३ भविष्यति वियोग) यथा—

कवित्त

प्रात सुनै जात परदेस कान्हप्यारे ! तुम,
प्यारी के विरह ताप हिये न समाति है,
जानति "कुमार" मिलि बिछुरे को दुःख नाहिं,
पूछति फिरति सखियानि अकुलाति है।
आधौई न बीत्यो जाम आधे तन कीन्ही काम,
कैसे धौं बितावै वाम आगे द्यौस, राति है,
संग हू परी पे खरी तलफति तलप में,
अलप सलिल परी सफरी दिखाति है॥ ३७॥

यह कार्यवश तें है।

प्रवासादि वियोग की दशा १०—

अभिलाषा, चिंता, सुमिरन, गुण-कथन तथा उद्वेग, प्रलाप।
गनि उन्माद, व्याधि, जडता, मृति दसौ दशा विरह के ताप ॥४४॥

दोहा

मिलन चाह अभिलाष है, ध्यान सुचिन्ता जानि।
लखी सुनी पिय बात की सुधि सुमिरन पहिचानि ॥४५॥
कहि गुन कहिवो प्रीति गुन सुन्दरतादिक जाप।
चित उचाट उद्वेग कहि, सूने वचन प्रलाप ॥४६॥
प्रेम छाक उनमाद है, व्याधि विरह की पीर।
जडता चेष्टा - हानि है, मृति विन प्रान शरीर ॥४७॥

(१ अभिलाषा)

सवैया

जा विन देखे नहीं कल, तासौं वियोग अहो? विधि वैरी दयौई।
क्यौंहु "कुमार" निहारौ जु प्यारी न न्यारी करौं सुखि मानि नयौई॥
श्रीपति लौं हिय अन्तर में अव राखौ निरन्तर ठान ठयौई।
गौरि के कंत लौं के मिलि अगही, संग रहौ अरधंग भयौई ॥४८॥

(२ चिन्ता) यथा—

सवैया

गावे वधू मधुरे सुर-गीतनि प्रीतमसंगहुते फुरि आई।
छाई "कुमार" नई छिति में छवि मानौं विछाई हरो दरियाई॥
ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूँ दिसि वोली यौं वाल गरो भरियाई।
कैसी करौं हहरै हियरा हरि आये नहीं, उलही हरिआई ॥४९॥

दूर विदेस के वास वियोग, सबै सहिये लहिये हिय ऊनौं।
भैंट की आस में पास निवास में दाहत है विरहानल दूनौं ॥४०॥

संयोग में वियोग। यथा—

दोहा

विकच गुलाब सुगंधि लहि लगत गंधवह गात।
पिय-हिय भेंटति भुज भरै तिय जिय अति अकुलात ॥४१॥

पूर्वराग विरह की दस दशा—

नयनप्रीति, चिंता, संकल्पन, नींद-नाश, कृशता, रुचिहानि।
लाज-भंग, उनमाद, मूरछा, मृति ये कामदशा दस जानि ॥४२॥

कोऊ क्रम तें ये मानत हैं—प्रथम नयन-प्रीति, फिरि चिंता, फिरि संकल्पन, फिरि निद्रा-नाश, फिरि कृशता, फिरि विषय-निवृत्ति, फिरि लज्जा-नाश, फिरि उन्माद, फिरि मूर्छा, फिरि मृति।

क्रम तें यथा—

कवित्त

जब तें निहारे कान्ह, तब तें तिहारे ध्यान,
याके चित्त चित्र भयौ रूप तुव रैनि-दिन,
धारि जलधार पल धारत न नेकु पल
नैन है, "कुमार" तन छीन छीजै छिन-छिन।
भूल्यौ खान पान भौन, लाज धरै जिय को न,
मदन छकाई बाल देखौ लाल! हाल किन?
काम-सर जालसी कराल सी प्रवाल सेज,
परी घरी-घरी मोह भरी, डरी प्रान बिन ॥ ४३ ॥

प्रवासादि वियोग की दशा १०—

अभिलाषा, चिंता, सुमिरन, गुण-कथन तथा उद्वेग, प्रलाप।
गनि उन्माद, व्याधि, जडता, मृति दसौ दशा विरह के ताप ॥४४॥

दोहा

मिलन चाह अभिलाप है, ध्यान सुचिन्ता जानि।
लखी सुनी पिय बात की सुधि सुमिरन पहिचानि ॥४५॥
कहि गुन कहिबो प्रीति गुन सुन्दरतादिक जाप।
चित उचाट उद्वेग कहि, सूने वचन प्रलाप ॥४६॥
प्रेम छाक उनमाद है, व्याधि विरह की पीर।
जडता चेष्टा-हानि है, मृति विन प्रान शरीर ॥४७॥

(१ अभिलाषा)

सवैया

जा विन देखे नहीं कल, तासौं वियोग अहो? विधि वैरी दयौई।
क्यौंहु "कुमार" निहारौ जु प्यारी न न्यारी करौं सुखि मानि नयौई॥
श्रीपति लौं हिय अन्तर में अब राखौ निरन्तर ठान ठयौई।
गौरि के कंत लौं कै मिलि अगही, संग रहौ अरधंग भयौई ॥४८॥

(२ चिन्ता) यथा—

सवैया

गावे वधू मधुरे सुर-गीतनि प्रीतमसंगहुते फुरि आई।
छाई "कुमार" नई छिति में छवि मानौं बिछाई हरी दरियाई॥
ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूँ दिसि बोली यौं वाल गरो भरियाई।
कैसी करौं हहरै हियरा हरि आये नहीं, उलही हरिआई ॥४९॥

दूर बिदेस के वास वियोग, सबै सहिये लहिये हिय ऊनों।
भेंट की आस में पास निवास में दाहत है विरहानल दूनों ॥४०॥

संयोग में वियोग। यथा—

दोहा

विकच गुलाब सुगंधि लहि लगत गंधवह गात।
पिय-हिय भेंटति भुज भरै तिय जिय अति अकुलात ॥४१॥

पूर्वराग विरह की दस दशा—

नयनप्रीति, चिंता, संकलपन, नींद-नाश, कृशता, रुचिहानि।
लाज-भंग, उनमाद, मूरछा, मृति ये कामदशा दस जानि ॥४२॥

कोऊ क्रम तें ये मानत हैं—प्रथम नयन-प्रीति, फिरि चिंता, फिरि संकल्पन, फिरि निद्रा-नाश, फिरि कृशता, फिरि विषय-निवृत्ति, फिरि लज्जा-नाश, फिरि उन्माद, फिरि मूर्छा, फिरि मृति।

क्रम तें यथा—

कवित्त

जब तें निहारे कान्ह, तब तें तिहारे ध्यान,
याके चित्त चित्र भयौ रूप तुव रैनि-दिन,
धारि जलधार पल धारत न नेकु पल
नैन है, "कुमार" तन छीन छीजै छिन-छिन।
भूल्यौ खान पान भौन, लाज धरै जिय को न,
मदन छकाई बाल देखौ लाल! हाल किन?
काम-सर जालसी करालसी प्रवाल सेज,
परी घरी-घरी मोह भरी, डरी प्रान बिन ॥ ४३ ॥

प्रवासादि वियोग की दशा १०—

अभिलाषा, चिंता, सुमिरन, गुण-कथन तथा उद्वेग, प्रलाप।
गनि उन्माद, व्याधि, जड़ता, मृति दसौ दशा विरह के ताप ॥४४॥

दोहा

मिलन चाह अभिलाष है, ध्यान सुचिन्ता जानि।
लखी सुनी पिय बात की सुधि सुमिरन पहिचानि ॥४५॥
कहि गुन कहिवो प्रीति गुन सुन्दरतादिक जाप।
चित उचाट उद्वेग कहि, सूने वचन प्रलाप ॥४६॥
प्रेम छाक उनमाद है, व्याधि विरह की पीर।
जड़ता चेष्टा - हानि है, मृति विन प्रान शरीर ॥४७॥

(१ अभिलाषा)

सवैया

जा बिन देखे नहीं कल, तासौं वियोग अहो? विधि वैरी दयौई।
क्यौंहु "कुमार" निहारौ जु प्यारी न न्यारी करौं सुखि मानि नयौई॥
श्रीपति लौं हिय अन्तर में अब राखौ निरन्तर ठान ठयौई।
गौरि के कंत लौं कै मिलि अगही, संग रहौ अरधंग भयौई ॥४८॥

(२ चिन्ता) यथा—

सवैया

गावे वधू मधुरे सुर-गीतनि प्रीतमसंगहुते फुरि आई।
छाई "कुमार" नई छिति में छवि मानौं बिछाई हरो दरियाई॥
ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूँ दिसि वोली यौं बाल गरो भरियाई।
कैसी करौं हहरै हियरा हरि आये नहीं, उलही हरिआई ॥४९॥

(३ स्मरण) यथा—

दोहा

दुरि दृग दै मुरि द्वार लगि रचि प्रनाम दुहुँ पानि।
चितई, चित मेरैं अजौं वह बिसुरे नहिं बानि ॥ ५० ॥

(४ गुण कथन) यथा—

कवित्त

बिन ब्रजजीवन बिलोकें ब्रजबालनि के
जीवन रखैया न जतन दरसत हैं;
रास लास हास के "कुमार" वे बिलास सौंरि
बीस बिसै बिस सो हिये में बरसत हैं।
छिनन छबीली सो तिरीछे नैन छोरन की,
सहज सनेह चितवन परसत हैं,
कान्ह चित्त-चोर मुख-चन्द के चकोर, स्याम
घनाघन मोर मेरे नैन तरसत हैं ॥ ५१ ॥

(५ उद्वेग) यथा—

दोहा

मदन वधिक के कदन में बचे अधिक जे प्रान।
चन्द पिसाच निसाचरत नहि बचाइ है न्यान ॥५२॥

(६ प्रलाप) यथा—

सवैया

सूनेहि सेज मनावन लागत, लागति है निसि रूसनि थाप की।
कोइल बोलै "कुमार" कहूँ तब बोल न जानै बिलास अलाप की ॥

चित्र लिखे लखि तेरि ये सूरति, पूछति छेम तिहारे मिलाप की।
सारी निसा ही किसाकहै आपकी काम कसाइ कसालेकी तापकी ।५३।

(७ उन्माद) यथा—

सवैया

देखि परै दसहू दिसि में निसि द्यौसहि नन्द'कुमार' की मूरति।
भेंटिवे को उठि दौरि चलै भ्रमसों भरि नैननि नीरसों पूरति ।।
भौन सुहात न मौन रही गहि, वा मुख की छवि छाक विसूरति।
तेरो सुभाउ री! कौन भयो? भई बाउरीसी लखि साँवरीसूरति ।।५४।।

(८ व्याधि) यथा—

कवित्त

सूखे तन, दूखे मन, पेखउ पियूख-कर-
कर विकराल ज्वाल जाल वरसत हैं,
देखि भेंट ठाठ के कलिन्दी घाट बाट, सूने
दूने दुख प्रान परवस ह्वै त्रसत हैं।
कहत "कुमार" ये कदम्बन के फूल-भार,
सूल भये मदन-तुनीर से लसत हैं,
वेलिनि नवेलिनि के केलि कुंजपुंज आली!
खाली वनमाली विन काली से डसत हैं ।।५५।।

(९ जडता) यथा—

दोहा

मुख न वैन, नैननि पलन हलन चलन तन हाल।
सुतन रतन-पुतरी भई, विरह तिहारे लाल! ।।५६।।

मृति-जो मरण दशा-सो मूर्च्छारूप के चित्त में चाही ब्रर्निये, नाहीं तो करुणरस होइ जाइ। यथा—

दोहा

तलफि तलफि सूनी तलप कलपि कलपि सुधि-हीन।
प्रानपियारी प्रान-बिन होत अलपजल-मीन ॥५७॥

कोऊ ये अवस्था कहत है—

दोहा

अँग व्याकुलता, पाण्डुता, अरुचि, अधीरज, ताप।
कृशता अरु असहायता, तन्मयता, सलाप ॥ ५८ ॥
मूर्च्छा औ उन्माद ये विरह दसा दस जान।
विरह कवित्तन में सबै उदाहरन पहिचान ॥ ५९ ॥
पिय तिय में जहँ एक के बिरह, मरन है होत।
फिर जीवन की आस तहँ करुन वियोग उदोत ॥ ६० ॥

जैसे महाश्वेता में कादम्बरी में है, रति में है।

इति शृंगाररस-व्यंग्य।

—:०:—

हास्यरस-लक्षण

दोहा

प्रमथ देव, सित रंग है, हास्य सुथाई हासु।
विकृत वेश, वचगति-सहित आलम्बन है तासु ॥ ६१ ॥

यथा—

निसि में ससिमुखि बसन में सौंधों जानि लगाइ।
प्रात सुकर लै मुकुर लखि हँस्यौ तियानि हँसाइ॥ ६२॥

करुणरस-लक्षण

दोहा

वरुन देव, रँग धूमिलौ थाई सोक विचार।
आलम्बन मृतबन्धु गनि करुन रसै निरधार॥ ६३॥

यथा—

सवैया

प्रीति के पोष "कुमार" रच्यौ अपराधहू रोष नहीं जिय में है।
ऐसी धरी निठुराई कहा, दृग खोलि न बोलि न उतरु देहै॥
भोरे सुभाइन भीरु तू भामिनि ? केलि के भौनहू जान डरै है।
हेली न संग सहेली अहै कहि कैसे अकेली अकासहि जैहै॥६४॥

रौद्ररस-लक्षण

दोहा

रुद्र देव, रँग लाल तहँ थाई क्रोध विशेष।
वैरी आलम्बन तहाँ रौद्र रसै जिय लेख॥ ६

कवित्त

रामनरपाल सों जुरत जंग बजरंग
धीर वैरो वीरन की हिम्मति हुटति है
कहत "कुमार" कर धारत कमान बान,
दुज्जन अमान अनीकिनि यौं कुटति

काटे हय, गय, नर-कंधर कवंधनि तें
रुधिर की धारें अध ऊरध टुटति है,
जावक सलिल जानौं पूरन खजानौ भरी,
नल - जन चादरी सी चहूँघा छुटति है ॥६६॥

वीररस-लक्षण

दूहा

इन्द्र देव, रँग हेम - सम थाई भाव उछाह।
आलम्बन अरि जेय है वीर रसै निरबाह ॥६७।

(१ युद्धवीर) यथा—

सवैया

देखत लाखन राखस के गन लाखन वानर धीरज नाखे।
लाखन अंगद नील सुग्रीव हनूमत जुद्ध विचार है भाखे ॥
आवत रावन के सुत कौ लखि, राम उछाह हिये अभि लाखे।
धारि रुमचनि कौ तन कचुक बान कमान हिये दृग राखे ॥६८॥

(२ दानवीर) यथा –

सवैया

कोटि चतुरदस जो मुहरें गुरुदच्छिना देन कही पन धारे।
देत बच्यौ रघु के करवा कर देख, करै जिन मोह बिचारै ॥
कीजिये आज पवित्र "कुमार" निसा बसि होम अगार हमारै।
हेत तिहारेई जीतत हौं धनदै, सु सबै धन देत सवारै ॥६६॥

(३ दयावीर) यथा—

सवैया

जीव के घातक हौ जु सिचा न छुधा वस पातक आतुर जागौ।
दीन दुरयौ सरनागत है, नहि ताहि सतावन को अनुरागौ ॥
हौ सिवि नाम महीपति हौं निज देहऊ देहुँ-गौ चाहौ सु मागौ।
आकुल होत क्यौं मोतनको भखियो तनु पोत कपोतको त्यागौ ॥७०॥

(४ धर्मवीर) चौथो भेद मानत हैं। यथा—

कवित्त

राज जात क्यौं न आज, जीतौ दुजराज द्रोन,
चिन्ता चितहू तें तोन पाप की वहाइये।
कहत "कुमार" सव कौरव विजय लहौ,
वहौ विधि रूठत सु रूठोई कहाइये ॥
भीम अरजुन गुरुजन-सीख मानौ एक,
धरम धरम राज-काज कौ सहाइये।
जाय किन प्रान ? तऊ वात न्यान साँच ही ते,
आन नहीं आनन ही मेरे सु कहाइये ॥७१॥

वात्सल्य रस-लच्छण

दोहा

लोकमात दैवत वहाँ, पद्म-गर्भ सम रंग।
नेह थाइ वत्सल गन्यौ तहँ विभाव सुत-संग ॥७२॥

यथा—

सवैया

सीस लसै कुलही, पग पैंजनि, मोतिन माल हिये रुचिरो है।
कांति "कुमार" लहै मुतियानि की द्वै दँतिया बतियाँ कहि सोहै॥
मात जसामति गोद लिए, बढ़ि मोद समातु नहीं मुख जोहै।
नंद को नंद, अनंद को कद निहार री! मोहन मो मन मोहै॥७३॥

भयानक रस-लक्षण

दोहा

यम दैवत, रँग नील गनि आलम्बन भय-हेतु।
गन्यौ भयानक रस तहाँ भय थाई को चेतु॥७४॥

यथा—

सवैया

घोर प्रलै के घनाघन लै बरख्यौ मघवा व्रज वैर सौं जागत।
थावर, जंगम, जीव भ्रमै भभरें भय में भरि भौननि भागत॥
आकुल गोपिय-गोकुल ग्वाल बिहाल ह्वै अंक तें बालनि त्यागत।
तीर से नीर छरानिछरे बिछुरे बछरा उर गाढ़न लागत॥७५॥

बीभत्स रस-लक्षण

दोहा

काल दैव अति काल रँग, घिनि थाई तहँ लेख।
असुचि बात आलम्बिकैं रस बीभत्स विशेष॥७६॥

यथा—

कवित्त

गरदा से परे मुरदानि के रदासे तहाँ,
लीन्है अंक बैठ्यौ सिरदार रंक प्रेतु है।
लै लै मुख कोरैं श्रोरै आवत निकट दोरैं,
दाँत काटि श्राँत काढ़ि कीन्हौ हार हेतु है॥
पीठि जंघ अच्छनि कपोलनि प्रथम भच्छि,
आतुर छुधा सों रच्छ ह्वै रह्यौ अचेतु है।
हाड़नि हू चाखि डारै नाखिन ही आँखिन ही,
मूँदि, संग माखिन ही मास भखि लेतु है॥७७॥

अद्भुत रस-लच्छण

दोहा

थाई बिसमय पीत रँग, मनमथ दैवत जानि।
अचिरज युत आलम्बिके रस अद्भुत पहिचानि॥७८॥

यथा—

सवैया

तात को सासन सीस असीस सा धारि वसी वनवास पधार्‌यौ।
एक ही बान सँवारि घरी, दस चारि हजार निसाचर तार्‌यौ॥
राघव बाँधि अपार पयोधि, "कुमार" सबै दल पार उतार्‌यौ।
राखस कोटि मसासमजारि-ससासम मारिदसानन डार्‌यौ॥७९॥

शांत रस-लक्षण

दोहा

हरि दैवत, रँग कुंद सम, शम थाई तहँ होत।
आलम्बन परमार्थ लहि, कहि रस शांत उदोत ॥८०॥

यथा—

सवैया

ये तपसी जपसील सदा वसी, जे परिपूरन ब्रह्महिं ध्यावैं।
पुन्य गिरिंदनिकंदर-अंदर ह्वै निरद्वंद विनोद बढ़ावैं॥
ध्यान समै जिनके मृगसावक खेलत अंकहि संक न पावैं।
बैठि विहंगम पास निवास के आनँद आँसुनि प्यास बुझावैं॥८१॥

दया वीरादि में अहकृति है, यहाँ अहकृति को त्याग है। यह भेद है।

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते रसिक-
रसाले रसव्यंग्यनिरूपणं नाम
तृतीयोल्लासः॥



चतुर्थ उल्लास

अथ भाव-व्यंग्य-भेद—

दोहा

रस अनुकूल विकार सों भाव कहत कवि धीर।
चित्त-जनित आँतर कहत, दूजो है सारीर ॥ १ ॥
द्वैविध आंतरभाव है, थाई अरु संचारि।
स्तम्भादिक जे आठविध ते शारीर विचारि ॥ २ ॥

यद्यपि सात्त्विकौ आतर भाव है, पै शरीर तें प्रगट होत, यातें शारीर है।

स्थायी भाव व्यंग्य—

दोहा

माला-मधि ज्यौं सूत्र त्यौं विभावादि में आनि।
आदि, अंत, रस-माह, थिर थाई भाव बखानि ॥ ३ ॥
रति, हाँसी, अरु शोक, रिस, त्यौं उछाह, सुत-नेह।
भय, घिनि, विस्मय, शम तथा दस थाई गनि एह ॥ ४ ॥

(१) रतिस्थायी भाव लक्षण

दोहा

इष्ट वस्तु सुनि, लखि, सुमिरि तरुन तरुनि हिय चाह।
उपजत मनोविकार कछु, रति थाई तिहिं मांह ॥ ५ ॥

यथा—

सवैया

कान्ति मनोहर मोहन की दृग पूरि "कुमार" सुधा-सी रही है।
कान दए गुन गान सुने पिय देखन चाह दुरै ही चही है॥
नैननि में, गति में, मति में, मृदु भाव सुभाव की रीति गही है।
नेहलता हिय ही सु लही जु नई दुलही में सही उलही है॥६॥

(२) हास्य स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

विकृत वेश, वच, कर्म, लहि, मन-विकार कछु होत।
हँसा तहाँ थिर भाव गनि बाढ़ै हास उदोत॥७॥

यथा—

सवैया

छोटो सौ वेश अपूरव पेखत, लोइन लोइनि के न अघानै।
घेरि नचै चहुँघा पुर-बालक, लै बलि भूप के आँगन आनै॥
देखि हँसी बलिराजवधू सब भोजन कों कछु देउ बखानै।
पावन मूरति वामनजू सुनि बैननि नैननि ही मुसक्यानै॥८॥

(३) शोक स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

इष्टनाश लखि, सुनि, सुमिरि होत जु मनोविकार।
शोक सु थाई भाव है, करुना रस निरधार॥९॥

यथा—

सवैया

शम्भु बसी करिबे कौ सुरेसहिं काम पठायो है काम महा कौ।
भाल के नैन निमालत ही, जरि पावक पावन भौ तनु ताकौ॥
पीड विनासन हेतु विषाद, विलोकि मनोभव की अबला कौ।
रोप भयंकर में उपज्यौ, जिय अंकुर संकर के करुना कौ॥१०॥

(४) रिस स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

वैरि पराभव ते भयौ जो आनँद प्रतिकूल।
मन-विकार सो रिस यहै, जानि रौद्र रसमूल॥११॥

यथा—

सवैया

जानकी कों हर लै गयौ राखस नीच न आपनी मीच निहारी।
ताप-तप्यौ हियरा सियरातु न जो सिय राघव पास न धारी॥
राम को सेवक रंक हौं आजु निसंक उलंघतु वारिधि-वारी।
रावन श्रंग कलंक समेतहि पंकज-सी लखौ लंक उखारी॥१२॥

(५) उत्साह स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

सौरज, दान, दया, धरम लहि आनँद अनुकूल।
मन-विकार सु उछाह है वीर रसहिं हिय-फूल॥१३॥

यथा—

उठत अंग रोमंच सुनि, रन - दुंदुभि - धुनि घोर।
वर धीरज - अंकुर मनों उगि उठे चहुँ ओर॥१४॥

(६) वत्सल स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

छोह भरी मुख तोतरी सुनि बतियाँ, लखि केलि।
सुत-सनेह वत्सल रसहिं थाई आनँद बेलि ॥१५॥

यथा—

कान्हर कौ विहसत वदन निरखि जसोमति मात।
गहि अँगुरी अंगन चलत अंगनि सुख न समात ॥१६॥

(७) भय स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

नृप गुरु मुनि अपराध लहि, विकृत जीवरव लेखि।
उपजत मनोविकार कछु, भय थाई तहँ देखि ॥१७॥

यथा—

सवैया

दल भार अपार यौं राम के संग बढ़ै मनौं सिंधु तरंग बढ़ै।
बलवंतनि सौं रनजीति कहानि "कुमार" कहाँ न जहाँन पढ़ै॥
सुनि गाजत पावस की रितु अंबर घोर घनाघन जोर मढ़ै।
अरि-वग्ग यों दुग्ग दरीनि दुरे भ्रम-भीत से भीतरते न कढ़ै॥१८॥

(८) घिनि स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

अशुचि वस्तु सुनि, लखि, सुमिरि उपजत मनोविकार।
घिनि थाई सो जानिये, रस बीभत्स अधार ॥१९॥

यथा—

मारि दुसासन, फारि उर, रुधिर अंग लपटाइ।
आवत भीम, तिन्है मिले धर्मराज दृग नाइ ॥२०॥

(९) विस्मय स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

अचिरज की कछु बात लखि, मुनि मन विकृत जु होत।
विस्मय थाई भाव सो अदभुत रसहिं उदोत ॥२१॥

यथा—

सवैया

सारद पूनो जुन्हाई विसारद पारद से छवि-पुंज पसारे।
चारु "कुमार" सबै छिति छावत छीर पयोनिधि-पूर विचारे॥
चंद अमंद विलोकि तहाँ सब लोक के लोइन कौतुक धारे।
रीझे न एक त्यों मेरे विलोचन, तो-मुखचंद निहारनहारे॥२२॥

(१०) शमस्थायी भाव-लक्षण

दोहा

तत्त्व-बोध, दुख, दोष लहि जग अनित्य पहिचानि।
उपजत मनोविकार कछु शम थाई हिय मानि ॥२३॥

यथा—

सवैया

जा सनबंध तें बंधु गनै निज, अंध! यहौ तन नाँहि ठयौ है।
होत "कुमार" न क्यौं निहचिन्त, सुखी जन मे जनवादि गयौ है।
चेततु चेतन रूप ह्वै सुमिरे विष ये विष मोह छयौ है
रे चित! चंचल वंचक तू, जग चुंबक बीच को लोह भयौ है॥२

इति स्थायीभाव-व्यंग

संचारी भाव-व्यंग्य—

दोहा

रति प्रभृतिक थाईनि में उपजत मिटत सुभाव ।
यातैं संचारी कहे निर्वेदादिक भाव ॥ २५ ॥

तथाच भरत —

श्लोकाः

निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूयामदश्रमा ।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्तामोहो धृति स्मृति ॥ २६ ॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा ।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च ॥ २७ ॥
स्वप्नो विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्था तथोग्रता ।
मतिर्व्याधि स्तथोन्माद स्तथा मरणमेव च ॥ २८ ॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः ।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः प्रयान्ति व्यभिचारिताम् ॥ २९ ॥

(१) निर्वेद-लक्षण

दोहा

तत्त्व-बोध, आपत्ति, दुख, ईर्ष्यादिक तें आनि ।
निज चिंता चित-वृत्ति जो, सो निर्वेद बखानि ॥ ३० ॥

यथा—

सवैया

तिय-हेत मँगाइ मनोरम फूल बिसाल है माल रसाल रची ।
घनसार घनौं घसि कुंकुम, चंदन, चंदमुखी-कुच खौरि खची ॥

सुधि सेवा सिपारसि नाम उचारि "कुमार" विचारत बुद्धि नची।
जड हौं कछु चित्त रचाइ यहै हरिकी अरचा चरचा न रची ॥३१॥

(२) ग्लानि-लक्षण

दोहा

आधि, तृषा, रति, प्रभृति जो लहैं गहै बल-हानि।
कछु मलीन चित-वृत्ति जो, सोई कहियतु ग्लानि ॥ ३२ ॥

यथा—

सवैया

जानै कहा ? नवला अवला, अवलाजन जो छल रीति करी है।
भोरतें साँझ "कुमार" त्यौं साँझ तें भोरलौं जागि जगाई खरी है॥
पौढ़ि रही परजंक न जागति, मोहू सों लागति रोप भरी है।
लाल ! भली यह वाल भली अव मालती-माल-सी हाल परी है ॥३३॥

(३) शंका-लक्षण

दोहा

जो डर जिय अपराध को संका-भाव सुमानि।
वदन सोख वैवर्न्य तहँ, पार्श्व-विलोकन जानि ॥ ३४ ॥

यथा—

सवैया

हौं तो घरी घर तें इत भोरहि, गोहरे गाइ दुहावन आई।
आपनें स्वारथ ही के अहीर ! न जानौ "कुमार" जु पार पराई॥
घेरु घनौ व्रज गाँव को जानत जानन देहु, करौ मनभाई।
लागि कपोलनि क्यौं दुरिहै यह जागी रदच्छद की अरुनाई ॥३५॥

(४) असूया-लक्षण

दोहा

पर-उतकर्ष न चित सहै, यहै असूया भाव।
दोष-दृष्टि दृग-अरुनता लहि तहँ रोष सुभाव ॥ ३६ ॥

यथा—

सवैया

एक समैं ससिसेखर के सिर चंद्र-कला लखि रोष भुलानी।
है निज प्यार की प्रीतम के यह प्यारी "कुमार" सिरै सनमानी ॥
बात कही न कछू, है रही गहि मौन, लही नहिं सीख सयानी।
पाइ परै पिय, यौं गहि मान अयान सुभाइ रिसानी भवानी ॥३७॥

(५) मद-लक्षण

दोहा

सुख संमोह दसा कछू मद जो मादक खाइ।
दृग घूमत, अध वचन तहँ, हसित रुदित दुरु भाइ ॥३८॥

यथा—

सवैया

गुन-गौरि अहै मद जोबन रूप के तोमें "कुमार" भरे सब है।
तुव घूमत से सहजै दृग-कंज लसैं अति मंजु ललामी गहै ॥
सु इतेपर मादक खाइ कछू सखि आनँद बैननि भूलि कहै।
यह रूप तिहारे निहारनहारेई ह्वै मतवारे-से भूलि रहै ॥३६॥

(६) श्रम-लक्षण

दोहा

रति, गति प्रभृति श्रयास तैं चित्त-खेद श्रम लेखि।
स्वेद, साँस, निद्रादि तहँ, तृषा शिथिलता देखि ॥४०॥

यथा—

सवैया

हेली गई तुहिं आज अकेलियै साँझ समै जल-केलि तरंग में।
रैन लौं आवत गेह "कुमार" सम्हारति है न उसास उमंग मे ॥
छूट गयौ कुच कुंमनि कुंकुम, काँपति थाकि रही सब अंग में।
जानिये नीर अन्हाई किधौं श्रमनीर अन्हाई कन्हाई के संग में॥४१॥

(७) आलस्य-लक्षण

दोहा

जागर, श्रम गति प्रभृति तैं गर्भादिक तैं आनि।
होइ जु जिय असमर्थता सो आलस पहिचानि।४२॥

यथा—

सवैया

भोर निहारत भामिन की छवि, डीठि लगी गहि एकटकी है।
द्वार लौं आइ हरैं पग धारि "कुमार" निहारिये हारि जकी है ॥
प्रीतम-संग में, प्रेम-उमंग में, केलि के रंग में, जागि छकी है।
आधे रहे कहे आनन बैन हैं, नैन हैं कातर, गात थकी है ॥४३॥

(८) दैन्य-लक्षण

दोहा

दुख, दारिद, विरहादि तें जिय न ओज अधिकात।
दैन्य भाव तहँ जानिये, ताप नैनजल-पात।४४॥

यथा—

सवैया

लूट्यौ सौ गेह, घनौ बरसै घन, तेसोइ दारिद दीह सतावै।
सासु जरा-जुर-जोर सों जीरन, वीर! न कोउ सहाइ सुभावै॥
प्रान-पियारे विदेस पयान "कुमार" रच्यौ, न अजौं घर आवै।
यों बिन भीजिये ठौर बिसूरि वधूदृग-नीरद नीर भिजावै॥४५॥

(९) चिंता-लक्षण

दोहा

इष्ट बात पायै बिना ध्यान सुचिंता लेखि।
साँस, ताप, आँसू प्रभृति तन-कृशता तहँ देखि॥४६॥

यथा—

सवैया

ध्यावै गिरीसहिं तू गुनगौरि! सुजानिये ह्वै गई पीउमई है।
आँसू-प्रवाह उमंगत नैननि, गंग-तरंगनि धार ठई है॥
तापस-चार विचार "कुमार" यहै दृग-पावक झार छई है।
गोरे कपोलनि में दुति-पाँति कलाधर कान्ति की भाँति भई है॥४७॥

(१०) मोह-लक्षण

दोहा

भय, विषाद, विरहादि तें नहिं जु तत्त्व-निरधार।
सोई कहियतु मोह तहँ, भ्रम संताप संचार ॥४८॥

यथा—

सवैया

गावत गीत, न भावत मीत है, भीत मनों पट पीत विसार्‍यौ।
बोले न बैन, बजावे न वेनु, यौं जागत जामिनि जामनि चार्‍यौ॥
नंदकुमार है भूल्यौ सबै सुधि, मार "कुमार" कहा करि डार्‍यौ ?।
बैरिनि बंक बिलोकि निसंक भल्यौ व्रज गाउँ अतंक है पार्‍यौ ॥४६॥

(११) धृति-लक्षण

दोहा

क्रोध, लोभ, भय, मोह में जिय-दृढता धृति जानि।
वच-हुलास, सुख-पूर्णता, ज्ञान, धैर्य तहँ मानि ॥५०॥

यथा—

अहि भूषन, भख गरल, गथ भसम, वसन गज खाल।
विषय-तृषा जगदीश कों वस करि सकै न हाल ॥५१॥

(१२) स्मृति-लक्षण

दोहा

संसकार-भव ज्ञान जो सो स्मृति भाव बताइ।
सदृश ज्ञान चितादि तहँ, पूरव अनुभव ल्याइ ॥५२॥

यथा—

सवैया

न्यौंते गए कहुँ देखि "कुमार" झरोखे में झाँकत ओट अली की।
सो मुसक्यानि सनेह की बानि न भूलै, अजौं चित ते हित ही की॥
नैन बिसाल रसाल लखी, तन ओढ़े दुसाल मसाल-सी नीकी।
मेरे भई हिय में विधि-अंक-सी बंक चितौनि मयंकमुखी की॥५३॥

(१३) व्रीडा-लक्षण

दोहा

लाज पराजय प्रभृति तें गनिये व्रीडा भाव।
दृग-छिपाव सुर-भंग हरु तँह, अति सलज सुभाव॥५४॥

यथा—

सवैया

संग रमै रति-संगर में अबला नवला गहि लाज की सैनी।
भूषन के खनके परजंक ससंक ह्वै अंक दुरै पिकबैनी॥
बीच भुजानि उरोज सरोज—कली-से दुराइ रहै सुखदैनी।
नूपुर को गहि राखति है करवारिज सों वरवारिजनैनी॥५५॥

(१४) चपलता-लक्षण

दोहा

राग, द्वेष, क्रोधादि तें अति उताइली लेखि।
भाव चपलता है तहाँ, निंदा, कटुवच, देखि॥५६॥

यथा—

सवैया

नाम सुनै अरि कंपै सुनै अरि है उठि धावत रोष छए ही।
जुद्ध विचार प्रचार "कुमार" सकै लखि कौन कमान लए ही॥
जानिये नाहिं तुनीर तें लेत न लागत हूँ पर पार गए ही।
राम के बान प्रमानि परे दल दानव के बिन प्रान भए ही॥५७॥

(१५ हर्ष लक्षण)

दोहा

इष्ट - लाभ, गुरु नृप कृपा-भव सुख, जानौ हर्ष।
दृग - प्रसाद, हितवचन, तहँ तन-रुमंच उतकर्ष॥५८॥

यथा—

कवित्त

फरकत वाम - भुज - मूल, अनुकूल वाम-
लोचन, उरोज अंग सगुन बताइ है।
फूलत रसालनि बिसाल धरैं सौरभ को,
हरै हरै आवत सुखद सीत वाइ है।
पंचम अलाप ख्याल कोकिल खुसाल हाल,
गावति भावति बोलि लालन कों ल्याइ है।
हेली हिय अंतर निरंतर उछाह बढ़्यौ,
आवत बसंत आजु कंत घर आइ है॥५९॥

(१६ आवेग-लक्षण)

दोहा

राज, अगिन, जल, प्रभृति भय संभ्रम कहि आवेग।
सुख, दुख, इष्ट, अनिष्ट तैं तहँ चित-हित उद्वेग ॥६०॥

यथा—

सवैया

आगि लगी निसि लागै कहूँ भय भारी भरी नर नारि भुलानी
काहू को नेक रही न सवाँर "कुमार" कछू सुधि सार न जानी ॥
वाही समै पिय प्यारी प्रबीन नवीन मिले रसकेलि सुहानी।
सींचत पानी न आगि बुझानी सो त्यौं इनकी बिरहागि बुझानी ॥६१॥

(१७ जड़ता-लक्षण)

दोहा

इष्ट, अनिष्ट, लखै, सुनै, जिय जो सुधि बिन होय।
कहिये जड़ता तहँ नयन-निमिष न मुख - वच जोय ॥६२॥

यथा—

सवैया

है सियरी सियरे उपचार खरे उपचार खरो तन तावै।
जानौ खरो सियरौ न कछू कहु कैसे "कुमार" हिये सुधि ल्यावै॥
प्यारी की देखिये दीन दसा, कहुँ को अबही हरि सौं कहि आवै।
बोलत बैन नहीं, पल चैन नहीं, पल नैननि नेकु लगावै ॥६३॥

(१८ गर्व-लक्षण)

दोहा

गुन, सरूप, बल, कुल प्रभृति मद कहियतु है गर्व।
अविनय आलस प्रभृति तहँ अन्य निरादर सर्व ॥६४॥

यथा—

सवैया

गोरस बेचै गरूर भरी तन गोरी गहीली खुले अचराई।
सुंदर ठौनि उठौनि उरोजनि जोवन ओज की रोज भराई॥
भौंह मरोरि हँसै मुख मोरि "कुमार" निहारि हरै हियराई।
घालै सुईखन तीखन तीर से, पीर करै न अहीरि पराई ॥६५॥

(१९ विषाद-लक्षण)

दोहा

जो अनिष्ट-संदेह जिय, सो विषाद गनि भाव।
चिंता चाह सहाय की तहँ गनि विविध उपाव ॥६६॥

यथा—

सवैया

रोकतु है मग नंदकुमार "कुमार" सु क्यों कुल-कान रहै री।
छैल छबीलो छकै छवि मे अवगाजन क्यों अब लाज लहै री॥
मोहि रहै अली मोहि निहारि सराहत चाहत बाँह गहै री।
ताप तयौ हिया पाप भयौ कहा आपको आपनो रूप यहै री ॥६७॥

(२० औत्सुक्य-लक्षण)।

दोहा

खन विलम्ब नहिं चित सहै, सो उत्सुकता मानि।
इष्ट-चाह, सुमिरन प्रभृति अँग-आलस तहँ जानि ॥६८॥

यथा—

पिय-आगम बितयौ प्रथम-सुख मंगल विधि वाम।
सरबरबस तौं दूसरौ भयौ दिवस को जाम ॥६९॥

(२१ निद्रा भाव प्रसिद्ध है)

यथा—

सवैया

केलि के मदिर सुंदरि सोने की बेली-सी सोवै नवेली सुहाई।
चारु "कुमार" भुजा उर सोभ विलोकन लोभन जानि जगाई॥
नील निचोल के अंचल में इमि गोल कपोलन की दुति पाई।
ज्यौं जमुना-जल के प्रतिबिम्ब परी झलकै शशि की छबि छाई॥७०॥

(२२ स्वप्न)

यथा—

सवैया

कैसे कहौं निसि को अपनौं सपनौं सखि! नाँहि कह्यौ कछु जाई।
हौं ब्रजगाँउ गली चली जाँउ गयौ कितहूँ मिलि मीत कन्हाई॥
हौं तो "कुमार" लजाइ रही दुरि छैल छबीले सौं जान न पाई।
छैंकि छुई छतियाँ छल सौं, बल सौं भुज भेंटि, हिये गहि लाई॥७१॥

(२३ बोधजगिबो)

यथा—

सवैया

प्रात जगी अलसात विलासिनि, रैन रमी रति-रग घनेरै।
घूमत नैन "कुमार" घनी छबि छाइ रही न छुटे मन मेरै॥

बाँधति केस दुवौं भुज सौं, गहि यौ मुख-कांति लखी दृग फेरै।
चंदहि घेरैं घनौं तमजाल, मनौं तम कों चपला-जुग घेरै ॥७२॥

(२४ अमर्ष-लक्षण)

दोहा

वैरि - अहंकृति - नास की चाह, अमर्ष प्रमानि।
निंदा, तर्जन, सिर - चलन, नैन - अरुनता जानि ॥७३॥

यथा—

सवैया

कीन्हौं महाअपराध है तात को घात को जी में गन्यौ कछु त्रास न।
हौं दुजराज हौं राम अकेलैं करौ सब छत्रिय वैरि-विनासन ॥
तौलौं जगौ जुगुनू-गन से गन वैरिन के, लघु तेज प्रकासन।
जौलौं प्रचंड प्रभाकर-सौ कर सों न लियो फर सा पर-सासन ॥७४॥

(२५ अवहित्था-लक्षण)

दोहा

आकृति वचन छिपाइबौ गनि अवहित्था भाव।
सकुच अन्य दर्शन तहाँ, मिस चेष्टादि सुभाव ॥७५॥

यथा—

प्रिय संगम रति-रंग सुधि दई भई जो राति।
गनै नौल तिय, कौल की पखुरी खरी लजाति ॥७६॥

(२६ उग्रता)

यथा—

सवैया

तोरयौ सरासन सोर सुनै इत आवत राम ये रोष महारत।
लोहू के तालनि तर्पन के अजहूँ नहि छत्रिय वेदि पिसारत॥
दारुनधार कुठार हनें अति दारनि के उर-दारक दारत।
जानी नहीं जिय नैंकु दया, निज दीन महा जननी कों सँघारत ॥७७॥

(२७ मति-लक्षण)

दोहा

ज्ञान, शास्त्र, गुरु नय प्रभृति उपदेशादि विचारि।
जो यथार्थ निरधार जिय, सो मति भाव निहारि ॥७८॥

यथा—

कवित्त

एकै यह केसव कलेस-हर सबही कौ,
स्वारथ कौ सारथ न साथी देह साथ के।
कहत "कुमार" हरि जग को पालनहार,
चारयौं वेद आगम गवैया गुन-गाथके॥
जैसे नीकी जोति जिमी, वीज नाखि राख्यौ किन,
सबैं अकारथ बिन बरखेते पाथके।
रचत अकाथ पुरुषारथ उछाह केतौ,
होइगो निबाह एक हाथ रघुनाथ के ॥७६॥

यथाच—

सवैया

संकर सेस विरंचि "कुमार" सबै बस जासु भये भ्रुकुटी में।
कोटिनि यों बरह्मांडनि की घटना प्रकटी, मिटी जा चुकुटी में॥
सो परमानँद ब्रह्म लियो पहिचानि ही लाल लिये लकुटी मैं।
गोपवधू-सग देख्यो पर्यो दुर्यो पीतपटी में निकुंजकुटी में॥८०॥

(२८ व्याधि-लक्षण)

दोहा

ज्वर वियोग वातादि तें जिय-दुख, व्याधि बताइ।
कंप, शोष, कृशतादि तहँ तन-बाधा बहु भाइ॥८१॥

यथा—

सवैया

ज्यौं ज्यौं गुलाब को नीर उसीर पटीर लगावत जाम बिहानै।
त्यौं त्यौं घरी घरी होति खरी, मन तें सियरी तन को यहु जानै॥
वेदन को सब भेद न पावत वैद निवेदन कै कै भुलानै।
आगे तिहारेई ताप घटै कछु जानत कान्ह! हौ न्यान निदानै॥८२॥

(२९ उन्माद-लक्षण)

दोहा

काम, शोक, भय प्रभृति तें चित-भ्रम कहि उन्माद।
जानि तहाँ रोदन, हसन, वृथागमन, बकवाद॥८३॥

यथा—

सवैया

रोचत नाँहि कछू न सकोचत मोचत है जल लोचन दोऊ।
बात भली अली जानि "कुमार" कही इतही न सही किन कोऊ॥
जानत नाँहि कछू पहिचानत आन को आन बतावत सोऊ।
नाम तिहारो लै बोलत डोलत त्यौं कहिये तो कहा कहै कोऊ॥८४॥

(३० त्रास-लक्षण)

दोहा

अकस्मात मन छोभ जो सोई कहियतु त्रास।
स्वेद, कंप, सुर-भग तहँ तन-रोमंच प्रकास॥ ८५॥

यथा—

सवैया

केलि के गेह अकेली गई, छल जाने नवेली कहा? सखी प्यारी।
छैल छबीले गही उत बाँह "कुमार" डरी हहरी कँपि भारी॥
बोली बुलाये, न डोली डुलायेहु, खोली खुलाये न घूँघट सारी।
कोरि निहोरि निहोरि रहै, पिय ओर नहीं मुँह मोरि निहारी॥८६॥

(३१ वितर्क-लक्षण)

दोहा

संशय की जिय-बात कछु, सो वितर्क गनि भाउ।
भ्रू अंगुलि सिर चलन तहँ, लखि निषेध ठहराउ॥ ८७॥

यथा—

सवैया

हेली ? तिहारेई संग उमाह मे माह में प्रात कलिंदी हौं आई।
धोखौ बढ़्यौ जिय जानि कुमार अहैं परसे यह अंभ-तताई॥
धूम की धार "कुमार" निहारि अरी! किन जो वहु ओर तें छाई।
कौने भली चलबीचिनि माँह अली! जल वीच में आगि लगाई।८८॥

(३२ अपस्मार-लक्षण)

दोहा

अपस्मार कहि भूत - ग्रह - शोकादिक - आवेश।
कम्प, फैन मुख, अँग निचल, तहँ सुधि को नहिं लेश॥८६॥

यथा—

चल अंगुलि दल सिथिल वल मुंचत फैन प्रसून।
तरुवर पवन-प्रचंड-हत गिरत मनौं दुख दून॥६०॥

मूर्च्छा याही में है।

(३३ मरण प्रसिद्ध है)

यथा—

सवैया

तजि प्रान गिर्‌यौ रनभूमि मे रावन, वाहु महाबल मोह छकैं।
फिरि जीवन जानि कै मीच-कथा नभ वीच वखानत सिद्ध जकैं॥
कर तीपन पूखन ज्यौं न पसारत, मारुत छ्वै न सकै अलकैं।
सुरलोक ससंक विमाननि अंक न होइ निसंक निहारि ससंकैं॥६१॥

दोहा

संचारी तैंतीस सब कहे भरतमुनि ल्याइ।
गुपत क्रिया साधन जु छल भाव कहें कविराइ ॥ ९२ ॥

सवैया

चंद उदोत अमद गह्यो निसि, देखि अनंद लह्यौ ब्रजबालनि।
वेश सखी को "कुमार" बनाइ गए नँदनंदन प्रेम रसालनि ॥
राधिका संग सखीगन में वन में रचि गेंद कदम्ब की मालनि।
कुंज तमालनि के घनजालनि दोऊ गए मिलि खेलत ख्यालनि ॥९३॥

इति संचारी भाव

——०:——

अथ आंतर भाव

दोहा

विभावादि परिपोष ते थाई कहे प्रधान।
जहँ न पोष तहँ थाइ ग संचारी रस आन ॥ ९४ ॥
ज्यों थाई तिय पुरुष के प्रीतिहिं रति निरधारि।
यहे पुत्र गुरु देव नृप सौति प्रीति संचारि ॥ ९५ ॥
ज्येष्ठ प्रभृति में हास त्यौं शोक अचेतन मोंह।
पुत्रादिक पर क्रोध कहि कार्य प्रभृति उछाह ॥ ९६ ॥
मृग-छौनादिक नेह त्यौं वीर प्रभृति भय लेखि।
हिंसक में घिन, शम खलनि, ज्ञानी विस्मय पेखि ॥ ९७ ॥

इति आंतर भाव

——.०——

अथ शारीर सात्त्विक-भाव लक्षण—

दोहा

चित्त सत्त्व गुन को गहै प्रानन में वह आइ।
प्रान रचत तन छोभ तहँ सात्त्विक भाव गनाइ ॥ ९८ ॥
भूमि-तत्त्वगत प्रान तें स्तम भाव है होत।
जल तें आँसू, तेज तें स्वेद, विवर्न उद्दोत ॥ ९९ ॥
वायु-तत्त्वगत प्रान तें देह-कम्प, रोमंच।
प्रलय रचै आकास-गत प्रान हेतु ये पंच ॥१००॥

यथा रसमञ्जर्यां श्लोक—

स्तम्भ स्वेदोऽथ रोमाञ्च. स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका. स्मृता. ॥ १०१ ॥

दोहा

भय सुखादि तें गमन को रोधन स्तम्भ[1] प्रमान।
क्रोध, हर्ष, श्रम प्रभृति तें तन-जल स्वेदहि[2] जान ॥१०२॥
कहि समंच सुख, सीत, भय प्रभृतिहिं रोम उमंग[3]।
त्रे पथु गनि तन-कंपत्यों,[4] विकृत वचन सुरभंग[5] ॥१०३॥
मुख-छवि आन विवर्नता[6], आँसू[7] दृग-जल जान।
सकल चेष्टा - हीनता प्रलय भाव[8] पहिचान ॥१०४॥

(१ स्तम्भ) यथा—

सवैया

बाल नवेली अकेली पठाइ सहेली चली, पिय बाँह गही है।
कीन्हों गयौ सिर-कम्प "कुमार" नहीं सुख नाहिंनै नाहि कही है॥

हाथ छुयो न, छुटायौ न अंचल, चंचल नैननि लाज लही है।
चन्दमुखी ब्रजचन्द के आनन चन्दहि न्यान निहारि रही है॥१०५॥

(२ स्वेद) यथा—

दोहा

छूवै कपोल, स्रोननि धरी मजुमंजरी लाल।
दूजी जल-कन-मंजरी, तिय-मुख छाजति हाल ॥१०६॥

(३ रोमांच) यथा—

परी तान पिय-गान की तिय काननि अनकूल।
रोम-कदंबनि फूलि भौ तन कदंब को फूल ॥ १०७ ॥

(४ स्वरभंग ५, वेपथु, ६ वैवर्ण्य) यथा—

सवैया

हेली गई पिय बाग अकेलियै देखन केलि की कुंज सुहाई।
सीकति-सी थकि-सी छकि-सी रही काँपति गातनि ताप तताई॥
आजु निहारयौ "कुमार" कहूँ घन-से तन सौ मन-मीत कन्हाई।
तेरी घनी छबि में छनमेंछबि आन है आनन चन्द में छाई ॥१०८॥

(७ अश्रु) यथा—

दोहा

मुकत-माल के हाल लखि पियहिय अंक बिसाल।
ललित होत सखि! सौति-हिय दृग जल-मुकतामाल ॥ १०९ ॥

(८ प्रलय) यथा—

दोहा

छकी प्रेममद सौं, थकी परि सुख-सिन्धु अथाह।
सोई, माई मोह में, गोई पिय हिय-माँह ॥ ११० ॥

कोऊ जृम्भा नवम भाव कहत हैं।

यथा—

दोहा

बाल निरखि नँदलाल-मुख खरी महल अँगिराति।
रंगभरी मोरति तनहिं भुज-जुग जोरि जँभाति ॥ १११ ॥

इति सात्त्विक भाव।

——:०:——

अथ अनुभाव

दोहा

अनुभविये रस भाव जिहिं, तेई कहि अनुभाव।
भुज-उतक्षेप कटाच्छ हरु तनु मन वचन सुभाव ॥ ११२ ॥
कायिक, सात्त्विक, मानसिक त्यौं आहार्य विचारि।
कहे सबै अनुभाव हैं जानि लेहु विधिचारि ॥ ११३ ॥
कटाच्छादि कायिक कहे, हृदय सुसात्त्विक कार्य।
आनन्दादिक मानसिक, स्वांग कहौ आहार्य ॥ ११४ ॥
भुज आच्छेप कटाच्छ हरु तिय के हैं अनुभाव।
ते निरखत नायक, हियें गनि उद्दीपन भाव ॥ ११५ ॥

यथा—

कवित्त

रामभुज देख्यौ खग्ग जग्गत समर अग्ग,
रचत समग्ग वैरि-वग्ग कतलान है।
संकियतु विषम भयंकर भुजंग यहै,
अरि-प्रान पवन को जाको खान पान है॥
खन में खुलत खल-मुख पानी सोखि लेत,
ताही तैं "कमार" भर्‌यो पानिप अमान है।
दीहदल दानवनि दलत कृपा न याके,
याही तें जहान में, कहान में, कृपान है॥ १२५॥

(५) वीररसानुभाव

दोहा

लहि सौरज, धीरज, दया, धर उछाह, परभाव।
वैरि-निरादर विनय, धृति, वीर रसहिं अनुभाव॥१२६॥

यथा—

सवैया

मंदिर अंदर में दिकपाल दुरे रन जासों पुरंदर हार्‌यौ।
संगर कों, सुत रावन को सोई आवत संग सजे दल चार्‌यौ॥
साँझ समैं इमि फौज में सोर सुनै उर-जोर उछाह है धार्‌यौ।
रामजू साधत संध्याविधान नहीं,क्रम ध्यान कोन्यान बिसार्‌यौ॥१२७॥

(१ दयावीरानुभाव) यथा—

दोहा

व्याकुल गोपी ग्वाल लखि दए दयामय नैंन।
लख्यौ न गिरिधर कंप करि गिरत पीत पट बैन ॥१२८॥

(२ दानवीरानुभाव) यथा—

सवैया

मीत पुरातन ब्राम्हन दीन कों देखि मिल्यौ हसि दूर तें ज्यौंही।
धूरि भरे पग धाए दयौ निजु आसन, बैठि गए ढिग भौंही ॥
तान मुठी भखि तंदुल तीन हूँ लोक-विभो दई चौथी को त्यौं ही।
हाथ गह्यो हरि को हरि-बामा सुदामा को दीबे रही अब हौं ही ॥१२९॥

(६) वत्सलरसानुभाव

दोहा

सिर-चुंबन सुत अंग सग दरस परस अभिलाप।
वत्सल मे दृग-जल प्रभृति अनुभावहि कों भाप ॥ १३० ॥

यथा—

सवैया

बैन सुन्यौ बनते हरि आये बने नट-बेप को भाँति गही है।
मात जसोमति द्वार ही दौरि गई सुत देखन कौं उमही है ॥
कान्हर को मुख चूमति, चूमति, लाइ हिये, निधि मानौं लही है।
आँचर पोंछति गोरज-धूलि है, फूलि हिये सुख भूलि रही है ॥१३१॥

(७) भयानकरसानुभाव

दोहा

सिर दृग कर पग कंप लहि तालु कंठ मुख सोख।
भीति-रीति अनुभवत हैं भय रस में परिपोप ॥ १३२ ॥

यथा—

सवैया

दोउ जुरे दल दीह दिलीस, के धीरन के हिय धीरज छाजैं।
बाढ़ी तराभरी तोपनि की बिकराल प्रलै के मनों घन गाज॥
सूखे से आनन दूखे से रूखे से कायर कूर कपै तन लाजैं।
सुंड,सकोरि जञ्जीरनि तोरि,डरे, बिडरे, भभरे,गज भाजैं॥१३३॥

(८) बीभत्सरसानुभाव

दोहा

मुख दृग नाक सकोरिबौ नैन घूमिबौ लेख।
तुरत गमन तें अनुभवत, रस बीभत्स विशेष॥ १३४॥

यथा—

सवैया

रनभूमि हनै अरि-जुत्थ घनैं कटि लुत्थ कराल परे दरसैं।
भखि गिद्ध सृगालनि अध किये चुनि चौंच न ऐंचत आँतन सैं॥
जिहि रूप निहारत वारत प्राननि लोचन लोभित ह्वै तरसै।
तिन देहनि खेह भरी उघरी दुरगंध सरी लखि लोक त्रसैं॥१३५॥

(९) अद्भुतरसानुभाव

दोहा

साधुवाद, उल्लास दृग, लहि प्रसाद, गति रोध।
तन-रुमंच सुरभंग, तें कीजे अद्भुत बोध॥ १३६॥

यथा—

सवैया

भीषम द्रोन महारथ से पुरुषारथ सौं भिरे भारत माहीं।
पूरन वैर सों पूरो पराक्रम कीन्हों है पारथ कर्न तहाँ हीं॥

जुद्ध-प्रवीनता जोहि दुहूँन की, मोहि रहे सिव सिद्ध महाँ हीं ।
देवन के दृग रीझे विशेष, अजौं अनिमेष ह्वै लागति नाहीं॥१३७॥

(१०) शान्तरसानुभाव

दोहा

जग अनित्यता, त्याग, मति, गुरु-उपदेश प्रचार ।
कहे शान्त अनुभाव है, वेदान्तादि-विचार ॥ १३८ ॥

यथा—

कवित्त

जनम गवाँयौ वादि जन तू सवादि विष,
विषयनि मादन विषादहू अघाइगो ।
कहत "कुमार" सनसार है असार ताहि,
मानि सुख-सार अघ-ओघनि हू छाइगो ॥
चंचल वंचक मन रचक न जान्यो कान्ह,
भव-पारावार बीच नीच तू समाइगो ॥
हरिनाम गुन कों बिसारि, धारि आगुन को,
घरी घरी बूड़ति घरी सी बूड़ि जाइगो ॥ १३९ ॥

इति अनुभाव ।

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज-कुमारमणिकृते रसिक-
रसाले स्थायिभाव संचारिभाव - अनुभाव-
निरूपणनामचतुर्थोल्लास ॥ ४ ॥

—:•:—

पञ्चम उल्लास

अथ विभाव

दोहा

स्थाइ भाव रामादिगन, सामाजिक जिय आनि।
जे विशेष भावित करैं, ते विभाव पहिचानि ॥ १ ॥
होत जाहि आलम्बि रस, सो आलम्ब विभाव।
रस - उद्दीपन जे करैं, ते उद्दीप विभाव ॥ २ ॥
तहँ नायक अरु नायिका रस सिंगार आलम्ब।
यथाजोग औरै रसहिं भनि आलम्ब - कदम्ब ॥ ३ ॥

नायक—लक्षण

दोहा

सब गुन-नेता, निज गुननि बस नेता सब लोक।
सोई नायक जानिये मेटै निजजन - सोक ॥ ४ ॥
त्यागी, छमी, धनी, तरुन, सुंदर, कला - प्रवीन।
नायक कहि गुन आठ युत संगर-धीर, कुलीन ॥ ५ ॥
थिरता, सोभा, ललितता, गंभीरता, विलास।
तेज, त्याग, गुन-माधुरी आठ सत्वगुन वास ॥ ६ ॥
औरै गुन भरतहि गुनै व्यस्त समस्त विचारि ॥
यातें ढीठे शठादि तें भेद होत निरधारि ॥ ७ ॥

सुभ सरीर, नीरज-नयन, गुन-नीरधि गंभीर।
पीर-हरन भट भीर मे समर-धीर रघुबीर ॥ ८ ॥

कवित्त

भाग जसुधा को, बसुधा को आभरन पूरौ,
सुधा-पूर, ब्रज-बधू - लोचन - चसक कौ।
रूप कौ निधान, रस-कला सावधान महा—
दान सदा जान पर-पीर के कसक कौ ॥
कुल कौ मसाल, बलवड बैरी - उरसाल,
पालक "कमार" है दिसाकऊ दसक कौ।
गुन कौ जनैया, निजजन को चिन्हैया पायौ,
कुँवर कन्हैया लोक ठाकुर ठसक कौ ॥ ९ ॥

दोहा

धीर शान्त, धीरोद्धतै, धीर ललित निरधार।
धीरोदात्त कह्यौ तथा, नायक है विधि चार ॥ १० ॥

(१) धीर शान्त

दोहा

विद्या-पूरन, ब्रह्मकुल, वीर, सदय हिय मॉह।
सम गुन-जुत माधव प्रभृति धीर शान्त है नाह ॥ ११ ॥

(२) धीरोद्धत

दोहा

निजसराह-रुचि चण्ड चित, रन-प्रिय धरि अभिमान।
नायक धीरोद्धत गन्यो, भीम प्रभृति है न्यान ॥ १२ ॥

(३) धीर ललित

दोहा

नहि सराह, प्रिय, सदय हिय, गुनमय, सुचित, सुभाइ ।
धीर ललित नायक गन्यौ युधिष्ठिरादि बताइ ॥१३॥

(४) धीरोदात्त

दृढव्रत, छमी, गँभीरबुधि, विजयी साचा धीर ।
उत्तम धीरोदात्त गनि, ज्यौ नायक रघुवीर ॥१४॥

(अन्य भेद)

दच्छिन अरु अनुकूल, सठ, ढीठ, भेद ये चार ।
मिलै धीर ललितादि सब सोलह भेद विचार ॥१५॥

(१) दक्षिण

सकल तियनि पर एकसम जाकी प्रीति लखाइ ।
सो दच्छिन नायक गन्यौ रस-बस चतुर सुभाइ ॥१६॥

यथा —

जँह जँह सोलह सहस तिय, तह तँह बसि नँदलाल ।
महलनि महलनि निरखि गति थके देवरिषि हाल ॥ १७॥

सवैया

खेलत कान्ह कदम्ब चढ़े लखि गोपी कदम्ब रची मन भाई ।
घेरि चहूँ दिसि माँगतीं फूलनि फूली हिये लहि प्रीति सुहाई ॥
काहू चह्यौ कर-कंकन, हार, विहार को कंदुक काहू बताई ।
फूल बहार के भार भरी इक डार है नंद "कुमार" नवाई ॥१८॥

(२) अनुकूल

दोहा

जासु प्रीति इक तरुनि पर, एकै भाँति विसेखि।
सो नायक अनुकूल कहि कवित नृत्य में लेखि ॥१६॥

सवैया

लाज बड़ी में गड़ी-सी रहै कहा झाँकिहैं झाँकत फेरु ठयौ है।
देखि सुनी तिय आन सुहाति न न्यान तू मोहन मंत्र दयौ है॥
तो बिन देखे "कुमार" नहीं कल देख्यौ भलौ यह नेह नयौ है।
नंद कौ नंदन है ब्रजचंद पै ता मुख-चन्द-चकोर भयौ है ॥२०॥

(३) शठ

दोहा

रचि अपराधहि तरुनि सों निरपराध-सो होइ।
कहि प्रछन्न, प्रकाश, इमि शठ नायक विधि दोइ ॥२१॥

ज्येष्ठा कनिष्ठा के उदाहरण में प्रछन्न शठ है। यौ उदाहरन एसो चाहिये। यथाच—

(१ प्रच्छन्न शठ)

सवैया

रैन नये कहु भोर पगे किहि और लगे सँग संगम जोऊ।
प्यारी मनाई मिलाइ दई हौं "कुमार" न प्यार बतावत सोऊ॥
रीति तिहारी बिहारी न जाने सु प्रीत प्रतीत मिले रहौ दोऊ।
मो हिय हैं डर न्यान लगै, तिय कान लगैं न चवाइनि कोऊ॥२२॥

(३ प्रकाश शठ)

सवैया

वेष सखी कौ बनाइ "कुमार" सखीनि मे खेलत कान्ह दुलारौ।
रैनि मिल्यौ न मिल्यौ इनही कौ निकु जनि केतो प्रचार बिचारौ।।
बाँधि भुजानि सौं जान न देहुँगी त्यौंत बन्यौ बलि प्रीतम प्यारौ।
पायौ दुरयौ चितचोर सु चोर है चोर-मिहीचनि खेलनवारो।।२३।।

(४) धृष्ठ

दोहा

करि अपराधहिं निडर जिय, खीझै, झुकै न लाज।
नायक ढीठ बताइये बरबस रचै सुकाज।।२४।।

सवैया

भोर गये लखि रोष भरी तिय अंक दुरैवे को अंक लगाई।
यों समुझाई "कमार" कही, निसि जागत जागी नहीं अरुनाई।।
मेरे बसी मन में, तन में, तुम ही हिय मेरे न और सुहाई।
नैनन में तुव नैन बसै झलकी दृग अंचल की सु ललाई।।२५।।

दोहा

पति, उपपति, बैसिक तथा मानी चतुर सुभाइ।।
उत्तम मध्यम अधम ता नायक बहुत बताइ।। २६।।
परिनेता तियवस सुपति, परपति उपपति, ठाइ।
वेश्यारत बैसिक गन्यौ, मानी मान सुभाइ।। २७।।
क्रिया वचन चतुरा इहीं मिलै सु चतुर प्रमान।
इक प्रोषित कै तिय मिलित सव पति द्वैविध जान।।२८।।

परिकीयादि हू में पति शब्द लाक्षणिक है।

दोहा

उत्तम लेहि मनाइ तिय-हिय वस रस के काज।
मध्यम तिय-रोषहि रचै, अधम तजै डर लाज ॥२९॥
निज समान वैरी नृपति प्रतिनायक कहि न्यान।
उपनायक भाई, सखा, फौजदार, दीवान ॥३०॥
सेवक, सुभट, विदूषकै अनुनायक पहिचानि।
पण्डित, प्रोहित, गुरु प्रभृति धर्म-सहायक जानि ॥३१॥
विप्र, विदूषक, हास-प्रिय गुन-पारग विट चेट।
पीठमर्द रस-बस तरुनि देइ मिलाइ सहेट ॥३२॥

इति नायकविचार।

अथ नायिका-लक्षण

दोहा

नायक के सम गुननि जुत कही नायिका लेखि।
प्रतिनायक, उपनायिका सौति, सखी हरु देखि ॥ ३३ ॥
भेद सुकीया, परकिया, सामान्या है तासु।
परिनीता पति-विनयमय परम-धरम सुकिया सु ॥ ३४ ॥

प्रत्येक पतिन सों परिणय ते द्रौपदी हू में स्वकीया-लक्षण है।

पतिव्रता स्वीया

दोहा

परिनेता के वप सदा हिय-रिस कौ नहिं ठौर।
पतिव्रता स्वीया सुभनि साधारन है और ॥ ३५ ॥

खण्डितादि भेद स्वीया में मानिबे कों प्रतिव्रता जुदी मानिये। यथा—

सवैया

बैन न आन के कान परें, नहिं नैननि आन की छाँह गही है।
बोले ही बोलति, डोलति डोलेही, नाह छबीले की छाँह ठही है॥
सूधे सुभाइ, सुधा-सनी बानि, "कुमार" विलास नई ये नई है।
प्रान तें प्यारो है प्यारे कों जानति, प्रानपियारे के प्रान भई है॥३६॥

अन्य स्वीया। यथा—

सवैया

नैन बसे पिय रूपहि में पिय के रस ही रस बात सुहाई।
'रूसति है तिया प्रीतम सों' यह बात सुनै हू सही नाह ठाई॥
याके "कुमार" सदा प्रिय-प्रेम उछाह की ऊपमता हिय छाई।
मान की सीख सखीनि धरी पै घरी घनसार लौं फेरि न पाई॥३७॥

स्वकीया-भेद

दोहा

मुग्धा, मध्या, प्रोढतिय, स्वीया है विधि तीन।
परकीयहु में मध्यता तथा प्रौढता बीन॥ ३८॥

आदि पुरान में नवीन ब्याही पितृगृहस्थित होइ, सो उढा स्वीया चोथौ भेद गन्यौ है। यथा—

सवैया

वेदी के पासहिं, पावक के ढिंग पावक कैसी सिखा लगै उज्जल।
भाँवरें देत विदेह-सुता, लखि राम को रूप बिमोहि छकी पल॥
पानि सौं पानि गह्यौ रघुनंदन, यौं कर अंगुलि काँपी है ता थल।
प्रात के वात [illegible] ज्यौं, लाल कमोदिन के दल चंचल॥३९॥

याहीको भेद, पति-घर गये नवसगम तें नवोढा है। यथा—

सवैया

संग सखी मिलि लै गई केलि के मंदिर सुंदर कान्ति खरी है।
गौने के रैनि मयंकमुखी परजंक में प्रीतम अङ्क-भरी है॥
प्यारे को हाथ "कुमार" परयौ कहुँ नीवी के छोर त्यों जोर डरी है।
यों हहरी, न धरी थिरता ज्यौं घरी जल तें बिछुरी मछरी है॥४०॥

मुग्धा

दोहा

मुग्धा अतिडर मध्यमा कहि समलज्जाकाम।
लघुलज्जा प्रौढा कही, रति-रस सरस सकाम॥ ४१ ॥
मुग्धा मे नवमदन, नव—जोवन, अति ही लाज।
भूषन-रुचि, रति-वामता, वरनत सुकवि-समाज॥ ४२ ॥

(१) नवमदना मुग्धा

कवित्त

लोचन प्रवीन, कटि छीन होति छिन-छिन
हीन होति सौति-मति गुन-गन राह मे।
गात सुकुमार, चारु चीकनें, उजार छवि
जाहिर "कुमार" चाह प्रीतम-सराह में॥
अंगनि मनोज, ओज-सग ही उरोज बढ़ै
रोज बढ़ै रंग पिय-मिलन उमाह मे।
लोग देखि बाल की लजान लगी डीठ दुरि
जान लगी, लाल लखि न्यान लगी चाह मे॥४३॥

(२) नवयौवना मुग्धा

सवैया

देखत प्रीतम को दुरिहू दृग - कंज ये पावै विकास घनेरौ ।
त्यौं कच कोकनि के जुग सावक चाहै 'कुमार" सकास बसेरौ ॥
जावक सौ रँग, सौति के नैन चल्यो घट तेरो अयान अँधेरौ ।
गातनि कैसे दुरायो है जात, प्रभात-सो जोवन रूप उजेरौ ॥४४॥

नवयौयना मुग्धा द्विधा है —

दोहा

जोवन ज्ञात, अज्ञात ते द्वैविध को तँह जान ।
सो मुग्धा नवजोवना द्वैविधि बरनि प्रमान ॥ ४५ ॥

(१ ज्ञातयौवना)

सवैया

कंदुक एक लिये कर सुंदर नन्द-कुमार तिया तन मेली ।
हार "कुमार" बनावत ही कर ऊँचे कै फूल की गेंद सुझेली ॥
अंचल गौ उर तें चलि त्यों पिय के दृग चंचल देखि नवेली ।
नैननि ही मुसक्यानी सखी सु बही बरजा करि सैन सहेली ॥४६॥

(२ अज्ञात यौवना)

सवैया

पाइनि मंद गयन्दन की गति, पेखि सखी गन में भ्रम ठानै ।
कान लौं लोचन गौन "कुमार" सु स्रौन धरे जलजात प्रमानै ॥
रोमनि राजी बिराजी लखै, रसना मनिनील प्रभा पहिचानै ।
जानैं न जोवन आपनी देह में कैसे तिहारे सनेह में जानै ॥४७॥

(३) लज्जावती मुग्धा

सवैया

सँग प्यारे के चौपर खेलौ, हसौ, सकुचो न कछू सखियाँजन सों।
पिय की मनुहारि करौ, मनुहारि जु चाहती, नारि हलाजन सों॥
लखि भाजि न जैये, समाजन की जिए लाज न कीजिये साजन सों।
हिय जोर रचिहौ हित ता जन सों बचिहौ तब मैन के ताजन सों॥४८॥

(४) भूषणरुचि मुग्धा

सवैया

कंचुकी सोंधे सनी सुबनी पहिरी चुनरी चटकीली सुरंग सों।
दर्पन देखि "कुमार" सरूप सिंगार सिंगारति प्रीति-उमंग सो॥
एक कही, करि हेली हहा, यह पावै सही करि सोभा तरंग सों।
रावति भूषन मे रुचि रंग तौ लाल मिलाउरी सोने से अंग सों॥४६॥

(५) रतिवामा मुग्धा

सवैया

खोली तनी कितनी विनती मों तऊ अँगियाँ-अँग बाहु दुरायौ।
त्यौं पहिरावत हार "कुमार" रच्यौ पियहू अपनो मन भायौ॥
कुंकुम को अँगराग रचावत गाढ़ उरोज ज्यों हाथ लगायौ।
त्यौंहू खरे नख-रेखनि प्यारीहू प्रीतम के उर राग बनायौ॥५०॥

(६) वय-सन्धि मुग्धा

दोहा

शिशुता मे जोबन जहाँ न्यारो जानि न जाय।
वय सन्धि मुग्धा तियहि बरनत हैं कविराय॥५१॥

यथा—

सवया

देखि हो जू इक गोपसुता छवि छूटे नई छन जो लगि जाति है
गातनि दीपक-सी दुति, सोहति मोहति है, मुरि जो मुसक्याति है।
यों सिसुताई में सौने-से अग "कुमार" नई तरुनाई सुहाति है
केसरि रंग में ज्यों मिलि संग में ईंगुर की अरुनाई दिखाति है॥५२।

विश्रब्ध नवोढा

दोहा

रति-रस सों पिय सग सों जाके कछु परतीति।
सो विश्रब्ध नवोढ तिय बरनत कविता-रीति ॥ ५१ ॥

यथा—

कवित्त

सुनि सुनि कान दै तिहारो गुन-गान न्यान
रीझति रिझावति बिहसि अँगराइकै।
अंगनि सिंगारिनि कसत आँगैं रस पागै
राउरे हगनि लागै दुरति लजाइकै॥
जानि अनुराग बाग बेलिनि के देखिवे को
ल्याई हौं लिवाइ, बडे भाग मिलौ आइकै।
भेंटौ अब लाल! हिये अबला लगाइहेम—
बेली-सी अकेली आजु केली-कुंज पाइकै॥ ५४ ॥

मध्या

दोहा

उन्नत जोवन, काम त्यौ वंकवचन, लघु लाज।
वरनत सुरत-विचित्रता, मध्या में कविराज ॥ ५५ ॥

(१) उन्नतयौवना मध्या

सवैया

चंचल लोचन, अंचल में मुसक्यात, कपोलनि बात सुहाई।
ऊँचे उरोज निहारि चलै, पग मंद गयंदन की गति पाई॥
ऐसी लसी नवजोवन संग नवेली के अंग "कुमार" लुनाई।
चूनौ मिलै जिमि मंगली-संग में रोचन रंग मे रोचि सुहाई॥५६॥

(२) उन्नतकामा मध्या

सवैया

रूप अनूप तिहारो हे लाल! सुबाल नवेली कर्यौ दृग अंजन।
तातें कहूँ खन न्यारे न राखति प्यारे तियानि के मान के भंजन॥
जोलौं "कुमार" इते तुम आये हौ, तोलौं तमासो लखौ मनरंजन।
प्यारीके नैन झरोखनि झाँक सपंखे परे पिंजरा जिमि खंजन॥५७॥

(३) वक्रवचना मध्या

सवैया

तैसो सुहात न और कछू चित ज्यौं रसकेलि कलानि की बातैं।
कैसे के कीजै "कुमार" घरी घर-काज को घेरि रहै चहुँघातैं॥
देख्यौ सुहात न द्यौस तुम्है, दिन रैनिहू रैनि वसैं जिय जातैं।
सुंदर स्याम कहावत हौ, यह रूप है राउरो साँवरो तातैं॥५८॥

(४) लघुलज्जा मध्या

सवैया

कैसे रचौं पिय पास विलास "कुमार" हुलासनि को सुख लूटै।
रूप अनूपम देख्यौ चहौं सखि! संग को नेह नहीं हिय टूटै॥

(४ विविधभावा प्रौढा)

कवित्त

झूलति हिंडोरे बाल लाल सों "कुमार" कहै
सुरति सुरति-सी जताइ मुसक्याति है।
विमल कपोलनि पै अलक झलक सोहै,
मुख श्रमजल-कन छलक दिखाति है॥
चंचल है अंचल सुहात गोरे गात खुलि
कटि की लचक मचकति में सुहाति है।
मुरि मुरि मुरक में पीठि फेरि जाति है, पै
फेरि फेरि प्यारे ओर डीठि फेरि जाति है॥ ६५॥

(५ लघुलज्जा प्रौढा)

सवैया

प्रीतम के बस प्यारी पगी दृग-डोरि लगी तजि लाज सुभावै।
प्यारे करी दृग की पुतरी, पुतरी-सी नचै पिय जो मन भावै॥
बोलनि बोलै बलाइ तिहारी"कुमार"बिहारी ज्यों रीझि रिझावै।
सैननि ही हिय की कहि जात, सु नैननि ही सब बात बतावै॥६६॥

स्वकीया, पति-प्रीति के भेद ते ज्येष्ठा कनिष्ठा द्वै भाँति है। अधिकप्रीति तें ज्येष्ठा, अल्पप्रीति तें कनिष्ठा। यथा –

ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा

दोहा

दोऊ ढिग हैं बाल इक आँखि न नाँखि गुलाल।
अंक माल दूजी लई चूमि कपोलनि लाल॥ ६७॥

इति स्वकीया

परकीया

दोहा

परपति सों अनुराग रचि, परकीया तिय होइ।
प्रथम अनूढा जानिय, अपर परोढा सोइ ॥ ६८ ॥

अनूढा पित्रादि-वश्य है, परोढा पति के वश्य है, तातें अन्य सों अनुरागिनी होय सो परकीया है। अनूढा गान्धर्वविवाहोत्तर स्वीया होति है। जैसे शकुन्तला महाश्वेतादि है। यथा—

श्लोकः—

य. कौमार हरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा।
ते चोन्मीलितमालती-सुरभयः प्रौढा कदम्बानिलाः ॥
साचैवास्मि, तथापि तत्र सुरतव्यापार-लीलाविधौ।
रेवा-रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥ ६९ ॥

इहि श्लोक मे प्रथम अनूढा परकीया है, फेरि ऊढा भये स्वीया है।

(१ अनूढा परकीया)

सवैया

बैठी कहूँ इक गोपसुता गुरुनागिनि मे गुनगौरि सुहाई।
कैसे मिलै वह कान्हकुमार, सो काहू सखी यह बात सुनाई ॥
ऐसे में आइ कढ्यौ कितहू तें "कुमार" कहै, वह छैल कन्हाई।
प्यारी निसा-रतिकी करि सैननि नैनइसारति कीन्ही विदाई॥७०॥

(२ परोढा परकाया)

कवित्त

माइ-घर कैसे कैसे कीजिये विलास हास,
कठिन है वस वास पीहर-निवास मे।
बिन देखे कल न परति, तलफत चित,
रचिये "कुमार" जैसे केलि-रस रास मे॥
आये मेरे काज ब्रजराज कछू काज-मिस,
ननँद जिठानी बानी बोलैं उपहास मे।
पास नहीं सखी, भेंट आस नहीं, त्रासन तें—
सासन दुसासन परोसी आस-पास मे॥ ७१॥

परकीया-भेद

दोहा

निपुना, त्यों रतिगोपना, जान लच्छिता, और।
वचन क्रिया की चतुरई निपुना द्वैविध ठौर॥७२॥

पहिचानवारे सों जो चतुराई रचै सो निपुना है। बिन पहिचान—वारे सों चतुराई रचै सो स्वय दूती है। यह भेद मानिये।

(१ स्वयं दूती)

सवैया

अधिक जाम करौ विसराम "कुमार" अरामकी कुंज इतै है।
अंत वसत के ग्रीषम की लपटैं न घटै, दिन साँज समै है॥
छाँह घनी पियौ नीरजनीर, सु सीत समीर लगै सुख दैहै।
हाल लखौ फल लाल रसीलो रसाल-लता में कहूँ मिलि जैहै॥७३॥

(७ वचनविदग्धा)

दोहा

विवि खंजन मिलि रमत तहँ, जहाँ होत निधि-ठान।
इमि खजननयनी कह्यौ, लखि हरि रूप-निधान॥७४॥

(३ क्रियाविदग्धा)

दोहा

नवल कमल की लखि कली, हिये लगाई लाल।
हाथ अगूठी लाल लखि हिये धर्‌यो हसि बाल॥७५॥

यथा—

सवैया

देखै अटा चढि दोऊ वटा, द्दग लागे दुहून सों प्रीति लही है।
दै पठयो कुसुमीरँग को पट, यौं पर प्रीतम-प्रीति कही है॥
चूनौ मिलै हरदी रँग रोचन प्यारे "कुमार" पठायो सही है।
बाढ़त रंग है एकत संग ही, संग भये विन रंग नहीं है॥७६॥

याही मे सखी-वचनादि भेद हैं

गुप्ता—

दोहा

भयो, होत, ह्वैहै सुरत, ताहि दुरावै नारि।
गुप्ता परकीया तहाँ तीन भाँति निरधारि॥७७॥

(१ वर्तमान सुरतगोपना)

दोहा

प्रातहिं गनपति पूजिहौं, निसा अकेलो जाइ।
ल्यावत केतकि फूल हौं कंटक कुटिल मम्हाइ॥७८॥

सवैया

तोहि गई सुनि कूल कलिंदी के, हौंहू गई सुनि हेली हहारी।
भूली अकेली "कुमार" तहाँ डरपी लखि कुंजनिपुंज अँध्यारी॥
गागर के जल के छलकै घर आवत-लौं तन भीजिगौ भारी।
कंपत त्रासनि येरी बिसासनि! मेरी उसास रहै न सम्हारी॥७६॥

(२ वृत्त, ३ वर्तिष्यमाण सुरतगोपना)

सवैया

फूल बहार निहारनि काज "कुमार" तहाँ गई तो सँग मै हौं।
भोर अकेलियै आजु चली, डरपी चटकाहट-सोर सुनैहौं॥
भौंरनि दौरि डसी चहुँघा लगे कंटक के छत कैसे दुरैहौं?
फेरि अली उहि कुंज-गली न गुलाब-कली कहुँ बीनन जैहौं॥८०॥

लक्षिता

दोहा

हृदय - सखी जहँ नारि को लखै जार - संभोग।
तहँ प्रछन्न, प्रकास कहि दुविध लच्छिता जोग॥८१॥

(१) प्रच्छन्नलक्षिता

सवैया

ध्यान धरौ रहै जाको सदा, कहूँ न्यान मिल्यौहै वहै मनभायो।
रंग में साध्यो भलो अपने गुन बाध्यो अराध्यो सो देव सुहायो॥
हार के बीच "कुमार" बहार में, प्यार में प्यारे को राखि रमायो।
काहू नहीं लखि पायौ अली!यह लाल तू पायौ सुहौं सुखपायो॥८२॥

(२) प्रकाश लक्षिता त्रिधा:— मुदिता, अनुशयना, साहसिका च।

(१ मुदिता)

सवैया

भींति गिरी तँह ऊँचौ रचावत मंदिर सुंदर के दुचिताई।
कैसे वनै अब मीत अगार के और विलोकन की मनभाई।
देखी "कुमार" वनाई तहाँ, मनभावन भौन के पास सुहाई॥
द्वारी अटारी के पाखेमें पेखत राजी है राजनि रीझि दिवाई॥८३॥

यथाच—

बीज बयौ तब ही तें बये हिय में पियकेलि-विलास खरे हैं।
अंकुर होत हितै अँकुरे, जल सींचत, सींचि गए सुथरे हैं॥
बाढ़त त्यौं ही "कुमार" बढ़ै, सँग फूलत ही अँग फूल भरे हैं।
मीत सकेत के हेत तिया के मनोरथ-खेत फरे ही फरे में॥८४॥

दोहा

पिय ढिंग पठई दूतिका ताहि सिखावति बाल।
पहुँची तह, जहँ कुंज ही मग देखत नँदलाल॥८५॥

इहाँ हू मुदिता है।

(२ अनुशयाना)

दोहा

लखि विघटन संकेत को, जाके अनुशय होइ।
कहत जु अनुशयना यहै, परकीया कवि लोइ॥८६॥

ताके भेद—विघटितसकेता. अप्राप्तभाविसकेता, शंकितसकेत-गमना।

(१ विघटित सकेता)

तजी पीतपट रुचि भजी वदन पीत रुचि हाल।
सन वन सूखत देखि कें, तन मन सूखत बाल ॥८७॥

(२ विघटित वर्तमानसकेता)

सवैया

हार ब नावन हाल चह्यौ हौं अहे अपनें कर साँझ सवेरै।
देखत बाग बहार "कुमार" यों वारि गई लखि संगहि मेरै॥
कौन धो वैरिनि वैर परी, न परी दृग हू कहुँ कुंज के फेरै।
बेल कली लखि बीनि लई, सखि छीनि लई, छबि आनन तेरै॥८८॥

(३ विघटित भविष्यत्सकेता)

दोहा

कुंज-भवन ह्वैहै सघन, हमि सींचत नित नीर।
तपत हियो रचिहै अपति सखि ! यह सिसिर समीर॥८६॥

(४ अप्राप्तभाविसकेता)

दोहा

नव चंपक-कुंजनि निरखि, सुमिरन पिय घर जात।
सुनै सरस सरसीनि में तित फूले जलजात ॥ ९० ॥

(५ शकितसकेता जारगमना)

कुंज-कुसुम हरि-कर लख्यौ, वर तरुनी रचि सैन।
बिबस दिवस के अन्त जिमि, जलज सजल करि नैन ॥९१॥

(३ साहसिका)

सवैया

ज्यौं बरजी, तरजी गुरु नारिनि, त्यौं त्यौं तजी कुल-कानि ढिठाई।
सीख न की सखियानि की हौ अँखियानि लखे लखि रूप इठाई॥
हेरि हियौ हरिलीन्हौ "कुमार" कहा निठुराई अहो हरि! ठाई।
बाउरी हो गई, राउरी प्रीति, ठई हमको ठग कैसी मिठाई॥६२॥

कुलटा

श्लोक

परोढां वर्जयित्वा च वेश्यां चाननुरागिणीम्।
आलम्बनं नायिका, स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः॥६३॥

इहि कारिका मे स्वीयादी शृङ्गारालम्बन व्हैकै अनूढा परकीया आलम्बनहै।

श्लोक

अनूढा च परोढा च परकीया द्विधा मता।
व्रजेशा-व्रजवासिन्य एताः प्रायेण विश्रुताः॥ ६४॥

इत्यादि आदिपुराणके वाक्य तें रतिपुष्टा, तातें परकीया परोढा ऊ आलम्बन हैं। कुलटा वेश्या क्यूँ न कही, पै जहाँ एकत्र रतिपुष्टता होय, अन्यत्र पुरुष परीक्षा-मात्र तें धन-प्राप्ति तें प्रीति होय, तहाँ कुलटा वेश्या ऊ आलम्बन। होय यथा—

श्लोक

रति-रमलालसया सखि? सकलयुवानः परीक्षिता हि मया।
हृदयानुरञ्जन-विधौ मधुरिपुणा क समो भविता?॥६५॥

इत्यादि उदाहरण कुलटा के हैं।

अनेकनि में वा धनही में प्रीति करनै, रसाभास ही है।

सामान्या

दोहा

अनन्याही, बहु पुरुष सों रचै चतुर संभोग।
फल रागहि सामान्य तिय, होय कहत कवि लोग ॥६६॥

स्वर्गगत शूरतातपः प्रभावादि अनुरागिणी सुरवेश्या है। सौंदर्यादिफलानुरागिणी नलकूबरादि-अनुरक्त रम्भा है। मृच्छकटिक में चारुदत्ता अनुरागिणी वेश्या है। तहाँ यह लक्षण सम्भव है।

कहूँ वित्ताभिलाषोपाधि हूँ में एकत्र अनुराग-दार्ढ्य है। अन्यथा अभिनय में रोमांचादि न सम्भवै। केवल वित्तानुरागिणी कल्पितानुरागिणी आलम्बन नाहीं।

सामान्या तीन भाँति है—स्वतन्त्रा, जनन्याद्यधीना, नियमिता।

(१) स्वतन्त्रा

सवैया

नेह निहारन ही सो भयो बसु लोक सबै, वसु दै मन भायो।
गीत-कला गुन-गान में तान में मैनका रंभा को मान घटायो॥
केते मिले मनभावन पै, हरि छैल छबीले ही मोहि रिझायो।
हेली यहै रति नेम हौं पायो, है तायो-सो हेम है, प्रेम सुहायो॥६७॥

(२) जनन्याद्यधीना

सवैया

लोक विलोकनि भोर परे, घर द्वार खरे, धन देत हहारी।
मेरे न चाह कछू धन की, मन की इक गाहक, प्रीति निहारी॥

ए हौ रह्यौ तुम ही मिलि कै मन, प्यारे ! यहै तनु जानौं तिहारी।
हारी हौं एक जु रोकत न्यारी कला-गुनगोत सिखावनहारी ॥६८॥

(३) नियमिता

वंदीग्रहण तें वा धनदानादि तें जो गृह ही पात्रादि राखी होय सो नियमिता कही। यथा—

दोहा

'मोल लई वित दै' यहै कहौं न कबहूँ बोल।
चित-वित दै इक लाल ? तुम, मोहिं लियौ विन मोल ॥६९॥

इति सामान्या।

अथ अवस्थाभेद तें अष्टविध नायिका कहियतु हैं। अन्यसम्भोग-दुःखिता, मानवती, गर्विता ये तीन भेद न्यारे गने हैं। आदि—दोऊ भेद खंडिता में, गर्विता स्वाधीनपतिकादि में गनिये, न्यारे नाहीं। गर्विता प्रेम, गुण, रूप, यौवन-गर्व तें चारि भाँति है।

(१) प्रेमगर्विता

दोहा

निसदिन दृग तें न्यारियै नहि राखत पिय मोहि।
क्यों छनदा'छन खेल को, सीख कहौं सखि ! तोहि ॥१००॥

यथा च—

आन पियारी सों कहूँ रचौ विहारी ! प्रीति।
तौ विसेप करि जानि हौ मो असेप रस-रीति ॥१०१॥

(२) गुणगर्विता

सवैया

गीत कवित्त कलानि "कुमार" दुहूनि गनी है घनी चतुराई।
नेह नयो, नई केलि को रंग, दुहू परबीनता जीति जताई।
प्यारे लियौ कर बीन बजावत, तान नवीन तहाँ उपजाई।
प्यारी अलापि के राग यहै, मधुरी धुनि बीन ते आनि सुनाई॥१०२॥

(३) रूपगर्विता

दोहा

अंग, अंग छबि की बनक, कनक कनक दुति-हीन।
कहि दूखन भूषन न तन, भूषत पिय परबीन॥१०३॥

(४) यौवनगर्विता

सवैया

कचन-सो तन, कंचुकी गाढी कसै तन झाँकी ही ठाढी प्रमानी
नेह लग्यौ ब्रजनाइक सों, सँग लागी फिरै, लखि रूप-लुभानी॥
छ्वै निकसे मग माँह "कुमार" बुल्यान ही सों हँसि बोलति बानी।
तोरति अंग, मरोरति ओंठि, उठी छतियानि फिरै इठलानी॥१०४॥

१ स्वाधीनपतिका

दोहा

जासों पति अतिरस-भर्यौ सदा रहत आधीन।
सो अधीनपतिका प्रिया बरनत सुकवि प्रवीन॥१०५॥

यथा —

सवैया

तेरे सदा रस के वस प्यारौ "कुमार" रचै सोई जो तुव भावै।
ताही सनेह सों माती फिरै, रँगराती, कहा सखि सीख सिखावै ?
मेरे भई रिस पावक जो. पग जावक प्यारे के हाथ दिवावै।
छैलछवीलो तो छाती लगाइये,पाइ छुवौ जनि पाइ छुवावै॥१०६॥

यथाच—

दोहा

मानतु आन तिया-सुरति, सुरति तिहारी ल्याइ।
ज्यो पखान सेवत तहाँ, निज - देवत हिय ध्याइ ॥१०७॥

(परकीया स्वाधीनपतिका)

सवैया

क्यौं कुल-कानि सों कानि रहै, जुग-सो खन बीतै विना हरि हेरे।
मेरे ही द्वार "कुमार" लख्यौ, मिस ठानि कछू निसि साँझ सवेरे॥
बीस विसै वस कान्हर में मन, कान्ह वस्यो मन क्यौं फिरै फेरे।
हौंही भई इक कान्हमई, कहा लोक कहै वस कान्हर तेरे॥१०८॥

एते सामान्या तथा मुग्धा मध्या, प्रगल्भा स्वाधीनपतिका जानिये।

२ वासकसज्जा

दोहा

पिय आगम निहचै धरै, साजति सेज सिंगार।
वासकसज्जा तिय यहै, चाहति मिलन विहार ॥१०९॥

वासक के निमित्त जो सज्ज होय, सो वासकसज्जा है।

श्लोक

वारश्च,[१] ऋतुकालश्च,[२] प्रवासादागमस्तथा[३] ।
प्रसादनं[४] च रुष्टाया नायिकायास्तथोत्सव[५] ॥ ११० ॥
नवोढाभ्युपपत्तिश्च[६] षडेते वासकाः स्मृता ।

तातें एष्यत्पतिका वासकसज्जा ही में मानिये। यथा—

कवित्त

सौंधे सों लिपायो, छिरकायो लै गुलाब नीर,
अगर घिसायो, घनसार सों सघन है।
फूलनि सुहायो, छबि छायो, बिछवायो सेज,
अतर मँगायो, रति - केलि के सदन है॥
भूषन उज्यारो, त्यौं "कुमार" हिय धार्‌यौ हरि,
वसन सुधार्‌यो, तन रंगित रमन है।
वार वार झाँकी, द्वार—आवन गमन जानि,
आजु मनभावन को आवन भवन है॥ १११ ॥

(एष्यत्पतिका वासकसज्जा)

कवित्त

अँगनि बिबस ठाढ़ो औधि के दिवस बाल,
प्रानिनि धरति, प्रानपति ध्यान धारि कै।
प्यारे मनभावन को आगम "कुमार" तो लौं—
दूर ही तें सखी कह्यो, लह्यो निरधारि कै॥
साजति मिलन - साज आनँद है पूर्‌यो अँग
अँगिया दरकि गई याही अनुहारि कै।

वैरी जो विरह वस्यौ कुच-गढ़ वीच सोई
लाजि, गयौ भाजि कोट कंचुकी विदारि कै ॥११२॥

वासकसज्जा-भेद, मुग्धादि में स्वकीया परकीयादि में जानिये।

३ उत्कण्ठिता

दूहा

वसि सकास कछु काज-वस, नहि पिय पहुँचै पास।
होय तहाँ उत्कंठिता तरुनि विरह के त्रास ॥ ११३ ॥

इहाँ प्रियमिलन-निश्चय में वासकसज्जा है। मिलन-निश्चया-ऽनिश्चय में विरहोत्कण्ठिता है। मिलन-निराशा में विप्रलब्धा है, पास स्थिति में। दूर स्थिति में मिलन-निराशा में प्रोषितपतिका है। तातें विरहोत्कण्ठिता में उत्कण्ठा-सहित ही विरह दमयन्यादि में, गीत-गोविन्दादि में वरन्यो है। केवल विरह वरनै, अवस्थान्तर होत है। उत्कादिक जाति नाहीं, जोई अवस्था कवित्त में समुझि परै, सोई भेद जानिये।

उत्कण्ठिता—द्वै भाँति है। एक कार्यविलम्बितसुरता, दूजी अनुत्पन्न-संभोगा।

(१) कार्यविलम्बितसुरता

सवैया

प्यारो सिधार्‌यो नहीं किहि हेत ? सकेत-निकेत में वीति गौ जामै।
जो पिय आपने पास हि पाइहों, राखों छिपाइ हों केलि के धामै॥
भेटि मरों अकवारि "कुमार" विसारि हों, वाढ़ो वियोग इहा मै।
हार करै हियरा-मधि राखि हों, रापिहों त्यों करिकै कजरा मै॥११४॥

(२) अनुत्पन्नसभोगा

पूर्वानुराग मे साक्षात्, श्रवण, चित्र, स्वप्न-दर्शन तें अनुत्पन्न-सभोगा उत्कण्ठिता चारि प्रकार है।

(१ साक्षाद्दर्शनानुतापा)

सवैया

माथै किरीट, छरी कर लाल है, सालस आयौ गयद की गैलनि।
मोहन मेरी गली मुसक्यात, अली! निकस्यौ रचि नेह की सैननि॥
कैसे "कुमार" बनै मिलिबौ, न परै कल, क्यौं मन की कहौं बैननि।
पीरी पिछौरी को छैल लख्यौ, तब तें छबि छूटै नहीं छन नैननि॥११५॥

(२ गुणश्रवणदर्शनानुतापा)

सवैया

ते धनि है सुनि कै सुर जे, उर धीरज धारती मोह महा तैं।
मो तन को मनमोहन प्रान भो, ताहि मिलाउरी ल्याइ इहा तै॥
कानन तें कहुँ कान परी धुनि, बाँसुरी-तान "कुमार" तहाँ तैं।
न्याउ से औघट प्रान परे भटकैं, घट आवैं री! न्यान कहाँ तैं॥११६॥

(३ चित्रदर्शनानुतापा)

सवैया

चित्र लिखाई, दिखाई है सूरति, काम तें सुन्दर रूप अमोलौ।
कान्हमई छबि छाकि भई सु"कुमार" परयौ सुधिसार में जोलौ॥
मोहि रहे कहै बाँसुरी-तान सुनाइये गान, अहो! मुख खोलौ।
प्यारे! रहौ गहि मौन कहा? इहा आए हौ, मौनहिं क्यों नहि बोलौ?
॥११७॥

(४ स्वप्नदर्शनानुतापा)

सवैया

नैन लगे हरि सों, न लगे पल, भेंट रची सपने बड़ भागै।
आनँद सों मिलि प्यारी कहै दुख तौ लों गये खुलि लोयनि जागै॥
जो फिरि मीत "कुमार" मिलै तो, किसा कहौं जैसी दसा अनुरागै।
राखि हिये अभिलापकै नींद परी पटतानि,पै आँखि न लागै॥११८॥

४ विप्रलब्धा

दोहा

संगम-सुख वंचित भई बढ़ै विरह तें ताप।
तहाँ विप्रलब्धा कही, मिलै न पिय ढिग आप॥११९॥

श्लोक

'विप्रलम्भा वंचने स्याद्विसंवादवियोगयोः।'

यह अर्थ तें—जो भेंट में वंचित होय, सो विप्रलब्धा कही॥

यथा—

कवित्त

साजति सिंगार साज सखी परिहास काज,
लाजनि वितायौ जाम जामिनी को आप तें।
पहुँची "कुमार" कुंज-पंथ में थकित भई,
अकथ मनोरथनि मनमथ-दाप तें॥
पहुँच्यौ पछाँह चंद, चन्दमुखी-पास पिय
पहुँच्यौ न, त्रास बढ्यौ रतिपति चाप तें।
नैन जल-बिन्दु-धार मोती-हार उर भई,
हार भयौ चूनो, विरहागिनि के ताप तें॥१२०॥

(१) पतिवंचिता

दोहा

दुरि निकुंज, देखी दसा मो आकुलता हाल।
हिय लागी, लगि है न हिय, तब दुख जानौं लाल! ॥१२१॥

सवैया

कुंज दुरचौ पिय खोजत ताहि, गये जुग-से जुग जाम तमी के।
जागी सँजीवन ओषधि-सी जिय ताप, मिलाप भए बिन पी के॥
बाढचौ "कुमार" पयोनिधिपूरि-सो पूर तहाँ बिरहा तन ती के।
चंद-उदौ लखि लोचन च्वै-चले चंदपखान-से चंदमुखी के ॥१२२॥

(२) सखीवंचिता

सवैया

प्यारे कों ल्याइ दुराइ तू राखति, खोजि थकी यह को दुख जानै।
जीवन-ससय, सोक सँताप ज्यों ऐसी हँसी क्यों बिसासनि! ठानै॥
मो जिय पैठि ज्यों आकुलता लखि है सखि! मेरी दसा पहिचानै।
जो हसि प्रानपती मिलतौ नहि,तो मिलते नहि प्रान हिरानै ॥१२३॥

५ खण्डिता

दोहा

आपुन पे प्रिय-प्रेम को खंडन, तहाँ निहारि।
रससिंगार अनुकूल रिस, रचै खंडिता नारि ॥१२४॥

खण्ड प्राप्ता खण्डिता, इहि अर्थ तें मानवती, अन्यसम्भोग-दुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता, ये भेद खडिता ही के मानिये। कलहात-

रिता मे रिस-शान्तिमात्र ही है। प्रेम-खंडन अन्यस्त्री-सम्भोग-जनित ही होत है, यातें शृंगाररसानुकूल रिस कही। यथा—

सवैया

काहू पिया रति-रंग के चीन्ह निसा रमि प्यारे के अंग मढ़ाये।
प्यारी निहारि "कुमार" तहाँ नहि आनन आदर-बोल पढ़ाये॥
भौंह चढ़ाइ, बढ़ाइ के रोप—हिये, पिय ऊपर नैन बढ़ाये।
मानौं मनोज हि ओजसों लाल-सरोजके बान कमान चढ़ाये॥१२५॥

धीरादिभेद

दोहा

धीरज तथा अधीरज धैर्याधैर्य प्रमानि।
धीर', सुअधीरारिसहि धीराऽधीरा जानि॥१२६॥
मधुर वचन धीरा कहै, गहै अधीरा रोप।
धीराऽधीरा मध्यमा ठानति रिस रस-पोप॥१२७॥
रिस दुराइ धीरा भनै, हनै अधीरा खीझि।
धीराऽधीरा प्रौढ तिय रचै, चतुर वच रीझि॥१२८॥

(१) धीरा

कवित्त

सोहति "कुमार" टीक लागी है कपोल पीक,
जावक की लीक भाल, छवि की तरंग सों।
आलस-वलित जागे, राते नैन कोर जामे
नखनि के छत लागे, बने अँग अँग सों॥

लाल लाल चीन्ह, भुज-मूल मे अतूल सोहैं—
हार मुकतानि के, कठोर कुच-संग सों।
जाही बाल-प्रेम सों तिहारौ मन रग्यौ लाल,
ताही तन रँग्यौ हाल लाल लाल ! रंग सों ॥१२६॥

(२) अधीरा

सवैया

आनि कहौ मधुरे इत बोल पै, डोलत आन के हाथ बिकाने।
ताही को जावक भाल लिखाये हौ, होत सिखाये कहा सिख माने॥
आए "कुमार" हौ भोर ही भौन, इते चित भौ न कछू सतराने।
कौन इलाज करै अबलाजन, साजन कै जब लाज न जानें ॥१३०॥

(३) धीराऽधीरा

सवया

प्यारी के प्रेम रहे पगि हौ, जगि हौ पिय ! कौन के रैनि बिताई।
बातैं अलीक कहौ न, अलीक में जावक-लीक है ठीक लगाई॥
रूप अनूप तिहारौ निहारि 'कुमार" चहौ रिझवारि कहाई।
आनन आन की डीठि लगै न यौ ईठि के अंजन-रेख बनाई॥१३१॥

(३ वक्रोक्तिगर्विता खण्डिता)

दोहा

दुरै नहीं उर माल - मधि, दीजे सो उर माल।
बिन-गुन गुहि लीन्हैं कुसुम केसरि केसरलाल॥१३२॥

(मानवती खण्डिता)

सवैया

राखी दुराइ भलें जदुराइ! बिहारी तिहारी जो प्यारी कहाई।
लागत ताहि हिए लगे चीन्ह हैं, जागत जा-सँग रैन बिताई॥
आपने नेह के थाप को जावक, छाप "कुमार" जो भाल बनाई।
सो मिटि जाइगी पाय परें परौं पाय, परौ जनि पाय कन्हाई!१३३॥

. (अन्यसम्भोगदुःखिता)

दोहा

पिय-रति दूती प्रभृति मे लखै, सुनै, अनुमानि।
दुखित तिया सोई इतर-भोगदुःखिता मानि॥१३४॥

यथा—

तहाँ पठाई नहि गई, भई गई करि हाल।
कंज लैन कित धौ गई, भई रेख लगि नाल॥१३५॥

पुनर्यथा

उझकत झांकिनि हौं लखी, गई जु मो-हित काज।
रची छैल छल-गति अली, बची भली भजि आज॥१३६॥

६ कलहान्तरिता

दोहा

रिस मे पिय-अपमान रचि, रिस तजि फिरि पछिताइ।
कलहान्तरिता तिय यहै, कवित नृत्य में ल्याय॥१३७॥

(१) ईर्ष्याकलहान्तरिता

सवैया

रोष रच्यौ, तिय दोष तिहारेई, प्यारे! करौ रस-पोष परेखौ।
पायन हू परि प्यारी मनाइये, प्रीति की रीति है वंक बिसेखौ॥

नेकु तिहारे निहारे विना कलपै जिय, क्यों कल धीरज रेखौ।
नीरज-नैनी के नीर भरे, किन नीरद से दृग-नीरज देखौ ?॥१३८॥

(२) प्रणयकलहान्तरिता

सवैया

गातनि हीं मिलि एक भये, रस-बातनि हीं मिलि मोद बढ़ायौ।
जोवन,रूप,कला,गुन,ग्यान, गुमान की गाहनि ज्यौं उरझायौ॥
एक ही सेज रिसाइ रही, पिय बाँह गही न, हौं मान्यो मनायौ।
प्रीतम मौन तें जान दयौ,तजि मौन हियो गहिहौं न लगायो॥१३६॥

७ प्रोषित पतिका

दोहा

प्रिय-प्रवास के हेतु तें, विरह-दुखित जिय होय॥
तहँ प्रोषितपतिका तरुनि, मानत पंडित लोय॥१४०॥

इहाँ वर्तमानसामीप्य में आदिकर्म मे 'प्रोषित' शब्द मे क्त प्रत्यय-विधान तें, प्रोषित विद्यते यस्मिन् स =प्रोषितः। प्रोषित. पतिर्यस्याः सा =प्रोषितपतिका। इहि अर्थ तें प्रवत्स्यत्पतिका, प्रवसत्पतिका, प्रवसितपतिका ये तीनौ भेद प्रोषितपतिका ही मे मानत हैं।

(१) प्रवत्स्यत्पतिका

सवैया

प्यारे के गौन की बात सुनी, तिय मौन मे वंदति दीपक-बाती।
साँझ के कौल सी कौलमुखी सखियानि में सूखि गई रँगराती॥
प्रीतम के सँग पौढ़ी "कुमार" पे जान्यौ मनोभव प्रान को घाती।
नीदौ नहींनियराति,हिराति,लगो हियरा,सियरातिन छाती॥१४१॥

(२) प्रवसत्पतिका

सवैया

क्रूर अक्रूर के आगम ही, व्रज-बालनि नैननि नींदौ विनासी।
गौन की गैल निहारि "कुमार" रचै जिय त्रास, पिसाच-दिसा-सी॥
गोकुल-चंद विलोके विना, वसि है दृग मे विन चंद निसा-सी।
बीसविसै विस-सों वगराइ, चल्यौ व्रजतें व्रजवासी विसासी॥१४२॥

(३) प्रवसितपतिका

सवैया

आँखिनि देखि लगै झर आगि-सी छूटै गुलाल मुठी भरि झोरी।
सूनौ लखै व्रज, दूनौ बढै दुख, खेलैं, हँसै कहुँ को व्रज-गोरी ?
औधि "कुमार" वसंत की दै, विसराइ दई वृषभानु-किसोरी।
हाय ! उतै कुबजा कुलटा-संग, हेली हहा ! हरि खेलि हैं होरी॥१४३॥

(४) परकीया प्रवत्स्यत्पतिका

सवैया

प्रीतम को प्रसथान कह्यौ, ढिग वाग मे काहू सहेली सयानी।
फूली लता-मिस देखन कों निकसी, जिय-आकुलता अधिकानी॥
सीख "कुमार" पयान की सैननि पीउ कही, त्यों रही मुरझानी।
मध्यमसोनिमेंकौलमुखीनिरखीनिसिकौलनि-सीकुम्हिलानी॥१४४॥

कोऊ विगलित-प्रस्थानपतिका प्रोषितपतिका भनत है। यथा—

दोहा

ललन-चलन सुनि वाल के, हाल चले-से प्रान।
फिरि आयो प्रसथान सुनि, फिरि आये अस्थान॥१४५॥

८ अभिसारिका

दोहा

रचि बनाव जो प्रेम-बस, तिय पहुँचे पिय पास।
कहियतु सो अभिसारिका, चाहति केलि-विलास ॥१४६॥
निज पास पिय कों बुलावे, सोऊ अभिसारिका कहत हैं।
लखति चंद-छबि चंदमुखि, झाँकी - द्वार उघारि।
लियौ खैंचि कर धारि पिय, स्वेत पिछोरी डारि ॥१४७॥
इहाँ वासकसज्जा जानिये।
एसौ उदाहरन दीजे तो अभिसारिका होत है। यथा—

सवैया

प्यारे को रूप लख्यौ जब त, तब तें तजी नैननि नींद चिन्हारी।
प्रीति अरी ! हिय में खटकै, हटकै खरी त्यों गुरु-लाज विचारी ॥
हाथ तिहारे "कुमार" है जीवन, यों सखिसों कहि बोली न प्यारी।
जीवननाथ ! जिवाइये जू घनस्याम ! चलौ घन की अँधयारी॥१४८॥

तहाँ अभिसार-समयः—ज्योत्स्ना, अँधियारी, दुपहर, साँझ, वर्षा प्रभृति अनेक हैं। उत्सवादि-दर्शन, सखी, वृश्चिक-दश आदि व्याज हैं। यथा—

दोहा

लखि न परी ग्रीषम खरी, विषम दुपहरी माँह।
लपिटि अरुनपट, लपट-सी चली सघन-घन छाँह ॥१४९॥

(१) ज्योत्स्नाभिसारिका

कवित्त

लाजनि रचति भौंर भली अभिसार-वेर
हेरत वे मग, जाकी प्रीति सों पगति है।
चीर छीर-फैन-सो पहिरि, तन आभरन
मोती-हीर-हार-सँग सोभा उमगति है॥
परति दुराई क्यों गुराई, यों "कुमार" कहै,
चंदन, कपूर, अंगराग सों जगति है।
पूरन घनेरी यह चंद्र की उजेरी आजु,
तेरी मुखचंद्रिका मे चेरी-सी लगति है॥१५०॥

(२) कृष्णाभिसारिका

कवित्त

नीलपट - लपिटी, लपट ऐसी तन, तैसी—
निपट सुहाई मृगमद - खौर हेरिये।
नैकु उघरत अंग, छवि की तरग वढ़ै,
घन-सग जामिनी में दामनी निवेरिये॥
सुकवि "कुमार" मारभूप की मसाल मनौं
गई कुंज-जाल, तहाँ छाई है अँधेरिये।
खोलि मुखचंद, चंदमुखी लखै जाकी ओर,
ताही ओर जोर महताब-सी उजेरिये॥१५१॥

(३) वर्षाभिसारिका

दोहा

कर अखण्ड जल-धार की डोरि, अधारहिं धारि।
चली मनोरथ-पथ अली, वरखा-निसि वरनारि ॥१५२॥

(४) व्याजाभिसारिका

सवैया

मंजन कों जमुना-तट - कुंजनि, भोरहि खजन-नैनि पधारी।
भेंट भई न सहेट में प्यारे सों, प्यारी यहै चित चिंत है धारी॥
तौ लों "कुमार" निकुंज की ओर कहूँ चितचोर लख्यौ गिरिधारी।
'हौं हरपे जलधार न ढारी है' यों कहि, फूल के बाग सिधारी ॥१५३॥

ये भेद स्वकीया, परकीया, सामान्या मे तत्तत्स्वभाव मिलै जानिये।

(५) नवोढाऽभिसारिका

सवैया

चौंर छुटी अलकैं मुख घूंघट, सारी अँध्यारी ढपी मृगनैनी।
नूपुर और सनाबजै भूषण, केसरि-आड है आँकुस-पैनी॥
पौढ़न को पिय-पास नवोढ वधू चली मत्तमतंगज-गैनी।
केतो रचै अडदार तऊ, गडदार गई, लै सखी सुखदैनी ॥१५४॥

एसैं मध्या प्रगल्भा मे जानिये।

ये भेद अवस्थाकृत हैं, तातें यथासम्भव नायक में हू होय सकैं।

"हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव" (गीत गोविन्द)

इहाँ कलहान्तरित नायक है।

नायक उत्कंठित, मानी, अभिसारक, वासकसज्ज (हू) होत है, पत्नी कौ मातृ-गृहादिगमन में प्रोषितपत्नीक है।

इति नायक-नायिका-निरूपण।

अथ रस-चेष्टा

जोवन में शृङ्गाररस चेष्टा कहियतु भाव।
होइ कदाचित पुरुष में, तिय में सहज सुभाव ॥१५५॥

उक्तं हि श्लोक—

यौवने सत्वजाः स्त्रीणामष्टाविंशतिरीरिता।
अलङ्कारास्तत्र—भावहावहेलास्त्रयोऽङ्गजा ॥१५६॥
शोभा, कान्तिश्च, दीप्तिश्च, माधुर्यं च, प्रगल्भता।
औदार्यं धैर्य्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजा ॥१५७॥
लीला, विलासो, विच्छित्ति, विब्बोक किलकिंचितम्।
मोट्टायितं, कुट्टमितं, विभ्रमो, ललितं, मदः ॥१५८॥
विकृतं, तपनं, मौग्ध्यं, विक्षेपश्च कुतूहलम्।
हसितं, चकितं, केलिरित्यष्टादश-संख्यकाः ॥१५९॥

(Numbering above words in the verses: १ भाव, २ हाव, ३ हेला, ४ शोभा, ५ कान्ति, ६ दीप्ति, ७ माधुर्य, ८ प्रगल्भता, ९ औदार्य, १० धैर्य्य, ११ लीला, १२ विलास, १३ विच्छित्ति, १४ विब्बोक, १५ किलकिंचित, १६ मोट्टायित, १७ कुट्टमित, १८ विभ्रम, १९ ललित, २० मद, २१ विकृत, २२ तपन, २३ मौग्ध्य, २४ विक्षेप, २५ कुतूहल, २६ हसित, २७ चकित, २८ केलि)

दोहा

लीला, विभ्रम, ललित पुनि त्यों विच्छित्ति, विलास।
ये पाँचौं शारीर है, कहे भाव-परकास ॥१६०॥
मोट्टायित अरु कुट्टमित, विहसित अरु विव्वोक।
ये अन्तर के भाव में गन्यौ चार को थोक ॥१६१॥
किलकिंचित हरु जानिये आतर अरु शारीर।
इमि सब भावनि की उपज, मानत हैं कवि धीर ॥१६२॥

इनके लक्षण —

दोहा

जोवन में चित सरस में कछू चाह, कहि भाव।
अधिक चाह यह हाव है, हेला अधिक सुभाव ॥१६३॥

(१) भाव

सवैया

बाल न जानति बंक विलोकि "कुमार" न बोलति बोल रसीलौ।
बात कहै रस की सखियानि में, जानि परै चित चाह-गहीलौ ॥
सूधेई लोचन सों अवलोकिबौ, लागतु है अनुराग-रँगीलौ।
डीठि चलै बहराइ कहूँ ठहराइ तहाँ, जहाँ कान्ह छबीलौ ॥१६४॥

(२) हाव

सवैया

कुंज तें आवत कान्ह "कुमार" तहाँ मग में कर-गेंद है मेली।
खेलै सखीनि में गोपसुता उत बीच ही आपनें हाथ सों भेली ॥

अंचल गो उर तें चलि चंचल सैननि दै मुसक्यानी सहेली।
नैन रिसौंहे करै सखि सों,है हँसौहे रचै हरि सोहैं नवेली ॥१६५॥

(३) हेला

सवैया

गौने के द्यौस सलौने सुभाइ सों, बैठे हैं चौक दुऔ रसभीनै।
जोरि कह्यौ पट-छोर सखीनि "कुमार! जुरै हित नेह नवीनै" ॥
यों सुनिकैं मुसक्याइ, लजाइ, पिया मिस ही पियत्यों दृग दीनै।
भौ पिय को हियरो भियरो,लखिचंचललोचन अंचल भीनै ॥१६६॥

शोभा, कांति, दीप्ति-लक्षण

दोहा

तन-दुति जोवन रूप-रति-रस-बस सोभा जानि।
बढ़ै अधिक यह कांति है, अतिबढ़ि दीपति मान ॥१६७॥

(४) शोभा तथा (५) कान्ति, यथा—

कवित्त

गई है न गौने, दई ! कौने धों सलोने गात—
सौने - कैसी दुति, तन तिय के गढ़ी रहै।
गति गरवाई, अवलोकनि सनेह छाई,
पाई चतुराई, मनों मैन सों पढ़ी रहै ॥
मधुर, सुहानी, सुधा-रस - मानी, मृदुबानी
आनन "कुमार" मुसकानियै चढ़ी रहै।
बाढ़त विलास रंग जोवन-विकास - संग
कान्ति अंग-अंगनि अनंग की मढ़ी रहै ॥१६८॥

(६) दीप्ति

कवित्त

भौन में सहज गौन रचति किसोरी तहाँ,
हौरी - कैसी झरप झरोखनि ह्वै लेखिये।
जतन हजार हूँ "कुमार" अभिसार समै—
दुरै न दुराई यों गुराई गात पेखिये॥
दीपति पिया मे ऐसी, दीपक-सिखा में नाँहि,
चपला में, चद की कला मे न बिसेखिये।
भारी अँधियारी मे मझाई कुंज-गली जहाँ
तहाँ-तहाँ छाइ-सी जुन्हाई अजौं देखिये॥१६६॥

माधुर्यादि-लक्षण—

दोहा

सहजहिं सुन्दरता अधिक, यह माधुर्य बिसेषि।
लाज कमी ते ढ़ीठ-चित, प्रगलभता यह लेखि॥१७०॥
सदा विनय चित-वृत्ति जो, सो उदारता मानि।
अति थिरताई होति जिय, धैर्य भाव पहिचानि॥१७१॥

(७) माधुर्य

सवैया

भौंह बँटा-सी बढ़ी मुसक्यानि, कपोलनि सों ससिकों अनुहारै
गात बिराजत माजे-से, काहे कों आँजे-से नैननि अंजन धारै॥
अंगनि काति "कुमार" निहारत,प्यारी क्यों मो दृग अंतर पारै।
दूषन लों सब भूषन जानि, अहे सुकुमारि उतारि न डारै॥१७२॥

(८) प्रगल्भता

सवैया

अंचल झीने में चंचलनैनि, "कुमार" निहारि रहै रस-पागी।
छूटी लटैं लटकी-सी चलैं, न डरै नव-जोवन के मद जागी ॥
अंग सों अंग लगाइ गई, सुलगाइ गई-सी अनंग की आगी।
घालि गई मृदु तूल-सो फूल,सु पीर अतूल-सी सूल-सी लागी॥१७३॥

(९) औदार्य

सवैया

संग तिहारोई चाहत अंग ये, गाहत आनंद - वृंद फरे-से।
आन सुनै न "कुमार" ये कान, तिहारे अहो ? गुनगान भरे-से ॥
लोचन रावरे रूप-सुधा पियें, नैकु न लोक की लाज डरे-से।
प्रान तुम्हें बिन, प्रान के नाथ ! ये जानिये आन के हाथ परे से ॥१७४॥

(१०) धर्य

दोहा

बरजि बरजि गुरुजन थकौ, दुरजन बकौ हजार।
बच्यौ प्रेम-गुन छुटत क्यो ? मन मेरो रिझवार॥१७५॥

(११) लीला लक्षण

वचन अंग गनि भूषननि जो पिय को अनुहारि।
सोई लीला भाव है, रस-बस साजति नारि ॥१७६॥

'हम कैसे बनैहैं' इहाँ वचन अनुहारि है। यथा—

सवैया

पास सखी के विलास को हासु, धरै जिय प्रेम, प्रकास प्रबीनौ।
प्यारौ "कुमार" बसै जिय मैं, तिय तातैं रच्यौ पिय-वेष नवीनौ॥
प्रीति-पगी पगरी हरि की धरि सीस, अहै हरि यों चित लीनौ।
रूप अनूपसों जीति रतीको, रतीपति कों जुवती जय कीनौ॥१७७॥

(१२) विलास-लक्षण

दोहा

मन, वच, दृग, गति प्रभृति में कछु विशेष रस लेखि।
पिय-दरसन सुमिरन भये, भाव विलास बिसेषि॥१७८॥

यथा—

सवैया

साँकरी खोर अचानक भेंट भई, हरि आवत कुंजगली सों।
बाल चली मुरि लाजनि नंद "कुमार" छुई कर कंज-कली सों॥
खीझि के भौहनि मोहन कों मुसक्यानि अकोर दै रीझ भली सों।
लोचन-कोर नचाइ, रचाइ गइ चितचाइ, बचाइ अली सों॥१७९॥

(१३) विच्छित्ति-लक्षण

दोहा

थोरेई भूषन प्रभृति अँग-सोभा अधिकाइ।
तरुनि-भाव विच्छित्ति सों, मानत हैं कविराइ॥ १८०॥

यथा—

सवैया

केसरि रंग रँगी अँगिया, तन सादिवै सारी सो कांति पसारी।
कुंकुम-रेख वनी विधु-वेप लिलार मृगंमद खौरि सुधारी॥
सादियै सादी में साहि विनी यह एसी न और "कुमार" निहारी।
लाल! लखौ अवला अव लागति, मोरजुन्हाई-सीभूपनवारी॥१८१॥

(१४) विव्वोक लक्षण

दोहा

आदर हू की ठौर तिय रचति निरादर-रीति।
प्रेम, हँसी, गर्वादि तें गनि 'विव्वोक' प्रतीति॥१८२॥

यथा—

सवैया

घालिये कैसे छरी ? कर काँपन, त्यों वरजोरी के वाँह मरोरी।
मीड़ौ कपोल, उरोज, अवीर लै, नेकु मुरे अँगिया तन छोरी॥
केती "कुमार" है गोपकिसोरी जु होंहु कहा कछु कीन्ही है चोरी?
वैर परौ व्रजनायक मेरे ही ऐसे कहौ कैसे खेलिये होरी? १८३॥

पुनर्यथा—

आन मिलौ वरहू वरजे हु अचानक घाटनि वाटनि होऊ।
मोह मिठाई-सो वैननि बोलत, डोलत, सैन वतावत, सोऊ॥
डारत फाँसी-सी हाँसी "कुमार" लगावत गाँसी-से लोचन दोऊ।
काहूसों कान्ह ठगाइ रहे, ठग! ठाड़े रहौ न ठगाइहैं कोऊ॥१८४॥

(१५) किलकिंचित-लक्षण

दोहा

त्रास, हास, सुख, दुख, रुदित, रुष प्रभृतिक इक संग।
रचति तरुनि रस-बस छकी, सो 'किलकिंचित' रंग॥१८५॥

यथा—

कवित्त

जोबन रसाल, अलबेली - सी नवेली बाल,
केली के सदन हेम-वेली-सी सुहाति है।
लागी प्रीति नई या "कुमार" निरसंक भई,
प्रेम - रस रंग - मई अंग अरसाति है॥
सद - रद अंकनि कपोलनि, मयंक - मुखी
उघरत आँचर, अचानक रिसाति है।
खीभि सतराति, हँसि रीभि अरसाति,
परजंक में लजाति, पिय-अंक में न जाति है॥१८६॥

(१६) मोट्टायित-लक्षण

दोहा

पियहिं सुमिरि, लखि, सुनि, गुननि, चित में चाह जताइ।
तिय अँगिराइ, जँभाइ जँह 'मोट्टायित' सु बताइ॥१८७॥

यथा—

सवैया

काननि तान "कुमार" परी, तब तें हिय तेरो फिरै सँग दोर्‌यौ।
काम भुजंग करी बस है, सु अरी! अरसाति भलै मन मोर्‌यौ॥

गानरच्यौ पिय तौचित-चोरीकी, न्यान तुड़ी पियको चित चोरचौ।
बाँधि अरी! दृगडोरनिसों इहि अंगम रोरि निसंग मरोरयौ॥१८८॥

(१७) कुट्टमित-लक्षण

दोहा

गहत केस कुच, अधर रद देत, सभ्रमहिं ठानि।
तिय कँपाइ सिर नहिं कहै, यहै 'कुट्टमित' मानि॥१८९॥

यथा—

सवैया

जासों "कुमार" मिल्यौ मन है, सु मिली गली आपने गोप-किसोरी।
छल छबीलै छुई छतियाँ, मुख चूमत, छैकि करी बरजोरी॥
सीस कँपाइ, दुओ कर कों झहराइ, रिसाइ के भौंह मरोरी।
पून्योनिसाकेनिसाकर-सोमुखखोलि,निसाकरीसाँकरीखोरी॥१९०

(१८) विभ्रम-लक्षण

दोहा

पिय-आगम संभ्रम प्रभृति, आनँद कै भरि आव।
भूलि भूषननि तिय धरै, सोई 'विभ्रम हाव'॥१९१॥

यथा—

कवित्त

केसरि पगनि धारी, जावक सु धारि खौरि,
ओढ़नी कै ओढी सारी, बाढी छवि न्यारिये।
उलटी कचनि तानी कंचकी न जानी, आँजि

आगम बिहारी को "कुमार" इत प्यारी सुनि,
कँचन-नूपुर कर-अंगुरिनि धारिये।
हार कर्‌यौ रसना है, रसना है हार कर्‌यौ,
चाहत विहार कर्‌यौ, भूली सी निहारिये। १६२॥

ललित तथा मद-लक्षण—

दोहा

अगन अति सुकुमारता कह्यौ 'ललित' है हाव।
'मद' कहि जोबन रूप गुन प्रेमहिं गरब सुभाव ॥१६३॥

(१६) ललित

यथा—

कवित्त

देखौ चलि हाल बाल ल्याई हौं ललित लाल।
जाकी सुकुमारता "कुमार" अधिकाति है।
अंगनि सो लागै, लागै कठिन-सो पिय-वास,
मालती गुलाब पास ल्याए न सुहाति है॥
भूषन-विचार कहा? केसरि की खौरि भार,
डार-सी लचकि बेसम्हार भई जाति है।
मंद पग धारि, चारु चाँदनी पसारि,
केलि-घर लों पधारि, हारि हारि अरसाति है ॥१६४॥

(२०) मद

यथा—

सवैया

सुदरि ठौनि उठौनि उरोजनि, कौन न धीर की धीरता-घाइक?
त्यौंही "कुमार" विलोकति वैरिनि बकविलोकनि सों दुख-दाइक॥

जोवन-रूप कसे मदमाते, सितासित लाल रँगे बहु भाइक।
लागि रँगीली रसाल बिसाल,ये सालत हैं दृगसाल-सेसाइक॥१६५॥

(२१) विकृत-लक्षण—

दोहा

स्तम्भ, लाज, दुख प्रभृति सों हियौ रहै जहँ छाइ।
बचन कह्यो नहिं जाय कछु, 'विकृत' भाव तहँ ल्याइ॥१६६॥

यथा—

सवैया

आजु अली ! इहि मेरी गली निकस्यौ, तहँ प्रीतम मीत सुहायौ।
कीन्हौ प्रनाम कछू मिससों,मुसक्यानिकी बानिसों मोहि रिझायौ॥
आनन ओर चितै रहि रीझि, हौं होतु "कुमार" यहै पछितायौ।
बोलि न पासलियौ, हरि आयौ,गरौभरिआयौ,गरे न लगायौ॥१६७॥

तपन तथा मौग्ध्य-लक्षण—

दोहा

तन-सँताप पिय-बिरह तें 'तपन' भाव यह ल्याइ।
जानि कहै जु अजान लों बात 'मौग्ध्य' तहँ ठाइ॥ १६८॥

(२२) तपन

यथा—

कवित्त

आगम असाढ के उकाढ़ बढ्यौ ताप तन,
लाग्यौ नेह गाढ़ हिय अब कैसे नाखिये ?

करि गयौ परबस, सरबस हरि गयौ,
हरि गयौ ब्रज तें, "कुमार" कासों भाखिये ?
हियौ होत टूक-टूक कूकत कलापिनि के,
कोकिल-अलापनि क्या जीवौ अभिलाखिये।
धीरज हिरात घन गरजि-गरजि उठै,
प्यारे-बिन बरजि बरजि प्रान राखिये ॥ १९९ ॥

(२३) मौग्ध्य

यथा—

सवैया

मालती-मंजुकलीनि को हार,"कुमार" रच्यौ पिय सौतिन आगे।
मानिक-मौतिन-माल के संग, हिये पहिरायौ अली अनुरागे ॥
मेरे हुलास बढ़्यौ अति ही, चहुँ पास विकास सुवाससों जागे।
हौं समुझी मुकताहल ये फल हेली चमेली के फूलनि लागे ॥२००॥

(२४) विक्षेप-लक्षण—

दोहा

आधे भूषन-रचन, अध वचन, डीठि, गति मानि ।
तिय जो कौतुक सों रचति, सो 'बिच्छेप' बखानि ॥२०१॥

यथा—

कवित्त

देखति तमासौ पिय-देखन के मिस प्यारी,
झाखति झरोखे में बिलोकी सखी वृंद में।
आधी कहै वात, आधे भूषन सुहात गात,
आधौ दीन्हौ जावक है पगनि अनंद में ॥

अध खुल्यौ घूँघट, "कुमार" आधी चितवनि
चित्त वनि चुभ्यौ सुखकंद नँदनंद में।
वाद़ीगर ख्याल रचै नजरि के वंद वौ, ये
होति है नजर-वंद प्यारी मुखचंद मे॥ २०२॥

(२५) कुतूहल-लक्षण

दोहा

नीकी वात सुनै, लखै चित जो चंचल होत।
तहाँ 'कुतूहल' नाम को तिय में भाव उदोत॥ २०३॥

यथा—

सवैया

'आवत कान्ह "कुमार" इतै गली' काहू अली यह बोल सुनायौ।
त्यौंही चली उठि भौन ते भामिनि, अंजन एक ही नैन लगायौ॥
हार वनावत हाथ लिए मुकतागन अंगन लौं छुटकायौ।
प्रीतम-आगम-आतुरमानौसुचातुरचौक-सोपूरि वनायौ॥२०४॥

हसित तथा चकित-लक्षण—

दोहा

जोवन मे हँसि हसि उठै 'हसित' भाव यह लेख॥
भय सभ्रम तें चौंकिवो, 'चकित' भाव सु विशेप॥ २०५॥

(२६) हसित

यथा—

सवैया

आँचर ऊँचे उरोज चलै, अँग गोरे खुले हियरा तरसावै।
झूलति हेली हिंडोरै इतै, सुधि भूलति-सी मिस वात वनावै॥

मोसों "कुमार" मिलै भरि अंक, निसंक भई उत नैन मिलावै।
वेर हि वेर कहै न हहा,हरि हेरि हि हेरि कहा हसि आवै॥२०६॥

(२७) चकित

यथा—

सवैया

केलि-समै रस में रद-रेख गई लगि प्यारी-कपोल में ऊढि कै।
पीठि दै रूठि रही परजंक ही, अंक भरी न खरी रस लूटि कै॥
जो लौं"कुमार"मनाइये तो लगि गाजिउठ्यौ घनघोर है टूटिकै।
सो सुधि छूटिसकै नहिये,जु अचानक चौंकलगी,छन छूटिकै ॥२०७॥

(२८) केलि-लक्षण

दोहा

प्रीतम-रसबस प्रेम सों रचति विलास अनेक॥
'केलि' भाव तह तरुनि को बरनत सुमति विवेक॥ २०८॥

यथा—

कवित्त

ढारति, भरति, छिन गागरि कों नागरि ! तू
रीझति खिझति ईठि दीठि झर लाई है।
विहसत कज-सो "कुमार" तेरो मुख सोहै
भूली बुधि सुधि फूली निधि मनो पाई है॥
कासों सतराति, इतराति ठाढ़ी मो सों कहा ?
नैननि चढ़ावे पिय नैननि चढ़ाई है।

नाहक मिलति कहा मेरे गरे डारि बाँह,
नाँह गरे डारि बाँह, बाँह ज्यों गहाई है ॥२०६॥

इति रस-चेष्टाभाव-निरूपण

दोहा

दूति, सखी, बाला तथा परिव्राजिका और।
धाय प्रभृति तिय पुरुष के गनि सहाय रस-ठौर ॥ २१० ॥

इनकी क्रिया मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ, परिहास, परस्पर-प्रशंसा, विनोद, मानापनोद, उपदेश, रहस्य-प्रश्न, प्रसादन प्रभृति जानिये। दिङ् मात्र यथा—

सवैया

तेरे विलास विलोकि "कुमार" रतीक गनी रति रूपमनी है।
जौलौं मिली व्रजनायक सों नहि,तौलों न तू गुन-रासि गनी है॥
बावरी! साँवरो रूप रँगे विन, नैननि बादि बड़ाई घनी है।
तेही विरंचि रची रुचि सों,रुचि सों रमनीय बनी रमनी है॥२११॥

—:※:—

उद्दीपन भाव-लक्षण—

दोहा

उद्दीपन सहृदय-हिये जिहिं थाई रस पूरि।
ते उद्दीपन भाव गनि, सकल रसनि मे मूरि ॥ २१२ ॥
ऋतु, सुगन्ध, भूषन, कुसुम, कवित, नाच, संगीत।
उपवन, उज्ज्वल बात सब, रस सिंगार के मीत ॥ २१३ ॥

जल, दोला, पांचालिका, कंदुक, नेत्र-निमील।
द्यूत, केलि, हल्लीस कों गनि उद्दीप सलील ॥ २१४ ॥
१ शृंगारोद्दीपन।

यथा—

कवित्त

बरसत मेह, सरसत नेह प्यारी पिय,
भरे सर सरित हरित वन पेखिकै।
अँग बनै बसन सुगन्ध घने रसरंग,
मोहत अनंग-वस संग ही बिसेखिकै ॥
चमकत चपला "कुमार" उर लागे दोऊ,
प्रीति रीति पागे, अनुरागे प्रेम लेखिकै।
होत सुख मगन अँगन ठाड़े महल के,
सघन घनाघन गगन छाये देखिकै ॥ २१५ ॥

दोहा

अँग-सोभा भुज दृग चलन, तिय पिय के अनुभाव।
तेई होत परस्परहि, लखि उद्दीपन भाव ॥२१६॥
(१ नायिका के अनुभाव नायक को उद्दीपन) यथा—

सवैया

देखी सखीनि में जा दिन तें, जिय ता दिन तें दिन रैनि रटै ज्यों।
नेह बढै, वह रूप चढै दृग जीउ "कुमार" भौ चक्र चढ़ै ज्यों ॥
कुंज-गली मुसक्याइ चली, कहुँ फेरि चितै चितु वाही पढ़ै त्यों।
मैनमई मन मेरे गड़ी, गढ़ि ठाढ़े उरोज की काढ़े कढ़ै क्यों ? ॥२१७॥

(२ नायक के अनुभाव नायिका को उद्दीपन)

यथा—

सवैया

आइ गयौ बनि वेष निमेष में कुंज-गली इहि कुंज-विलासी।
छ्वै कढ्यौ गातनि वातनि आनि "कुमार" सबै कुल-कानिविनासी।
कैसे बनै मिलिवौ, मिलिये रहै नैन सलोने सरूप विकासी॥
लोचन कोर लगाइगौ गाँसी सी हाँसी में सो ब्रजगाँउकोवासी॥२१८

इत्यादि जानिये।

२ हास्योद्दीपन—

दोहा

विकृत वेष, भूषन, वचन विकृत नाम, गति, अंग।
विकृत हसी, चेष्टा प्रभृति, होत हास रस-रंग॥ २१६॥

३ करुणोद्दीपन।

दोहा

इष्ट-नाश, दाहादि लखि, वध, बँधनादि सु देखि।
व्यसन, दुःख, दारिद् प्रभृति,दीपन करुन विसेषि॥२२०॥

४ रौद्रोद्दीपन।

दोहा

मद, आयुध, भुज-बल-कथन, लहि रिपु-दल संहार।
क्रुद्ध जुद्ध-उद्धत वचन, दीपन रौद्र मँझार॥ २२१॥

५ वत्सलोद्दीपन।

दोहा

सुत-विद्या, शौर्य्यादि गुन, विविध पराक्रम लेखि।
उद्दीपन वत्सल रसहिं, भाव अनेक विसेषि॥ २२२॥

६ भयोद्दीपन ।

दोहा

विकृत सत्व,रव सून्य गृह,रन,वन,निरखि मसान ।
नृप, मुनि, गुरु अपराधहू दिपन भयानक न्यान ॥ २२३ ॥

७ अद्भुतोद्दीपन ।

दोहा

लोक अपूरब कर्म, वच, रूप, कला-गुन लेखि ।
इंद्रजाल, माया प्रभृति, दीपन अद्भुत लेखि ॥ २२४ ॥

इति उद्दीपन

— ❀ —

भाव के अन्य भेद

दोहा

सौतिन सों हितु परसपर, बंधु-विरह नृप मीति ।
गुरु, दैवत, हरि-भक्ति में भनत भाव रसरीति ॥ २२५ ॥
ज्येष्ठ प्रभृति के हास्य में, अचेतननि में शोक ।
पुत्रादिक पर क्रोध में, कहत भाव कवि लोक ॥ २२६ ॥
कार्य प्रभृति उतसाह में, जोध प्रभृति भय जानि ।
हिंसक प्रभृति हि घिनि लखै,ज्ञानी विस्मय मानि ॥ २२७ ॥
वधु गेह-कलहादि तें भयो जानि निर्वेद ।
मृग छौनादिक-नेह में मनोभाव को भेद ॥ २२८ ॥

१ भाव-सन्धि । यथा—

सवैया

चंद-मुखी कुच-कुंभनिसों, परिरंभ-अरंभनि के सुखसारनि ।
लंक में राखस-जो धनि को चित चाहत है हितकेलि विहारनि ॥

होत इतै हिय उद्धत आतुर, युद्ध है जुद्ध उछाह प्रचारनि।
जोर सुनै चहुँओर बढ़ी,रन दुंदुभि की घनघोर धुकारनि॥२२६

इहाँ धैर्य आवेग भाव की संधि है।

२ भावोदय। यथा—

सवैया

केलि के मंदिर दोउ मिले, मिलि कीन्हे "कुमार" विलास नवीनै।
प्यारी कहे रस के बस के, रस के मत के उपदेस प्रवीनै॥
प्यारे दए सुधि गौने की रैनि के, त्रास के भाव सबै हठ भीनै।
नैन-सरोज लजाइ, नवाइ, उरोज दुराइ दुओ भुज लीनै॥२३०॥

इहाँ धैर्य आवेग भाव को उदय है।

३ भाव-शवलता। यथा—

सवैया

चंद को बंस कहा यह सुद्ध है? बात विरुद्ध कहा यह सोहै।
क्यों मुख देखौ पियूख मयूख-सो दूषनि हानिको ग्यानि जु मोहै॥
मोसो कहा कहिहैं बुध सन्त ये, कैसे लहौं हिय धारिये जोहै।
रे जिय! धीरज क्यों न धरै,तरुनी-अधरै जु पिये धनिकोहै?२३१॥

इहँ शुक्रसुता पर आसक्त ययाति की उक्ति में वितर्क, उत्सुकता, मति, शका, दैन्य, धैर्य, भाव की शवलता है।

समाप्त उत्तमकाव्यप्रकरणम्।
इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते
रसिकरसाले आलम्बनोद्दीपनविभावव्यंग्य-
कथनं नाम पञ्चमोल्लासः॥५।

षष्ठ उल्लास

अथ मध्यम काव्य-प्रकरण

दोहा

व्यंग्य प्रगट१ अतिगुप्त कै२, व्यंग्य और को अंग३ ।
वाच्यसिद्ध को अंग४ पुनि, काकुकथित५ गनि संग ॥ १ ॥
गनि सन्दिग्ध प्रधान६ को त्यों ही तुल्य प्रधान७ ।
व्यंग असुंदर८, आठ इमि मध्य काव्य कहि न्यान ॥ २ ॥

(१) अतिप्रकट व्यंग्य

"राखति भूषन में रुचिरंग तोलाल मिलाउरी सोने-से अंग में॥"

इहाँ "मिलाइवौ" शब्द-शक्ति भव व्यंग्य प्रगट है । यथाच—

दोहा

लहि वन-वास, निवास दुरि, बसि विराट नृप-पास ।
सरबस दै परबस बसत, बरबस जीवन-आस ॥ ३ ॥

यहाँ "जीवन तें मरण भलौ" यह लक्षणामूल व्यंग्य प्रगट है ।

(२) अतिगुप्त व्यंग्य

दोहा

देखत डर है विरह को, बिन देखें चित-चाह ।
देखे बिन देखे तुम्हें नहीं चैन हिय-माँह ॥ ४ ॥

इहाँ "मिलकै फेरि जिनि बिछुरो" यह अति गुप्त व्यंग्य है ।

(३) अन्यांग व्यंग्य

सवैया

चाह विभूति की चित्त रहै, दिन रैनि हू सूल नजीक यहै है।
भारी जटानिको जूट पर्‌यौ सिर, सोमैं धर्‌यौ जिय जानि हितै है॥
चिंतित भौ अरधंग हौं अंगनि देखी दिगम्बरता प्रगटै है।
सेवत तोहि भयौ सिवहौं पै विपाद यहै, न सखा धनदै है॥५॥

इहाँ 'विभूति' प्रभृति श्लेष तें सदाशिव रूप-प्राप्ति व्यंग्य है। सो "सिव हौं भयौ" यह वाच्यार्थ को अग है।

ऐसें अलक्षितक्रम व्यंग्य लक्षितक्रम को (अरु) लक्षित क्रम व्यग्य अलक्षित क्रम व्यग्य को अग जानिये।

ऐसें अन्य रसभावादि को अन्य रसभावादि अग। यथा—

दोहा

हाथ यहै मीडत कुचनि, मनि-मुदरी उजियार।
यह रसना-गुन कंचुकी नीबी-खोलनहार॥ ६॥

इहाँ भूरिश्रवा को कट्यो हाथ देखि जुवतीनि के विलाप मे करुणरस को शृंगार अग है।

यथाच—

सवैया

वंदतु लोक "कुमार" सबै मुनि कुंभज के तप पुंज-उज्यारे।
दीनौ घटाइ है विंध्य बढ्यो रवि रुंधत देव सबै डर डारे॥
पीवे को पानिय पानि-पुटी धर्‌यौ सिंधु के नीर है मध्यविहारे।
अंजुलि एक मे एकहि बार दुओ हरि के अवतार निहारे॥ ७॥

इहाँ मुनि-प्रीतिभाव को अद्‌भुतरस अग है।

यथाच—

सवैया

काननि वृंद विलंद गिरिंदनि सिंधुनि हू धरि धीर सुभावै।
है धरनी वरनी धन एक तू, यों रसना भुव के गुन गावै॥
जौ लौं लखी नरनाह को चाह धरै भुवभार न आलस पावै।
हैरहीगूँगीसीदेवीगिराजकि-सीथकि-सी नकछूकहिआवै॥ ८॥

इहाँ भुव की प्रीतिभाव प्रभु-प्रीतिभाव को अग है। एसें और भेद अनेक जानिए।

(४) वाच्यसिद्ध—अग व्यंग्य। यथा—

सवैया

ज्यों ज्यों चढ़ै त्यों बढै मन में भ्रम जोर मढ़ै जिय मोह प्रचारै।
बूड़त जीउ घरी लों घरी घरी हेली हरी बिन कौन निवारै?
मंत्र न तंत्र कछू चलै यापर, अन्तर दाह निरन्तर धारै।
मेघ-भुजंगनिको विषमें विषदेखौ वियोगिनि बालनि मारै॥ ९॥

इहाँ विष कहै जल, तहाँ जु हालाहल व्यग्य है। सो "मेघ-भुजग" वाच्यसिद्ध को अग है।

(५) काकुकथित व्यग्य—यथा—

दोहा

हनत दुसासन वीर नहिं संघारत अरि सघ।
चूरत हौ नहि गुरज मों दुर्जोधन को जघ॥ १०॥

(६) सन्दिग्धप्रधान व्यंग्य

दोहा

लसत हसत-से दीह दृग, विहसत विमल कपोल।
चंद-मुखी मुखचंद लखि नँदनंदन चित लोल ॥ ११ ॥

इहाँ 'मुख देखत है' यह अर्थ प्रधान है कि 'कपोल चुंबन चाहत' यह व्यंग प्रधान है, यह संदेह है।

(७) तुल्य प्रधान व्यंग्य

दोहा

भले रूप गुन जाल को ख्याल पसारत लाल ?
खंजननैनिनि के बँधत दृग खंजन इहि हाल ॥ १२ ॥

यहाँ पर हृदय-ग्राहक रूप गुण उदारता, वाच्य है। अरु मुख देखिवे ही में दृग-बंधन यह व्यंग्य है। यह दोनों तुल्य प्रधान हैं।

(८) असुंदर व्यंग्य

सवैया

भोरहीं प्रीतम को लखि दूरतें आदर भाव सुभाव जतायौ।
आसन दै निज पास "कुमार" हवा धरि पान सुगंध सुहायौ॥
'प्यारो भयो शाम आवत' यों कहि, लै कर वीजन आप डुलायौ।
सारसलोचनी आरसी दै कर, पानी सयानी सखीसों मगायौ॥१३॥

इहाँ "रैन के चिह्न मेटौ" इह वाच्यार्थ तें व्यग्य सुंदर है।

जद्यपि एसो विषय नाहीं जहाँ उत्तम अथवा मध्यम काव्य न

होय, पै ताही प्रधानता तें तौन उदाहरण है। अंगागी रस पै अंग प्रधान तें मध्यम है। अंगी के प्रधान में उत्तम है। इत्यादि जानिये।

इति श्रीयुत हरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते
रसिकरसाले मध्यमकाव्य-विचारो
नाम षष्ठोल्लासः ॥ ६ ॥

सप्तम उल्लास

अथ चित्र-काव्य-प्रकरण

शब्द-चित्र अनुप्रास

दोहा

तुल्य आखरनि को जहाँ रस अनुगुन है न्यास ।
अनुप्रास कहि द्वै तरह छेक, वृत्ति, परकास ॥ १ ॥

(१) छेकानुप्रास

दोहा

व्यंजन तुल्य अनेक जहँ एकै बार निहार ।
छेकन को प्रिय 'छेक' यह अनुप्रास निरधार ॥ २ ॥

यथा—

चैत चंद, सौरभ पवन, पिक कूकति कल वैनि ।
मनौ भयौ मनभावती मनभावन-सँग रैनि ॥ ३ ॥

इहाँ चैत, चंद, पवन पिक, कूकति कल, इत्यादि छेक हैं ।

(२) वृत्त्यनुप्रास

दोहा

व्यंजन एक अनेक वा सम जहँ बार अनेक ।
'वृत्ति' नाम को प्रास तहँ जानौं सुमति विवेक ॥ ४ ॥

जैसे चद, वृ द, मद, गीत, मीत, भली, अली, सुगन्ध, निबन्ध यह वृत्तिप्रास है ।

लक्षण

दोहा

मधुर आखरनि वृत्ति यह मनि 'वैदर्भी' नाम ।
उद्भट 'गौडी', उभय सम 'पांचाली' अभिराम ॥ ५ ॥

इनही सों उपनागरिका, कोमला, परुषा कहत हैं ।

(१ वैदर्भी) यथा—

दोहा

ताप-कंद इक कंदरप, लहि मुख-चंद सहाय ।
मलय बंध मिल गंध वह अंध कियौ जग हाय ॥ ६ ॥

(२ गौडी) यथा—

खण्ड खण्ड भुव मण्डलहिं मण्डतु दण्डि अदण्ड ।
चण्ड चण्डकर-सो तपै तुव परताप उडण्ड ॥ ७ ॥

(३ पांचाली) यथा—

सवैया

दूरि तें भौंह कमान-सी तानिकै, बान-सी बंक चितौनि है दीन्ही ।
ऐसी न चाहिये तोहि विलासिनि ! वीस बिसैन दया दिल चीन्ही ॥
कीन्हो री ! कान्ह निहारि भले सुधि-हीन, अधीन न तू सुधि लीन्ही ।
सूनी गली चलि ओट अली के, भली दुरि चोट कटाछनि कीन्ही ॥ ८ ॥

लाटानुप्रास—

दोहा

तातपर्य के भेद ही, अर्थ एक ही ल्याइ।

फेरि शब्द कहिये वहै प्रास 'लाट' कहि जाइ॥ ९॥

यथा—

सवैया

बोलति बैन "कुमार" सुधा-से सुधानिधि-सी मुख-कांति पसारी।
जोर जग्यौ तन में नव जोवन, जोवन में प्रिय नेह निसारी॥
जीति लई अँग जेब सों केसरि, केसरि रंग बनी अँग सारी।
यारी भई हरि-नैन-वसीकर नैन-यसो बिसरै न बिसारी॥१०॥

यथाच—

दोहा

जाके ढिंग तिय, तासु है अनल ताप हिम-धाम।
जा ढिंग तिय नहि, तासु है अनल-ताप हिम-धाम॥११॥

यमक—

दोहा

अर्थ-सहित आखर बहुत, जहँ सुनियतु है फेरि।
भिन्न अर्थ के भेद ही 'यमक' नाम तहँ हेरि॥१२॥

यथा—

सवैया

पूरन के सरिता सरसीउ, अपार विसारद वारिद ये हैं।
कीन्हे हरे बन हैं नव ग्रीषम के रविसार दवारि दये हैं॥
देखि इन्हें हिम-सैन्न प्रकास चे, तुच्छ विसारद वारिद ये हैं।
सेत भये निज कीरतिसों अब सुच्छ विसारद वारिद ये हैं॥१३॥

यथाच—

चाह। सिंगार सवाँरन की, नव वैस बनी रति वारन की है।
सोभा "कुमार" सिवारन की सिर सोहति, जोहति वारन की है॥
हंसनि के परिवारन की पग जीति लई गति वारन की है।
याहि लखै सर वारन की छनकौ रति के पति वारन की है॥१४॥

यमक-भेद—

दोहा

चरन अंत, मधि, आदिहू सकल अर्ध आवृत्ति।
श्लोक अर्ध में सकल में बहुत यमक की वृत्ति॥१५॥

(१) चरण के आद्यन्त में शृंखला-यमक। यथा—

सवैया

घन के निरखे तन ताप तई, दिन वे ही भले हैं निदाघन के।
घनकेलि "कुमार" हिये सुधिकै, सुधि भूलति आगम सावन के॥
वन के भर सोहैं भरी सरिता, अब क्यों मनभावन आवन के।
वन के किनि कूकत हूक उठी हिय लागत घात, मनों घन के॥१६॥

(२) मध्य में शृंखला-यमक। यथा—

दोहा

लेत जितौ हरि हरि बरस, दिनकर कर परकासु।
घरी एक जल जलद वर, बरसत सतयुग तासु॥१७॥

(३) सबै पद मिलै पंक्ति नाम यमक । यथा—

दोहा

धीरज के बल धारि नहिं, धीरज के बल धारि ।
धीरज के बल धारि कहँ, धीरज के बल धारि ॥१८॥

(४) युग्मनाम यमक । यथा—

दोहा

लाल न सोहैं जोहि दृग, लाल नसो है जोहि ।
काम दहै यह तोहि तें काम दहै यह तोहि ॥ १६ ॥

(५) पहिलो चौथो, दूजो तीजो पद मिलै, परिवृत्ति यमक ।

यथा—

दोहा

जात कहा उत सैन दै, कै मनु हारि सुनैन ।
कै मनु हारि सुनैन छवि जात कहा उत सैन ॥२०॥

(६) अर्द्धावृत्ति समुद्गक

दोहा

अवनी के वर सोहनै, भुव-हित संग रसाल ।
अवनी के वर सोहनै, भुव हित संग रसाल ॥ २१ ॥

श्लोकावृत्ति, महायमक जानिये । चरन मध्य द्वै, तीन, चार, भाग करि यमक रचै समुच्चय नाम अनेक भेद हैं । दिङ्मात्र यथा—

सवैया

देखि "कुमार" अनूप अनूपम, रूप कहा हिय धीरज धारे ।
हौ तुम ही इक ताप-निवारक, वारक देखे ही नंददुलारे ॥

एहो ! विदेस कों जान कहौ, न कहौ रहै क्यों करि प्रान हमारे।
मानत हौ तुम मोहित जो, मति मोहि तजो मति मोहि पियारे ॥२२॥

ऐसे और भेद नलोदय प्रभृति में देखिये।

पुनरुक्तवदाभास

दोहा

एकार्थक पुनरुक्त सों शब्द परत जहँ जानि।
'पुनरुक्तवदाभास' तहँ अलंकार पहिचानि ॥ २३ ॥

यथा –

सवैया

बाहु बली तुव सूरज तेज, प्रताप को पुंज जहान बखानै।
तू बर जोर सदा अरि वैरिनि, डारत है करिकै कतिलानै ॥
नैकु रिसात ही अत्र गहै जयपत्र लहै नृप भू पर न्यानै।
दीन करै परबाजनि कों, यह तो करवाल, कृपा नहि जानै ॥२४॥

इहाँ तेज प्रताप, वर जोर, अरि वैरिन, नृप भूप, करवाल कृपाल ये पुनरुक्तवत् हैं।

अथ बंधचित्र

(१) एकाक्षर

दोहा

सैसि सैसि सॉसै ससै, सौ सौ सो ससु सोस।
सांसि सांसि ससौ सुसौ, संसु संसु ससि सोस ॥ २५ ॥

(२) द्व्यक्षर

दोहा

सासु ससुर सारे सरस, सारी सो ससुरारि।
रससौ रिस सार सिसु, रासि रोस सो रारि ॥ २६ ॥

की की कै कै के किका, कूकै केका काक।
कल का को कल कलकि कै, कीलै कोकिल काक॥ २७॥

(३) त्र्यक्षर

रचत रोच चरचत चितै चितै चितै चितराति।
चारु चातुरी रुचि रचैं, चोर-रीति रति राति॥ २८॥

(४) चतुरक्षर

दोहा

कोपि कोपि लोपे कलपि, कलप लोक को पाल।
गोकुल-गोपी-गोपकुल-पाल, कृपाल, गुपाल॥२९॥
है है हाहा हाह हो रारे रौरै रारि।
जीजै जोजै जंज जौ, घूघं घोघी घारि॥ ३०॥

(५) एक वर्ग

दोहा

थिति, निधान निधि, थान निस, दीननि दीनै दान।
दुनी धनी नँदनंदनै, नीधन धनै निदान॥ ३१॥

(६) निरोष्ठक

दोहा

सीतलकर हर-सिररतन, राजत कला-निधान।
नखत-राज निसि चरत नित, धरत कलंक निदान॥ ३२॥

(७) गूढ़ चतुर्थपद

दोहा

हास कलोलनि फागु बस, अबला निवलनि पाइ।
रचत लाल! मनभाइयै, हाल गुलाल चलाइ॥३३॥

(८) प्रश्नोत्तर

दोहा

गनियतु पंचन में यहै पंच प्रपंच विवाद।
मिलै पंच में तीसरो, बात जानिये वाद ॥ ३४ ॥

(६) भिन्न प्रश्न

दोहा

वरन तीन में वसति यह, वरन तीन में औरि।
भूषन इक अरु राग इक कहौ सुकवि! दिलदौरि ॥ ३५ ॥

एसे अन्तर्लापिका, वहिर्लापिका, अनुलोम, प्रतिलोम आदि भेद 'विदग्धमुखमण्डनादि' तें जानिये।

दोहा

खङ्ग प्रभृति के आकृतिहिं, वर्ण रचत जहँ देखि।
तिहि बंधहि के नाम सों चित्र अलंकृत लेखि ॥ ३६ ॥

विस्तार-भय तें इहाँ न लिखे।

इति शब्दचित्रप्रकरण

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते
रसिकरसालग्रन्थे चित्रकाव्यनिरूपणम्
नाम सप्तमोल्लासः ॥ ७ ॥

अष्टम उल्लास

अथ अर्थचित्र-प्रकरण (अलंकार)

उपमालंकार—

दोहा

बरन्यौ है उपमेय जँह, तह उपमान बखान।
दुहुँन धर्म इक ठानि कहि, समता वाचक ग्यान॥ १ ॥
इनि चार-यौं मिलि तुल्यता लसति चारु जिहि ठौर।
पूरन 'उपमा' कहत हैं, बुध जन बुधि की दौर॥ २ ॥
सकल चित्र-रूपहिं धरति, यौं उपमा यह एक।
हरति चतुर-चित ज्यौं नटी, धरि-धरि स्वाँग अनेक॥ ३ ॥

यथा—

सवैया

म्यान समान छुटे धुरवा, पुरवाई धुँधीरनि धूरि सी छावै।
दुंदुमि-सी गजै घोर घटा, गजपाँति-सी बिज्जु कृपान-सी धावै॥
बूँदै बड़ी बरछी-सी लगैं, बिन नंद-"कुमार" यौं कौन बचावै?
छातीडराति,हिराति है धीरता,पावस-राति अराति-सी आवै॥४॥

उपमा भेद

दोहा

इनि चार-यों में एक, दो, तीन-हीन जँह देखि।
आठ भाँति 'लुप्तोपमा' अर्थ-चित्र में लेखि॥ ५ ॥

१ वाचकलुप्ता, २ धर्मलुप्ता, ३ उपमानलुप्ता, ४ धर्म-वाचकलुप्ता, ५ वाचकोपमेयलुप्ता, ६ वाचकोपमानलुप्ता, ७ धर्मोपमानलुप्ता, ८ धर्मोपमानवाचकलुप्ता।

क्रमते यथा—

कवित्त

छन छबि गोरी, भोरी१, बिधु-सो वदन२, तन-
सोहति मदन-तिय कांति ३ अभिराम है।
दृगनि ४ कपूर भई, निरखति मोहि गई,
हरिनी के नैननि ५ को सुषमा सुठाम है॥
रूप निरमल, दरपन छबिमाल६, मुख-
कंज-सो हसनि हरि निरखि सकाम ७ है।
कंठीरव-कटि,८ कल कंठी - कंठसुर, नील-
कंठ-केसपास नीलकंठ कैसी वाम है॥ ६॥

इहाँ छन छबि-सी गोरी, विधु-सी वदन, सुदर तन, रति-तन-कैसी काति, कपूर-सी-सीरी लगी, हरिनी के नैननि-कैसी नैननि में शोमा विशाल है, दरपन-छबि-सी भाल-छबि है, कंज विकसनि-सी मुख विहसनि सोहै, कठीरव-कटि-सी कटि सूक्ष्म है, यह विवक्षित है। तहाँ तीन लोप जानिए।

(१) मालोपमा

दोहा

खजन-से, वर कंज-से मनरंजन सुख दैन।
सरफर-से, वर सफर-से, मंजु मुखी के नैन॥ ~॥

इत्यादि मालोपमा है।

(२) अभूतोपमा

दोहा

जो मयंक निज अंक ते डारे अंक निकारि।
तौ निहारि, अनुहारि ये, तुव मुख सों बरनारि ! ॥ ८ ॥

इत्यादि अभूतोपमा-भेद अनेक हैं।

अनन्वयालंकार—

दोहा

एकहि को उपमेयता उपमानता प्रमानि।
चित्र 'अनन्वय' कहत हैं, कवित माँह पहिचानि ॥ ९ ॥

यथा

सवैया

सुंदरि ! चंद-मुखी इक तोहि में, सुंदरता-सम सुंदरताई।
सील-सो सील, सयान सयान-सो, तोमें निकाई-सी न्यान निकाई ॥
प्रीतम के अनुराग-सो भाग सो, तेरो सुहाग सुहाग-सो भाई।
रूप-सो रूप, अनूप बन्यौ बनी तो-सी तुही विधि एक बनाई ॥ १० ॥

इहाँ कहीं साधारण धर्म कहूं नाहीं, ताते द्वै भेद हैं।

उपमानोपमालङ्कार

दोहा

है उपमेय परस्परहिं, सोई है उपमान।
भनिये 'उपमानोपमा', अर्थ-चित्र तँह न्यान ॥ ११ ॥

१ वाचकलुप्ता, २ धर्मलुप्ता, ३ उपमानलुप्ता, ४ धर्म-वाचकलुप्ता, ५ वाचकोपमेयलुप्ता, ६ वाचकोपमानलुप्ता, ७ धर्मोपमानलुप्ता, ८ धर्मोपमानवाचकलुप्ता।

क्रमते यथा—

कवित्त

छन छबि गोरी, भोरी१, विधु-सो वदन२, तन-
सोहति मदन-तिय कांति ३ अभिराम है।
दृगनि ४ कपूर भई, निरखति मोहि गई,
हरिनी के नैननि ५ को सुषमा सुठाम है॥
रूप निरमल, दरपन छबिभाल६, मुख-
कंज-सो हसनि हरि निरखि सकाम ७ है।
कंठीरव-कटि,८ कल कंठी - कंठसुर, नील-
कंठ-केसपास नीलकंठ कैसी वाम है॥ ६॥

इहाँ छन छबि-सी गोरी, विधु-सी वदन, सुंदर तन, रति-तन-कैसी कांति, कपूर-सी-सीरी लगी, हरिनी के नैननि-कैसी नैननि में शोभा विशाल है, दरपन-छबि-सी भाल-छबि है, कंज विकसनि-सी मुख विहसनि सोहै, कठीरव-कटि-सी कटि सूक्ष्म है, यह विवक्षित है। तहाँ तीन लोप जानिए।

(१) मालोपमा

दोहा

खंजन-से, वर कंज-से मनरंजन सुख दैन।
सरफर-से, वर सफर-से, मंजु मुखी के नैन॥ ७॥

इत्यादि मालोपमा है।

(२) अभूतोपमा

दोहा

जो मयंक निज अंक ते हारे अंक निकारि।
तौ निहारि, अनुहारि ये, तुव मुख सों वरनारि ! ॥ ८ ॥

इत्यादि अभूतोपमा-भेद अनेक हैं।

अनन्वयालंकार—

दोहा

एकहि को उपमेयता उपमानता प्रमानि।
चित्र 'अनन्वय' कहत हैं, कवित माँह पहिचानि ॥ ९ ॥

यथा

सवैया

सुंदरि ! चंद-मुखी इक तोहि में, सुंदरता-सम सुंदरताई।
सील-सो सील, सयान सयान-सो, तोमें निकाई-सी न्यान निकाई ॥
प्रीतम के अनुराग-सो भाग-सो, तेरो सुहाग सुहाग-सो भाई।
रूप-सो रूप, अनूप बन्यौ बनी तो-सी तुही विधि एक बनाई ॥१०॥

इहाँ कहीं साधारण धर्म कहूं नाहीं, ताते द्वै भेद हैं।

उपमानोपमालङ्कार

दोहा

है उपमेय परस्परहि, सोई है उपमान।
भनिये 'उपमानोपमा', अर्थ-चित्र तँह न्यान ॥ ११ ॥

यथा

तारे तुल तारे कुमुद, तारे कुमुद सँकास।
सरवर लसत अकास-सो, सरवर-सम आकास ॥ १२ ॥

प्रतीपालंकार—

दोहा

जहँ प्रसिद्ध उपमान जो, सो उपमेय रचाइ ।
तहँ 'प्रतीप' भूषन भनत, पंच प्रतीप सुभाइ ॥ १३ ॥

(१) प्रतीप । यथा

सवैया

चंदमुखी ! मुख-सो तुव चंद, सुपावस-वारिद-वृंद दुरायौ ।
नैन-से नीरज नीर दुरे, तुव गौन-सो हंसनि-गौन रचायौ ॥
देखि "कुमार" तिहारेई अंग-सी बातनि जो बिसराम-सो पायौ।
तोसों वियोग दै वैरी विधाता अहो? इनहींसो वियोग बनायौ ॥१४॥

(२) प्रतीप

दोहा

जहाँ अन्य उपमेय लहि, बर्न्य निरादर देखि ।
दूजौ भेद प्रतीप को जानौ तहाँ विसेषि ॥ १५ ॥

यथा—

रंचक ऊँचे उरज लहि, नहि गहि गरब गँमारि !
अतिरंगी नव नारँगी, बाग-बहार निहारि ॥ १६ ॥

(३) प्रतीप

दोहा

जहाँ वर्न्य उपमेय लहि, अन्य निरादर ल्याइ।
तीजो तहाँ प्रतीप को तीजौ भेद बताइ॥ १७॥

पूर्व प्रतीप तें तृतीय विपरीत है—दूजे में निरादर मात्र तें भेद है—

यथा—

दोहा

कत दीपति! दामिनि दमक तकि घन-संग उमंग।
लखी स्याम निसि राधिका, तो-सम स्यामल संग॥ १८॥

(४) प्रतीप

दोहा

जहाँ वर्न्य तें अन्य महँ, उपमा वचन-निषेध।
चौथो भेद प्रतीप को वरनत तहाँ सुमेध॥ १९॥

यथा—

कवित्त

राखिये दुराय कौने-कौने, गौन आये देखि,
सोने-से सलौने अंग मौने तिय गहतीं।
गुन गन आगरी ये नागरी 'कुमार' लखि,
नख सिख-रूप अनमिष नैन रहतीं॥
जुरि जुरि आवतीं है सोभा के सराहिबे को,
हेली! ये गवेली न नवेली भेद लहतीं।
बाढ़त हँसी है, मेरे जिय में बसी है मेरे,
घर बसी ससी-सो वदन तेरो कहतीं॥ २०॥

(५) प्रतीप

दोहा

जहाँ वृथादिक शब्द कहि, कमी कह्यौ उपमान।
मानत तहाँ प्रतीप को पाँचौं भेद निदान॥ २१॥
तेरे गोल कपोल-सम होतु न पूरि मयंक।
जानि वृथा विधिहू रच्यौ ता मधि अंजन-अंक॥ २२॥

रूपकालङ्कार—

दोहा

जहँ रंजो उपमेय को रचि उपमान अभेद।
कै भेदहि तद्रूपता, सो रूपक द्वै भेद॥ २३॥
गनि अभेद रूपक प्रथम, दूजो है तद्रूप।
अधिक, कमी, सम भाव तें ये द्वै त्रिविध सरूप॥ २४॥

(१) अधिक भाव-अभेद रूपक

सवैया

नेह हियै सरसावै "कुमार", बिलोकै सुधारस कों बरसावै।
भाग तिहारौ निहारौ अली! अनुरागिनि क्यों बस रीझि रिझावै॥
सुंदर आनन चंद है कान्ह को, लोचन कैरव लाजत छावै।
याहि लखै ब्रज-नीलवधू-दृगकौल कदम्ब बिकासहि पावै॥२५॥

(२) न्यून भाव अभेद रूपक

सवैया

है सनसार रच्यौ करतार पै, काम औ रोष तहाँ रिपु ठानै।
मोहिबे को सबके मन को धन त्यों जुवती जन द्वै तहँ मान॥

देखे तपोनिधि हौ तुम ही धन लेखे नहीं इनके बस न्याने।
सेवक को वर देवे को जू नर-देह धरे हरदेव हौ जाने ॥ २६ ॥

(३) समभावाभेद रूपक

सवैया

कज्जल स्याम बनै अभिराम घनै छविधाम "कुमार" निहारे।
चारु बनी बरुनी दुति साँकर कोर ललामी सिंदूर सँवारे॥
प्यारी! ये सुंदर सारी अख्याँरी सों सोहत, मोहत मोहन प्यारे।
मैन-चमू चतुरंग-हरौल उतंग मतंगज नैन तिहारे॥ २७ ॥

(४) अधिकभाव तद्रूप रूपक

सवैया

गाढ़ परी-सी अषाढ़ के आगम देखि उकाढ़ घनाघन जागे।
औधि बिसूरि वियोग विथा सों तच्यौ तिय को हिय है अनुरागे॥
ज्यौं बरसै जल त्यौं-त्यौं "कुमार" परै कल क्यों, पल क्यों पल लागे?
सो जड़-सी बड़वागि लगी तनताप बड़ी बड़वागिनि आगे॥२८॥

इहाँ तन-ताप बड़वाग्नि में भेद कहि तद्रूपता कही।

(५) न्यूनभाव तद्रूप रूपक

सवैया

एक सरूप सनातन हौ, गुरु ग्यान सनातन न्यान बखानै।
तीसरे नैन बिना हरदेव हौ, सेवक-मोप-विधायक मानै॥
द्वैभुज केसव के अवतार "कुमार" कहै गुरु हो पहिचानै।
एक ही आनन चारहु वेद के गायक हौ कमलासन जानै॥२९॥

कमा भाव ते शोभा है।

(६) समभाव तद्रूप रूपक

सवैया

कांति हरै अरविन्दनि की मुकता नखतावलि वृन्द विहार्‌यौ।
नन्दकिसोर चकोर भयो मुसक्यानि सुधा हिय-ताप निहार्‌यौ॥
ऊँचे अटा पर आनि "कुमार" सुनील निचोल घटा तें उघार्‌यौ।
चंद अमंद धरै दुति है, इव सुंदर तो मुखचंद निहार्‌यौ॥३०॥

इहाँ चौथी तुक में चद्र तें भेद कहि, मुख में चन्द्र-तद्रूपता कही। इहाँ निरवयव रूपक है।

(७) सावयव रूपक

कवित्त

मृदु मुसक्यानि में डुलत मोती बेसर को,
नचत रचत सो विधान छवि भारी कौ।
अलक झलक प्रतिबिम्बित "कुमार" दीप,
दरपन विमल कपोल दुति न्यारी कौ॥
अजब जवनिका है घूँघट विराजि रह्यौ,
काँकरेजी कंचन किनारीवारी सारी कौ।
झाँखी चहि पेखति तमासौ प्यारी पेखन को,
प्रीतम को पेखनौ भयो है मुख प्यारी कौ॥ ३१॥

परिणामालङ्कार

दोहा

जहँ उपमेय-सरूप ही परिणति ह्वै उपमान।
सकै साधि निज काज कों, तहँ 'परिणाम' विधान॥ ३२॥

यथा—

दोहा

फूल-माल करकंज गुहि, मंजु दई तुम लाल!
तुम तन दीन्ही ये लखी, तिय-दृग पंकज-माल ॥ ३३ ॥

इहाँ 'कर' उपमेय रूप है, उपमान कंज। गुहिबौ देबौ कार्य साधतु है। केवल नाहीं। ऐसे पकज-दृग-रूप हु साधतु है।

यथाच—

दोहा

केवटनाथहिं निज-कृपा दै उतराई दान।
गये पार सुरसरि उतरि, रघुपति कृपानिधान ॥३४॥

इहाँ उतराई उपमान कृपा उपमेय रूप भये, केवटनाथ कार्जे कीन्हौ है।

उल्लेखालंकार

दोहा

एकै वस्तु अनेक कों भाँति अनेक दिखाय।
अर्थ-चित्र 'उल्लेख' कहि बरनै कवि-समुदाय ॥३५॥

(१) प्रथम उल्लेख, यथा—

कवित्त

ज्ञानिनि परम धाम, सेवकनि कामतरु,
कामिनिनि जानैं कामदेव घन जेवही।
नागर नरनि जानैं, तिहूँ लोक रूप भूप,
देषवनि जानैं देव-देव मजि सेव ही ॥

कहत "कुमार" गजराज जानैं मृगराज,
मध्यनि प्रमानैं गाज रयाज अहमेव ही।
आवत खुसाल रंग-भूमैं नंदलाल लखि,
कंस जानैं काल, बाल जानैं वसुदेव ही ॥३६॥

(२) द्वितीय उल्लेख

दोहा

एकै बात जु एक कों होय अनक विधान।
भेद और उल्लेख को मानत यहै निदान ॥ ३७ ॥

यथा—

कवित्त

सूधे ही सुभायनि सुधा है बचननि जानी,
आनन में सुधानिधि मानी छवि छाज में।
सीरी ये सकल सुंदरीनि में "कुमार" देखी,
देवी ये दिपति देव धरम के काज में ॥
भागमई सकल, सुहागमई सौतिनि में,
सीलमई सखिनि में सुख के इलाज में।
नेह-रस साजमई, रात रति-राजमई,
लाजमई जानी गुरु नारिनि-समाज में ॥ ३८ ॥

स्मृति भ्रान्ति सन्देहालंकार

दोहा

लहि सुधि कों, भ्रम कों तथा धोखो कछु चित धारि।
स्मृति, भ्रान्ति, सन्देह कहि भूपन तीन विचारि ॥३६॥

स्मृत्यलंकार, यथा—

सवैया

बोलि उठे बरही बरहो बिरही बरषा निसि कैसे बितावै ?
देखि "कुमार" तहाँ घन दामिनि केलि में कामिनि कों चित ध्यावै।।
स्याम घटानि के ओर दुर्यो कढ़ि चंद को ओर जहाँ छबि छावै।
कंचुकी नील की कोर खुली कुच-कोरक-कांति तहाँ सुधि आवै।।४०।।

भ्रान्ति, यथा—

दोहा

कठिन उरोजहिं करज-छत ललित दियौ नँदलाल।
कंज-कुसुम-केसर लग्यो जानि छुड़ावति बाल।।४१।।

(१) अन्योन्य भ्रान्ति, यथा—

दोहा

दरी दुरे तुव दुवन नृप ! तिय वंदैं मुनि मानि।
वंदत वे निज तियनि हूँ वन-देवी जिय जानि।।४२।।

सन्देहालङ्कार, यथा—

कवित्त

रसना रतन दीप स्याम रेख किधौं यह,
मदन को लेख है सिंगार रस भाव सों।
कहत "कुमार" किधौं जमुना को धार मिली,
मुकता प्रवाल हार संगम सुभाव सों।।

कंचन-सिढ़ीनि मनमथ के मनोरथ को,
पंथ बँध्यौ किधौं नीलमनि के बँधाव सों।
कैधौं छबि-राजी सों विराजी तन तरुनी के,
देखि रोम-राजी लाल राजी चित-चाव सों॥ ४३॥

यथाच—

दोहा

विधु-मधि नग विद्रुम किधौं, इंद्रवधू को जाल।
हौं जानी विहसत वदन, बाल रदन ये लाल! ४४॥
इहाँ निश्चयात् संदेह है।

अपह्नुत्यलङ्कार

दोहा

कछू वस्तु के धर्म को कीजे पहिल छिपाउ।
और धर्म ठहराय तहँ 'शुद्धापह्नुति' नाँउ॥ ४५॥

यथा—

कवित्त

संकति हरिन कोऊ, मानत कलंक कोऊ,
सागर-मथन-पंक लाग्यौ मानि लयौ है।
काहू ससांक, काहू मंदर को घाव लह्यौ,
कीन्हो तम-पान सो भराव उर छयौ है॥
सुधानिधि माँह कोऊ वसुधा की छाँह कहै,
कहत "कुमार" ठहराव येक ठयौ है।

राहु के गिलत, उगिलत गल-बीच परै,
गाढ डाढ़ लागी, लील सोई परिगयौ है ॥ ४६ ॥

इहाँ हरिणादिक को मतान्तर तें छिपाव है।

(१) हेत्वपह्नुति

दोहा

बात सहेतुक ठानि कै, कीजे जहाँ दुराउ।
'हेतु अपह्नुति' नाम को भूषन तहाँ बताउ ॥ ४७ ॥

यथा—

सवैया

चंपक-बेली अकास न ऊगै, न द्यौस में दीप प्रकासहि मेलै।
दामिनि दीपति नाँहि "कुमार" लहै घन-संग जु अंग उघेलै ॥
सूर-प्रकास में चाँदनी नाँहि हिये यह काम की ताप उवेलै।
संग सहेली सों कंदुक केली सों सौध के अंगनि अंगना खेलै॥४८॥

(२) पर्यस्तापह्नुति

दोहा

निज गुन जासु दुराइये, वहै अनत ठहराय।
'पर्यस्तापह्नुति' तहाँ मानत हैं कवि राय ॥ ४९ ॥

यथा—

दोहा

नहीं हलाहल, विष विषय, विष हर खात सुचेत।
विषय-ध्यान ही ग्यानमय होत अयान अचेत ॥५०॥

(३) भ्रान्तापह्नुति

दोहा

और बात को और के भ्रम यह जिय में होइ।
तत्त्व बात कहि मेटिय, 'भ्रान्तापह्नुति' सोइ ॥ ५१ ॥

यथा—

दोहा

देह छीन, हियरा कपत, तपत रुमंचित गात।
कहा चढ़्यौ जुर? नाँहि सखि! अतनु-ताप अधिकात ॥५२॥

(४) छेकापह्नुति

दोहा

जहँ दुराइये तत्त्व निज, कहिये और बताय।
'छेकापह्नुति' नाम यह छेकनि सुनै सुहाय ॥ ५३ ॥

यथा—

पगनि लगति, प्यारो लगति बोलि मधुरसुर बानि।
अली! भली प्रिय-प्रीति कहि, नहिं पग नूपुर जानि ॥ ५४ ॥

(५) व्याजापह्नुति

दोहा

छल प्रभृतिक शब्दहिं कहै, बात और ठहराय।
'व्याजापह्नुति' नाम तहँ भनत भेद, कविराय ॥५५॥

यथा—

सवैया

गाजत भ्रंमर बाजत बंब सजै जदु-नायक फौज महा कों।
धीरन होत दरीभृत है, मिस भौंहिनि के कहि देत रुजा कों॥

बाजिन की खुर तार छुरी, परी मूरछितै छिति देखि विथा कों।
उच्छलि कै जलरासि यहै जलबीचनिके छल सींचै धरा कों ॥५६॥

उत्प्रेक्षालङ्कार

दोहा

वस्तु, हेतु, फल, रूप कहि, कछु संभावन ठानि।
'उत्प्रेक्षा' भूपन यहै तीनि भाँति पहिचानि ॥ ५७ ॥
वस्तूत्प्रेक्षा विषयजुत, नहीं विषय कहुँ होय।
विपयसिद्ध, नहिं सिद्ध त्यों फल हेतुहि में दोय ॥ ५८ ॥

(१) उक्तविपया वस्तूत्प्रेक्षा, यथा—

कवित्त

'राम नरपाल' को निहारि रन ख्याल खग्ग,
खुलै विकराल दिगपाल कसकात हैं।
मुंडनि की माल दै महेस मन रंजत,
दुवन-दल गंजत, कहाँ लौं गनै जात हैं॥
वैरी-वरवारन हजारन विदारे मारे,
गिरि गये गिरि मानौं वज्र के निपात हैं।
उछलि उछलि परैं कुंभनि तें मोतीगन,
गगन-अँगन उडुगन-से दिखात हैं॥ ५६ ॥

इहाँ उडुगन में मुक्ता संभावित हैं। करि-कुंभ-विदारण विपय उक्त है।

(२) अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा, यथा—

सवैया

मंद बयारि चलै दल अंगुलि, नूत लता मनौं नाच ठये हैं।
बिन्दु अमन्द पिये मकरन्द के, पान-छके अलि गान छये हैं॥
नैकु प्रकास गहै चहुँ पास विकास पलासिनि फूल नये हैं।
मानौं वनी बधू अंग बनै रति-रंग घनै नख-घात दये हैं ॥६०॥

इहाँ पलाश फूल नख-घात रेख वस्तु सभावित है। वसन्त वनी-संगति विषय उक्त नाहीं।

दोहा

जहँ अहेतु को हेतु करि अफलहिं फल करि मानि।
तहाँ हेतु फल नाम कहि, उत्प्रेक्षा पहिचानि ॥६१॥

(३) सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा, यथा—

कवित्त

सुरुचि सुवास के निवास चारु निरमल,
चौंर भौंर-भीर मोर-पच्छनि सों तारे हैं।
तम-परिवार-से, सिवार-से निहारे बार,
छूटे छवि भारे, मखतूल बारि डारे हैं॥
जसुधा-कुमार बस कीवे कों "कुमार" कहै,
प्यारी सनमानि, मन मानि सिर धारे हैं।

ताही सों रिसानी कही मानी न अयानी-सखि,
यहै विनती कों पग लागत तिहारे हैं ॥ ६२ ॥

इहाँ "पग लगिवे में" विनती-हेतु समावित है। रिसैबो, बार छूटिबो सिद्धविषय है।

(४) असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा, यथा -

सवैया

संग सदा मिलि कीन्हौ निवास,"कुमार" विलास हुलास घनेरो।
संग मिले निसि वासर न्यान न आन गन्यौ सुख दुःख निवेरो॥
माई! चले परलोक तुमै नहीं दीरन भौ हिय मेरो करेरो।
जानि घनौ अपमान मनो, दृग मूँदि न देखत आनन मेरो॥६३॥

इहाँ 'दृग मूँदिवे' में अपमान-हेतु संभावित कीन्हो, सो अपमान असिद्धविषय है।

(५) सिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा, यथा—

दोहा

बिरहिनि के, कोकीनि के ढारतु दृग-जल जानि।
तिहिं पूरत पूरन ससी, वारिधि वारि प्रमानि॥६४॥

इहाँ 'दृग-जल-धार ढारिवे' में वारिधि-वृद्धि-फल संभावन कीन्हौ। पूर्ण शशी सिद्धविषय है।

१—व्रजभूषणलालजी (द्वि०) प्रा० सं० १७६५ मार्ग० शु० १
२—बालकृष्णलालजी „ „ १७७० पौष शु० ५
३—वल्लभजी „ „ १७८१ वैशाख कृष्ण ६

धर्म-प्रचार और धन्धूका को शरण लेना

सं० १७७१ में महाराजश्री ने गुजरात में पधार कर प्रदेश करने का सिलसिला बाँधा। गुजरात में कई स्थानों में जाकर इन्होंने वैष्णव-धर्म का प्रचार किया और हजारों शिष्य बनाये। यात्रा करने के लिये जब द्वारका पधार रहे थे, तब मार्ग में धन्धूका नामक ग्राम के पास से निकले। इन्होंने वहाँ एक चमत्कार बतलाकर समस्त ग्राम को अपना शिष्य बनाया। यह वृत्तान्त इस प्रकार है *—

गिरिधरलालजी जब प्रदेश-यात्रा करते हुए काठियावाड़-प्रान्त में पधारे, तब वह धन्धूका नामक ग्राम में पहुँचे। ग्राम के बाहर उन्होंने एक बड़ा कुआँ देखकर म्याना रुकवाकर जल लाने के लिये परिचारक को आज्ञा दी। उस कुएँ के पास कुछ लड़के खेल रहे थे, जिनसे जल के विषय में पूछा गया, तो उन्होंने हँसी-हँसी में खारे पानी को मीठा बतला दिया। महाराजश्री के परिचारक ने उनके विश्वास में आकर जल भरा और लोटी में महाराजश्री को पीने के लिये ला दिया। पीने पर जब जल खारा मालूम पड़ा तो महाराजश्री के पूछने पर उसने उनसे सब हाल कह सुनाया। महाराजश्री इस हँसी को ताड़ गये, उन्होंने कुआँ देखकर फिर से जल निकालने का आदेश दिया। इस समय जब जल निकालकर पिया गया, तो वह मीठा निकला। इसके अनन्तर उनके साथ के सब लोगों ने भी तृप्त होकर पानी पिया और आगे बढ़े। खारे कुएँ पर अच्छी प्रकार जल पीकर जाते हुए सब लोगों को देखकर लड़कों को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने ग्राम में जाकर यह वृत्तान्त कह सुनाया।

धन्धूका में उस समय जैन-धर्मावलम्बी बीसामोढ बनियाओं के लगभग चार सौ घर थे। कुआँ पर जाकर उन्होंने जल की परीक्षा की, तो वह उस समय मीठा निकला। इस परिवर्तन को देखकर उन सबको महाराजश्री के प्रति बड़ी श्रद्धा हुई और शीघ्र आगे जाकर उन्होंने उनको विनयपूर्वक अपने ग्राम में पधराया। महाराजश्री के उपदेश तथा प्रभाव के वशीभूत होकर वह समस्त जाति जैन-धर्म को

* गिरिधरलालजी-कृत १२० वचनामृत। सं ५।

त्यागकर वैष्णव-धर्मावलम्बिनी हो गई। महाराजश्री की शिष्यता स्वीकार कर सब जातिवालों ने एक मन्दिर बनवाया और अपनी जाति के झगड़े-टण्टे निबटाने के लिये उनको अपना न्यायाधीश निर्वाचित किया। कुछ समय बाद उस मन्दिर में 'श्रीश्यामसुन्दरजी' ठाकुरजी विराजमान किये गये तथा द्वारकाधीश के घर की प्रणाली के अनुसार सेवा होने लगी। इस प्रकार वहाँ महाराजश्री ने वैष्णव-धर्म का प्रचार किया और ख्याति प्राप्त की*।

तगड़ी की बैठक का पुनरुद्धार

महाराजश्री वहाँ के नागरिकों को वैष्णव-धर्म में दीक्षित कर और उनके द्वारा किये हुए सम्मान को स्वीकार कर कुछ समय बाद यात्रार्थ आगे पधारे। वहाँ से आगे चलकर उन्होंने 'तगड़ी' नामक स्थान में तालाब के पास एक वृक्ष के नीचे मुक़ाम किया। यहाँ तगड़ी के ठाकुर साहब ने आकर भेंट की और महाराजश्री से कंठी बँधवाकर निवास के लिये प्रार्थना की। महाराजश्री को भी यह स्थान अधिक पसंद पड़ा। यहाँ एक प्राचीन स्थान देखकर वल्लभाचार्य की बैठक होने का उन्हें स्मरण आया, अतः उसको खुदवाकर उन्होंने कुछ प्राचीन चिह्न मिलने पर वहाँ महाप्रभुजी की बैठक की स्थापना की। महाराजश्री यहाँ से चलकर द्वारका पहुँचे और वहाँ की यात्रा कर कुछ महीनों बाद वापिस आसोटिया आ गए।

गिरिधरगढ़ का बसना और वर्तमान मन्दिर—

जैसा आगे कहा जायगा, सं० १७७१ चैत्र शु० ७ को महाराणा संग्रामसिंहजी ने गिरिधरलालजी के नाम कांकरोली का ताम्र-पत्र कर दिया था। सं० १७५१ में कुँवरपने की अवस्था में अमरसिंहजी ने तालाब की पाल पर बसने का पत्र लिख दिया था, पर वह राजकीय नियमानुसार मान्य नहीं हुआ था, क्योंकि उस समय पिता से उनका कुछ वैमनस्य चल रहा था। आगे चलकर जब वे राजा हुए तो उन्होंने अपनी पूर्व-लिखावट को ही ठीक समझकर कांकरोली का ताम्र-पत्र नहीं किया। जो बाद में महाराणा संग्रामसिंहजी के समय में किया गया।

पट्टा हो जाने पर महाराजश्री ने कांकरोली में बनाये हुए अपने मकानों का नाम

* आज भी महाराजश्री के पधारने पर धन्धूका के वैष्णवों के जातीय मामले उनके सामने उपस्थित किये जाते हैं और उनके निर्णय को मान दिया जाता है। बीसामोढ बनियों का समस्त समुदाय आज भी इसी घर का सेवक है।

धन्धूका का वह कुआँ ग्राम के बाहर अब 'हवाडा का कुआँ' के नाम से प्रख्यात है और प्राचीन लोगों से उसका वृत्त सुना जा सकता है।

'गिरिधर-गढ' रक्खा। सं० १७५१ से ७१ तक 'गिरिधर-गढ' के बसने का समय माना जा सकता है। सं० १७७६ चै० कृ० ९ के दिन आसोटिया से कांकरोली के वर्तमान मन्दिर में द्वारकाधीश को पधराकर महाराजश्री ने बड़ा भारी उत्सव किया *।

कांकरोली के वर्तमान मन्दिर में आसोटिया-मन्दिर के पत्थर के ही दरवाजे, तिवारी, महराब और टोडा आदि सामान लगाया गया है। आसोटिया का उक्त स्थान सम्प्रति खँडहर होकर पड़ा है, जिसकी स्मारक-रूप में रक्षा करनी आवश्यक है।

इस प्रकार महाराजश्री ने आसोटिया से मुकाम उठाकर कांकरोली में स्थापित किया, और उसे एक नगर का रूप देने का उपक्रम किया। महाराजश्री ने द्वारकाधीश के सेवा-सौकर्यार्थ एक विशाल बाग भी बनवाया, जिसका नाम आज 'बड़ा बाग' है। इस प्रकार गिरिधरजी महाराज ने कांकरोली को बसाकर उसकी उन्नति की और ठाकुरजी की सेवा का सुप्रबन्ध किया।

राज-सम्मान—सं० १७६७ में महाराणा अमरसिंहजी के कैलासवास होने पर महाराणा संग्रामसिंह (द्वि०) उदयपुर की राजगद्दी पर विराजमान हुए। राज्याभिषेकोत्सव के समय महाराज गिरिधरलालजी ने उदयपुर जाकर राजकीय दस्तूर किया।

इस समय जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंहजी भी वहाँ आये थे। महाराणा अमरसिंहजी की पुत्री चन्द्रकुँवरिबाई का विवाह जयसिंहजी के साथ इस शर्त पर हुआ था कि—छोटी रानी होने पर भी इनसे उत्पन्न पुत्र को जयपुर की गद्दी दी जाय। इस सम्बन्ध के कारण महाराणा संग्रामसिंहजी और महाराजा जयसिंहजी का अच्छा घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसी अवसर पर महाराजश्री के साथ सवाई जयसिंहजी का परिचय हुआ और वे दर्शनार्थ आसोटिया आये। कुछ समय बाद (सं० १७७१ में) उन्होंने ग्राम भेंट किया, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा।

* द्वा० प्रा० वार्ता, १६ उल्लास पत्र ६५।

वर्तमान मन्दिर में विराजने के पहिले ऐसा कहा जाता है कि—द्वारकाधीश प्रथम पुरानी कांकरोली नामक स्थान में एक तेली के मकान में विराजे, जो अब भी विद्यमान है और यहाँ एक अन्य विषय का शिला-लेख लगा हुआ है। यह समझ में नहीं आता कि 'गिरिधर-गढ'-जैसे स्थान के बन जाने पर भी द्वारकाधीश उस छोटे-से मकान में क्यों विराजे? सम्भव है कि उस मन्दिर का काम पूरा न हुआ हो और आसोटिया में सं० १७५१ के समान जल का पुनः उपद्रव हुआ हो, जिसके कारण महाराज कुँवर अमरसिंहजी ने पिता से विना पूछे ही तालाब की पाल पर बसने का आदेश दे दिया था।

सं० १७६८ प्र० भा० शु० १३ को महाराज दलसिंहजी द्वारकाधीश के दर्शनार्थ आये और उन्होंने महाराजश्री के नाम पर सिखरावास गाम में ५१ बीघा जमीन भेंट कर ताम्रपत्र किया*।

सं० १७७१ मार्गशीर्ष शु० ११ के दिन महाराणा संग्रामसिंहजी† श्रीद्वारकाधीश के दर्शन के लिये आसोटिया‡ आये। उस समय उन्होंने अमरसिंहजी के द्वारा कुंवर की हैसियत से सं० १७५२ में दिये गये पट्टे के अनुसार कांकरोली की सारी जमीन—जिसमें कुछ जमीन खालसा की रह गई थी और कुछ दूसरों के अधिकार में थी—लेकर भेंट कर दी, और सं० १७७१ (चैत्रादि ७२) चैत्र शु० ७ बुधवार को इसका ताम्रपत्र कर दिया §।

सं० १७७१ में जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंहजी ने परगना टोंक में महेगाम नामक एक ग्राम माघ वदी १४ के दिन उज्जैन में शिप्रा-स्नान के समय अर्द्धोदय

---

* ता० न० ३६ श्रीरामजी

सही

सिद्धिश्री महाराजश्री दलसिंहजी वचनात गाम सीखरावास सुथाने कामदार पटेल पेना लपु आपात्रोपमा कस्य अप्रच धरती बीघा ५१ अखरे बीघा ईकावन श्रीनाथजीदुवारा गुसाईजी श्रीगिरिधरलालजी रे चढाई है जो आछी माये दीजो बीगत बीघा ' ' ६॥ चडस १५ माली १ कारी १४ नहे डो १४ ॥ मेग है। ५१ अखरे बीघा ईकावन मरे दीजो आ आछी धरती दीजो। आपदत्त परदत्त ० हुकुम हजुर प्रवानगी रुहवरी मा प्रथम भादवा सुदी १३ संवत् १७६८ वर्षे।

† इनका जन्म स० १७४७, प्र० वै० कृ० ७ राज्याभिषेक स० १७६७ पौ० शु० १ और उसका उत्सव स० १७६८ ज्ये० कृ० ५, कैलासवास स० १७६० माघ कृ० ३ को हुआ।

‡ देवस्थान होने से पहिले आसोटिया कांकरोली को भी श्रीनाथजीदुवारा कहा जाता था।

§ ता० प० न० १ श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादातु श्रीएकलिंगप्रसादातु

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीसग्रामसिंहजी आदेशातु गुसाई गीरधरलालजी कस्य ग्राम कांकडोली पडगने राजनगर रे जणी माहे प्रोहितजी रो वट थो सो तागीर साह गरीबदास जगनाथ थी गाम टका तथा लागत भरव सुधी गाम आसोट्ये श्रीद्वारकानाथजी रे दरसण मासेर वदी ११ रे दीन हजुर पधारया वदी उदक आघाट करे श्रीरामार्पण कीधो दुए श्रीमुख स्वदत्ता परदत्ता वा (इत्यादि श्लोक) प्रत दुए पचोल बिहारीदास लीखत पचोली लखमण छीतरोत। संवत् १७७१ वर्षे चेत सुदी ७ बुधे।

पर्व पर संकल्प कर महाराजश्री को दिया, और इसका भेंट-पत्र * सं० १७७२ श्रावण बदी ३ के दिन कर दिया। इससे ज्ञात होता है कि महाराज गिरिधरलालजी का जयसिंहजी † से अच्छा परिचय हो गया था और वे उज्जैन-यात्रा में उनके साथ वहाँ उपस्थित थे।

सं० १७७३ वैशाख कृष्ण ८ के दिन महाराजश्री ने अपने पुत्र व्रजभूषणजी का उपनयन-संस्कार किया था, जिसमें महाराणा की ओर से भिक्षा का दस्तूर आया, इसी समय महाराज दलसिंहजी ने उपस्थित होकर एतन्निमित्त दलपुरा में

---

* भेटपत्र नं० २१४ श्रीरामजी

सही मुहर फारसी में है

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजाश्री सवाई जैस्यघजी देव वचनात कमैता परगना टौक का दीसे सु प्रसाद व च्या, अप्रच आवति पुनि उदिक गाँव महगाँव परगना टौक का गुसाई गिरधरलाल गुसाई विरजभूषण का नै जौ मिती माघ बदी १४ साल संवत् १७७१ अरघोदय परब हुवौ तब वजैण मे सिपराजी मे सकलप करि दीयौ छै सो थाने फरमावा छाँ जो यो गाव ईवतदाय मिती सकलप कीयो है नै दीज्यौ अर प्रतिवरष नवो प्रवानो मति माग्य ज्यो। ज्यौ हासिल ले आसीरवाद देवो करै गाँव एक ' ' ...... सरै यादिदासति दाखिले बाकै करार मिती असाढ सुदी १४ सवत् १७७२ साल सवत् १७७१ वरिसाले भिखारीदास व कीसोरदास दीवान व निहालचद बाकानईस अत्र पुनि उदीक गाँव महगाँव प्रगना टौक मा गुसाई गिरधरलाल गुसाई विरजभूषण का नै जौ मिती माह बदी १४ साल सवत् १७७१ मै अरघोदय परब हुवौ तीमे सकलप करि दीयो सौ बासते सवती प्रवाना में मिती चैत बदी १४ सनत् १७७२ साल सवत् १७७१ अरज पहूँच। सौ हुकुम हुवौ जौ ईवतदायी मिती सकल्प का सु प्रवानौ सवती मुकरिर करि द्यौ है सौ चाहिज्ये दीवान सरकार का प्रवाना लीखौ मिती सदर अरज मुकरर पहौंची •• • मुकररा तनखाह गाँव महगाँव प्रगना टौक का ईवतिदाय छुटावट स्यालू स० १७७१ की सूं मुकरीर जाणी हासिल हवाले करवौ कीज्यौ, गाँव एक दरोबस्त '१ ' जौ हासिल सरकार में आयो होय सौ बरातवाज गिरदानंद की करि फेरी दाज्यौ, मिती सावण बदि ३ संवत् १७७२ साल सं० १७७१ मुकाम गदपैला सरकार मेलसा।

नोट—जयपुर के भेंटपत्रो में तीन बार इबारत का उल्लेख पाया जाता है, यहाँ उसकी प्रतिलिपि दी गई है। आगे उनका सक्षिप्त रूप दिया जायगा।

† सवाई जयसिंहजी स० १७५६ मे राज्यसिंहासन पर आसीन हुए। औरंगज़ेब ने इन्हें सवाई की पदवी प्रदान की थी। स० १७८४ मे इन्होंने जयपुर-नगर बसाया और स० १७८१ श्रा० शु० ६ के दिन त्रिवेणी पर वाजपेय यज्ञ किया था। सं० १८०० आश्विन शु० १४ को इनके देहान्त के बाद ईश्वरीसिंहजी जयपुर के राजा हुए।

२० बीघा जमीन भेंट की, जिसका सं० १७७३ चैत्र शु० १५ के दिन ताम्रपत्र किया गया * ।

सं० १७९० में महाराणा संग्रामसिंहजी का देवलोक हुआ और उनके बाद महाराणा जगतसिंहजी (द्वि०)† गद्दी पर बैठे । सं० १७९१ ज्येष्ठ शु० १३ के दिन राज्याभिषेक का उत्सव हुआ, जिसमें महाराज श्रीगिरिधरलालजी ने उदयपुर पधारकर नियमानुसार गुरुघर का तिलक-दस्तूर किया ।

सं० १७९९ श्रा० कृष्ण १ को महारावत जसवंतसिंहजी ने कांकरोली आकर दौलतपरा नामक ग्राम भेंट किया ÷ ।

सं० १८०३ आश्विन शु० १३ भौम के दिन महाराणा जगतसिंहजी ने कांकरोली के पास हवाले में २० बीघा जमीन द्वारकाधीश के लिये भेंट की+ । संभवत इस

* ता० नं० ३३ श्रीरामजी

सही

सीधश्री महाराज श्रीदलसिंघजी वचनात गाम दलसिंघपुरा मे धरती बीघा २० अखरे बीघा बीस गुसाईजी श्रीगिरिधरलालजी लाल ब्रजभूपणजी रे जनोई सं० १७७२ का वसाख वीद ८ जनोई थी सो पुन अरघ धरती चढ़ाई सो पाया जासी वीगत.. ... .

३ क्यारा बीगा तीन   १७ माल बीगा सतरा

२० अखरे बीगा बीस पुन अरथ चढाई, सलोक, आपदत्तं परदत्तं० (इत्यादि)

प्र० गजसिंघ सं० १७७३ चत सुद १५ दने ।

† इनका जन्म सं० १७६६ आश्विन कृ० १०, राज्याभिषेक सं० १७९० माघ कृ० ३, उसका उत्सव सं० १७९१ ज्ये० शु० १३ और देवलोक सं० १८०८ आषाढ कृ० ७ को हुआ । (उ० रा० इ०)

÷ ता० न० १४ श्रीरामजी

सही

सीधश्री महारावत श्रीजसवन्तसिंघजी वचनात गाम दोलतपुरा गाम वेसवारो खेडो श्रीनाथजी-दुवारा का गुसाई श्रीगिरिधरलालजी है ऐ सो चढाए पुनो अरथ दीधो आपदत्त परदत्त ० (इत्यादि) सं० १७९९ वरपे सावण वीदी १

+ ता० नं० ५ श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादात्   श्रीएकलिंगप्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीजगतसिंहजी आदेशात गाम कांकरोली माहे भ्रती बीघा २० वीस हवाला री आमली 'केवडा'वाली (बड़ा बाग वर्तमान नाम) माहे थी श्रीद्वारकानाथजी रे बाडी सारु चढाई सो तावापत्र करे दीधो प्रत दुए पंचोली देवकरण लिखत पंचोली केसोराय लखमणोत सं० १८०३ वर्षे आसोज सुदी १३ भौमे ।

समय महाराणा ने कांकरोली आकर महाराजश्री से परिचय बढ़ाया, और राज्याभिषेक के बाद प्रथम ही दर्शनार्थ आने पर यह ज़मीन भेंट की हो। सं० १७७२ आश्विन शु० १२ को कुँवर पदे में इन्हीं जगतसिंहजी ने महाराजश्री से नाम सुना और ६००) भेंट और विदाई में चढ़ाये थे।

सं० १८०३ में ही ज्येष्ठ वदी ५ को मुकाम उदयपुर में किसी ठिकाने के अधिपति महाराज रायसिंहजी ने पलासडा नामक ग्राम भेंट चढ़ाया *, और सं० १८०४ मार्ग० वदी १२ बुध के दिन महाराजा श्रीबाघजी ने कांकरोली आकर ग्राम लुणोरा में १५० बीघा ज़मीन श्रीठाकुरजी के लिये भेंट की†।

विद्या-प्रेम और नित्यलीला-प्रवेश

यह महाराजश्री हिंदी-भाषा के अच्छे पंडित थे। इन्होंने कितने ही कीर्तन और बधाई के पद आदि बनाये हैं। यह सुबोधिनी आदि की कथा भी अच्छी कहते थे। इनके द्वारा संग्रहीत बहुत से संस्कृत एवं हिन्दी के ग्रंथ विद्या-विभाग (सरस्वती-भंडार) में विद्यमान हैं, जिन पर उनके हस्ताक्षर हैं। इस ग्रंथ-संग्रह के शौक़ से इनकी विद्वत्ता का सहज ही अनुमान हो जाता है।

इन्होंने अपने पुत्र व्रजभूषणजी की प्रार्थना पर 'द्वारकाधीश की प्राचीन वार्ता' कह सुनाई थी, जो उन्होंने अपने पंड्या तुलारामजी के पुत्र गोवर्धनजी के द्वारा लिखवाई।

---

* ता० न० २७ श्रीपरमेसरजी
श्रीद्वारकानाथजी

सही

सीधश्री अनेक सकल शुभोपमा वीराजमानान श्रीमहाराजाधिराज महाराजश्री ५ श्रीरायसिंघजी देव वचनात तथा गुसाईंजी श्रीगिरिधरलालजी रे गाम भेंट चढायो छै उ हासल पहुँच सी कीणी बात री खेचल न होसी खेतल व गाव चढायो छै सोलोक अपदत्त परदत्त ०... गावरी वीगत १ गाव पलासडो परगने देहरहि कम छै मिती जेठ वद ५ सवत् १८०३ रा मुकाम उदैपुर।

† ता० न० २८ श्रीरामजी

सही

सीधश्री माहाराजाधीराज माहाराजा श्रीवागजी वचनात अैता श्रीजी दवारै श्रीदवारकानाथजी धरती वीगा १५० हल ३ तीन री गाम लुणोरा माहै चडाई जणीमधे वीगा ३० पीवल वीगा १२० माल व मगरारी सीयाली उदक आघाट करै श्रीकीसनारपण कीधी दुए श्रीमुख प्रत दुए महैता गुलाबचन्द स्वदत्ता परदत्ता व० . ... . लीखता साहा अनोपचन्द कोठारी मागसर वदी १२ बुधे स्मत १८०४ वीरपे।

पंड्या गोवर्धनजी कर्मकांड के अच्छे विद्वान् थे। अतः महाराजश्री ने अपने यज्ञ-यागादि के लिये नाथद्वारा के तिलकायित से माँगकर इन्हें कांकरोली में बसाया और वंश-परम्परागत पंड्या-वृत्ति प्रदान की थी।

सं० १८०३ या ४ के लगभग में महाराजश्री का नित्यलीला-प्रवेश हुआ। इनके अनन्तर इनके पुत्र व्रजभूषणजी महाराज (द्वि०) तृतीय पीठ के तिलकायित-पद पर विराजमान हुए। श्रीद्वारकाधीश को आसोटिया से कांकरोली में पधराने और संस्थान को सम्पन्न बनाने का श्रेय इन्हीं गिरिधरलालजी महाराज को प्राप्त है।



परिशिष्ट—१

नाथद्वारा में सात स्वरूप का उत्सव

श्रीगिरिधरजी महाराज (द्वि०) तथा श्रीव्रजभूषणजी महाराज (द्वि०) के समय नाथद्वारा के तिलकायित गोवर्द्धनेशजी महाराज ने 'सात स्वरूप का मनोरथ' किया, जिसका समय नहीं मिलता था।

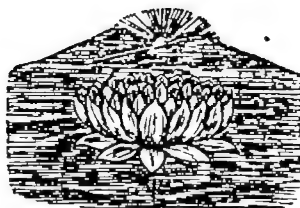
गोवर्द्धनेशजी का जन्म सं० १७६४ आषाढ़ वदी १० है। 'प्रवीण' कवि के वर्णनानुसार नाथद्वारा में छै स्वरूप पधारे थे और बड़े ठाठ-बाट से यह उत्सव हुआ था। इसमें सूरत से बालकृष्णजी नहीं पधारे थे। कवि ने लिखा है—

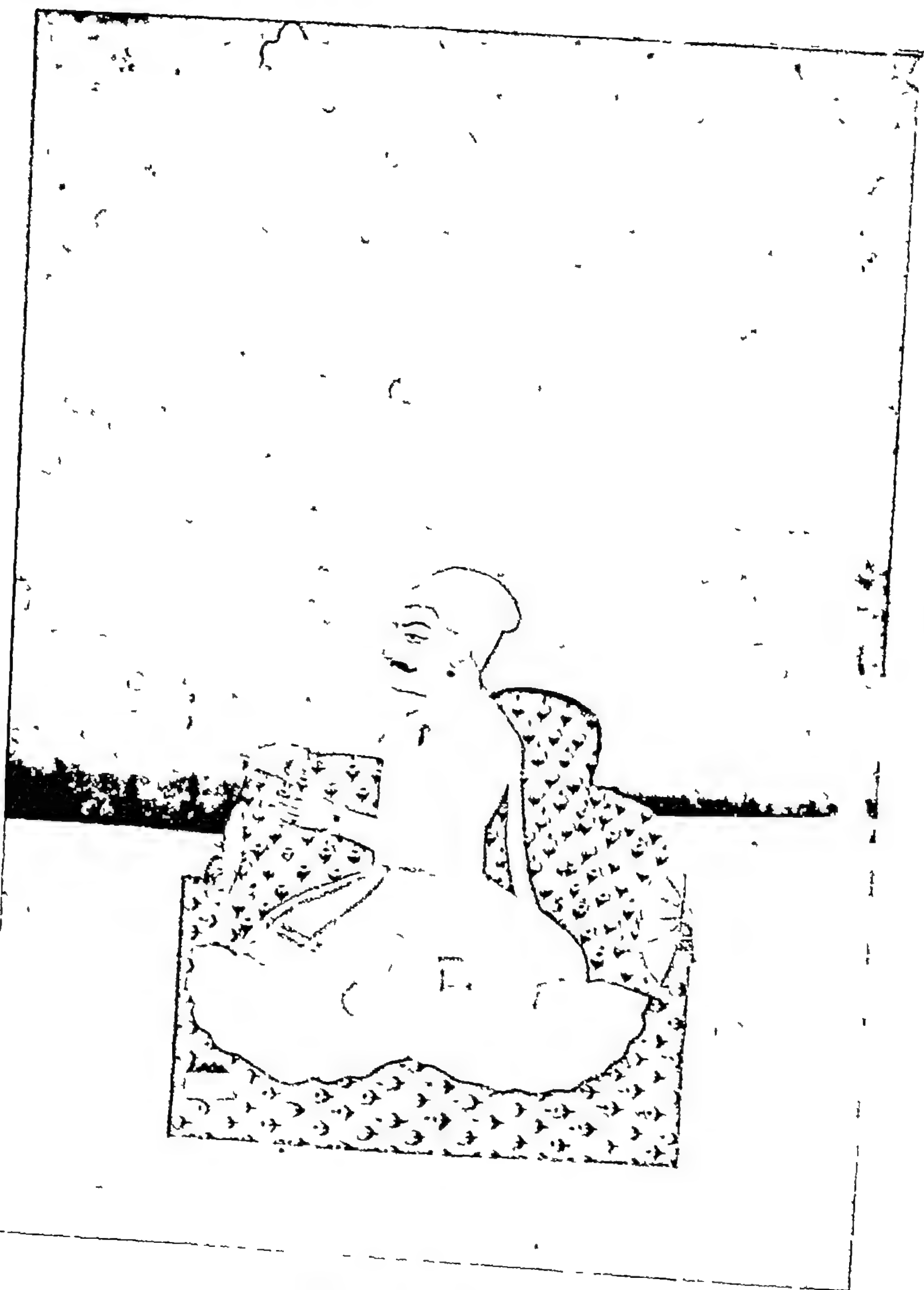
> भूषन अंबर आछे अनूपम प्रीति के रीति रँगीन सिंगारे ;
> भोग अनेक अरोगि-अरोगि प्रफुल्लित कीने हैं चाहनहारे।
> मनोरथ के रथ ऊपरि बैठि बड़ी छबि देत 'प्रबीन' के प्यारे ;
> लाल गोवर्धनजी बड़ भाग के भौन श्रीद्वारकानाथ पधारे ॥ ४ ॥

इस मनोरथ का संवत् इस प्रकार दिया है (सं० १७९६ मार्ग शु० ८ मंगल)।

अंबेर भपन भोग सुगंध भली विधि पान प्रसून सुधारे ;
मारगसीरस मास सुखाकर ऊजरी अष्टमी मंगलवारे ।
सत्रह से को छयानवे संवत ता समे आनंद उच्छव भारे ;
लाल गोवर्द्धनजी बड़भाग के मंदिर सात स्वरूप पधारे ॥ ११ ॥

उक्त ग्रंथ के एक पद्य से मालूम पड़ता है कि—इस मनोरथ का समस्त खर्च महाराव दुरजनशालजी 'कोटावाले' ने किया था, और अन्नकूट के समय ही सब स्वरूप पधार आए थे, जो इसी वर्ष इसी मनोरथ के पहले अमावस, रविवार के दिन हुआ था। (सर० भं० हि० ७३ । २)





षष्ठ प्रकरण

(सं० १८०३ से १८५६)

—:○:—

श्रीव्रजभूषणजी महाराज (ष० ति०)

(प्रा० सं० १७६५। ति० सं० १८०३, ४। नि० सं० १८३३)

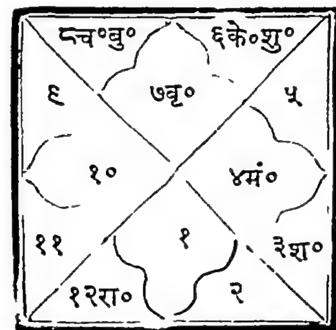
—:o:—

जन्म-संस्कार और शिक्षा—श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (द्वि०) का जन्म सं० १७६५ मार्ग० शुक्ल १ मंगलवार के दिन * आसोटिया में हुआ था। इनके पिता का नाम गिरिधरलालजी महाराज और माता का नाम श्रीमित्रवृन्दा बहूजी था। जैसा प्रथम कहा जा चुका है, यह तीन भाई थे।

बाल्यावस्था के अनन्तर सं० १७७२ में इनका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ, इस समय महाराज दलसिंहजी ने उपस्थित होकर कुछ ज़मीन भेंट की थी। व्रजभूषणजी महाराज ने अधिकांश अपने पितृचरण के पास ही संस्कृत-साहित्य के समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर अच्छा पाण्डित्य प्राप्त किया था। यह जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य के विद्वान् थे, उसी प्रकार हिंदी-साहित्य के भी पारंगत विद्वान् और प्रख्यात कवि भी थे।

---

* जन्म-कुडली—



अब्दे वाण रसाश्व भू (१७६५) परिमिते मार्गवलक्षे कुजे
शाके धातृ तिथौ तृतीय करणे योगे सुकर्माह्वये।
लग्ने सेज्य घटेऽलिगार्के बुधयो. स्वारे सितेऽत्ये यमे
पुण्येऽरौ तमसि स्थिते सम्भवच्छ्रीमद् व्रजाभूषणः ॥१॥

स० १७६५ वर्षे शाके १६३० प्रवर्तमाने मार्गशीर्ष शुक्ल १ भौमे घटी २२,१४ परतो द्वितीया-जन्मतिथौ अनुराधा घटी ३६, ३० पर ज्येष्ठा जन्म-नक्षत्रे घटी ४२, ५४ सूर्योदयात् घटी ५४, ५० श्रीगिरिधरलालजी सुत श्रीव्रजभूषणजी जन्म।

विवाह और सन्तति—महाराजश्री के विवाह का ठीक संवत् नहीं मिलता है, फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि—वह सं० १७८० के आस-पास हुआ होगा।

इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीव्रजकुँवरि वहूजी था*, जिनसे समयानुसार निम्नलिखित सन्तति हुई--

१ व्रजनाथजी प्राकट्य सं० १७८८ ज्येष्ठ शु० ७

२ मुरलीधरजी ,, ,, १७९१ वैशाख कृ० १२

महाराजश्री के द्वि० पुत्र मुरलीधरजी का छोटी अवस्था में और ज्येष्ठ पुत्र व्रजनाथजी का भी सं० १८२५ के लगभग नित्यलीला-प्रवेश हो गया।

व्रजनाथजी के तीन पुत्र हुए, जिनमें द्वितीय पुत्र कल्याण रायजी का छोटी अवस्था ही में देहांत हो गया और प्र० पुत्र विट्ठलनाथजी तथा तृ० पुत्र गोकुलनाथजी विद्यमान रहे। व्रजनाथजी लालव्रजनाथजी नाम से प्रसिद्ध हुए, पर यह कांकरोली के तिलकायित नहीं हो पाये। उनके गत हो जाने पर व्रजभूषणजी के एकमात्र अवलंब विट्ठलनाथजी ही थे। ऐसी अवस्था में व्रजभूषणजी कांकरोली में ही रहकर ठिकाने की रक्षा करते, और विट्ठलनाथजी प्रदेश-परिभ्रमण कर द्वारकाधीश के लिये सेवार्थ आवश्यक द्रव्य संगृहीत कर भेजा करते थे। इस समय जो पत्र व्रजभूषणजी महाराज ने प्रदेश में अपने पौत्र विट्ठलनाथजी को लिखे थे, वे बड़े महत्त्व-पूर्ण और इतिहास पर प्रकाश डालनेवाले हैं।

जैसा प्रथम कहा जा चुका है--यह महाराजश्री विद्याव्यसनी, कवि और विद्वान् थे।

ग्रन्थ-रचना और काव्य-प्रेम — कवि होने के कारण स्वभावतः ही यह काव्य-प्रेमी और कवियों के आश्रयदाता थे। सरस्वती-भंडार में इनके रचित निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—

१. नित्य-विनोद (हिन्दी)
२. नीति-विनोद (हिन्दी)
३. श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्यवार्ता (हिन्दी)
४. श्रीमदाचार्य-नामावली (संस्कृत)
५. श्रीबालकृष्ण-नामावली (संस्कृत)
६. श्रीवल्लभाचार्य और श्रीगुसाईंजी का सं० चरित्र (हिन्दी)
७. श्यामाश्यामलीला (हिन्दी)
८. गुणसागर (संस्कृत, षट्पदी)

* मनोहरदास-कृत गुजराती धोल। एवं केशवदास अभयराम-कृत पद (सर० भ० हि० १२।४)

इसके अतिरिक्त इनके बनाये हुए कितने ही कीर्तन-पद उपलब्ध होते हैं, जिनसे भावप्रियता और कल्पना-शक्ति के साथ कवित्व का परिचय मिलता है। इनके हस्त-लिखित तथा संशोधित कई ग्रन्थ विद्या-विभाग में संगृहीत हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि—यह लेखन-कला में भी दक्ष थे।

इन महाराजश्री को हिन्दी-कविता का बड़ा शौक़ था, अच्छे-अच्छे कवियों की कविता संगृहीत कर सुरक्षित रक्खा करते थे। एक ऐसा विशाल संग्रह विद्या-विभाग में विद्यमान है, जिससे कई अज्ञात कवियों की कविता का पता लगता है। काव्य के प्रेमी होने के साथ-साथ यह कवियों के आश्रयदाता भी थे। जयपुर-नरेश माधवसिंहजी का आश्रित बालकृष्ण*-नामक एक कवि कांकरोली उस समय आया था, जब महाराजश्री के पौत्र श्रीविट्ठलनाथजी का सं० १८११ में जन्म हुआ था। इस जन्मोत्सव के प्रसंग में पढ़े हुए उक्त कवि के कुछ पद्य प्राप्त होते हैं—

बैठक बजार बाग बानिक बनै है नीके नीके जरी बसन बिछायित सुहाई है।
गावे वर नारी बाजै नौबत उछाह भरी गोकुल की शोभा कांकरोली आइ छाई है॥
कहै 'बालकृष्ण' द्वारकेश को हुकुम श्रीगुसाइँ गिरिधर-नन्द हेम झर लाई है।
लाल व्रजनाथजू के विट्ठल जनम लीनो आज व्रजभूषण के मंदिर बधाई है॥१॥
एकन के करन कनक करे देखियतु, मुकता बिमल राजै एकन के कान है।
एकन के कंठन में राजत रतन कंठी, एकन के तन जरी बसन अमान है॥
कहै 'बालकृष्ण' श्रीगुसाईं व्रजभूषणजू भूपन बकसि कीनो सुजस सुजान है।
गउ द्विजपाल वही दीन को दयाल भयो लाल व्रजनाथ के, निहाल भौ जहान है॥२॥

एक बार काव्य-चर्चा छिड़ने पर एक ही समस्या पर महाराजश्री तथा बालकृष्ण

---

* बालकृष्ण कवि का मि० ब० विनोद पत्र ५००,७६३ मे नामोल्लेख है, और दोनों को एक ही बतलाते हुए कविता-काल स० १७२६ दिया है। इनकी नायक अल्ल और चरणदास का शिष्य बतलाया है। १ ध्यानमजरी, २ ग्वालपहेली, ३ प्रेमपरीक्षा, ४ परतीत-परीक्षा, ५ नेहप्रकाशिका—इनके रचित ग्रन्थ हैं। एतन्नामधारी अन्य कवि उक्त महाराजश्री के समसामयिक नहीं है, अत. इनका कविता-काल सं० १८०० के लगभग मानना चाहिये, क्योंकि उक्त पद्य स० १८११ की रचना है। अथवा यह उनसे अन्य होंगे।

कवि दोनों ने ही उसकी पूर्त्ति की थी। जिससे ज्ञात होता है कि—महाराजश्री में आशुकवित्व का भी गुण विद्यमान था।

इस काव्य-प्रेम के कारण अन्य कई कवि भी महाराजश्री की सेवा में उपस्थित होते रहते थे, बूँदीनरेश दुर्जनसिंहजी का आश्रित कवि छविनाथ कनौजिया * भी उनमें से एक था। जब यह महाराजश्री के पास कांकरोली आया, तब इसने निम्न-लिखित कवित्त पढ़कर सुनाया—

सुरन प्रकासे मंत्र विद्यनि वलित वल कलित सुमन हितकारी परदान है।
हरखि करन पर ठात कुमुदन सदा सेवित अनन्त भोगि-जोग भासमान है॥
'छविनाथ' कहै वेद धुनित भुवन धीर परम पुरुष गनै ज्ञानी जसवान है।
कैधौ ससि भान महाराज गिरिधरलालजी को नन्द कैधौं व्रजभूषन सुजान है॥

इस कवित्त के तीन अर्थ होते हैं, जिनका निर्देश व्रजभूषणजी ने अपने हस्त-लिखित संग्रह में किया है।

महाराजश्री जहाँ हिन्दी-कविता करते थे, वहाँ इनकी कवित्व-शक्ति संस्कृत में भी अप्रतिहत थी, इनकी बनाई हुई सौ से अधिक संस्कृत की षट्पदियाँ मिलती हैं। जिसका नाम 'गुणसागर' लिखा है। दुःख है कि—अभी तक इनका परिचय हिन्दी-साहित्य को प्राप्त नहीं हुआ।

कहना न होगा कि—कांकरोली-विद्या-विभाग के सरस्वती-भंडार का अधिकांश ग्रन्थ-संग्रह इनके समय में ही हुआ है।

महाराज श्रीव्रजभूषणजी को शास्त्रों का व्यसन था। वे सदा उनका परिशीलन किया करते थे। साम्प्रदायिक आकर ग्रन्थों में पारंगत विद्वान् होने के कारण कई

* छविनाथ का परिचय मिश्रबंधु-विनोद में नहीं दिया गया है। इनका जन्म-काल यद्यपि निर्धारित नहीं हो सका है, तथापि श्रीव्रजभूषणजी महाराज के शिष्य और समकालीन होने से इनका समय १७८५ से १८६० तक माना जा सकता है।

शिष्य इनके पास अध्ययन किया करते थे। उनमें से एक निर्भयराम भट्ट* भी थे, जो आगे चलकर इस सम्प्रदाय के एक मान्य विद्वान् हुए।

श्रीमथुरानाथजी के मन्दिर की स्थापना और बँटवारा

सं० १७९८ के मार्गशीर्ष शु० ५ को व्रजभूषणजी महाराज और उनके छोटे भाई वल्लभजी के साथ आपस में बँटवारा हुआ। उन्होंने वल्लभजी को मथुरानाथजी ठाकुरजी और सेवा-रागभोग के लिये जवास्या तथा वडाडडा ग्राम दिये, और मन्दिर तथा निवास-गृह बनाने को

* निर्भयरामजी नागर-जाति के ब्राह्मण, महाराजश्री व्रजभूषणजी के शिष्य और श्रीद्वारकाधीश के मुख्य परिचारक थे। इनके रचित अभी तक ये ग्रंथ मिलते हैं—

१ अधिकरण-संग्रह २ दशम स्कंध सुबोधिनी कारिकार्थ

३ उत्सवनिर्णय ४ आशौचनिर्णय

यह अपने गुरु व्रजभूषणजी महाराज के प्रति बड़ा गौरव रखते थे। अधिकरण-संग्रह के अन्त में इन्होंने इस प्रकार अपना उल्लेख किया है—

"श्रीमदाचार्यचरणवंशावतंसगोस्वामिश्रीव्रजभूषणानुचर निर्भयरामेण रचितोयमधिकरणसंग्रहः समाप्तः।"

आशौचनिर्णय के आदि-अन्त में निर्भयरामजी अपना परिचय ऐसा देते हैं—

श्रीद्वारकाधीशपदारविन्दं नत्वा सदाचारविचाररम्यम्.... ... .

आशौच-शुद्धद्ध्यै कुरुते निबन्धं विद्वज्जनो-निर्भयरामसंज्ञः ॥ १ ॥

"इति श्रीद्वारिकाधीश राजधानी कांकरोलीस्थ नागरज्ञातीय विश्वनगर वास्तव्य निर्भयरामभट्टकृत आशौचनिर्णयः समाप्तः॥

इससे विदित होता है कि—यह वीसनगर गुजरात के निवासी थे, यह धर्मशास्त्र के एक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे। गोस्वामिबालक तथा भट्टवर्ग में इनकी दी हुई शास्त्रीय व्यवस्था प्रामाणिक मानी जाती थी। सं० १८३६ आषाढ़ वदी २ को विट्ठलनाथजी के प्रति लिखे गये गोकुलनाथजी के पत्र से इसकी पुष्टि होती है। इसमें लिखा गया है कि—नाथद्वारा से माँग होने पर निर्भयरामजी द्वारा प्रदत्त धर्म-शास्त्रीय व्यवस्था वहाँ भेज दी गई है।

यह व्रजभूषणजी महाराज के समीप तो रहते ही थे, पर उनके नित्यलीला में प्रविष्ट हो जाने के बाद (सं० १८३३) भी कांकरोली में रहते थे, और इस घर के तिलकायितों के प्रति वही पूज्य भाव रखते थे। विट्ठलनाथजी के प्रति लिखे गये कांकरोली के पत्रों में गोकुलनाथजी बराबर इनके नमस्कार लिखा करते थे, सं० १८५० तक * के पत्रों में इनका नाम निर्देश मिलता है, अतः इस समय तक इनकी उपस्थिति में किसी प्रकार का विसंवाद नहीं है।

* सं० १८५० आश्विन शु० ३ के दिन लिखे गये विट्ठलनाथजी के प्रति गोकुलनाथजी के पत्र से।

मन्दिर के कुछ स्थान। इस पर वल्लभजी ने पाँड़े गोवर्धनजी द्वारा एक फारकती लिख दी *।

इस फारकती से यद्यपि ऐसा विदित होता है कि सं० १८९८ के पूर्व ही व्रजभूषणजी के पिता गिरिधरलालजी का गोलोकवास हो गया था ? अतएव आपस में यह दोनों भाइयों के बीच लिखी गई थी, अन्यथा इसमें पिता का उल्लेख होता, परन्तु पिता की उपस्थिति में ही उनकी आज्ञा से आपस में भाइयों के नाम यह लिखी गई थी ऐसा निश्चित होता है। अस्तु।

इतना निस्सन्देह कहा जा सकता है कि—इसी समय कांकरोली में श्रीमथुरेशजी का मन्दिर स्थापित हुआ और व्रजभूषणजी ने अपने भाई तथा मन्दिर के लिये चित्तौड़ इलाके का जवास्या, रायपुर का मोरडा और राजनगर का वडाडडा नामकग्राम दिया, तथाच श्रीद्वारकाधीश के मन्दिर के वगल में कुछ मकान भी।

श्रीद्वारकेशो जयति
श्रीमथुरेशो जयति

स्वस्ति श्रीगोस्वामि दादाभाई श्री ५ व्रजभूषणजीसु कनिष्ठ भ्रातृ चि० भाई वल्लभस्य नतयः। अपरच आपने मोपे कृपा करिके श्रीमथुरानाथजी की निधि मोकू दीनी और इनके राग-भोग मे गाम जवास्या इलाखे चितौड के तथा गाम मोरडा इलाखे रायपुर के दियो और हमारे हात खरच मे गाम वराडलो इलाखे राजनगर को दियो, और हमारे रेवे कू त० बैठक बनायवे कू आपके जूनी बैठक उपर की जग्या बताई सो यापे आप बनवाय देगे। और कोठा बाबत आपने दादाजी के पोढवे को हो सो हमकूं दियो श्रीमथुरानाथजी के मदिर कुं या वैठक के पास की पडतल जमीन बताई तलाव के ऊपर, तामे हम मदिर बनवाय लेगे। और या उपरात सकडाई पडे सो भट्ट श्रीकृष्णवारी जग्या हमने आप सू माग के जनाना के तॉई लीनी, और श्रीद्वारकानाथजी की सेवा की परचारगी वगैरे जो वहाँ के टिकेत आग्या करेगे सो हमारे बस को प्रतिपादन करेगो। हमारे तो मालिक यहाँ के आप है, सो आपकी छाया में हम बसे है। यह कार्य हमने हमारे घर मे बैठिके दोउ भाई ने मिलिके कर लियो सो यामे और कोई को बोलबे को कार्य नही। अथवा अत्र कोउ हमकू त० हमारे वसके कू कोई सिखावेगो तो वाकी सात पीढी नरकगामी होयगी। ओर हमारे घर को कोउ आपते द्वेष करेगो तो जन्म जन्म श्रीजी सू बहिर्मुख होयगो। यह फारखती हमने हमारी राजी खुशीसू प्रसन्नता सू लिख दीनी सो हमारे सदा सर्वदा मजूर है। द० पाडे गोवरधन के श्रीवल्लभजी की आज्ञा सू लिख्यो। सवत् १७९८ मार्गशीर्ष शुक्ल ५।

इद स्व हस्ताक्षरम्।

* स० १८०३ तक गिरिधरलालजी महाराज की उपस्थिति होने से अनुमान होता है कि—उन्होंने अपनी उपस्थिति मे ही दोनों भाइयों के नाम आपस मे बँटवारा करा दिया था

तिलकायितत्व—सं० १८०३ में पितृचरण गिरिधरलालजी (द्वि०) के गोलोकवास के अनन्तर यह तिलकायित-पद पर आसीन हुए। महाराणा जगतसिंहजी (द्वि०) ने इनके प्रति अपना गुरुघर का दस्तूर भेजा। तिलकायित होने पर व्रजभूषणजी महाराज अपने पिता के सामने ही प्रदेश-परिभ्रमण कर धर्म-प्रचार करने लगे। कथा-प्रवचन, उपदेश, व्याख्यान तथा विद्वत्ता के द्वारा इन्होंने साधारण जन-समाज में ही नहीं, प्रत्युत राजा-महाराजाओं में भी अच्छा सम्मान प्राप्त किया।

ऐसा कहा जाता है कि—इन्हीं ने अहमदाबाद के प्राचीन मन्दिर में, जो अब खाली पड़ा था, द्वारकाधीश का द्वितीय स्वरूप पधराया था, और उसकी भी व्यवस्था की थी।

जयपुर-नरेश माधवसिंहजी का शिष्य होना

महाराजश्री के साथ जयपुर-महाराज माधवसिंहजी का अच्छा घनिष्ट परिचय हो गया था। इस विषय में ऐसा प्रसिद्ध है* कि—सं० १८०३ के लगभग महाराणा जगतसिंहजी (द्वि०) के साथ जयपुर-नरेश जयसिंहजी के द्वितीय पुत्र माधवसिंहजी भी कांकरोली आये थे। महाराणा के स्वागत-सत्कार के बाद व्रजभूषणजी महाराज ने माधवसिंहजी का स्वागत करते हुए उन्हें 'आम्बेरपति' के विशेषण से संबोधित किया। इस पर माधवसिंहजी ने निवेदन किया कि—महाराज! मेरे बड़े भाई ईश्वरीसिंहजी इस समय वहाँ के राजा हैं, अतः मैं 'आम्बेरपति' कैसे हो सकता हूँ † ?

---

* १२० वचनामृत स० १८।

† महाराणा अमरसिंहजी की पुत्री चन्द्रकुँवरि का विवाह जयसिंहजी के साथ इस शर्त पर हुआ था कि इससे जो पुत्र हो, वही जयपुर का राजा बनाया जाय। जयसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंहजी का जन्म प्रथम रानी के गर्भ से सं० १७७८ में हुआ और सं० १७८४ मे द्वि० रानी चन्द्रकुँवरि के गर्भ से माधवसिंहजी का। इनके जन्म के समय महाराणा सग्रामसिंहजी विद्यमान थे, अत यह माधवसिंहजी के मामा और वे इनके भानेज लगते थे। जयसिंहजी ने अपने पुत्रों मे आपसी झगडा न होने देने के लिये मेवाड मे आकर सं० १७८५ चैत्र शु० ७ को महाराणा के द्वारा रामपुरा-नामक इलाक़ा माधवसिंहजी को दिलवा दिया था। (जयपुर का इतिहास)

सं० १७९० मे जगतसिंहजी (द्वि०) मेवाड़ के और सं० १८०० मे ईश्वरीसिंहजी जयपुर के राजा हुए। रामपुरा की जागीर मिल जाने के कारण माधवसिंहजी अपनी माता के साथ मेवाड़ मे ही रहने लगे थे।

पहिले रामपुरा मेवाड़ के अ तर्गत था और माधवसिंहजी को दिया गया था। बाद मे उन्होंने राजा होने पर इसे हुल्कर को दे दिया।

इस पर महाराजश्री के कुछ कहने के पूर्व ही महाराणा ने कहा कि—आपके श्रीमुख से जो वचन निकले हैं, वे अवश्य सत्य होंगे। तुम अवश्य ही आगे चलकर वहाँ के राजा होगे।

महाराणा के इस प्रकार के उत्साह-पूर्ण वाक्य सुनकर माधवसिंहजी को भी व्रजभूषणजी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। वे महाराणा के दीक्षा लेने के प्रसंग से परिचित भी हो चुके थे। इस कारण उन्होंने भी महाराजश्री से वैष्णव-धर्म की दीक्षा ली * और दातौली-नामक गाम (परगना रामपुरा) गुरुदक्षिणा में भेंट किया। इसका भेंट-पत्र सं० १८०४ आश्विन वदी १२ के दिन किया गया गया, जो इस प्रकार है—

श्रीरामजी

सिधि श्री महाराजाधिराज महाराजा श्रीमाधोसिंहजी देव वचनात आमिल प्रगना रामपुरा का दिसे सुप्रसाद वंच्या अप्रच मौ० दातौली प्रगना मजकूर की पुनि उदीक गुसाई व्रजभूषणजी ने गुरुदीखणा में चढ़ायो छै सो संवत् १८०४ का साल थे हासील पटै लेवा दीज्यो हरसाल सनद तलब करो मती भोग व लागत वीलगत सुधो श्रीरामा अरपण कीयो छै मीती आसोज बदी १२ सं० १८०४।

सं० १८०५ ज्येष्ठ शु० १३ के दिन सवाई महाराज माधवसिंहजी ने महाराजश्री को देवपुर तथा दातौली (मेवाड़, परगना रामपुरा) ग्राम प्रदान

राज्य-सम्मान

स० १८०४ कार्तिक शु० १ के दिन कोटा के महाराव दुर्जनसाल, महाराणा जगतसिंहजी (द्वि०) तथा माधवसिंहजी ने नाथद्वारा में मिलकर जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह पर इसलिये चढ़ाई की कि यह राज्य माधवसिंहजी को दिलाया जाय। दो-तीन बार आपस में सुलह और कुछ लेन-देन होते रहने पर अंत में सं० १८०७ में हुल्कर की फौज ने आक्रमण किया, जिससे हरगोविंद कामदार के धोखा दे देने पर ईश्वरीसिंहजी का सहसा देहान्त हो गया। अंत में उनके कोई संतान न होने के कारण माधवसिंहजी ही राजा हुए।

* सोभत व्रजभूषण महा वल्लभकुल को चंद।
कीन्हो जिनको मंत्र-गुरु माधव नृपति अमंद ॥ ५ ॥
(कवि छविनाथकृत 'माधव सुजस प्रकाश', तृ० प्रकाश सभावर्णन बहुधान्य संवत्सरे (?) उत्तरायणे शिशिरऋतौ फाल्गुने मासि कृष्णपक्षे एकादश्यां गुरुवासरे समाप्तः।)

किए और जिसका परवाना ज्येष्ठ शु० ५ सं० १८०६ में मुक़ाम उदयपुर से किया गया * ।

महाराणा जगतसिंहजी (द्वि०) ने महाराणी भटयाणी के द्वारा उदयपुर में बनवाए गए द्वारकानाथजी के मन्दिर की सेवा-पूजा के लिये साढ़े अड़तीस बीघा जमीन 'पेमारी सराय' की जमीन के बदले दी। जिसका पहिला ताम्रपत्र सं० १८०२ कार्तिक बदी ८ सोमवार के दिन किया गया था। महाराणा जगतसिंहजी (द्वि०) की इस रानी ने कांकरोली के गिरिधरजी महाराज से वैष्णव-दीक्षा लेकर सेवा के लिये उदयपुर में सं० १८०२ में द्वारकानाथजी का स्वरूप पधराया और मन्दिर बनवाया था।

इससे अनुमान होता है कि—सं० १८०२ में गिरिधरलालजी महाराज के समय यह जमीन भेंट आई और सं० १८०७ में व्रजभूषणजी को इसके बदले 'भटयाणी की सराय'-नामक स्थान में दूसरी जमीन दी गई।

---

* सही

श्रीसीतारामौ जयतः

महाराजाधिराज महाराजाजी

श्रीमाधवसिंहजी

सिधि श्री महाराजाधिराज महाराजा श्रीमाधवसिंहजी देव वचनात् प्रगना रामपुरा का''दसेसुप्रसाद रच्या। अपरच बाबति पुनि उदक गाव देवपुर तथा दातोली प्रगना रामपुरा को गुसाईं श्रीव्रजभूषणजी ने उदिक मे दीयो छे। वास्ते प्रवाना सवती के अरज पौची तीस्यौ थाने फुरमावांछा xxx सो वास्ते प्रवाना सवती के मिती जेठ बदी १४ संवत् १८०६ साल सवत् १८०५ मारफति भट सदाशिव की अरज पहुँची। हुकुम हुवो xxx गॉव देवपुर तथा दातोली प्रगना रामपुरा इसत साल स्यालू सवत् १८०६ थे प्रवानो सवती करिद्यौ गाँव तंन दरोवस्तमी१ सो चाहिजे दीवान सरकार का प्रवानो लिखो मिती सदर अरज मुकररपहुँची . ...मुकररा तनखहा पुनि उदिक गॉव देवपुर तथा दातोली xxx गॉव तन दरोवस्त मौजा .... मिती जेठ सुदी ५ सवत् १८०६ मु० बुदेपुर। (संक्षिप्त)

रजूदफत्र साह फतेचंद दीवान रजूदफत्र संगही नंदलाल दीवान

† ता० नं० ३१ श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादातु सही श्रीएकलिंगप्रसादातु

महाराजाधिराज महाराणा श्रीजगतसिंहजी आदेशात् ठाकुर श्रीद्वारकानाथजी रो देवरो राणी भीटयाणी करायो जठे प्रसाद तथा सेवग रा भाता सारू धरती हल १ एक री आगे पेमारी सराय माहेथी दीवाणी थी तीरे बदले भीटयाणीरी सराय माहेथी धरती बीघा ३८॥ साडा अढतीस मधे पीवल बीघा १८ अठारे साल मगरो बीघा २०॥ साढा बीस दीवाणी पेमारी सरायररी धरती हल १ री रो हासल भीटयाणी री सराय में लेसी। पेली तामापत्र सवत् १८०२ रा काती बदी ८ सोमे रो साह खुस्याल रे भंडार सोप्यो लागत बीलगत घर ठाम सुदी ऊदक आघाट करै श्रीरामा अरपण कीधी स्वदत्ता परदत्ता वा० प्रत दुए पंचोली हरकिसन लिखत पचोली गुलाबराय कान्होत सवत् १८०७ वर्षे असाढ बदी ४ सीनु।

उ० रा० इतिहास (ओझाजीकृत) पत्र ६४० में इसी विषय के शिलालेख का उल्लेख है।

सं० १८०७ में जयपुर के महाराजा सवाई ईश्वरीसिंहजी का देहान्त हो गया। उस समय उनके सौतेले भाई और राज्य-प्राप्ति के इच्छुक माधवसिंहजी मेवाड़ से जयपुर रवाना हुए। इस समय इन्होंने महाराज श्रीव्रजभूषणजी का ध्यान रक्खा और उन्हें भी अपने पूर्वप्रदत्त वचन के अनुसार राज्यारोहण के समय जयपुर आने का आमंत्रण दिया।

जयपुर-नरेश द्वारा राज्य-सम्मान

महाराजश्री जयपुर जाते हुए मार्ग में पौष कृ० ८ सोमवार को तीर्थस्नानार्थ पुष्कर ठहरे। उस समय इनके साथ ओझा जयकृष्ण के पुत्र दुर्गादास तथा उनके पुत्र खड्गसेन एवंच नरोत्तम और श्रीकृष्ण-नामक व्यक्ति थे। यहाँ महाराजश्री ने पुरोहित को दादा व्रजभूषणजी तथा गोपालजी के हस्ताक्षर देखकर वृत्ति-पत्र लिख दिया।

यहाँ से महाराजश्री जयपुर पधारे और वहाँ यथासमय महाराज माधवसिंहजी के राज्याभिषेकोत्सव में सम्मिलित हुए। इस समय उनका राज्य में अच्छा सम्मान हुआ और जयपुर-नरेश ने अच्छी विदाई प्रदान की।

जयपुर-महाराज के द्वारा प्रदत्त सम्मान के विषय में इस प्रकार प्रसिद्ध है*—

महाराजा माधवसिंहजो के आग्रह पर जब व्रजभूषणलालजी महाराज राज्याभिषेक के समय जयपुर पधारे, तब नगर की सीमा के पास 'मोती डूँगरी'-नामक स्थान पर जयपुर-नरेश ने उनकी अगवानी की और राजकीय सम्मान के साथ महाराजश्री को नगर में पधराया। राज्याभिषेक के दिन महाराजश्री की ओर से तिलक का योग्य दस्तूर किया गया।

नियमानुसार जब धार्मिक दीक्षा लेने का समय आया, तब माधवसिंहजी ने अपने परम्परागत अन्य गुरुओं की दीक्षा न लेकर व्रजभूषणजी महाराज से ही दीक्षा-प्राप्ति का आग्रह किया। इस पर उन्होंने कहा कि—आपके यहाँ परम्परा से जो दीक्षा होती चली आई है, वह अवश्य होनी चाहिए। परन्तु माधवसिंहजी के सर्व-प्रथम महाराजश्री की दीक्षा लेने का आग्रह बतलाने पर उन्होंने यह कहकर उनका समाधान किया कि—हमारी दीक्षा के बाद अन्य किसी की दीक्षा नहीं हो सकती। अतः प्रथम क्रमागत दीक्षा ले लेने के बाद आप मुझसे वैष्णव-धर्म की दीक्षा लें, जिससे मर्यादा-

* गिरिधरलालजी-कृत १२० वचनामृत सं० १८।

भंग भी न होगा और हम दोनों का अभिमत भी सिद्ध हो जायगा। अन्त में ऐसा ही हुआ और जयपुर महाराज ने अन्य दीक्षाएँ लेकर अन्त में महाराजश्री से दीक्षा ली, तथा दीक्षा लेकर उनका राजकीय सम्मान कर भेंट चढ़ाई * ।

इसी प्रसंग में यह भी लिखा मिलता है कि—अन्य राज्यगुरुओं को वैष्णव-धर्म की दीक्षा का प्रसंग ठीक नहीं जँचा। अतः उन्होंने महाराजा के हृदय में इस धर्म के लिये यह बात जँचाने की कोशिश की कि—इस धर्म के माननेवाले अपनी वार्तों और सिद्धान्तों को ही महत्त्व दिया करते हैं, और अन्य प्रामाणिक वातों को कुछ भी नहीं मानते।

इस वार्तालाप से महाराज के हृदय में कुछ संशय पैदा हो गया। एक दिन जब माधवसिंहजी ने महाराज व्रजभूषणजी से कथा सुनने के बाद चार प्रश्न पूछे, जिनमें देवता, पर्वत, नदी और तीर्थ कौन-से बड़े हैं? इसका समाधान चाहा था† । महाराजश्री ने धार्मिक सिद्धान्त और सम्प्रदाय, दोनो की विशेषता रखते हुए उत्तर दिया। जिससे उनके हृदय में वैष्णव-धर्म के प्रति और भी अधिक श्रद्धा जम गई।

व्रजभूषणजी महाराज के राज्याभिषेकोत्सव में सम्मिलित होने के बाद उनकी विद्वत्ता, सौजन्य एवं आशीर्वाद का माधवसिंहजी पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे महाराजश्री को बड़े आदर की दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने सं० १८०८ भाद्र कृ० ३ को शंकरपुरा उर्फ कालीवाटी में २०००) की लागत की जमीन और जयपुर खास में एक हवेली प्रदान की। पहिले इस गाम का हासिल राज्य के द्वारा ही वसूल होकर

---

* सं० १८०४ में गुरुदक्षिणा में प्रदत्त दातौली ग्राम के परवाना और इस प्रसंग से अनुमान होता है कि माधवसिंहजी ने काकरोली में प्रथम वार तथा जयपुर में दूसरी वार दीक्षा ली थी। ऐसा उनके राजतिलक के समय वैष्णव-धर्म के प्रति कट्टर आग्रह से संभव है।

† इस प्रश्नोत्तर का रूप श्रीगिरिधरलालजी (प्र०) और महाराणा जगतसिंहजी (प्र०) के प्रसंग में शिष्य होने के पहिले वर्णन किया जा चुका है। (देखो पत्र १३०)

इन्हीं महाराजश्री ने द्वारकाधीश की प्राकट्य-वार्ता में स्वयं इस प्रसंग का उल्लेख किया है कि—ये ही चार प्रश्न महाराजा माधवसिंहजी ने जयपुर जाने पर मुझसे भी किये थे, मुझे महाराणा जगतसिंहजी का उक्त प्रसंग याद था, अतः मैंने भी ये ही उत्तर दिये थे, जिससे माधवसिंहजी को भी सन्तोष हुआ था।

महाराजश्री को मिल जाता था, पर आगे चलकर सं० १८१५ के आषाढ़ शु० ७ के दिन माधवसिंहजी ने महाराजश्री के नाम ही कर दिया *।

महाराजा माधवसिंहजी द्वारा प्रदत्त गत चार-पाँच सालों के गामों के परवाना देखने से इस बात की पुष्टि होती है कि—व्रजभूषणजी पर उनकी पूर्ण श्रद्धा और विश्वास हो गया था। उन्होंने समझ लिया था कि—महाराजश्री के आशीर्वचन से ही मुझे 'आम्बेरपति' होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

अन्य ग्रामों का भेंट आना

सं० १८०७ में राजा दलेलसिंहजी † कुँवर रघुनाथसिंहजी ने कांकरोली आकर श्रीद्वारकाधीश की सेवा के लिये क़स्बा भांडेर परगना कोलेसर में ४०१ बीघा जमीन महाराज व्रजभूषणजी को प्रदान की।

दलेलसिंहजी के आषाढ़ वदी ४ सं० १८०७ के लेखपत्र पर नियमानुसार राज्य की कार्यवाही हुई और महाराजा माधवसिंहजी ने इसी वर्ष भाद्र० कृष्ण १२ के दिन मुकाम जैपुर में इसका परवाना कर दिया÷।

---

* श्रीरामजी
सही

श्रीसीतारामो जयति

श्रीमहाराजाधिराज सवाई माधवसिंहजी

सिधश्री महाराजाधिराज महाराजा सवाई श्रीमाधवसिंहजी देवचनात कमैती प्रगना सवाई जैपुर का दसेसुप्रसाद वच्या अपरच बाबति पुन्य उदिक गाँव गुसाई व्रजभूषणजी नै जो मुवाफिक यादिदासति मै दसखत खास दीवानयान करार मिती भादवा वदी ३ सम्वत १८०८ अरज पहौची उमेदवार पुन्य उदिक का तीह सु फुरमावाछाँ गाँव सक्करपुर उरफ कालीघाट तथा हवेली प्रगना सवाई जैपुर को रुपया २००० को दरोवस्त इस्तग मिती भादवा सुदी ३ सम्वत १८०८ थे सीगे उदिक के वहाल जाणि हासिल हवाले करिवो कीज्यो अर खहिता सु मौकूफ कीज्यो मुकररा गॉव तथा हवेली प्रगना सवाई जैपुर को रुपया दोय हजार को एक··· · मुवाफिक यादिदासति मै दसखत खास दिवानयान ·· ·· ·· · मिती असाढ सुदी ७ संवत १८१५ साल सम्वत १८१४ मुकाम सवाई जैपुर।

रजूदफ्त्र दिवान कन्हीराम। रजूदफ्त्र दिवान नंदलाल। रजूदफ्त्र संतोपराम मुस्तोफी हजुर।

(संक्षिप्त)

† यह रियासत जयपुर मे ठिकाना धूला के रावजी थे और महाराजा माधवसिंहजी के राज्यकाल मे सं० १८२४ की मावडा की लडाई में काम आये थे।

÷ नं० २१२ श्रीरामजी
सही

सीधि श्री राज्य दलेलसिंघजी कवर रघुनाथसिंघजी वचनात गुसाईजी श्रीवीरजभूषणजी अत्र धरती पून्य

सं० १८०८ (चैत्रादि) (श्रावणादि सं० १८०७) के आषाढ शु० ७ के दिन महाराणा जगतसिंहजी का देवलोक हुआ और उनके साथ रानी मिसाणीजी ने सहगमन किया। इस निमित्त महाराणा प्रतापसिंह (द्वि०) ने इसी दिन गद्दी पर बैठने के बाद * मार्गशीर्ष मास के वदी ९ गुरु के दिन द्वारकानाथजी के लिये भटयाणी की सराय में पुण्यार्थ ज़मीन प्रदान की † ।

उदीक बीघा ४०१ चारी सै एक कसबा भडारेज प्रगना बहात्री की चढाई.. ...स्यालू की बीघा साढातीन सै ३५० उन्हालू की बीघा इक्यावन ५१ सो धरती को हासिल आवे सो श्रीठाकुरजी नै भोग लगावै। मिती असाढ वदी ८ संवत १८०७

नं० २२५ श्रीरामजी

श्रीसीतारामो जयति

सही श्रीमहाराजाधिराज सवाई माधवसिंहजी

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजा श्रीसवाई माधवसिंहजी देववचनात कमैती प्रगना बहातरि का दसेसुप्रसाद वंच्या। अप्रचि बापति पुनि उदिक धरती बीघा ४०१ गुसाई व्रीजभूषणजी नै कसबा भाडेरज तथा कौलेसर प्रगना बहातरि का की जो मुन्यादि दासति में दसखत दीवानयान करार मिती सावण बदी १२ संवत १८०८ अरज पहुँची जो पुनि उदिक धरती बीघा ४०१ तीको प्रवानो दलेलसिंघजी राजावत को करार मिती असाढ वदी ४ सवत १८०७ को हाथि राखे छै अव प्रवानो सवती सरकार करायो चाहै छै संवत १८०८ की स्यालू थे बहाल जाणि हासिल हवाले करिवो कीज्यौ दीवान सरकार का प्रवानो लिखो मिती सावण सुदी २ साल संवत १८०७ आज मुकरर पहुची धरती बीघा च्यारि सै एक ४०१ साख स्यालू की बीघा साढा तीन सै ३५० उन्हालू की बीघा एकावन ५१

मु० यादिदासति मै दसखत खास वा दीवानयान। मिती भादवा वदी २ संवत १८०८ साल संवत १८०७ मुकाम सवाई जैपुर।

रजूदफत्र कन्हीराम दीवान रजूदफत्र दीवान हजूरि रजूदफत्र वखतराम मुस्तोफी हजूरि।

(संक्षिप्त)

* महाराणा प्रतापसिंहजी का जन्म सं० १७८१ भाद्र० कृष्ण ३ को और राज्यारोहण स० १८०८ आषाढ कृ० ७ को हुआ था। सम्भवत. इस समय व्रजभूषणजी उदयपुर उपस्थित नहीं हो सके, क्योंकि वे उस समय माधवसिंहजी के राज्याभिषेकोत्सव पर सम्मिलित होने के लिये जयपुर गये हुए थे। दो वर्ष बाद सं० १८१० माघ कृष्ण २ को महाराणा प्रतापसिंह (द्वि०) का देवलोक हो गया।

† ता० न० ३० श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादातु सही श्रीएकलिंगप्रसादातु

महाराजाधिराज महाराणा श्रीप्रतापसिंघजी आदेशात ठाकुर श्रीदुवारकानाथजी माजी मीसाणीजी रा देवरा रा सेवगाकस्य सरावरी वाडी री धरती बीगा ६।।।, १ ईखरे पुणा दस वीसवो एक महाराणाजी श्रीजगतसिंघजी संवत १८०७ रा असाढ सुदी ७ रे दीन वैकुंठ पधार्‌या साथे माजी मीसाणीजी सहेगवन कीधो जदी चढाई लागत सरब सुधी ऊदक आघाट करै श्रीरामाअरपण कीधी स्वदत्तां परदत्तां

सं० १८१२ ज्येष्ठ शु० ५ बुध को महाराणा प्रतापसिंहजी के बाद राजसिंहजी (द्वि०) * के राज्याभिषेक के समय व्रजभूषणजी महाराज उदयपुर पधारे और वहाँ गुरुघराने का दस्तूर किया।

इनके देवलोक हो जाने पर औरसपुत्र के अभाव में सं० १८१७ चैत्र कृ० १३ को जगतसिंह (द्वि०) के छोटे पुत्र महाराणा अरिसिंहजी गद्दी पर विराजमान हुए।

सं १८१० ज्येष्ठ शु० १३ के दिन व्रजभूषणजी तथा वल्लभजी की आपस के ऋण चुकाने पर वल्लभजी का लिखा हुआ एक पत्र मिलता है। इसमें लिखा है कि हम भाई २ जुदे हुए तब काकाजी गोपालजी के ठाकुरजी मथुरानाथजी तथा अन्य स्वरूप और ५ गाम व्रजभूषणजी ने हमको दिये और काकाजी को सब कर्ज की अदायगी में ग्यारह हजार रुपया हमसे दिलाया। यह झगड़ा श्रीमित्रवृन्दा माजी महाराज ने निवटवाया था। इसमें १ बडाडडा, २ गोपालपुरा, ३ जवास्या और ४ कोटा के गामडों तथा ५ देवाली नामक ग्रामों के नाम लिखे हुए हैं †।

वा .. . . . .प्रत हुए पंचोली देवकरण लिखत पंचोली गुलाबराय कान्होत सवत १८०८ वर्षे मागसेर वदी ६ गुरे।

* इनका जन्म सं० १८०० वैशाख शु० १३, गद्दीनशीनी सं० १८१० माघ कृ० २ और राज्याभिषेकोत्सव सं० १८१२ ज्येष्ठ शु० ५ को और कैलासवास स० १८१७ चैत्र कृ० १३ को हुआ।

† श्रीद्वारकेशो जयति

गोस्वामी

श्रीवल्लभलाल

लिखित वल्लभजी यह लिख्यो सही याते फिरे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी, श्रीद्वारकानाथजी, श्रीवल्लभदेव, श्रीविट्ठलनाथजी ते विमुख। सिध श्री लिखत गुसाई श्रीवल्लभजी श्रीगिरिधरलालजी सुत आगे हम भाई जुदे भये तब काकाजी गोपालजी के ठाकुरजी श्रीमथुरानाथजी तथा सरूप सब त० गाम ५ ताकी विगत

१ गाम वडारडो ... . १ गाम गोपालपुरो ...

१ गाम जवास्यो .... १ गाम गामडी कोटारो ... .

१ गाम देवाली कोटारी ... ...

५ गाम धरती सब दीनी अर करज काकाजी को सब भाई श्रीव्रजभूषणजी ने चुकायो। गाम सब छुडाय के हम कू सोपे अर रु० ११००१ अखरे रुपया हजार इग्यारे एक हम पास करज म्हे दीवाये या कजियो माजी श्रीमित्रवृन्दा वहूजी ने आगे रहके चुकायो तामे खत नामा चार सोप्या सो रुपिया खता प्रमाणे देना ... .

३०८०१, खत एक अडतीस से एकरो व्यास व्रजु गिरिधर रा नाम रो ... ...

इससे ज्ञात होता है कि--श्रीमथुरानाथजी ठाकुरजी के रागभोग में अधिक व्यय होने से काका गोपालजी के ऋण हो गया था। काका गोपालजी के व्रजभूषणजी महाराज के छोटे भाई वल्लभजी गोद बैठे और उन्होंने मथुरेशजी के मंदिर की व्यवस्था बाँधी। दोनों भाइयों ने आपसी वटवारा किया, और व्रजभूषणजी ने माजी मित्रवृन्दावहूजी को आगे रखकर वहुत-सा इनका ऋण चुकाया था। मथुरेशजी का प्रकरण आगे लिखा जायगा।

सं० १८११ आश्विन कृष्ण १४ को जयपुर-राज्य से वल्लभजी गोपालजी को प्राप्त लाखणपुरा ग्राम (परगना लालसोट) का दाखिलखारिज व्रजभूषणजी ने अपने नाम कराया, और महाराजा माधवसिंहजी ने इसका परवाना कर दिया *।

इससे अनुमान होता है कि—सं० १८१० में काकाजी गोपालजी का क़र्ज़ चुकाने

१८०१, खत एक अठारे से एक रो वहोरा रामकिसन रा नामरो··· ·· · ·· · ···········

३६४९, खत एक छत्तीस से गुण चाएयो व्यास पीताम्बर रा नामरो······· ··· ·· · · · ··

१७५०, खत एक सतरेसे पचास रो पाडे गोपाल रा नामरो················ ······ ····· ··

४ रु० ११००१ · · · ··

खत चार रुपया हजार ११००१, इग्यारेसे एक देणाया या पजरधपा तो भ्रम क्रम ते विमुख राजी वाजी होय के लिख्यो कर दियो लिखतं पंचोली रणछोड़राय जादुराय ए हुकुम थी छे ··· · ·· ··· ···

साख १ पचोली साँवलदास ताराचंदो सा ·· · ·········· · ················ ····

साख १ पंचोली सताखदास गुधावत · · ······ ········ ········· ······ ·

जेठ सुदी १३ संवत १८१० के वर्षे।

* नं० २३१ श्रीरामजी

सही श्रीसीतारामो जयति

श्रीमहाराजाधिराज सवाई माधवसिंहजी

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजा श्रीसवाई माधवसिंहजी देव वचनात कमैती प्रगना लालसोट का दसेसुप्रसाद वच्या अप्रचि त्रावति पुन्य उदिक गाव लाखणपुर प्रगना लालसोट को गुसाई श्रीव्रिजभूषणजी नै त्याह कै वास्तै मुवाफिक यादिदासति मै दसखत दिवानयान करार मिती सावण सुदि १० सवत १८११ अरज पहौची पुन्य उदिक गाव मजकूर वलभ गोपाल को गुसाईनाथजी दुवाराको मुवाफिक प्रवानै सवती करार मिती पोस वदि ११ सवत १८०८ का थे पावै सो हासिल गाव को सवत १८१० ताई पायो अब प्रवानो सवत १८११ थे गुसाई श्रीव्रिजभूषणजी कै नाय करावा को उमेदवार तीह सूं फुरमावाछा इसतग मिती भादवा सुदि ३ सवत १८११ थे गुसाई श्रीव्रिजभूषणजी कै नाय बहाल जाणि हासिल हवालै करिबो कीज्यो अर गुसाई वलभजी सो मोकूफ कीयो छै गुसाई श्रीव्रिजभूषण कै नाय प्रवानो सवती करो गुसाई वलभजी सौ मौकूफ सो चाहिजेय दिवान सरकार का प्रवाना लिखै मिती भादवा सुदि ८ संवत १८११

के बदले में जयपुर रियासत के गाम व्रजभूषणजी ने वल्लभजी से लेकर अपने नाम करवा लिये, और आपसी लिखापढ़ी के कारण जयपुर-राज्य ने भी उन नामों पर व्रजभूषणजी का अधिकार स्वीकार कर लिया।

सं० १८१० माघ वदी २ को महाराणा राजसिंहजी (द्वि०) की गद्दीनशीनी और सं० १८१२ (श्रावणादि) ज्येष्ठ शु० ५ को राज्याभिषेकोत्सव हुआ। महाराणा ने इस समय सुवर्ण का तुलादान किया और बड़ा भारी उत्सव मनाया।

इस उत्सव में कांकरोली से महाराजश्री को आमंत्रण आया और उन्होंने उपस्थित होकर अपने गुरुघर के द्वारा महाराणा को तिलक किया। महाराणा ने महाराजश्री का यथायोग्य सत्कार किया और वैष्णव-धर्म दीक्षा लेकर कंठी बँधाई।

सं० १८१४ वैशाख शु० १५ भौम को रावतजी सवाई मेघजी ने व्रजभूषण-जी महाराज से ५०० रु० मूल्य की एक हथिनी मोल लेकर मूल्य के साथ ग्राम चमनपुरा भेंट किया *।

सं० १८१५ माघ कृष्ण ११ बुध के दिन महाराणा राजसिंह (द्वि०) ने महाराज

अरज मुकररा पहौची मुकररा गाँव एक .... 'मुवाफिक यादिदासति में दसखत खास दिवानयान . ...

मिती आसोज विदी १४ संवत १८११ मुकाम कसबा सवाई जैपुर।

रजूदफत्र कन्दीराम दीवान। रजूदफत्र फतेराम दीवान। रजूदफत्र हरिचद मुसतोफी हजूरी।

* ता० नं० २४

श्रीसुद्रसेणजी

राम

सही

सीधश्री माहाराजधराज माहाराजा श्रीरावतजी श्रीसवाई मेघजी वचनात गुसाई श्रीव्रजभूषणजी री हथणी एक १ मोल लीधी जणीरा रुपीया ५०० पाच सै तो रोकडा हथणी का मोलै का दीधा गाम चमनपुरा ताँबापतर करै दीधो गाम की लागत बीलगत की कोडी एक री कदा खेचल हेसी नहीं आपदत्त प्रदत्त जे .. . प्रसांहास वा चद। लखता साहा अनोपामोगरा मती बसाक सुद १५ भौमे समत १८१४ वरषे तामापतरे उदक माह करै दीधो।

को ग्राम सांगट (परगना मगरा) भेंट किया, संभवतः यह ग्राम प्राचीन वैष्णव-दीक्षा की गुरुदक्षिणा के रूप में भेंट किया गया है*। इस समय महाराणा ने एक शिलालेख भी लगवाया।

कांकरोली ठिकाने के लिये यह प्रथम ही अवसर था, जब महाराणा की ओर से इस प्रकार का शिलालेख किया गया, जिससे यहाँ के महाराजश्री और उनके आश्रित व्यक्तियों के ऊपर दूसरे ठिकाने का हस्तक्षेप रोका गया हो। आगे चलकर इसी लेख की वजह से इस ठिकाने के लिये स्थानीय शासन प्राप्ति का सूत्र-पात हुआ।

सं० १८१८ श्रावण वदी ६ के दिन जयपुर-नरेश माधवसिंहजी ने संकल्प कर परगना टोडा रायसिंह में गाम वडवास का परवाना महाराजश्री को भेंट किया†,

---

* ता० नं० १६ श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादातु श्रीएकलिंगप्रसादातु

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीराजसिंहजी आदेशात गुसाई श्रीव्रजभूषणजीकस्य गाम सागट प्रगणे मगरारे उदक आघाट लागत वीलगत सुधी रामाअरपण कीधनो प्रत दुए लीखता पंचोली एकलिंग दास रायचंदोत सवत १८१५ वर्षे माहा वीद ११ बुधे।

† नं० २१६ श्रीरामजी श्रीरामजी श्रीसीतारामो जयति

सही श्रीमहाराजाधिराज सवाई माधवसिंहजी

सिधिश्रीमाहाराजाधिराज महाराजाश्री सवाई माधवसिंघजी देव वचनात कमैती प्रगना टोडा रायस्यंघ का दसेसुप्रसाद वच्या अपरच वावति उदिक गाँव गुसाईजी श्रीव्रिजभूषणजी ने मारफति राजा हरसहाय की मिती असाढ वदी २ साल सवत १८१७ अरज पहौंची जो गॉव वरवास प्रगना टोडा राय स्यघ को ईवतदाय साख स्यालू स'वत १८१८ थे उदिक दीन्हौ तीको प्रवानूं सवती करायो चाहे तीह सूं फरमावाछा गाँव वरवास प्रगना टोडाराय स्यंघ को इवतदाय साख स्यालू संवत १८१८ थे सीगे उदिक कै वहाल जाणि हासिल हवाले करिवो कीज्यो सो हुकुम हुआ मुवाकिफ लिखे प्रवानूं सवती लिखे सो चाहिजे जो दिवान सरकार का प्रवानां सू० लिखै मिती असाढ सुदी १४ साल संवत् १८१७ अरज मुकररा पहोची मुकररा गांव एक ·· · ·· ····· · ···मुवाकिफ यादिदासति मै राजा हरसहाय दिवानयान। मिती सावण वदी ६ संवत १८१८ साल सवत १८१७ मुकाम वणपुरा।

रजूदफत्र दिवान कन्हीराम — रजूदफत्र दीवान नंदलाल — रजूदफत्र संतोपराम मुस्तोफी हजूरी

जिसको प्राप्त करने के लिये आषाढ़ वदी २ को राजा हरसहाय* के द्वारा अर्ज मालूम की गई थी।

सं० १८२१ ज्येष्ठ शु० १३ मुक़ाम जयपुर से महाराजा माधवसिंहजी ने महाराजश्री के ठाकुरजी द्वारकानाथजी के भोग के लिये गाँव सुखानन्दपुरा (परगना मलारणा) भेंट किया, इस ग्राम के लिये राजा हरसहाय ने ज्येष्ठ सुदी १ सं० १८२१ को अरजी दी और सं० १८२२ से इसका हासिल हवाले करने का उल्लेख किया गया†।

सं० १८२१ ज्येष्ठ वदी १३ को सवाई महाराजा माधवसिंहजी ने जयपुर नगर में महाराजश्री के लिये परशुराम पंड्या के नाम से प्रसिद्ध एक हवेली भेंट की‡।

* राजा हरसहाय खत्री महाराजा के प्रधान थे और यह सं० १८२४ मावडा की लड़ाई में काम आये थे। इन के द्वारा इस विषय में विनय करने से यह भी विदित होता है कि—उनका महाराजश्री से अच्छा परिचय था। यह भी वैष्णव थे।

(सच्छिप्त)

† श्रीरामजी

सही

श्रीसीतारामो जयति

श्रीमहाराजाधिराज सवाई माधवसिंहजी

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजा श्रीसवाई माधवसिंहजी देव वचनात कमैती प्रगना मलारणा का दसेसु प्रसाद वंच्या अपरंच बाबति भोग गाव गुसाईजी श्रीव्रभूषणजी ठाकुर श्रीद्वारकानाथजी का भोग ने जो मारफति राजा हरसहाय की मिती जेठ सुदि १ साल संवत १८२१ अरज पहौंची भोग चाहे तीह सूं फरमावाछा गाव सुखानदपुरो प्रगना मलारणा सो हुकुम हुवा गाव एक तनसाली ना रुपया १००० को सीगे भोग के द्यौ इवतदाय साख स्यालू संवत १८२२ थे तीको प्रवानो सवती लिखो गाव सो चाहिजे दीवान सरकार का प्रवानो लिखौ मिती जेठ सुदी ६ साल सवत १८२२ अरज मुकररा पहूँची मुकररा तनसालीना रुपया एक हजार कौ एक ” · · ··· ’ मुवाफिक याददासति मे दसखत राजा हरसहाय वा दीवानयान मिती जेठ सुदी १३ साल संवत १८२१ मुकाम सवाई जैपुर।

रजुदफत्र	रजुदफत्र	रजुदफत्र
दीवानराय गुरसहाय	दीवान बालचद	सेवाराम मुसतोफी हजूरी

(सच्छिप्त)

‡ नं० २३८ श्रीरामजी

सही श्रीसीतारामो जयति

श्रीमहाराजाधिराज सवाई माधवसिंहजी

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजा श्री सवाई माधवस्यघजी देव वचनात कमैती कसवा सवाई जैपुर का

इस विषय में ऐसा कहा जाता है कि—जयपुर पधारे पर महाराजश्री का वहाँ कुछ समय तक निवास होता था। स्वकीय स्थान न होने से ठहरने आदि की असुविधा को मिटाने के लिये राजा हरसहाय ने जयपुर-नरेश से निवेदन कर यह स्थान महाराजश्री के लिये दिलवाया था।

सवाई पृथ्वीसिंहजी* के समय में संगही जीवराज ने गोवर्द्धननाथजी का एक मन्दिर जयपुर में बनवाया, और इसके रागभोग के लिये रु० २५०० का गाम भटोंघा परगना हिडोंणी महाराज व्रजभूषणजी के अधिकार में कर दिया। महाराजा पृथ्वीसिंहजी ने इसकी स्वीकृति सं० १८२४ श्रावण वदी १० के दिन दी थी †।

दसेसुप्रसाद वंच्या अपरंच बाबति पुन्य हवेली गुसाईं जी श्रीव्रजभूषणजी ने जो मारफति राजा हरसहाय की मिती जेठ सुदी १ साल सवत १८२१ अरज पहौची जो कसबा सवाई जैपुर मै परसराम पडा की हवेली पुन्य उदिक के सीगै चाहै तीह सू फुरमावाछा हवेली कसवा सवाई जैपुर मे छै सो मागि पुन्य कै जाणि हवालै कीज्यो सो हुकुम हुआ सीगे पुन्य कै प्रवानू सवती लिखो सो चाहिजै दीवान सरकार का प्रवाना लिखै मिती जेठ सुदी ८ साल सवत १८२१ अरज मुकरर पहौची मुकररा हवेली एक .... मुआफिक यादिदासति मै दसखत राजा हरसहाय वा दीवानयान ....मिती जेठ सुदी १२ साल संवत १८२१ मुकाम सवाई जैपुर।

रजूदफत्र दीवान राय गुरसहाय — रजूदफत्र दीवान बालचद — रजूदफत्र सेवाराम मुसतोफी हजुरी

(संक्षिप्त)

* स० १८२४ के अत मे सवाई माधवसिंहजी के वैकुंठवास हो जाने पर महाराजा पृथ्वीसिंहजी पाँच वर्ष की अवस्था मे राजसिंहासन पर बैठे। यह १५ वर्ष की अवस्था में ही वैकुंठवासी हो गये। बाद मे इनके छोटे भाई प्रतापसिंहजी सं० १८३४ मे जयपुर के राजा हुए।

† श्रीरामजी

सही श्रीसीतारामो जयति

श्रीमहाराजाधिराज सवाई पृथ्वीसिंहजी

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजा श्रीसवाई पृथ्वीसिंहजी देव वचनात कमैती प्रगना हिडोणि का दसेसुप्रसाद वंच्या। अपरच बावति भोग गाँव ठाकुर श्रीगोरधननाथजी विराजमान कसवा सवाई जैपुर मे मंदिर संगही जीवराज वणायो तीठै त्याकै सेवा गुसाईजी श्रीव्रजभूषणजी करै त्याकै वास्ते मुवाफिक यादिदासति मै दसखत दीवानयान करार मिती सावण वदि ७ संवत १८२४ अरज पहौची भोगनै चाहै तीह सूं फुरमावाछां सालीना वसूली रुपया '२५०० इवतदाय मिती असाढ वदी ६ साल संवत १८२४ ये तीमै गाँव पटोघा प्रगना हिडोणि को तन वसूली रुपया पचीसै मै दरोवस्त इवतदाय संवत १८२५ थे

सं० १८२७ कार्त्तिक वदी ९ के दिन महाराजा पृथ्वीसिंहजी ने १० बीघा जमीन का परवाना कर दिया। यह जमीन माधवसिंहजी (प्र०) की महारानी माजी चौंडावतजी के मन्दिर श्रीविट्ठलनाथजी के शाकपान के लिये खास जयपुर में भेंट की गई थी।

सं० १८२७ मार्गशीर्ष वदी १० के दिन महाराजा पृथ्वीसिंहजी ने व्रजभूषणजी के नाम गाम चतरपुरावास नेवटा तथा खोह परगना जयपुर का परवाना कर दिया *।

सीगै भोग के जाणि हासिल हवालै करिबो की ज्यो' मिती प्रथम सावण वदी ८ साल संवत १८२४ अरज मुकरर पहोंची मुकररा गाव मजकूर तन वसूली रुपया २५०० मै दरोवस्त एक' ·· · इवतदाय मिती असाढ वदी ६ साल संवत् १८२४ लगायत मिती भादवा सुदी २ साल संवत् मजकूर ताई की वरात हजूर मै पासी।

मुवाफिक याद्दिदासति मै दसखत खास वा दीवानयान।

मिती सावण वदी १० साल संवत १८२४ मुकाम सवाई जैपुर।

रजूदफत्र दीवान राय गोविन्द सहाय

रजूदफत्र दीवान रतनचद

रजूदफत्र स्यौवचंद मुसतोफी हजूरी

(संक्षिप्त)

* श्रीरामजी

सही

श्रीसीतारामो जयति

श्रीमहाराजाधिराज सवाई पृथ्वीसिंहजी

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजश्री सवाई पृथ्वीसिंहजी देव बचनात कमैती प्रगना सवाई जैपुर का दसेसुप्रसाद वच्या अपरच्च वावति भोग गाँव ठाकुर श्रीगोवरधननाथजी विराजमान मदिर माजी श्रीचौंडावतिजी को जनाना डयोढी ज्यो की सेवा पूजा गुसाईजी श्रीव्रजभूषणजी की तरफ सूँ गोवरधनदास करै त्याकै वास्त मुवाफिक याद्दिदासति मै दसखत दिवानयान करार मिती माग्यश्र वदी ५ सवत १८२७ अरज पहोंची जो भोग नै गाँव चतरपुरावास नेवटा तथा खोह प्रगना सवाई जैपुर की भोमि सीगा सुधा मुवाफिक प्रवाने सवती करार मिती काती वदी २ संवत १८२६ का थे पावे सो हासिल गाँव को संवत १८२६ ताई पायो अव इवतदाय साख स्यालू सवत १८२७ थे एवज गाँव रामरुपधापुरावास लालवास तथा रामगढ प्रगना सवाई जैपुर की भोमि वगैरह सुधा करायो चाहै तीह सूं फुरमावाछा गाव सवाई जैपुर को मौजा इवतदाय साख स्यालू संवत १८२७ थे सीगे भोग के जाणि हासिल हवाले करिबो कीज्यो सो दसखत खास हुकुम हुवा मुवाफिक लिखे छौ तीको प्रवानू सवती लिखो सो चाहिजे दीवान सरकार का प्रवाना लिखै मिती माग्यश्र वदि ८ सवत १८२७ अरज मुकरर पहोंची मुकरर गाव मजकूर भोमि वागैरह सुधा दरोवस्त एक '१' ···· · ·· ··· · ······ · 'मुवाफिक याद्दिदासति मैं दसखत खास दीवानयान. मिती मागिश्र वदी १० सवत १८२७ मु० सवाई जैपुर।

रजूदफत्र दीवान रतनलाल.

रजूदफत्र दीवान नन्दलाल.

रजूदफत्र सिवचन्द मुस्तोफा हजुरि.

(संक्षिप्त)

यह गाम गोवर्धननाथजी की सेवा-पूजा के लिये भेंट किया गया। गोवर्धननाथजी का यह मन्दिर माजी श्रीचौंडावतजी ने स्थापित किया था, और जनानी ड्योढी में था। इस गाम के लिये दीवान रतनलाल व नन्दलाल ने अर्ज की थी। इस मन्दिर की सेवा-पूजा महाराजश्री की तरफ से महता गोवर्धनदास जगन्नाथ का पुत्र करता था। उक्त गाम रामसिंह पुरावास लालूवास तथा रामगढ परगना जयपुर के वदले दिया गया है।

इससे विदित होता है कि—माजी चौंडावतजी ने गोवर्धननाथजी का मन्दिर अपने लिये वनवाया था और उसमें पुष्टिमार्ग की पद्धति से सेवा-पूजा होती थी। यह मन्दिर सं० १८२६ के पूर्व वन गया था, क्योंकि उक्त सं० की कार्त्तिक वदी २ तक की हासिल मिल चुकी थी। इस मन्दिर की स्थापना से यह और भी निश्चित होता है कि पुष्टिमार्गीय वैष्णव-धर्म की दीक्षा का प्रभाव राजवंश के पुरुषों तक ही सीमित नहीं था, प्रत्युत रानियों ने भी इसकी दीक्षा लेकर इसे अपने उद्धार का मार्ग माना था। (परवाना नं० २२७)

सं० १८२८ ज्येष्ठ शुक्ल में महाराणा जगतसिंहजी (द्वि०) की पुत्री श्रीरत्न-कुँवरि वाई * श्रीप्रभु के दर्शनार्थ कांकरोली आई, और उन्होंने महाराजश्री को गुरु वनाकर वैष्णव-धर्म की दीक्षा और समर्पण (ब्रह्म-सम्बन्ध) ज्येष्ठ शु० ५ को लिया। गुरु-दक्षिणा में इन्होंने महाराजश्री को ख़ूब भेंट की, जिसका उल्लेख महाराजश्री ने पत्र† में किया है। इस दीक्षा से महाराजश्री का सम्मान जोधपुर-

* इनका विवाह स० १७९१ में वख्तसिंह (जो पीछे से जोधपुर के महाराजा हुए) के कुँवर विजयसिंह के साथ हुआ था। विजयसिंह ने इस विवाह के सम्बन्ध में महाराणा को लिखा था कि मैं आपका सेवक और वालक हूँ। आपकी आज्ञा पर वीस हज़ार राठौरों के साथ मेरा सिर आपके काम के लिये तैयार है। मेरे वंशज आपकी आज्ञा का पालन करेंगे और इस विवाह से जो पुत्र होगा, वह राज्य का स्वामी होगा, यदि कन्या होगी तो उसका विवाह मुसलमानों से नहीं करूँगा, (उ० र० इ० ६४०)

† प्राचीन पत्र—

श्रीद्वारकेशो जयति

श्रीमद्वारातीपादपद्मसेवनसमये स्मर्यते भवान्

भगवत्सेवकानां नतयः

स्वस्तिश्रीव्रजभूषणाना चिरंजीवि वेटा विठलनाथ कें आशीर्वाद। शमत्र तत्रास्तु अपरच।

राजाओं के यहाँ भी होने लगा और भी कई राजा आगे चलकर इस संप्रदाय के शिष्य हुए। आगे चलकर रत्नकुँवरि के भाई प्रतापसिंह और अरिसिंह क्रमशः महाराणा हुए।

सं० १८२८ में महाराणा अरिसिंहजी की भुआ श्रीरूपकुँवरि बाई ने रूपशिरोमणि ठाकुरजी का मन्दिर बनवाया और उसकी पुष्टिमार्गीय प्रकार से महाराज श्रीव्रज-भूषणजी के द्वारा प्रतिष्ठा कराई। सेवा और रागभोग का समस्त प्रबन्ध महाराजश्री को ही सौंपा गया, और ठाकुरजी के रागभोग के लिये १२१ बीघा जमीन लगा-कर आषाढ कृ० ७ सोम के दिन उसका ताम्रपत्र किया जाकर भेंट हुआ *।

इससे मालूम पड़ता है कि इन महाराजश्री के समय उदयपुर में वैष्णवता का अच्छा प्रसार हुआ, और महाराणा तथा उनके अन्तःपुर में भी ठाकुरजी की सेवा-पूजा का भाव प्रचलित हुआ।

सं० १८२८ चैत्र वदी १३ के दिन महाराणा नाथद्वारा गये। उस समय गोडवाड परगने का झगड़ा मिटाने के लिये वहाँ महाराजा विजयसिंह (जोधपुर), महाराजा

(घरू समाचार के बाद)

रतनकुँवरि बाई समर्पण पाए जेष्ठ शु० ५ के मगला समै। रु० ४००० हजार चारि रोकड़ भेट कै सो तोकैं करै। तेरी भेट मेरे पास है। तेरी दादी के १०० रु०, तेरी मा के १०० रु०, तेरी बहू के ५० रु० कीये। रु० १५० सेवकी दिये। हीरा को पेच, मोती की माला। २०० रु० दोइ सै सामग्री के दीये। या भाँति किये। केसरि ते न्हवाए। मारवाड़ि मे रु० ८०००० की जागीर है। तहाँ को गाम एक भेट करे। राणाजी की बेटी करै तेसी करी। जैपुर ते रुपये की थार रु० ४०० की आई, लगर पाँव के हीरा के तेरी दादी के भेट आई। देश वार्ता लिखी नहीं जात। ... कुशल पत्र पठवनो। ...
मिती जेष्ठ शुक्ल १० गुरौ १८२८।

* ता० न० ५० श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादातु श्रीएकलिंगप्रसादातु

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीअरिसिंहजी आदेशात गुसाई श्रीव्रजभूषणजी जोग भुआजी रूपकुँवरि बाई सराय देवरी करायो सो सराय सराय साथेरी धरती तथा गाम बाहर बाडी १ एक ठाकुर श्रीरूप-सिरोमणिजी रे बालभोग सामगरी सारू चडायो सो अणी जायगा रो हासल वेसी सो श्रीठाकुरजी चडेगो अणी जायगा बाबत दरबार थी चोलण कदी वेगा नहीं। बीगत सराय री साथेरी धरती बीघा १२१ . . गाम बाहर बाडी पडगने... प्रत दुए पंचोली कीसनराय लीखत पचोली गीरधरलाल गुलाबोत सवत १८२८ की असाढ वदी ७ सोमे।

(रूपकुँवरि बाई महाराणा सग्रामसिंहजी की द्वितीय पुत्री और महाराणा जगतसिंहजी की बहिन थीं।)

गजसिंह (बीकानेर) और महाराजा बहादुरसिंह (कृष्णगढ़) एकत्रित हुए। यह झगड़ा तय नहीं हुआ, और महाराणा कांकरोली आये। यहाँ से दर्शन कर वे उदयपुर गये।

सं० १८२९ पौष वदी २ के दिन ताम्रपत्र कर महाराणा अरिसिंहजी ने मेण्या गाम (परगना मोही) भेंट किया *। इस गाम के भेंट आने के पूर्व श्रावण मास में एक घटना घटी, जिसका उल्लेख आगे किया जा रहा है।

सं० १८२९ चैत्र वदी १ के दिन महाराणा अरिसिंहजी के कैलासवास हो जाने पर तृतीया के दिन महाराणा हम्मीरसिंहजी† का राज्याभिषेक हुआ। इस समय महाराणा की अवस्था छोटी थी। इनके राज्याभिषेक के समय व्रजभूषणजी महाराज उदयपुर पधारे और वहाँ उन्होंने परम्परा-प्राप्त गुरुघराने का दस्तूर किया। महाराणा ने भी वैष्णव-धर्म की दीक्षा लेकर सं० १८३० में मांडावाडा-नामक ग्राम भेंट किया, और सं० १८३० भाद्र० सुदी ३ शुक्रवार को उसका पट्टा कर दिया‡।

---

* ता० न० १० श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादातु श्रीएकलिंगप्रसादातु

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीअरिसिंहजी आदेशात गुसाई श्रीव्रजभूषणजी जोग गाम मेण्यो परगने मोही रे ऊपत रुपया १५०० पनरेसे री तीरो उदक आघाट करे श्रीरामा अरपण करे दीदो लागत बीलगत सरव सुदी स्वदत्तं परदत्ता ...... प्रत दुए पचोली कीसन राय लीखत पचोली गीरधरलाल गुलाबोत सवत १८२६ वर्षे पोस वदी २ सुक्रे।

† इनका जन्म स० १८१८ ज्ये० शु० ११ (अनुमान), राज्याभिषेक सं १८२६ चै० कृ० ३ तथा कैलासवास स० १८३४ पौ० शु० ८ को हुआ।

‡ ता० नं १५ श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादातु श्रीएकलिंगप्रसादातु

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीहमीरसिंहजी आदेशात गुसाई श्रीव्रजभूषणजी जोग गाम माडावाडो पडगने बारासट रे ऊपत रुपया ६०० छ सो महे तीरो ऊदक आघाट करे श्रीरामा अरपण करे लागत बीलगत सरव सुदी करे दीदो सो चोलण वेगा नहा स्वदत्ता परदत्ता वा .... प्रत दुए पचोली कीसनराव लीखतं पंचोली गीरधरलाल गुलाबोत स वत १८३० वर्षे भादवा सुदी ३ सुक्रे।

वैशिष्ट्य—महाराजश्री के समय उदयपुर और जयपुर के राजसिंहासन पर विविध * राजाओं के आसीन होने से इस समय जो राजनैतिक परिवर्तन हुए, उनका प्रभाव महाराजश्री के व्यक्तिगत जीवन तथा संस्थान की स्थिति पर पड़े विना कैसे रह सकता था ? इस समय घटनेवाली घटनाओं का उल्लेख आगे किया जायगा। पर इतना कहना पड़ेगा कि—इन महाराजश्री को सामयिक परिस्थितियों का जितना सामना करना पड़ा उतना किसी को भी नहीं। यह एक सौभाग्य की बात है कि—कांकरोली के ठिकाने में उस समय एक ही महाराजश्री विद्यमान रहे, अन्यथा यहाँ की तात्कालिक स्थिति क्या होती, यह कहना कठिन है। इन महाराजश्री का नाम 'नीतिवाले व्रजभूषणजी' था। अतः वास्तव में उस समय की भयंकर परिस्थितियों से गुज़रते हुए अपने स्थान को सुरक्षित रखना इनके ही नीति-चातुर्य पर अवलंबित था।

राजनैतिक परिस्थितियाँ

महाराज श्रीव्रजभूषणजी के समय मेवाड़ की परिस्थिति बहुत कुछ अस्त-व्यस्त हो रही थी। ओझाजी-कृत उदयपुर-राज्य के इतिहास और महाराजश्री के तात्कालिक पत्रों के अधार पर सम्मिलित रूप में उसका वर्णन कर देना अप्रासंगिक न होगा।

महाराणा जगतसिंहजी के समय से मेवाड़ में मरहठों ने घुसकर उत्पात मचाना

---

* इनके समय में निम्न-लिखित महाराणा क्रमशः उदयपुर की गद्दी पर बैठे—

१	महाराणा	संग्रामसिंहजी	(द्वि०)	जन्म	१७४७	राज्य	१७६७	देव०	१७९०
२	,,	जगतसिंहजी	,,	,,	१७६६	,,	१७९०	,,	१८०८
३	,,	प्रतापसिंहजी	,,	,,	१७८१	,,	१८०८	,,	१८१०
४	,,	राजसिंहजी	,,	,,	१८००	,,	१८१०	,,	१८१७
५	,,	अरिसिंहजी	,,		×	,,	१८१७	,,	१८२९
६	,,	हम्मीरसिंहजी	,,	,,	१८१८	,,	१८२९	,,	१८३४
७	,,	भीमसिंहजी		,,	१८२४	,,	१८३४	,,	१८८५

इसी प्रकार जयपुर के राजसिंहासन पर भी निम्न-लिखित राजा क्रमशः आसीन हुए—

१	महाराजा	जयसिंहजी	जन्म	×	राज्य	×	देव०	१८००
२	,,	ईश्वरीसिंहजी	,,	१७७८	,,	१८००	,,	१८०७
३	,,	माधवसिंहजी	,,	१७८४	,,	१८०७	,,	१८२४
४	,,	पृथ्वीसिंहजी	,,	१८१९	,,	१८२४	,,	१८३४
५	,,	प्रतापसिंहजी	,,	१८२१	,,	१८३४	,,	×

शुरू कर दिया था। सं० १७९८ में उन्होंने वागड में होते हुए मेवाड़ में प्रवेश किया, तब महाराणा ने कुछ सरदारों को ससैन्य भेजकर उन्हें वहाँ से निकाल दिया, इसके वाद माधवसिंहजी को जयपुर की गद्दी दिलाने का झगड़ा मेवाड़ में होकर उठा और उसके कारण भी यहाँ मरहठों की आमदरफ्त होती रही।

सं० १८०८ में प्रतापसिंहजी महाराणा हुए। इनके समय में कुछ लोगों ने इन्हें गद्दी से उतारने का षड्यंत्र रचा, पर वे सफल न हो सके। तीन वर्ष वाद ही इनका देहान्त हो जाने पर सं० १८१० में राजसिंह (द्वि०) महाराणा हुए।

सं० १८१६ में मेवाड़ को क्षीण-शक्ति देखकर मरहठों ने उसे लूटना शुरू किया और वे मल्हारगढ़ की ओर चढ़ आए। इस समय महाराणा की अवस्था लगभग १० वर्ष की थी। मरहठा लोग अपनी सैनिक शक्ति लेकर धावा मारने लगे। उनका मुकाबला न कर सकने के कारण कुछ परगने ठेके पर रखकर उनकी आमदनी भेजते रहने का वादा कर महाराणा ने अपना पिण्ड छुड़ाया। सात वर्ष राज्य कर सं० १८१७ में इनका देहान्त हो गया।

राजसिंहजी का शिला-लेख लगवाना

इस उपद्रव का प्रभाव कांकरोली पर भी यत्किंचित् रूप में पड़ा और उसे भी राजनैतिक अशान्ति का अनुभव करना पड़ा। इसका विशेष वर्णन अलग प्रकरण में किया जायगा। यहाँ तो केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि—इस राजनैतिक अशान्ति और लूट-मार से बचने के लिए महाराजश्री को सतर्क होना पड़ा और उसके लिए महाराणा का ध्यान खींचा गया। महाराणा ने इसके लिए आवश्यक आश्वासन देकर यथोचित प्रबंध कर दिया, और आन्तरिक अशान्ति और लूटमार से बचने के लिए कांकरोली आकर सं० १८१६ फाल्गुन शु० २ के दिन मन्दिर के मुख्य दरवाजे की दाहिनी ओर एक शिलालेख खुदवाकर लगवाया, जो इस प्रकार है—

श्रीरामजी

श्रीएकलिंगजी श्रीगणेशजी

सिद्धिश्री महाराजाधिराज महाराणाजी श्रीराजसिंह आदेशात् अपरंच गुसाईंजी श्रीव्रजभूषणजी रे गूरुद्वारे गाम चढायो है जणा माहीं गुसाईंजी रा वस्ती रो,

लोक तथा चाकर वामे गुसांईजी ऊपरे वारोव्यो होवे ते अने ऊजाड वीगाड करे तथा गुसांइजी रालोगां ऊपरे ऊजाड बीगाड करै गुसांइजी रा गामरा लोक तथा चोखला लोग बीगाड करै तो दरवार आयने समझे गुसांइजीसु लागण विलगण करवा पावे नहीं गुसांइजीसु लागण करै सो दरवार रो खूनी है जणीरो ऊजाड वीगाड होय सो दरवार आए समझे जो गुसाईंजी सु बोलवा पावेगा नहीं तथा गुसांइजी ऊपरे चोखला रा लोगा तो बिगाड करै सो लोग गुसांइजी थी बोलवा पावै नहीं तथा गुसांइजी रा गामोरो बीगाड करै आवै जणी है कोई गाम मा राखवा पावै नहीं राखेगा सो दरवार थी ओलंबो पावेगा रावत जेसिंहजी * वावा खुमाणसिंहजी पंचोली देवकरणजी रे दुवे सुरे रोपी दसकत साह गोती (भवानी) दास खीमता (खमेसरा) संवत १८१६ (१७) फागण सुद २ (सुदी ३)

अरिसिंहजी और रत्नसिंह की लड़ाई

राजसिंहजी के गत हो जाने पर जगतसिंहजी (द्वि०) के छोटे पुत्र अरिसिंहजी को सं० १८१७ में गद्दी मिली, राजसिंहजी की द्वि० रानी उस समय गर्भवती थी, पर भय की आशंका से यह वात छिपाई गई। अन्त में वालक उत्पन्न होने पर कुछ सरदारों और जसवन्तसिंह ने कुंवलगढ़ ले जाकर रत्नसिंह नाम से उसे महाराणा घोषित किया। यह सरदार अरिसिंहजी के कठोर आचरण के कारण उनसे विरूद्ध हो गये थे। इसी आपसी झगड़े में मल्हारराव हुल्कर ने मेवाड़ में घुसकर लूट मचानी शुरू की। समझौता करने पर ५१ लाख रुपया लेकर सं० १८२० में उसने पहिले समय में सौंपे हुए मेवाड़ के परगनों पर अपना अधिकार कर लिया।

इधर रत्नसिंह के पक्षपातियों के साथ महाराणा को लड़ाई करनी पड़ी, जिससे मेवाड़ मे पूर्ण अशान्ति उठ खड़ी हुई। ऐसे समय में महाराणा ने अमरचन्द को हटाकर दूसरे को अपना प्रधान मत्री वनाया।

रत्नसिंह के झगड़े के कारण जहाँ-तहाँ लड़ाइयाँ होने लगीं और इधर सरदारों ने भी विद्रोह कर दिया। महाराणा ने जव सुना कि रत्नसिंह का पक्ष लेकर माधवराव मेवाड़ में आनेवाला है तो उन्होंने अपने विश्वासपात्र सरदारों की अध्यक्षता में

* इस सुरह में जिन रावत जैसिंह का नामोल्लेख है, वह रावत जैतसिंह महाराणा के स्वल्प वय होने के कारण राज्य का मुख्य मुसाहिब और सलुंबर का जागीरदार था।

मुक़ाबले के लिये सेना भेजी और सं० १८२५ पौष शुक्ल ६ को उज्जैन के पास दोनों की मुठभेड़ हुई। वीरता-पूर्वक लड़ने पर भी पन्द्रह हजार नागा साधुओं (जिन्हें महापुरुष भी कहते हैं) की सेना आ जाने के कारण मरहठों की ही विजय हुई, जिससे मेवाड़ की शक्ति और भी क्षीण हो गई, और उसका बहुत नुक़सान हुआ। महाराणा अरिसिंहजी ने अपने पास योग्य सरदारों के न रह जाने पर विवश होकर फिर अमरचन्द को प्रधान बनाया और उसको बहुत कुछ अधिकार दिया। अमरचन्द ने जैसे-तैसे प्रबंध कर सेना का चढ़ा हुआ वेतन चुकाकर सैनिक अशान्ति दूर की।

सात वर्ष की उमर में शीतला की बीमारी से रत्नसिंह के मर जाने पर विरोधी सरदारों ने एक दूसरे लड़के को रत्नसिंह क़रार दिया और महाराणा से विरोध करते हुए उन्हें राज्य से पदभ्रष्ट करने का अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। वे माधवराव सिन्धिया को पुनः मेवाड़ पर चढ़ा लाए। इधर अरिसिंहजी ने भी उदयपुर पर घेरा डाल देने पर माधवराव से लड़ाई शुरू कर दी। इधर सिन्धिया का कुछ वश नहीं चला और महाराणा भी विवश हो गए, तब अन्त में माधवराव को ६० लाख रु० देकर उन्होंने संधि कर ली। रत्नसिंह के विषय में कुछ शर्तें स्वीकार की गईं और माधवराव सं० १८२६ श्रा० वदी ३ को मालवे की ओर लौट गया।

उसके चले जाने पर रत्नसिंह अपने इक़रार के अनुसार मन्दसौर नहीं गया। उसके साथी सरदारों ने भी उसका पक्ष न छोड़ा और देवगढ़ के राघवदेव आदि विद्रोही सरदारों ने महापुरुषों (नागाओं) की एक बड़ी भारी सेना फिर से एकत्रित की और मेवाड़ के गाँवों में उपद्रव शुरू कर दिया। इसको दबाने के लिए महाराणा ने देलवाडे होते जीजोला गाँव में मुक़ाम किया। टोपला गाँव में दोनों सेनाओं की खूब मुठभेड़ हुई। पर अन्त में विद्रोहियों की सेना के भाग निकलने पर महाराणा विजय प्राप्त कर उदयपुर लौटे *।

ऐसी विषम परिस्थिति होने पर भी व्रजभूषणजी धर्माचार्य होने के कारण राजनैतिक दलबन्दी से अलग ही रहा करते थे, उनका तात्कालिक मेवाड़ के सभी दलों से समान व्यवहार था। वे दोनों की सुलह और शान्ति के इच्छुक थे। यही कारण था कि जब कभी प्रसंग आता, दोनों पक्ष के सरदार उनके प्रति आदर-

महाराजश्री की तटस्थता

* उदयपुर राज्य का इतिहास।

भाव प्रकट किया करते थे, और मौक़ा देखकर उनके परामर्शानुसार कार्य करने को भी सन्नद्ध हो जाया करते थे। महाराजश्री की इस नीति से ठिकाने को किसी प्रकार की विपत्ति में नहीं फँसना पड़ा। समीपवर्त्ती राजनगर तथा कांकरोली के चारों ओर मार-काट और लूट आदि उत्पात होते रहने पर भी यहाँ आन्तरिक शान्ति बनी रही, अर्थात् उसका यहाँ कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। इसी प्रकार की सं० १८२७ के आषाढ़ की एक घटना महाराजश्री के एक पत्र से विदित होती है:—

जैसा कहा जा चुका है, इस समय मेवाड़ में रत्नसिंह के अधिकार और महाराणा अरिसिंहजी के क्रूर व्यवहार को लेकर उनके विरुद्ध कई सरदार उठ खड़े हुए थे। वे मरहठों की सहायता लेकर और स्वतंत्र भी लड़भिड़कर मेवाड़ पर अपना अधिकार जमाते फिरते थे। इसको दबाने के लिए महाराणा ने गुजरात से कुछ फौज बुलाकर रक्खी, जिसने आकर राजनगर में डेरा डाला। इस समय महाराजश्री ने मेल-मुलाक़ात से काम निकालकर अपने स्थान की रक्षा की। इस सेना में उनाउवा गाम के गंगादास, कुबेरदास, कुबेरचन्द और शिवदास क्षत्री आदि ५० मनुष्य उनके सेवक निकल आये, जो जमादार थे। उन्होंने किसी प्रकार की अशान्ति गुरुघर के प्रति न होने दी। नसरतखाँ बाबी, विठूजी ताकपीर मरेठा, राजरायसिंहजी सादड़ीवाले, पीथापुरवाले और मानदास धाय-भाई-जैसे प्रतिष्ठित सरदार समय-समय पर महाराजश्री से मिलते और उनके यहाँ किसी प्रकार का उपद्रव न होने देने का विश्वास दिलाते थे।

इसके एक वर्ष बाद (सं० १८२७ में) फिर महता सूरतसिह आदि बेदला के रामचन्द्र से मिलकर दस हजार महापुरुषों को इकट्ठा कर गंगार गाम में चढ़ा लाए और मेवाड़ को लूटने लगे। महाराणा ने यह खबर पाकर स्वयं मुक़ाबला करने के लिए गंगार से डेढ़ कोस पर जाकर मुक़ाम डाला। लड़ाई होने पर यहाँ महापुरुषों के कई सरदार गिरिफ़्तार हुए, जिस पर उनके महन्तों ने क़सम खाई कि—अब कभी वे महाराणा के विरुद्ध न होंगे। महापुरुषों के साथ यह दूसरी लड़ाई थी। इसमें शाह कुबेरचन्द देपुरा पेशक़ब्ज खाकर मर गया और अमरचन्द देपुरा गिरिफ़्तार हुआ।

रत्नसिंह ने कुम्भलमेर में रहते समय महता सूरतसिंह को चित्तौड़ का क़िलेदार नियत किया था। महाराणा के द्वारा भेजे गये रावत भीमसिह को सेना-समेत आते देखकर वह भाग निकला और चित्तौड़ पर महाराणा का क़ब्ज़ा हुआ।

सं० १८२८ के श्रावण मास में कई वार अपने उद्योग में निष्फल होने पर भी जसवन्तसिंह ने जयपुर महाराजा पृथ्वीसिंहजी के यहाँ रहनेवाले समरू-नामक एक फ्रान्सीसी को रुपया देकर मेवाड़ में महाराणा के विरुद्ध भेजा। खारी नदी के दोनों किनारों पर दोनों सेनाओं के पड़ाव पड़ते ही गोलावारी शुरू हो गई। तीन दिन तक लड़ाई होने के वाद कृष्णगढ़ के राजा बहादुरसिंह ने—जो महाराणा का ससुर और समरू का मित्र था—वीच में आकर सुलह करवा दी *।

सं० १८२८ के भाद्रपद में कांकरोली के आस-पास खूब वर्षा हुई, जिससे नदी, तालाव लवालव भर गये, राजसमुद्र में नदी का इतना जल आया कि वह १० दिन तक गॅदला वना रहा, और उसके नाले के वहाव ने उग्र रूप धारण कर मोही गाम के तीन सौ घर वहा दिये। आश्विन मास में भी कांकरोली में और आस-पास वर्षा खूब हुई, जिससे गोघाट पर से तीन २ वाँस पानी गया †।

सं० १८२८ के कात्तिक वदी ५ की रात्रि में २५ सवारों के संग कोठारियावाले रावत फतहसिंहजी कांकरोली आये और महाराजश्री से मिले। महाराजश्री ने उनसे पूछा कि—अपने पक्ष को छोड़कर क्यों चले आये?

सं० १८२८ की एक घटना

(यह पहिले महाराणा के विरुद्ध रत्नसिंह के पक्ष में थे, पर माधवराव सिन्धिया के उदयपुर का घेरा उठाकर चले जाने के वाद सं० १८२६ के अन्त में उसका पक्ष छोड़ चुके थे और वाद में महाराणा के पक्ष में हो गये थे।)

रावतजी ने कहा कि—अव मैं स्वतन्त्र हूँ, स्वयं लूट-मार कर अपना गुज़र कर लूँगा। वातचीत हो जाने के वाद महाराजश्री ने इन्हें कांकरोली के वाहर आँवली के पेड़ों के नीचे डेरा दिया, जहाँ जाकर वे ठहरे।

इसके अनन्तर आधी रात जाने पर रत्नसिंह की फौज आई, जिसमें ६०० जोगी (नागा महापुरुष) थे। कांकरोली की हद में फतहसिंह का मुकाम होने से जोगियों के सरदार उमेदपुरी ने सीधा हमला न कर महाराजश्री की मर्यादा रखते हुए समाचार देने के लिये उनके पास ८ साधुओं को भेजा। महाराजश्री उस समय सोये हुए थे, अतः साधुओं के कहने पर तुलाराम परिचारक ने उनको जगाकर सव हाल कहा। साधुओं ने मिलने पर महाराजश्री से कहा कि—हम रावत को लूटेंगे।

* उदयपुर राज्य का इतिहास।

† महाराजश्री का एक पत्र।

इस पर महाराजश्री ने कहा कि—आप दोनों की लड़ाई होगी और हमारे गाँव की बरबादी, सो यहाँ यह उपद्रव रहने दो। पर वे न माने। जिस पर गोवर्द्धन के पुत्र हरिकृष्ण ने आकर बहुत समझाया और तुलाराम ने पाँव पड़े। अंत में यह तय हुआ कि—फतहसिंह भी यदि यहाँ किसी प्रकार का बखेड़ा खड़ा न करेगा, तो हम भी कुछ न बोलेंगे।

महाराजश्री ने तुलाराम को रावत फतहसिंह के पास भेजकर जोगियों के आने और उनके साथ उक्त बातचीत होने का समाचार भिजवा दिया, जिस पर रावत ने कहलाया कि—मैं यहाँ किसी से लड़ने नहीं आया हूँ, प्रातःकाल यहाँ से अन्यत्र चला जाऊँगा, मेरी ओर से यहाँ किसी प्रकार का उपद्रव न होगा।

रावतजी के इस विचार को महाराजश्री ने महापुरुषों के प्रधान उमेदपुरी से कह दिया और उन्हें विश्वास दिलाया कि—हमारे आगे रावत अपने वचन के प्रतिकूल आचरण नहीं करेगा।

इस पर उमेदपुरी ने उनसे कहा कि—मेरे महन्त ने कहा था कि जैसा महाराजश्री कहें, वैसा करना। महाराजश्री ने भी उनके द्वारा महन्त से 'नमोनारायण'-पूर्वक कहलवाया कि—यह स्थान आपका ही है, रावतजी प्रातःकाल यहाँ से चले जायँगे, उनके मारने से क्या निकलेगा ?

यह बातचीत रात्रि के अन्तिम प्रहर तक हुई और बाद में वे सब अपने २ स्थान पर गये। प्रातःकाल रावतजी ने भी आकर श्रीद्वारकाधीश के दर्शन किए और महाराजश्री से विदा होकर वे मोही चले गये। इस समय खमनोर में भी ६०० और कोठारिया में ५०० जोगी पड़े हुए थे।

इस उपद्रव के समय में ६००० रु० साहूकारों ने पाली गाँव के लिये भेजा था, जिन्हें जोगियों ने लूट लिया। इसमें कुल १६५रु० महाराजश्री के भाई छोटेमंदिरवाले वल्लभजी के थे, और बाकी सिंहाड नाथद्वारावालों के। महाराजश्री से जोगियों का परिचय होने के कारण वल्लभजी के रुपये तो आ गये, पर सिंहाडवालों के अकड़बाज़ी दिखाने पर उनके सब लोगों ने हज़म कर लिये *।

* सं० १८२८ का० कृ० ११ का महाराजश्री का पत्र।

इधर महाराज वाघसिंहजी द्वारा गोडवाड से रत्नसिंह का अधिकार उठा दिया गया, जिसकी रक्षा के लिये महाराणा ने जोधपुर के राजा विजयसिंहजी को नाथद्वारा में सेना रखने और उसके खर्च के लिए गोडवाड का परगना सौंपने का तय कर दिया। विजयसिंहजी ने परगने पर अपना अधिकार कर लिया, पर कुम्भलमेर से रत्नसिंह को निकालने का प्रयत्न नहीं किया। जब उसे परगना छोड़ देने को कहा गया तो उसने मना कर दी। इसका समझौता करने को सं० १८२८ माघ मास में नाथद्वारा में महाराज विजयसिंहजी, बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और कृष्णगढ़-नरेश बहादुरसिंहजी वहाँ आये और चैत्र वदी १३ को महाराणा भी जा पहुँचे। इस सम्मेलन में कुछ भी तय न हो पाया और विजयसिंहजी अपने हठ पर ही कायम रहे, जिससे गोडवाड सदा के लिये मेवाड़ से अलग हो गया। महाराणा नाथद्वारा से कांकरोली आये और यहाँ से वे उदयपुर वापिस चले गए।

महाराजश्री का काकरोली से प्रस्थान का विचार

सं० १८२९ के श्रावण-मास में महाराजश्री और महाराणा अरिसिंहजी के बीच कुछ कामदारों की नासमझी से वैमनस्य हो गया। महाराजश्री के लिखे इस समय के एक पत्र से यह घटना इस प्रकार विदित होती है:—

महाराणा अरिसिंहजी ने विद्रोही पुरबियाओं, महापुरुष नागा साधुओं को दबाने के लिए कांकरोली के पास राजनगर में अपना डेरा डाला। इस समय उनके साथ अमरचन्द प्रधान मन्त्री था, जिसे महाराणा ने मेवाड़ की स्थिति क़ाबू में करने के लिए पुनः नियुक्त किया था। महाराणा के साथ इस समय दक्षिणी गोविन्दराव पन्त, आभाजी तथा आपाजी गीत्या और उनकी तथा सिन्धियों की फौज थी। इस समय महाराणा की आर्थिक दशा ठीक न थी और सेना-खर्च इधर-उधर से लेकर चलाया जाता था।

प्रधान अमरचन्द से किसी ने जाकर कह दिया कि—जोगी, राजनगर के पुरबिया और केलवा के लोगों का हज़ारों मन धान कांकरोली में भरा हुआ रक्खा है। अमरचन्द ने सेना के लिए ज़रूरत समझकर कुछ सिपाहियों को भेजकर कांकरोली से सारा धान्य उठवा लेना चाहा और इसके लिए लाला खानाज़ाद को वहाँ भेजा। वह आकर यहाँ के कामदार (अधिकारी) पारिख से मिला और धान दे देने की बात कही। पारिख के

बहुत कुछ समझाने पर भी वह न माना और नगरवासियों को उसने तंग करना शुरू कर दिया। महाराजश्री को जब यह मालूम पड़ा, तो उन्होंने मलूकचन्द को महाराणा के पास भेजा। उसने जाकर महाराजश्री की ओर से निवेदन किया कि—हमारे यहाँ किसी तीसरे व्यक्ति की कुछ भी सम्पत्ति नहीं है। जो है, सो श्रीठाकुरजी और व्रजवासियों का ही है और वह महाराणा का दिया हुआ है। महाराणा ने यह बात अमरचन्द से कही, पर वह न माना। उसने अपनी हठ क़ायम रक्खी। महाराणा भी उसके प्रति दिये गये वचन के कारण चुप हो रहे। आख़िर अमरचन्द ने ५० आदमी भेजकर कांकरोली के आसामियों को पकड़ मँगाया।

महाराणा की इस चुप्पी अथवा असमर्थता को देखकर महाराजश्री को बड़ा धर्म-संकट उठाना पड़ा। अन्त में उन्होंने कहलवा दिया कि—मैं जब तक यहाँ हूँ, तब तक तो इस धान्य पर आप अपना अधिकार जमा नहीं सकते, मेरे यहाँ से चले जाने पर आपके मन में आवे, सो करना।

महाराणा को यह भी सूचित किया गया कि—महाराजश्री ने कांकरोली छोड़कर श्रीद्वारकाधीश को मेवाड़ से पधरा ले जाने का निश्चय कर लिया है और कूच का नगाड़ा भी वे करा चुके हैं। कल वे पवित्रा भी श्रीठाकुरजी को यहाँ न धराकर कुरज गाम मे धरावेंगे। आपके पूर्व-पुरुष सामने जाकर ठाकुरजी को पधराकर मेवाड़ में ले आये थे, यदि आपसे बने तो उन्हें मेवाड़ की सीमा तक निर्भयता से पहुँचा दीजिए।

श्रावण शुक्ल १० के दिन महाराणा ने इस अनभिलषित समाचार को सुनकर कहा कि—महाराजश्री ऐसा विचार क्यों करते हैं, मेरी विद्यमानता में तो ऐसा नहीं होने का।

इधर यह बातचीत हो रही थी, उधर यह सारी परिस्थिति मरहठा सरदारों के सामने जा पहुँची। अन्याय और धार्मिक स्थान के साथ इस विश्वासघात का प्रतिकार करने के लिये गोविन्दराव पन्त, आभाजी और आपाजी गीत्या आदि दक्षिणी सरदार अपने कुछ सैनिक लेकर नगाड़ा देकर कांकरोली की रक्षा के लिये घोड़ों पर सवार हो गए। उन्होंने दीवान अमरचन्द से कहलवाया कि—हम कांकरोली की रक्षा के लिये जा रहे हैं, तुम्हें हमारे विरुद्ध जितने सिन्धी भेजना हो, भेज देना, हम उनसे निबट लेंगे। अब हम राणा के नौकर नहीं हैं।

मरहठों का इतना कहकर रवाना होना था कि—महाराणा को विचार पड़ गया, उन्होंने जैसे-तैसे उनको घोड़ों से उतार कर बिठाते हुए कहा कि—आओ, हम सब मिलकर इसका समाधान करें।

उन सब सरदारों के साथ राजनगर से चलकर महाराणा मध्याह्न में शंखनाद होने के पहिले मंदिर आ पहुँचे और महाराजश्री से मिलने की खबर कराते हुए कहलाया कि—मेरा इसमें कुछ दोष नहीं है। किसी ने यदि कुछ आपके स्थान में उत्पात किया है, तो उसको सजा दी जायगी इसके बाद महाराणा तथा सभी आगत सरदार महाराजश्री से मिले और उन्हें समझाया, पर महाराजश्री का क्रोध शान्त न हुआ। उन्होंने कहा कि इतनी बड़ी घटना हो जाय और महाराणा से छिपी रहे, उनकी इसमें सहमति न हो—यह हो नहीं सकता। अस्तु, मैंने तो अब यहाँ से जाने का निश्चय कर लिया है।

महाराजश्री के इस प्रकार वचन सुनकर महाराणा तो चुप हो गये, पर गोविन्दराव पन्त ने उनको समझाया और महाराणा के द्वारा क्षमा-याचना कराई। इस समय तक मन्दिर में शंखनाद नहीं हुए थे, अतः गोविन्दराव पंडित ने समझा-बुझाकर और शान्त कर महाराजश्री को गादी पर से हाथ पकड़कर उठाया और कहा कि—आपका यहाँ से चला जाना तो महाराणा के लिये अयशस्कर होगा। मेवाड़ के अभाग्य का उदय प्रतीत होता है। अस्तु, अब आप स्नान कर सेवा कीजिए।

इतना होने के बाद महाराजश्री ने स्नान कर सेवा की और श्रीप्रभु के हिन्डोला के दर्शन खोले। सभी आगत व्यक्तियों ने दर्शन कर महाराजश्री की जाने की तैयारी बन्द कराई और आई हुई सवारियाँ वापिस भिजवाकर उनसे भोजन करने का आग्रह किया।

विदा होकर सब लोग अपने-अपने स्थान पर गए और फिर दूसरे दिन महाराजश्री के पास आये और एकादशी के पवित्रा धराने के समय प्रभु के दर्शन किये। सायंकाल महाराणा, उनके प्रधान अमरचंद और सभी दक्षिणी सरदारों ने बैठक में उपस्थित होकर क्षमा माँगकर महाराजश्री को प्रसन्न किया।

महाराजश्री ने कहा कि—महाराणा! आपकी जानकारी बिना बीच से ही ऐसी बात हो जाना, अच्छा नहीं। इसीलिये मैंने जब तक यहाँ अशान्ति है, तब तक अन्यत्र

रहने का विचार किया है। शान्ति हो जाने पर आपका आग्रह होगा और आप ठाकुरजी को फिर पधरावेंगे, तो हम आजावेंगे।

बहुत समय तक इस प्रकार की बातचीत चलने पर महाराजश्री ने अपना विचार रोक दिया और यथोचित समाधान कर सबको विदा दी। जाते समय महाराणा ने कहा कि—सीसोदिया का जाया होगा, सो तो महाराज की सेवा ही करेगा।

इस प्रकार महाराणा ने दीनता बतलाते हुए महाराजश्री का समाधान किया। श्रा० शु० १२ के दिन महाराणा के साथ पुनः सब लोग उपस्थित हुए और प्रभु के दर्शन कर बैठक में आकर सभी ने महाराजश्री को पवित्रा पहिनाये। गुरुघर के प्रति श्रद्धा जतलाते हुए महाराणा ने पारिख अधिकारी से कहा कि—मैं पवित्रा की भेंट में सात-आठसौ रुपया की उपजवाला एक गाम भेंट करूँगा, सो तुम्हारे ध्यान में हो, उसकी सूचना मुझे देना, मैं उसका पट्टा कर दूँगा।

इस प्रकार महाराणा की भक्ति देखकर सब लोग चकित हो गये और अमरचन्द प्रधान तो बिलकुल ही लज्जित हो गया*।

महाराजश्री ने महाराणा और गोविन्द पन्त आदि सभी दक्षिणी सरदारों का उचित आदर कर उन्हें सम्मान-पूर्वक विदा किया।

इस प्रकार महाराणा अरिसिंहजी के समय घटनेवाली यह घटना बढ़ने नहीं पाई और गोविन्द पन्त-जैसे व्यक्तियों के चातुर्य से उसकी गुत्थी सुलझ गई।

इसमें सन्देह नहीं कि—यदि इस समय उक्त दक्षिणी सरदार महाराणा के साथ न होते और वे अपना कुछ उग्र रूप न दिखलाते तो परिणाम यह आता कि—महाराजश्री द्वारकाधीश को कांकरोली से अवश्य पधरा ले जाते। यह प्रसंग एक प्रकार से महाराणा राजसिंहजी के उस पुण्य-कार्य पर कुछ कलंक लगाता, जो उहोंने श्रीद्वारकाधीश को पधारकर राजसमुद्र और मेवाड़ के गौरव बढ़ाने में किया था।

इसे एक ईश्वरी प्रेरणा ही समझना चाहिये। दक्षिणी सरदारों ने—जिनका इस घर से कोई सम्पर्क नहीं था, महाराणा की इस उदासीनता पर न तो उनका पक्ष लिया और न तटस्थता ही रक्खी। प्रत्युत वे द्वारकाधीश के घर की मर्यादा को, जो महाराणाओं के समय से अक्षुण्ण चली आती थी, रखने के लिये कटिबद्ध हो गये।

---

* सं० १८२६ श्रा० शु० १३ का महाराजश्री का पत्र।

इस प्रसंग से कांकरोली के लिये लाभ हुआ और उस उत्क्रान्ति के समय में इसकी मान-मर्यादा रखने की पुष्टि हो गई, जिससे आगे फिर कभी किसी प्रकार के अप्रिय प्रसंग के आने का मौका नहीं आया और न महाराणाओं ने भी ऐसा अवसर आने दिया। महाराजश्री के समय की यह अन्तिम घटना है, जो कांकरोली के इतिहास पर कुछ नया प्रभाव डालती, पर उनकी नीतिमत्ता से वह सुव्यवस्थित हो गई और ठिकाने का एक गौरव का स्वरूप बँध गया। सं० १८२९ के श्रावण शुक्ल पक्ष की यह घटना इतिहास में स्मरणीय है, जो महाराजश्री के हस्ताक्षर के पत्र द्वारा प्रकाश में आई है।

सं० १८२९ पौष कृ० २ के दिन महाराणा ने मेन्या-नामक गाम भेंट किया, जो मालूम पड़ता है कि इसी प्रसंग का है। महाराजश्री के एक पत्र से ज्ञात होता है कि भाद्र वदी प्रतिपदा के दिन महाराणा पुनः कांकरोली आये थे और उन्होंने मंगला में श्रीद्वारकाधीश के दर्शन कर विदा होते समय १५०० रु० का मेन्या-नामक गाम भेंट करने की वात कही और पट्टा कर देने का वचन दिया था। इसके वाद उदयपुर जाकर महाराणा ने पौष कृष्ण २ के दिन उक्त गाँव का पट्टा कर दिया। सं० १८२९ चैत्र कृष्ण १ के दिन इनका देवलोक हो गया, और वाद में महाराणा हमीरसिंहजी गद्दी बैठे।

सं० १८३० के ज्येष्ठ मास में कांकरोली में फिर एक उपद्रव और खूनख़राबी होते-होते वची, जिसका वृत्त इस प्रकार महाराजश्री के पत्र से विदित होता है, जो उन्होंने अपने पौत्र विट्ठलनाथजी को ज्येष्ठ शु० १३ गुरुवार के दिन अहमदावाद लिखा था—

वात यह हुई कि—रामकृष्णजी जोशी-नामक एक व्यक्ति जो शायद नाथद्वारा का राज्य-कर्मचारी था, सहलावा गाँव से चलकर कांकरोली आया और यहाँ कृष्णू-नामक अपने परिचित व्यक्ति के घर पर एक दिन ठहरा। इसकी और राजनगर में ठहरे हुए तुर्कों से कुछ खटापटी थी। जव रामकृष्ण जोशी रात को कांकरोली से लावा—सरदारगढ़—जाने लगा तो तुर्क लोगों ने आकर वाग में से उसे पकड़कर राजनगर के क़िले में क़ैद कर दिया। यह तुर्क सिन्धी थे, जो अपनी तनख़्वाह न मिलने पर जहाँ-तहाँ लूट-खसोट किया करते थे। यह लोग रोज़ ४००-६०० की

संख्या में कांकरोली में आते और दिन भर तालाब की पाल पर बैठे रहते थे, इनके उपद्रव के मारे बाग-बगीचे बरबाद हो गये। कांकरोली कचहरी के कर्मचारियों ने इनको समझाकर, दबाकर सभी प्रकार से कहा, पर यह लोग अपने उपद्रव से बाज न आये।

उन लोगों के सरदार जीगनखाँ जाबल्लाबेग से महाराजश्री ने रामकृष्ण जोशी को छोड़ देने को कहा, तो उसने जबाब दिया कि--यह आसामी तो नाथद्वारा का है, आपका नहीं। अतः छुड़वाना होगा तो वहाँ के महाराज गोविन्दजी प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार चार दिन बीत गये।

अन्त में महाराजश्री ने यह समाचार गोविन्द पन्त, भीमसिंहजी तथा अमरचन्द को लिखकर भेजे, जिस पर उन्होंने कहा कि--महाराजश्री व्रजभूषणजी वहाँ हैं, वे ही प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार ७ दिन बीत जाने पर भी रामकृष्ण जोशी का छुटकारा नहीं हुआ।

इसी समय वहाँ राजावत दलेलसिंह सवाई भाठी, शिवजी बैस आदि अपनी जमात लिये हुए पड़े थे, जिसमें ४०० सवार और ३०० पैदल थे। इधर मुसलमान—सिन्धी—भी ३०० के लगभग थे, इन हिन्दुओं ने मुसलमानों को समझाया कि--महाराणा अरिसिंहजी कह गये थे कि तुम्हें जरूरत पड़े तो हमारा खालसा लूट लेना, पर मेरे गुरुघर कांकरोली में किसी प्रकार की छेड़छाड़ मत करना, इसलिये इस ब्राह्मण को छोड़ दो, हम लोगों को दानापानी कांकरोली से मिलता है।

हिन्दुओं ने सभी प्रकार समझाया और नम्रता दिखलाई, पर उन्होंने न माना। हिन्दुओं ने कहा कि--हमारे गुरुद्वारा की ओर यदि दृष्टि डाली तो ठीक न होगा। इस प्रकार की बातचीत में दोनों दलों में खटक गई, मुसलमानों ने कहा कि--हम तो अब कांकरोली लूटेंगे।

मुसलमानों का इतना कहना था कि--नगाड़ा बजा, सज्जित हो, हिन्दू मरने-मारने को तैयार होकर मैदान में उतर आये। उन्होंने अपना मोरचा कांकरोली में आँवली के वृक्षों के नीचे डाला, महाराजश्री से जब वे मिलने को आये, तो उन्होंने हिन्दू-धर्म की रक्षार्थ कटिबद्ध होने पर उन्हें शाबाशी दी।

इस रणसज्जा को देखकर तुर्क सटपटा गये। यह लोग विजयसिंहजी के तावेदार

तथा अजमेर-इलाक़ा के निवासी थे। महाराजश्री के यत्न करने पर अन्त में विजय-सिंह का एक पत्र सिन्धी धीरजमल पर आया और सौ सवार, २ वेरख और २ ढोल आये। यह सब देख ज्येष्ठ शु० ८ की रात्रि को मियाँ जीगनख़ाँ जावल्लावेग रामकृष्ण जोशी को लेकर महाराजश्री के पास आये और तुलाराम के द्वारा उन्हें जगवाकर मिलने की खबर भेजी।

महाराजश्री उन लोगों से मन्दिर के चौक में तुलसी-क्यारे के पास मिले, बात-चीत हुई। मियाँजी ने कहा कि—मियाँ ख़्वाजाबख़्श इन्हें ले गये थे, सो हम ले आये हैं। सवार आने पर भी वह नहीं छोड़ता, पर आपके लिये हम इन्हें छोड़े देते हैं। इस पर महाराजश्री ने कहा कि मियाँजी! तुमने हमको यह यश दिया। यह कहकर बीड़ा दिया।

इस पर मियाँजी ने कहा कि आपने शहर की खिड़की क्यों बंद कर ली? महाराजश्री ने कहा कि डर से। इस पर उसने पूछा कि डर किसका, तब महाराजश्री ने कहा कि तुम्हारा। इस पर वह खुश होकर जाने लगा तो महाराजश्री ने कहा कि तुम्हारे आदमियों ने रामकृष्ण को धूप में बैठाकर डेढ़ सौ रुपयों का रुक्का लिखा लिया है और इसका जो सामान ले लिया है, सो सब पीछे भिजवा दीजिये। इस पर मियाँजी महाराजश्री की बात मंज़ूर कर विदा होकर चले गये और उनका लिया हुआ सब सामान भिजवा दिया। जिसे एक सैयद भला आदमी लेकर आया। उसने महाराजश्री से मिलकर कहा कि—कल मियाँजी आपकी बड़ी तारीफ़ करते थे और कहते थे कि महाराजश्री बड़े महापुरुष हैं, उनकी बद्दुआ न लेना। यदि मेरे पास दो हजार रुपये का घोड़ा होता तो मैं उनको भेंट में दे देता।

महाराजश्री ने अपने पत्र में लिखा है कि—इस समय अपने गाम में २००० बंदूक और ५०० सवार हैं। अमरचन्द प्रधान, भीमसिंहजी तथा गोविन्दराव पन्त को पत्र लिखा है, वे आनेवाले ही हैं। इस प्रकार एक ब्राम्हण रामकृष्ण जोशी को मुसलमानों की कैद से छुड़ाने में नाथद्वारावालों से तो कुछ न बन सका, पर अपने प्रभु श्रीद्वारकाधीश की कृपा से कांकरोली का यश फैला। अब जो मर्यादा बँधेगी सो पक्की बँधेगी। आदि *।

* जैसा हम कह आये हैं, ये पत्र महाराजश्री ने अपने पौत्र विट्ठलनाथजी को प्रदेश में लिखकर भेजे थे, जो उनके वापिस कांकरोली आ जाने पर सरस्वती-भंडार विद्या-विभाग में सुरक्षित रख दिये गये। (ज्येष्ठ शु० १३ गुरुवार सं० १८३० के पत्र से।)

महाराजश्री के समय में मेवाड़ में बहुत-सा राजनैतिक उथल-पुथल हुआ। कब किस प्रकार की परिस्थिति आ जाय, इसका निश्चय नहीं था, ऐसी अवस्था में ठिकाने की रक्षा के लिए अधिकांश उनकी उपस्थिति आवश्यक थी। यही कारण था कि वे धर्म प्रचारार्थ विशेष प्रदेश नहीं जा सके और उन्होंने अपने पौत्र विट्ठलनाथजी द्वारा अपने घर की सृष्टि को सँभाला। अन्त समय सं० १८३३ में महाराजश्री प्रदेश करने पधारे। उन्होंने राजपूताना के राज्यों में भ्रमण किया और द्वारकाधीश के लिए सेवा एकत्रित की।

नित्यलीला-प्रवेश

यद्यपि इसके लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, तथापि इस प्रकार की किम्वदन्ती प्रचलित है कि—जब वह यात्रा करते हुए कोटा पधारे, तब वहाँ उनके मुक़ाम पर जंगली लोगों ने आक्रमण कर दिया। महाराजश्री के साथ के आममियों से उनकी लड़ाई हुई और उन्होंने आक्रमणकारियों को भगा दिया। पर सहसा अन्त में एक तीर महाराजश्री के लग गया, जिसके कारण स्वास्थ्य विगड़ जाने से उनकी स्थिति चिन्ताजनक हो गई * और अन्त में सं० १८३३ के फाल्गुन शु० १ के † दिन नित्यलीला-प्रवेश हो गया। इनका संस्कार कोटा में इनके पौत्र श्रीविट्ठलनाथजी ने किया। इस प्रकार महाराजश्री ने विकट समय में कांकरोली की सर्वतोभावेन रक्षा की और इसको तात्कालिक राजनैतिक दावानल से बचाकर सम्पन्न बनाया। इनके बाद इनके पौत्र विट्ठलनाथजी तिलकायित हुए।

---

* महाराजश्री की इस प्रकार की अन्तिम स्थिति के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि—उन्होंने एक बार श्रीद्वारकाधीश की शय्या फूलों से सजाई और उस पर प्रभु को पौढ़ाकर शयन करा दिया। प्रातःकाल जब मंगला में शय्या सँवारी गई तो उसमें फूल पोहने की सुई मिली, जिसे देखकर महाराजश्री को अतिशय पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने कहा कि श्रीप्रभु के कोमल अंग में इस असावधानी से कष्ट हुआ होगा। अन्त में उन्होंने कहा कि मेरी मृत्यु इसी प्रकार किसी शस्त्र द्वारा होगी, और यह घटना हुई।

† प्राचीन रोकड़ से। इस उत्तरक्रिया में ५०५) रु० व्यय हुआ था।

परिशिष्ट—१

श्रीव्रजभूषणजी (द्वि०) के परिचित एवं आश्रित कवि तथा विद्वान्*

१ प्रवीण कवि—'द्वारकाधीश विचित्रविलास'-रचयिता। हिन्दी-कवि।

२ बालकृष्ण भट्ट—शु० साम्प्रदायिक विद्वान्।

३ मथुरानाथ—'गीतगोविन्द भाषा पद्यानुवाद'-रचयिता।

४ गोपालदास—देवगढ़ के सरदार जसवन्तसिंहजी के द्वि० पुत्र और महाराजश्री के शिष्य।'गुरुभक्ति-चन्द्रिका' के रचयिता।

५ सुजान कवि—हिन्दी-कवि।

६ वंशीधर—'वल्लभ स्तुति पचीसी' के रचयिता। हिन्दी-कवि।

७ निर्भयराम भट्ट—शु० साम्प्रदायिक विद्वान् और महाराजश्री के शिष्य।

८ इच्छाराम भट्ट—शु० साम्प्रदायिक विद्वान्।

९ रामकृष्ण भट्ट—शु० साम्प्रदायिक विद्वान्।

१० बालकृष्ण कवि—हिन्दी-कवि। जयपुर-नरेश महाराज माधवसिंहजी का आश्रित।

११ छविनाथ कनौजिया—बूँदी-नरेश दुर्जनसिंहजी का आश्रित। हिन्दी-कवि।

इसके अतिरिक्त तैलंग जातीय अन्य कवियों और विद्वानों का, जो विशेषकर तात्कालिक जयपुर-नरेश के आश्रित थे, महाराजश्री से परिचय रहा होगा। उनमें से जिनका संकेत मिला है, वे ऊपर लिखे गये हैं*।

---

* उक्त विद्वानों और कवियों की नामावली ही यहाँ दी जा रही है। विशेष परिचय और गवेषणा के लिये देखो—"आन्ध्रजातीय कविगण"-नामक शीघ्र प्रकाशित होनेवाला ग्रन्थ।

श्रीव्रजनाथजी लालजी

(प्रा० सं० १७८८, नि० सं० १८२५ लगभग)

——:o:——

जन्म, शिक्षा और संस्कार—श्रीव्रजनाथजी (लालजी) का जन्म सं० १७८८ ज्येष्ठ शु० ७ के दिन हुआ * । इनके पिता का नाम व्रजभूषणजी (द्वि०) था । व्रजनाथजी के छोटे भ्राता मुरलीधरजी थे ।

व्रजनाथजी का उपनयन-संस्कार अष्टम वर्ष अर्थात् सं० १७९६ में हुआ, और यज्ञोपवीत हो जाने के बाद इन्होंने संस्कृत-शास्त्र तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थों का आवश्यक अध्ययन किया । यद्यपि इनके पांडित्य के विषय में विशेष ज्ञात नहीं होता, तथापि सरस्वती-भंडार (कांकरोली-विद्या-विभाग) में उपलब्ध कुछ आकर ग्रन्थों के ऊपर इनका नाम हस्ताक्षर-रूप में लिखा मिलता है, जिससे विदित होता है कि—यह इनके पाठ्य ग्रन्थ थे ।

पिता की उपस्थिति में ही देहावसान हो जाने के कारण यह तृतीय गृह के तिलकायित नहीं हो सके, और व्रजभूषणजी के अनन्तर इनके ज्येष्ठ पुत्र विट्ठलनाथजी गादी पर विराजे । इस कारण इनका नाम 'लालजी व्रजनाथजी' इस रूप में प्रचलित हो गया । विद्याध्ययन करते हुए इन्होंने अपने पिता के साथ ही द्वारकाधीश प्रभु की सेवा करने का कुछ समय तक सौभाग्य प्राप्त किया ।

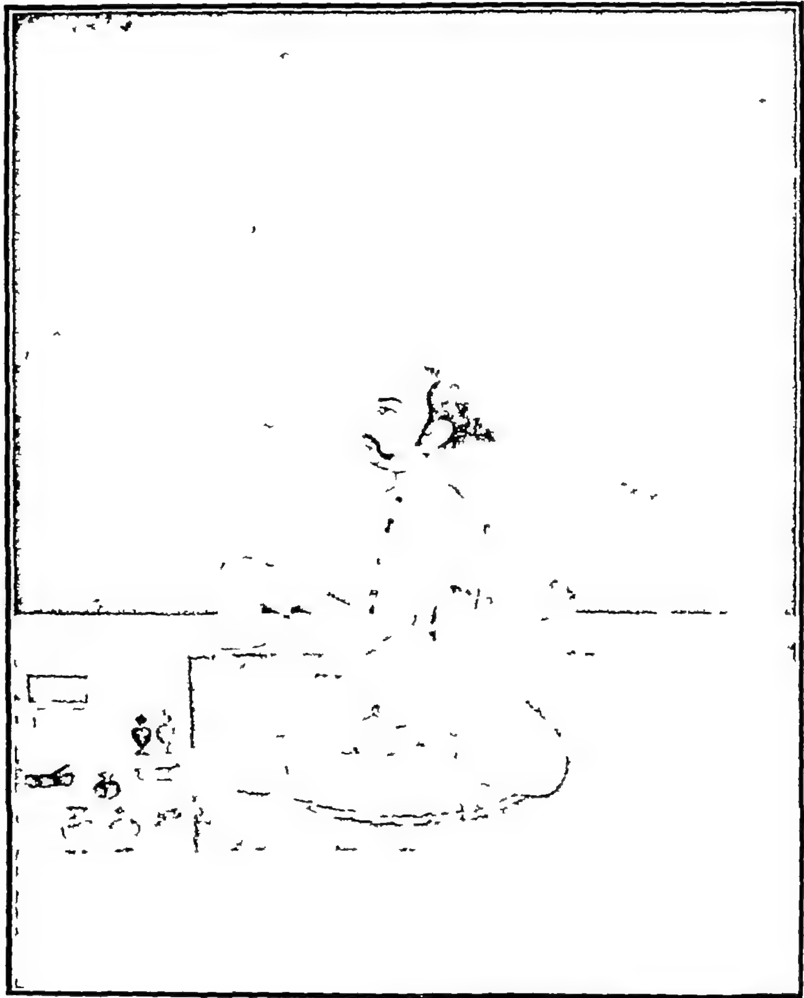
विवा और सतति—योग्य वय हो जाने पर सं० १८०५-६ के लगभग इनका विवाह

---

* जन्म-कुंडली—

श्रीमत्संवत् १७८८ वर्षे शाके १६५३ प्रवर्तमाने ज्येष्ठ शुक्ल ६ सोमे घटी १।५ परतः ७ जन्मतिथौ मघा घटी ६।५४ परं पूर्वा-फाल्गुनी जन्म-नक्षत्रे सूर्योदयात् गत घटी ४१।४६ समये श्रीव्रजभूषण-जी सुत श्रीव्रजनाथजी जन्म ।





लाल श्रीव्रजनाथजी महाराज
प्रा० सं० १७८८ ज्ये० शु० ७

गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

हुआ, इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीचारुमती वहूजी था *। इनके निम्न-लिखित सन्तति हुई--

१ विट्ठलनाथजी	प्रा० सं० १८११ पौष कृष्ण १३
२ कल्याणरायजी	,, ,, १८१५ मार्ग० ,, १४
३ गोकुलनाथजी	,, ,, १८२१ ,, ,, १४

पितृचरण व्रजभूषणजी (द्वि०) के समय कांकरोली में अनेक राजा-महाराजाओं का आवागमन होता रहता था, अतः उन सबसे परिचय प्राप्त करने का इन्हें भी अच्छा अवसर मिला था।

व्रजनाथजी द्वारकाधीश प्रभु की सेवा के बड़े ही रसिक थे, और अधिकांश समय सेवा में ही व्यतीत किया करते थे। इन्होंने सेवा-प्रणाली में अपने पितृचरण की आज्ञा से कुछ विशेषताएँ कीं, और चौकी, कुंडवारा तथा नगारवन्द उत्सवों का क्रम चालू किया, जो अद्यावधि प्रचलित है।

प्रदेश-भ्रमण

सं० १८२२-२३ के बीच में व्रजनाथजी ने प्रदेश किया, और गुजरात आदि स्थलों में जाकर वैष्णव--सृष्टि को सँभाला। सं० १८२३ में श्रावण के पूर्व यह कांकरोली आये। इसके बाद सं० १८२४ में इनके पुत्र विट्ठलनाथजी ने गुजरात का प्रदेश किया। इस समय इनकी अवस्था १३-१४ वर्ष की थी।

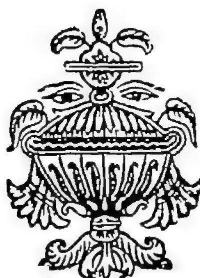
नित्यलीला-प्रवेश

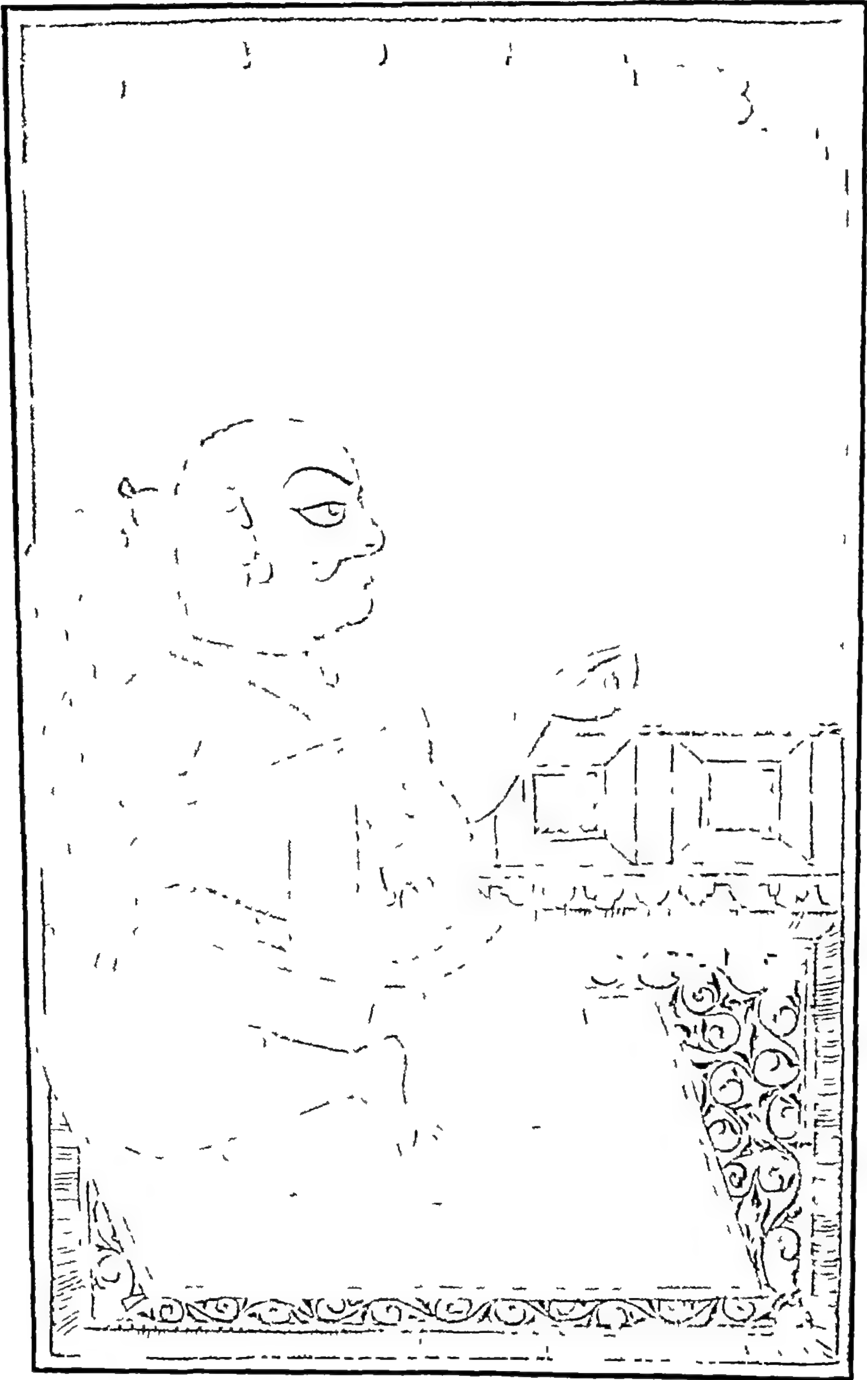
सं० १८२३ ज्ये० शु० ५ के दिन व्रजभूषणजी (द्वि०) के प्रति लिखे गये गो० श्रीप्रभुजी के पत्र में व्रजनाथजी का नाम नहीं है और इनके पुत्र विट्ठलनाथजी का है, जिसका कारण कांकरोली में इनकी उपस्थिति का न होना है। सं० १८२४ से २६ तक के पत्र उपलब्ध नहीं होते, जिनसे कुछ प्रकाश पड़ता। पर इस प्रकार का अनुमान होता है कि--व्रजनाथजी का नित्यलीला-प्रवेश सं० १८२५ के लगभग भाद्रपद मास के अनन्तर और† इनकी पत्नी का देहान्त सं० १८५५ कार्तिक वदी ६ भौमवार को सायंकाल हुआ।

* मनोहरदास-कृत गुजराती धाल, सर० भं०।

† सरस्वती-भंडार मे सं० १८२३ का० शु० ५ बुध की लिखी एक छोटी हिसाव की कापी व्रजनाथजी के हस्ताक्षरों की लिखी मिली है। इसमें सं० १८०५ चैत्र शु० १ शनि से स० १८२३ श्रावण वदी २ बुधवार तक, और इसके बाद सं० १८२५ भादों सुदी १३ शनि तक अधिकमास-समेत व्याज चुकाने का भी उल्लेख है। अत. इस समय (स० १८२५ भाद्र शु० १३ शनि) तक व्रजनाथजी की उपस्थिति मानी जा सकती है। लल्लूभाई ने जो १८३० लिखा है, वह ग़लत है।

व्रजनाथजी के देहान्त से इनके पिता व्रजभूषणजी (द्वि०) को बड़ा धक्का पहुँचा, पर भगवल्लीला के आगे क्या वश था ! उन्होंने अपने पौत्र विट्ठलनाथजी को अपनी वृद्धावस्था का सहारा समझा और उनकी अभिवृद्धि की कामना करने लगे। व्रजभूषणजी अपने पौत्र विट्ठलनाथजी को बहुत अधिक चाहते थे और पत्रों में उन्हें 'प्राणप्रिय बेटा', इस प्रकार का संबोधन लिखा करते थे। पत्रों में समय-समय पर लिखी शिक्षा की बातों से यह विदित होता है कि—वे अपने पुत्र के वियोग को अपने पौत्रवात्सल्य के द्वारा दबाये हुए थे।





१ गो० श्रीविट्ठलनाथजी (रोमवाले बडे) २ गो० श्रीगोकुलनाथजी (छोटे)
प्रा० सं० १८२१ मार्ग० कृ० १४
(ये दो भ्राता एक ही आकृति-स्वरूपवाले थे, अतः एकही चित्र दिया गया है)

गगा फाइनआर्ट प्रेस, लखनऊ

श्रीविट्ठलनाथजी महाराज (स० ति०)

(प्रा० सं० १८११, ति० सं० १८३४, नि० सं० १८४८-४९)

——:o:——

श्रीविट्ठलनाथजी महाराज का जन्म सं० १८११ पौष कृष्ण १३ गुरुवार को हुआ था* । इनके पिता का नाम व्रजनाथजी था, जो व्रजभूषणजी (द्वि०) के आतमज थे । विट्ठलनाथजी से छोटे दो भ्राता और थे, जिनका नाम कल्याणरायजी और गोकुलनाथजी था ।

जन्म-संस्कार और शिक्षा

विट्ठलनाथजी और गोकुलनाथजी के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि—बड़ी अवस्था में इन दोनों को एक ही आकार-प्रकार होने के कारण पहिचानने में भ्रम हो जाया करता था । द्वा० चित्रशाला में उपलब्ध इन दोनों के चित्र से भी यही प्रमाणित होता है । बहुधा सेवा के समय जब इन दो में से कोई एक भाई आ जाता था, तो मुखियाजी को इसके निर्णय में बड़ा असमंजस उठाना पड़ता कि—आज द्वारकाधीश का शृंगार किसने किया है । इसी प्रकार एक की बात दूसरे से कह देने के कारण उनको प्रायः लज्जित हो जाना पड़ता था ।

इसी घटना को प्रदर्शित करने के लिये यहाँ इन दोनों का एक ही चित्र छापा गया है, और नाम दोनों के दे दिये गये हैं । इस सारूप्य के साथ एक भेद भी प्रकृति ने इन दोनों में रक्खा था—विट्ठलनाथजी का शरीर साधारण और गोकुलनाथजी का शरीर लोमश था, जो शरीर के खुले होने की अवस्था में ही जाना जा सकता था ।

---

* जन्म-कुडली—

संवत् १८११ वर्षे शाके १६७६ प्रवर्तमाने पार्थिव नाम्नि सवत्सरे पौष कृष्ण १३ घटी ०२।१२ परं १४ जन्मतिथौ गुरुवासरे अनुराधा घटी ४८।२१ धृति घटी ४५।४१ धनार्के गतांशाः ००।०० सूर्योदयात् गत घटी ४०।०६ समये श्रीव्रजनाथात्मज श्रीविट्ठलनाथजी जन्म ।



इनके छोटे भाई कल्याणरायजी का छोटी वय में ही देहान्त हो गया था, अतः उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

सं० १८१९-२० के लगभग इनके पितामह व्रजभूषणजी महाराज (द्वि०) ने इनके यज्ञोपवीत-संस्कार का प्रस्ताव बड़े धूमधाम से किया।

सं० १८२५ के लगभग अपने पिता व्रजनाथजी का देहान्त हो जाने के कारण विट्ठलनाथजी और इनके भ्राता गोकुलनाथजी ही अपने पितामह के आश्रय-रूप रह गये थे। इस समय व्रजभूषणजी महाराज (द्वि०) की वृद्धावस्था और तात्कालिक राजनैतिक परस्थिति के अशान्तिमय होने के कारण स्वल्प वय से ही विट्ठलनाथजी को गुजरात का प्रदेश करना पड़ा। अहमदाबाद, सूरत, धंधूका, धौलका आदि कई प्रान्तों में घूम २ कर इन्होंने वहाँ के निवासी वैष्णव-समुदाय को धर्म का उपदेश देकर अपना शिष्य बनाया, और आई हुई भेंट का द्रव्य भेजकर अपने पितामह व्रजभूषणजी का बहुत-सा ऋण चुकवाया था। इनके साथ प्रदेश में जीवाशाह-नामक एक भाविक वृद्ध वैष्णव रहा करता था, जिसके निदेश में चलते रहने की आज्ञा समय २ पर व्रजभूषणजी महाराज अपने पत्रों में इन्हें दिया करते थे।

इस समय की राजनैतिक परिस्थितियों का आवश्यक वर्णन पहले किया जा चुका है, जिससे इतना अवश्य कहना पड़ता है कि उस समय जो घटनाएँ घटीं, उनका परिणाम इनको भी अपने पितामह के बाद भोगना पड़ा।

विट्ठलनाथजी ने अपने पितामह के समीप ही आवश्यक अध्ययन किया था। पर बाल्य-काल से ही प्रदेश-परिभ्रमण का भार उठा लेने के कारण इनका पूर्ण अध्ययन नहीं हो पाया और न यह अपने पितामह के समान विद्वान् ही बन सके। फिर भी प्रायः इन्होंने सभी आकर ग्रन्थों का परिशीलन शनैः २ कर लिया था। इनके समय में कांकरोली में शु० सम्प्रदाय के उद्भट विद्वान् निर्भयराम भट्टजी रहते थे, जिनके भेजे हुए पत्रों*

---

* श्रीद्वारकेशो जयति

श्रीप्रभु न आगे सुधि करत हू

स्वस्ति श्रीमत्कृष्ण—प्रेमामृतरसभरभरित सुभगमूर्तिपु श्रीलालजी महाराज श्री ६ विट्ठलनाथजी चरणाम्बुजेपु दर्शनाभिलापिणो निर्भयरामस्य दडवत् प्रणतय. शर्मात्र श्रैमत्क तदाशासे, अपरञ्च आपको कृपापत्र भा० शु० ८ को लिख्यो आश्विन वदी ६ शुक्र के दिवस पहुच्यो। आपके लिखे पत्र सब पहुचे है, भगा के हाथ हू पहुचो, और हू यहा ते पत्र लिखै तो है परन्तु पहुचे न होयगे। अबारे पहुचेगे

से विदित होता है कि वे गुरुपुत्र विट्ठलनाथजी को बड़े आदर की दृष्टि से देखा करते थे।

विट्ठलनाथजी का प्रथम विवाह व्रजभूषणजी (द्वि०) के समक्ष ही हुआ, जिससे सं० १८३२ में यशोदा बेटीजी और सं० १८३५ में व्रजभूषणजी (तृ०) का जन्म हुआ। इसके बाद प्रथम पत्नी श्रीपद्मावती बहूजी का देहान्त हो जाने से इनको पुनः द्वितीय विवाह करना पड़ा।

विवाह और सन्तति

यह सं० १८३७ माघ वदी १३ को जयपुर पधारे और वहाँ माघ शु० २ के दिन व्रजनाथजी (उपनाम मन्नूजी) भट्ट की पुत्री से द्वितीय विवाह हुआ। फाल्गुन शु० ४ को यह विवाह कर जयपुर से कांकरोली आये। इस समय वहाँ महाराजा प्रतापसिंहजी राजा थे। महाराजा ने प्राचीन मर्यादा के अनुसार विट्ठलनाथजी के जयपुर पधारने पर उनका स्वागत-सत्कार किया और भेंट चढ़ाई। विवाह के समय जयपुर में विद्यमान रावत राघवदासजी देवगढ़, रावत गोपालदासजी, भीमसिंहजी शाहपुरा, सदाशिवजी, महाराजा सवाई प्रतापसिंहजी आदि ने उपस्थित होकर व्यवहार किया और भेंट चढ़ाई थी। इससे यह मालूम पड़ता है कि—उक्त तीनों सरदारों को महाराजश्री अपने साथ कांकरोली से जयपुर लिवा ले गये थे। ये चारों व्यक्ति इस घर के परम्परागत शिष्य थे*।

विट्ठलनाथजी महाराज के निम्न-लिखित सन्तति हुई—

१	यशोदा बेटीजी	प्रा० सं० १८३२ चैत्र कृष्ण ५	प्रथम पत्नी से
२	व्रजभूषणजी (तृ०)	,, ,, १८३५ ,, शु० ८	
३	शोभाबेटीजी	,, ,, १८४४ (अनुमान)	द्वितीय पत्नी से
४	गोवर्द्धनेशजी	,, ,, १८४८ मार्ग० शु० ७	

और व्रजवासीन के साथ पठये है सो तो वेग ही पहुंचेगे, प्रसाद के साथ ब्राह्मण अमदावाद जात हतो ताके साथ लिखे है सो हू पहुचेगे, और पत्र एक श्रीकारकों पठवाए सो पहोंच्यो, उत्तर तो पीछे ते आवेगो, यह काशद एकही राति रह्यो ताते, नडिआद पहोंचि पेटलाद पधारे सो जाने अब अमदावाद होय धोलका धधूका पधारोगे, पाटनवारे होयके घर पधारोगे सो जाने, ठाकुरजी वह दिवस वेग दिखावे, आपके तो अन्तराय है ही नहीं परन्तु हमारे नेत्र के अन्तराय है सो दर्शन देहुगे, तब सफल होयगे, आश्विन वदी ६ भृगौ सवत १८२६ श्रीगोकुलनाथजी वहोत आछे है।

* प्राचीन रोकड पाना ११६ सं० १८३७।

छोटी अवस्था में ही देहान्त हो जाने से गोवर्द्धनेशजी का कोई वंश नहीं चला। शोभाबेटीजी का विवाह सं० १८५३ आषाढ़ कृ० ७ को हुआ।

सं० १८३३ के अन्त में अपने पितामह व्रजभूषणजी महाराज (द्वि०) के अस्वास्थ्य का समाचार पाकर विट्ठलनाथजी कोटा गये। इस यात्रा में इनके भ्राता गोकुलनाथजी और सवाई खड्गसेनजी साथ थे। मार्ग में यह माघ कृ० ५ भौमवार को पुष्कर पहुँचे, और वहाँ तीर्थकृत्य कर पुरोहित को वृत्तिपत्र लिखकर दिया *। फाल्गुन कृ० १ के दिन कोटा में नित्यलीला-प्रवेश हो जाने पर व्रजभूषणजी महाराज का इन्होंने और्ध्वदैहिक कृत्य किया और कांकरोली आये।

तिलकायित होना

सं० १८३४ वैशाख शु० ६ के दिन विट्ठलनाथजी का अपने पितामह के स्थान, तृतीय पीठ के तिलकायित-पद, पर तिलक हुआ। इस समय महाराणा हमीरसिंहजी † राजकीय झगड़ों में उलझे होने के कारण उपस्थित न हो सके। उन्होंने राज्य का दस्तूर भेजकर गुरुघर के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित की।

जिस समय महाराजश्री ने अपने भाई गोकुलनाथजी के साथ कांकरोली का प्रबंध और श्रीद्वारकाधीश की सेवा का भार सँभाला था, उस समय भी मेवाड़ की परिस्थिति अशान्तिमय थी, जो सं० १८७० के लगभग तक बनी ही रही। फिर भी महाराजश्री ने अपने पितामह के समान ही नीति-विज्ञता का परिचय दिया और संस्थान की रक्षा करते हुए उसे उन्नत बनाया।

सं० १८३४ में हमीरसिंहजी के अन्नतर पौष शु० ९ को दस वर्ष की वय में भीमसिंहजी महाराणा ‡ हुए। इसी वर्ष पृथ्वीसिंहजी के बाद सवाई प्रतापसिंहजी जयपुर-नरेश हुए। महाराजश्री ने दोनों स्थलों पर इस समय गुरुघर का दस्तूर किया और अपनी प्राचीन प्रथा चालू रक्खी।

---

* पुष्कर पुरोहित का वृत्तिपत्र।

† इनका जन्म स० १८१८ ज्ये० शु० ११ (अनु०), राज्याभिषेक स० १८२९ चै० व० ३ और कैलासवास स० १८३४ पौ० शु० ८ के दिन हुआ।

‡ इनका जन्म सं० १८२४ चैत्र व० ७, राजगद्दी स० १८३४ पौ० शु० ९ और कैलासवास स० १८८५ चैत्र शु० १४ के दिन हुआ।

जैसा प्रथम कहा जा चुका है, इस समय उदयपुर की गद्दी को महाराणा भीमसिंहजी सुशोभित कर रहे थे, उनकी अवस्था इस समय लगभग १०-११ वर्ष की थी, मेवाड़ में उपद्रवों की परम्परा, महाराणा की बाल्यावस्था और शासन की शिथिलता का मौक़ा पाकर मेर लोगों ने भी यत्रतत्र लूटमार प्रारम्भ कर दी।

मेर लोगों का उपद्रव

इसी प्रसंग में सं० १८३५ माघ मास में कांकरोली के ग्राम अमलोई में मेर लोगों ने आकर उपद्रव मचाया। उन लोगों ने गाम पर छापा मारा और चरते हुए गाम के समस्त ढोर घेर कर ले गये। उनके विशाल समुदाय के आगे गाम के निवासी कुछ भी सामना न कर सके। इसकी ख़बर कांकरोली पहुँची। इस समय विट्ठलनाथजी महाराज प्रदेश कर रहे थे, पर अधिकारी तुलसीदास-दुर्लभदास ने इस उपद्रव का समाचार पाते ही कांकरोली से पंड्या रामदास को, १५ असवार और जीवन गोंड के साथ, उनका पीछा करने को भेजा। मार्ग में रात में ही जवास्या गाम का थानेदार भी इनके साथ हो लिया। इन सबों ने आगे जाकर घाटा का मार्ग रोक लिया। यहाँ मेरों के साथ जमकर लड़ाई हुई, जिसमें कांकरोलीवालों की जीत हुई। घोड़ी-सहित एक मेर के मारे जाने और तीन के पकड़ लिये जाने पर बाकी सभी मेर जानवर छोड़कर भाग खड़े हुए और अमलोई के समस्त ढोर वापिस अपने गाम में पहुँचाये गये*।

* अधिकारी तुलसीदास-दुर्लभदास का सं० १८२५ माघ वदी (अमान्त) ३ गुरु का पत्र।

उ० रा० इतिहास पत्र ७०६ में लिखा है:—

"मेरवाड़ा एक पहाड़ी प्रदेश है, जो उदयपुर, जोधपुर और अजमेर-जिले से सम्बन्ध रखता है। इसमें मेर जाति के लोग रहते हैं, जो जंगली, युद्ध-प्रिय और स्वतन्त्रताप्रेमी हैं। जब कभी शासक की शक्ति क्षीण हुई, तब वे उपद्रव कर स्वतन्त्र बन जाते. अब मुग़ल-सम्राज्य और मेवाड़, दोनो के निर्बल हो जाने से मेरों ने फिर सिर उठाया और वे मेवाड़, मारवाड़ तथा अजमेर-जिले की प्रजा को लूटने लगे।"

मेवाड़ की तात्कालिक स्थिति का निदर्शन गोकुलनाथजी के एक पत्र के निम्न-लिखित आवश्यक अंश से सहज ही हो सकता है:—

स्वस्तिश्री ५ दादा श्रीविट्ठलनाथजी चरणसरोजेषु आज्ञाकारिणो गोकुलनाथस्य नतयः शमत्र तात्रास्तु देशोपद्रव के समाचार तो सब आगे लिखे हैं सो यथावस्थित है। पृथ्वीपति पीछे गये। जोगी हजार ६ दक्षिण ते आये हते सो परवाहिरे गये। रावत अर्जुनसिंहजी बन्हेडा ते परें कोस ४ परे है। दखिणी आंबाजी ईंगल्या* बापूजी हुलकर साहिपुरा ते परें पडे हैं इत माहूँ कोऊ आवे नहीं। मिती वैशाख वदि २ स० १८३६

* आम्बाजी ईंगल्या के विषय में उ० रा० इ० पत्र ६८० की टिप्पणी में लिखा है कि यह माधवराव और दौलतराव सिन्धिया का सेनापति तथा राजनैतिक सलाहकार था।

श्रीव्रजभूषणजी महाराज (द्वि०) के समक्ष अनेक राजा-महाराजाओं के उपस्थित

राज्य-सम्मान होते रहने का प्रसंग आया था, इस कारण तत्कालीन सभी राजा-महाराजा उनके स्थानापन्न तिलकायित होने के कारण विट्ठलनाथजी के प्रति भी आदर-भाव रखते थे और कई तो उन्हें अपना गुरु भी मानते थे। यह लोग जब कभी मेवाड़ में आते तो कांकरोली अवश्य आते और श्रीप्रभु के दर्शन कर यथाशक्ति भेंट करते थे। उदयपुर के महाराणा के समान अन्य कई राजा-महाराजा भी यहाँ के दीक्षा-प्राप्त शिष्य हुए और उन्होंने प्रति वर्ष राज्य से श्रीद्वारकाधीश को जन्माष्टमी की और अपने गुरु को पवित्रा की भेंट भेजना शुरू कर दिया था। जिससे ज्ञात होता है कि—महाराज के व्यक्तित्व का उन सब पर अच्छा प्रभाव था। इनमें कोटा, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, झालावाड़ आदि के राजाओं के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

महाराजश्री के तिलकायित होने के बाद सबसे प्रथम सं० १८३५ भाद्र कृ० १० के दिन बीकानेर-महाराजा गजसिंहजी कांकरोली आए और उन्होंने दर्शन कर कमलनयन ओझा के द्वारा श्रीप्रभु के लिये भेंट जमा कराई।

सं० १८३६ (कार्त्तिकादि सं० १८३५) द्वि० श्रा० वदी १४ गुरुवार को जोधपुर-महाराज विजयसिंहजी दर्शन कर कांकरोली से विदा हुए और विदा होते समय उन्होंने एक हजार रु० के लगभग महाराजश्री को भेंट चढ़ाई और इस समय से प्रति वर्ष पवित्रा की भेंट गुरुदक्षिणा के रूप में भेजने लगे। यही महाराजा सं० १८४३ भाद्र० कृष्ण में पुनः सकुटुम्ब कांकरोली आए और द्वादशी के दिन विदा होते समय इन्होंने भेंट चढ़ाई *।

सं० १८३८ वैशाख शु० ६ के दिन मार्फत राय रतनलाल के परगना लालसोट टोडारायसिंहपुरा में द्वारकानाथजी की सेवा के लिये जो १००० रु० प्राप्त होने का हुक्म हुआ था, उसके लिये २००० रु० की सिफारिश की गई और महाराजा सवाई प्रतापसिंहजी ने उसका परवाना कर दिया। यह रुपया व्रजभूषणजी महाराज

* प्राचीन रोकड़ों से। जिसमें कार्त्तिकादि संवत् और अमान्त तिथियाँ दी गई हैं। संवत् १८३४ से पूर्व की रोकड़ें कांकरोली के कृष्ण-भंडार में उपलब्ध नहीं होतीं। आगे जहाँ भी राजा-महाराजाओं के आने और भेंट चढ़ाने का उल्लेख है, वह उसी से लिया गया है।

के समय में मिलना प्रारम्भ हुआ था। इसमें जन्माष्टमी, गुरुपूजा आदि सभी की भेंट सम्मिलित कर दी गई थी*।

सं० १८३८ आषाढ़ सुदी २ के दिन मुक़ाम अलेई से महाराजश्री के लिये गोवर्द्धननाथजी के मन्दिर के लिये बाग बनवाने को २५ बीघा ज़मीन महाराज सवाई प्रतापसिंहजी ने प्रदान की। दीवान संगही जीवराज के बनवाए हुए इस मन्दिर के

---

* श्रीरामजी श्रीरामजी

द्वारकानाथजी

सही

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजा श्रीसवाई प्रतापसिंहजी देववचनात कमैती प्रगना लालसोट का दसेसुप्रसाद वंच्या अपरंच वाबति उदिक गाव गुसाईजी श्रीविट्ठलनाथजी ने जो मारफति राय रतनलाल की मिती वैसाख वदि ६ साल सवत १८३८ अरज पहौची। उदिक उपेजा रुपया १००० को गाव देवा को हुकुम हुवो तीमे गाव रामस्यंघपुरो प्रगना लालसोट को तन रुपया २००० को तीका प्रवाना सवती का दसखत करायो चाहै तीह सू फूरामवाछा ××× गाव रामस्यघपुरो प्रगना लालसोट को तनरुपया दोय हजार को एवतदाय साख स्यालू संवत १८३६ थे सीगे उदिकेकैजाणि हासिल हवाले करिबो कीज्यो अर प्रतवरण नवो प्रवानू मति माग्यज्यो। ××× ठाकुर श्रीद्वारकानाथजी वा गुसाईजी कारखाना पुन्य हजूरि वगैरह का सू सालीना रुपया १०४२ पावैछा सो मोकूफ राख्या।

परसाद आवे तीका भेट विदा का सालीना रुपया ५४० गुसाईजी गुरपूजा वगैरह का सालीना रुपया ५०२
पवित्रा जनमअष्टमी का रुपया २३० डोल उछह का रुपया ३१०
गुर पूजा का सालीना रुपया १६४ सिरोपाव का किरकराखाना सूं सालीना ३११
दसहरा की गादी तकिया का फरासखाना सू सालीना २७ × × × ×

दीवान सरकार का प्रवाना लिखे मिती वैशाख वदी १३ साल संवत १८३८ अरज मुकररा पहौची मुकररा गाव रामस्यघपुरो प्रगना लालसोट को तनरुपया २००० को एक। ठाकुर श्रीद्वारकानाथजी वा गुसाईजी कारखाना पुन्यहजूरि वगैरह का सू सालाना रुपया १०४२ पावैछा सो मोकूफ राख्या।

प्रसाद आवे तीकी भेट विदा का सालीना रुपया ५४० गुसाईजी गुरूपूजा वगैरह का सालीना रुपया ५०२
पवित्रा जनम अष्टमी का रु० २३० डोल उछह का रु० ३१०
दसहरा की गादी तकिया का फरासखाना सू सालीना रुपया २७ सिरोपाव का कीरकराखाना सूं सालीना ३११ रु०

मुवाफिक यादि दासति मै दसखत राय रतनलाल व दीवानयान।
मिती वैशाख सुदी ६ साल सं० १८३८ मु० पलवै।
रजूदफत्र संगही जीवराज रजूदफत्र दीवान स्योजीराम रजूदफत्र काजी छीत्र महमद मुस्तोफी हजूर
(संक्षिप्त)

लिये प्रथम ज्येष्ठ सुदी ११ के दिन राय रतनलाल की मार्फ़त अर्ज़ की गई और आषाढ़ शु० २ के दिन इसका परवाना किया गया *।

सं० १८३९ चैत्र शु० १५ को महाराणा भीमसिंहजी प्रथम वार कांकरोली आए और द्वारकाधीश के दर्शन किए। इस समय इनकी वय लगभग १४ वर्ष की थी। यह नहीं कहा जा सकता कि—इस समय महाराणा ने परम्परा-प्राप्त दीक्षा ली या नहीं, फिर भी महाराजश्री को भेंट चढ़ाने का उल्लेख होने से इसका अनुमान होता है।

सं० १८४२ कार्त्तिक शु० ११ के दिन रावत विजयसिंहजी (कोठारियावाले) ने महाराजश्री से वैष्णवधर्म की दीक्षा (ब्रह्म-सम्बन्ध) ली, और उन्हें अपना गुरु बनाकर भेंट चढ़ाई। यह कट्टर वैष्णव हो गए और अन्त में सं० १८५९ में श्रीनाथजी को उदयपुर के मार्ग पर पहुँचाकर जसवन्तराव हुलकर की फौज में वापिस लौटते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए। इस प्रकार वैष्णव होकर इन्होंने अपने क्षत्रियत्व का आदर्श रक्खा और उसके लिये प्राण समर्पण कर दिये।

सं० १८४२ पौष शु० १ को महाराजश्री महाराणा की सूचना पर उदयपुर

---

* श्रीरामजी श्रीरामजी

सही श्रीसीतारामो जयति

श्रीमहाराजाधिराज सवाई प्रतापसिंहजी

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजा श्रीसवाई प्रतापसिंहजी देववचनात कमैती कसबा सवाई जैपुर का दसेसुप्रसाद वच्या अपरंच वावति भोग धरती बीघा २५ ठाकुर श्रीगोवर्द्धननाथजी विराजमान कसबा सवाई जैपुर में मन्दिर दीवान सगही जीवराज कै त्याने जो मारफति राय रतनलालका मिती प्रथम जेठ सुदी ११ संवत १८३८ अरज पहोंची वाग वणावानै का बाग का खर्चू के वास्ते धरती बीघा २५ गाव हथरोही तालक कसबा सवाई जैपुर की मुतसिल किस्न कुंड कै सीगै भोग कै दसखत करायो चाहै तीह सू फुरमावाछा × × × मुकररा तनखाह धरती गाव हथरोही तालक कसबा सवाई जैपुर की मुतसलिक किस्नकुंड के इवतदाय साख स्यालू सवत १८३६ श्रे सीगे भोग कै जाणि मांप्य हवाले कीज्यो क्यास्या की बीघा पचीस · २५··· · ·· × × × दीवान सरकार का प्रवाना लिखै। मिती दुतीक जेठ वदि १० साल सवत १८३८ अरज मुकरर पहोंची मुकररा धरती क्यास्या की बीघा पचीस· ···२५ · ··· मुवाफिक यादिदासति मै दसखत राय रतनलाल व दीवानयान। मिती असाढ सुदि २ साल संवत १८३८ मु० अलेई।

रजूदफत्र दिवान सगही जीवराज। रजूदफत्र दीवान स्योजीराम। रजूदफत्र काजी छीत्र महमद मुस्तोफी हजुरी।

(संक्षिप्त)

पधारे, वहाँ आपकी अच्छी आवभगत हुई और महाराणा तथा उनके राज्य-कर्मचारियों से परिचय हुआ। राजमाता ने भी—जो महाराणा की बाल्यावस्था होने के कारण राज्य-कार्य में सलाह दिया करती थीं, महाराजश्री को सम्मानित किया। यहाँ से विदा होकर वह माघ वदी ४ को वापिस कांकरोली आए।

विट्ठलनाथजी महाराज सं० १८४५ के आश्विन-मास में सवाई महाराजा प्रतापसिंहजी के समय जयपुर पधारे। इनके पितामह व्रजभूषणजी महाराज के समान इनका भी वहाँ राजकीय स्वागत हुआ। कुछ दिनों निवास कर महाराजश्री ने अपने पितामह व्रजभूषणजी महाराज के नाम पर प्राप्त हुए समस्त राजकीय गामों का दाखिल-खारिज अपने नाम करने के लिये आश्विन वदी १० के दिन महाराजा से अर्ज़ मालूम कराई। जिसके परिणाम-स्वरूप मार्गशीर्ष वदी ९ सं० १८४५ के दिन तक इन नीचे-लिखे गामों का दाखिल-खारिज का परवाना हो गया। जो पृथक् २ समय में पृथक् २ महाराजाओं के द्वारा प्राप्त हुए थे—

१	परगना टौंक	महाराजा जयसिंहजी	द्वारा	प्राप्त हुआ
२	संकरैपुरा कालीघाट	माधवसिंहजी	,,	,,
३	मलारणा	माधवसिंहजी	,,	,,
४	लालपुरा	माधवसिंहजी	,,	,,
५	सवाई जयपुर में जमीन	पृथ्वीसिंहजी	,,	,,
६	टोडारायसिंह	माधवसिंहजी	,,	,,
७	सवाई जयपुर	पृथ्वीसिंहजी	,,	,,
८	हिंडोणी	पृथ्वीसिंहजी	,,	,,

जैसा प्रथम उल्लेख किया गया है, महाराजश्री राजा-महाराजाओं के आदरणीय गुरु थे। इसके साथ ही जहाँ पुरुष वर्ग आपके प्रति श्रद्धा रखते थे, वहाँ रनवास में भी इनका मान था। सं० १८४७ आषाढ़ कृष्ण में जेसलमेर की रानी कांकरोली आईं और उन्होंने श्रीठाकुरजी के दर्शन किये तथा विदा होते समय द्वादशी के दिन महाराजश्री को भेंट चढ़ाई।

इस स्थान की महत्ता के साथ ही साथ महाराजश्री के नैतिक आदर्श, आचरण और व्यक्तित्व से सभी राजन्य-वर्ग इनका मान करता था। प्राचीन पत्रों के देखने से

मालूम पड़ता है कि—सर्वप्रथम इन्हीं महाराजश्री ने राजा-महाराजाओं से प्रति वर्ष वार्षिक भेंट भेजते रहने का सिलसिला डलवाया था। महाराजश्री की ओर से भेंटियाओं द्वारा जन्माष्टमी, अन्नकूट आदि उत्सवों का प्रसाद और प्रसादी समाधान राजाओं के पास भेजा जाता था। इसके साथ महाराजश्री पत्र भी भेजते थे, जिससे उन सबके साथ घनिष्ठता बढ़ती थी। जहाँ तक देखा गया है, राजाओं के साथ पत्र-व्यवहार की मूल प्रशस्ति संस्कृत-भाषा में लिखी जाती थी। इस प्रकार का एक पत्र जालिमसिंहजी का प्राप्त होता है *।

नित्यलीला-प्रवेश

विट्ठलनाथजी महाराज के नित्यलीला-प्रवेश का संवत् उपलब्ध नहीं होता। फिर भी अनुमान किया जा सकता है कि वे सं० १८४८ चैत्र के बाद सं० १८४९ के आषाढ़-मास के बीच में गोलोकवासी हुए। सं० १८४८ में चैत्र शु० ९ रवि के दिन उनके प्रति लिखा गया झाला जालिमसिंहजी का पत्र मिलता है, इधर सं० १८४९ आषाढ़ कृ० १२ शनि का महाराणा भीमसिंहजी का ताम्रपत्र (नं० ३२) मिलता है, जो इनके पुत्र व्रजभूषणजी महाराज (तृ०) के नाम पर है। पिता की विद्यमानता में पुत्र के नाम ग्राम का ताम्रपत्र प्राप्त होना राज्य-नियम से विरुद्ध है। अतः एक प्रकार से यह निश्चय होता है कि—सं० १८४८ के के अन्त अथवा ४९ के प्रारंभ में विट्ठलनाथजी का नित्यलीला-प्रवेश हुआ †।

* श्रीविट्ठलनाथजी महाराज के प्रति जालिमसिंहजी का किस प्रकार का भक्तिभाव था, यह ज़ालिम-सिंहजी द्वारा भेजे गये एक पत्र से विदित होता है। जो इस प्रकार है—

स्वस्ति श्रीमद्रमारमण चरण कमल निरंतर भजन परिसमाप्त समस्त पुरुषार्थेषु पुष्टिप्रेम भजन निरादृत तदितरपदार्थेषु श्रीमदाचार्य कुलजलनिधि कौस्तुभमणिषु परमपूज्यतमेषु श्री६ श्रीमद् गोस्वामि विट्ठलनाथजी महाराज महाशय चरणाब्जेषु निदेशवर्तिन. सकुमारस्य ज़ालिमसिंहस्यागणितश्च साष्टांग प्रणतिततिनिवेदकोय पत्रदूतो विलसतु, कुशलमत्र, श्रीमदीय भव्यमनुदिनमेधमानमाशासे।

अपरंच संवत् १८४८ चैत्र कृष्ण १३ भौमवार के दिवस को लिख्यो आशीर्वाद पत्र तथा पुष्पदो-लोत्सव को महाप्रसाद पठवाये सो सत्कार-पूर्वक माथे चढ़ाय लीने एवमेव मुख्य मुख्योत्सवादि समयेष्वा-शीर्वाद पत्र द्वारा परामर्शो विधेय इत्यलं सुज्ञ महाशयेषु किमधिकम्, संवत् १८४८ मिती चैत्र शुक्ल ९ रवौ।

† सं० ४९ से ५१ तक प्राचीन रोकड़ भी प्राप्त नहीं होती है, जिससे विदित हो सकता। द्वा० प्रा० वार्त्ता पत्र ११' में लल्लूभाई ने ५२ वर्ष की वय में सं० १८६३ मे नित्यलीला-प्रवेश माना है, जो ग़लत है।

* यह झालावाड़-राज के राजाओं का मूल-पुरुष था, और झाला कहलाता था। (उ. रा. इ)

इस समय महाराणा की छोटी वय होने के कारण मेवाड़ में शान्ति न रह सकी और चूड़ावतों तथा शक्तावतों के बीच झगड़ा छिड़ गया। इधर रत्नसिंह के सहायकों ने चितौड़ पर अधिकार कर लिया, और पठान सैनिकों ने विद्रोह कर दिया, जिसे महराणा ने मरहठों की सहायता से दबा पाया था। इन सब कारणों से कांकरोली के आस-पास राजनगर आदि में उपद्रव होते रहे, जिसमें महाराजश्री को अपने संस्थान के लिये अत्यधिक जागरूक रहना पड़ा। महाराणा अरिसिंहजी और व्रजभूषणजी महाराज (द्वि०) के समय से कांकरोली की मर्यादा स्थापित हो गई थी। अतः इन महाराजश्री के समय में कोई उपद्रव की घटना कांकरोली में नहीं घट पाई। फिर भी महाराजश्री ने बुद्धिमत्ता और चारों ओर के राजाओं पर अपने व्यक्तित्व की छाप डालकर ठिकाने को समृद्ध बनाया। इनके बाद इनके पुत्र श्रीव्रजभूषणजी (तृ०) अपने काका गोकुलनाथजी की देखरेख में तिलकायित हुए।

परिशिष्ट—१

महाराजश्री के समय आगत राजा-महाराजा तथा उमराव अथवा भेंट

संवत्	मिती	नाम तथा स्थान
१८३५	आषाढ़ सुदी ५ सोम	कुँवर जालिमसिंहजी दर्शनार्थ आये, और भेंट चढ़ाई
,,	भाद्र बदी १० भौम	राजा गजसिंहजी, बीकानेर ,, ,, ,,
१८३६	ज्येष्ठ सुदी ४ बुध	कुँवर जालिमसिंहजी ,, ,, ,,
,,	भाद्र बदी १४ गुरु	राजा विजयसिंहजी ,, ,, ,,
१८३७	पौष सुदी ११ शनिवार	कुँवर जालिमसिंहजी गाम मेडता ,, ,,
१८३८	कार्त्तिक बदी ४	राजा विजयसिंहजी की तरफ से जन्माष्टमी की भेंट आई रु० २०४।
,,	मार्गशीर्ष बदी	महारावजी कोटा की स० १८३७ की जन्माष्टमी की भेंट आई रु० १००।

संवत्	मिती	नाम तथा स्थान
१८३९	चैत्र सुदी १५ शुक्रवार	उदयपुर महाराणा भीमसिंहजी आये।
,,	वैशाख वदी ९	जोधपुर से राजा विजयसिंहजी के भेंट के आये।
,,	श्रावण वदी ८	सलूंबर रावत भीमसिंहजी की बेटियों के विवाह की भेंट आई।
,,	श्रावण सुदी १०	जोधपुर राजा विजयसिंहजी की ओर से पवित्रा की भेंट आई।
,,	भाद्र वदी १३	बीकानेर राजा गजसिंहजी की पवित्रा भेंट आई।
,,	कार्त्तिक वदी १३	राजा......सोपुर की भेंट आई।
,,	,, ३०	कोटा महारावजी की जन्माष्टमी भेंट आई।
,,	,, ३० सोमवार	जोधपुर राजा विजयसिंहजी की जन्माष्टमी भेंट रु० २००।
,,	रोकड पाना ३८३	जयपुर परगना के गामों के उनाली-सियाली का हासिल रु० २४४०, ९ आना।
१८४०	आश्विन सुदी ९	कोटा महारावजी की जन्माष्टमी भेंट।
१८४१	मार्ग वदी ११	बीकानेर राजा गजसिंहजी की भेंट आई।
१८४२	वैशाख वदी ७	जोधपुर राजा विजयसिंहजी की भेंट बाबत लालजी की जनोई।
,,	श्रावण सुदी ५ बुधवार	कुँवर जालिमसिंहजी की पवित्रा भेंट।
,,	रोकड पाना २९२	जयपुर परगना के गामों की आमद ४२३२ रु० आध आना।
,,	कार्त्तिक सुदी ११ शनिवार	रावत विजयसिंहजी ने ब्रह्म-सम्बन्ध-दीक्षा लेकर भेंट चढ़ाई।
१८४३	ज्येष्ठ सुदी ७ शनिवार	राजा जालिमसिंहजी की भेंट आई।
,,	भाद्र वदी ९	राजा विजयसिंहजी की जन्माष्टमी भेंट आई।
,,	,, १२	राजा विजयसिंहजी जोधपुर जाते समय विदा होने आये, तब भेंट चढ़ाई।

संवत्	मिती	नाम तथा स्थान
१८४३	भाद्रवदी १२	राजा गजसिंहजी बीकानेर की भेंट।
,,	कार्त्तिक सुदी १	कोठारिया रावजी विजयसिंहजी।
१८४४	आषाढ़ बदी ६ बुध	बीकानेर राजा गजसिंहजी की भेंट।
,,	द्वि० श्रावण सुदी १	राजा विजयसिंहजी की पवित्रा भेंट ह० सिंहवी शंभूमल।
,,	,, ,, ११ शुक्र	राजकुमार जालिमसिंहजी की भेंट आई।
,,	भाद्र सुदी १५	राणाजी भीमसिंहजी के कुँवर होने पर भेंट आई।
,,	फा० वदी ५ भौम	जयपुर राणीश्री जादवनजी की भेंट आई।
,,	श्रावण सुदी ११ भौम	जोधपुर राजा विजयसिंहजी की पवित्रा भेंट आई।
१८४६	आषाढ़ वदी ९	जोधपुर महाराजा की १८४४ की भेंट।
,,	भाद्र सुदी १५	कोटा महारावजी (नन्दिगामवालों) की तीन साल की भेंट आई।
१८४७	आषाढ़ वदी १२	जेसलमेर राणीजी की भेंट आई।
१८४९	भाद्र वदी १	कुँवर जालिमसिंहजी की भेंट आई।

जो स्वयं आये हैं, उनके नाम का और जिनकी भेंट आई है, उसका उल्लेख प्राचीन रोकड़ से यह लिया गया है, जिसके कार्त्तिकादि संवत् और अमान्त तिथि को चैत्रादि और पूर्णिमान्त रूप में यहाँ लिखा गया है।

श्रीगोकुलनाथजी महाराज

(प्रा० सं० १८२१, नि० सं० १८५६)

—:०:—

जन्म और शिक्षा-संस्कार

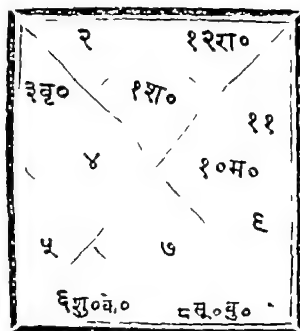
श्रीगोकुलनाथजी महाराज का जन्म सं० १८२१ मार्गशीर्ष कृष्ण १४ गुरुवार के दिन हुआ था *। इनके पिता का नाम व्रजनाथजी और पितामह का नाम व्रजभूषणजी (द्वि०) था। गोकुलनाथजी के बड़े भाई विट्ठलनाथजी अपने पितामह व्रजभूषणजी के अनन्तर कांकरोली के तिलकायित हुए, जिसका वर्णन पहिले हो चुका है। इनके द्वि० भ्राता गिरिधरजी—जिनका जन्म सं० १८१५ पौ० कृ० १० को हुआ था,—छोटी ही वय में गत हो गये थे। यह अपने पिता के तृतीय पुत्र थे। जब इनका जन्म हुआ, तब इनके पिता व्रजनाथजी गुजरात का प्रदेश करते हुए अहमदाबाद में निवास कर रहे थे।

विट्ठलनाथजी के प्रसंग में लिखा जा चुका है कि—उनका और गोकुलनाथजी का आपस में ऐसा घनिष्ठ भ्रातृभाव था, जो अन्यत्र होना दुर्लभ है। जिस प्रकार इन दोनो के भ्रातृत्व में एकता का परिदर्शन होता था, उसी प्रकार इन दोनों का शरीर, रूप-रंग और आकृति भी एक ही सी थी, जिससे प्रायः लोगों को भ्रम हो जाया करता था। हाँ, इनके शरीर में रोम अधिक थे, जिससे खुले अंग होने पर विभिन्नता ज्ञात

---

* जन्म-कुडली—

सवत् १८२१ वर्षे शाके १६८६ प्रवर्तमाने मन्मथ संवत्सरे मार्गशीर्षमासे कृष्णपक्षे १४ घटी ३१।४७ जन्मतिथौ गुरुवासरे विशाखानक्षत्रे घटी ५०।५२ शोभन घटी २२।२६ पर अतिगंडयोगे शकुनिकरणे एव पचागे वृश्चिकार्के गतांशा. १० सूर्योदयात् गतघटी २४।१५ समये मेषलग्नोदये श्रीव्रजनाथ-द्वितीयात्मज श्रीगोकुलनाथ-जी जन्म, अहमदाबादमध्ये।



हो जाती थी। इसी कारण इनका चित्र अलग न दिया जाकर विट्ठलनाथजी के चित्र में ही इसका नोट लगा दिया गया है।

इनके जन्म के लगभग ४ वर्ष बाद इनके पिता व्रजनाथजी का देवलोक हो गया, अतः बड़े भ्राता के समान इनका भी लालन-पालन इनके पितामह ने ही किया। वास्तव में यह दोनों भाई अपने पितामह को दोनों नेत्रों के समान प्यारे और इस घर के उजियाले थे।

व्रजभूषणजी ने बड़े प्यार और वात्सल्य से उनका पालन-पोषण और शिक्षा का प्रबन्ध किया। प्रारम्भिक अध्ययन के बाद सं० १८२९ के प्रारम्भ में व्रजभूषणजी ने इनका यज्ञोपवीत-संस्कार किया। इसी संवत् के वैशाख शु० १३ के दिन लिखे गये व्रजभूषणजी महाराज के पत्र से विदित होता है कि—इस उत्सव में ६००० रु० खर्च हुए थे। बड़े भाई विट्ठलनाथजी इस समय गुजरात में विराजमान होने के कारण कांकरोली उपस्थित नहीं हो सके। पूर्व-वर्णित इस समय की राजनैतिक विकट उथल-पुथल के कारण जनोई में इतना रुपया लगना विचारणीय विषय नहीं है; क्योंकि चारों ओर की अशान्ति और उपद्रव के प्राबल्य से चीज-वस्तु की महर्घता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

महाराजश्री के बड़े भाई विट्ठलनाथजी तो प्रदेश कर श्रीद्वारकाधीश की सेवार्थ द्रव्य भेजते थे और उनके पिता गोकुलनाथजी को अपने समीप रखकर श्रीप्रभु की सेवा और कांकरोली का प्रबन्ध तथा रक्षण करते थे।

सं० १८२५ के लगभग इनके पिता का और सं० १८३३ के अन्त में पितामह व्रजभूषणजी का देहान्त हो गया। सं० १८३४ में जब विट्ठलनाथजी कांकरोली के तिलकायित-पद पर विराजमान हुए और बाद में उन्होंने जब प्रदेश किया, तब गोकुलनाथजी ने घर की रक्षा और श्रीद्वारिकाधीश की सेवा के लिये कांकरोली रहना ही उचित समझा। इस कारण प्रदेश-परिभ्रमण का बहुत कम अवसर इनको अपने प्रारम्भिक जीवन-काल में मिला था।

सं० १८३४ माघ बदी १ बुध को यह उदयपुर पधारे, सो अमावास्या बुध को वापिस आये।

गोकुलनाथजी के पांडित्य के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं होता। जहाँ तक

अनुमान किया जा सकता है, इनका साम्प्रदायिक पठन-पाठन तो हुआ ही होगा, पर वह प्रखर वैदुष्य की श्रेणी तक पहुँचे हों, इसमें सन्देह ही है। इसका कारण तात्कालिक परिस्थिति है। अभिभावक व्रजभूषणजी के नित्यलीला-प्रवेश के समय इनकी अवस्था लगभग १२ वर्ष की थी, पिता इनके प्रथम ही गत हो चुके थे और बड़े भाई विशेष-कर प्रदेश में रहते थे। ऐसी अवस्था में इनके अध्ययन का ध्यान रखनेवाला कौन था? इधर यह कांकरोली में रहते थे, जहाँ उस समय राजनैतिक उपद्रवों का प्राबल्य था। इन सब कारणों से गोकुलनाथजी का अध्ययन जितना चाहिये, उतना न हो पाया था। फिर भी इन्होंने साम्प्रदायिक शास्त्रों का परिशीलन तो अवश्य किया था, क्योंकि अध्ययन-ग्रन्थों के रूप में कई पुस्तकों पर इनके हस्ताक्षर विद्यमान हैं, जिससे उन पर इनका स्वामित्व प्रकट होता है। यह काव्य के पारखी और कवियों के सहायक भी थे।

विवाह और सन्तति

सं० १८३६ माघ शु० ५ गुरुवार को गोकुलनाथजी महाराज अपना विवाह करने जयपुर गये। फाल्गुन कृ० ११ के दिन वहाँ बड़ी धूमधाम से इनका विवाह हुआ। ऐसा अनुमान होता है कि बारात में इनके ज्येष्ठ भ्राता विट्ठलनाथजी मेवाड़ की अशान्त राजनैतिक परिस्थिति के कारण जयपुर नहीं जा सके, और अपने परिकर के साथ एकाकी जाकर ही इन्होंने विवाह किया। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीपार्वती बहूजी था।

विवाह के अनन्तर सं० १८३८ मार्गशीर्ष कृ० १० को यह प्रदेश करने सूरत गये*, वहाँ से आकर तृतीय वर्ष सं० १८४० चैत्र वदी ६ शुक्रवार को यह द्विरागमन करने पुनः जयपुर गये, और सं० १८४१ वैशाख शु० १३ को वापिस कांकरोली

* इनके विषय में एक पद्य मिलता है—

जय श्रीगोकुलनाथ प्रथम परदेस पधारे।
भक्तन के सब काज प्रीति कर आप सुधारे॥
बुधि विक्रम व्यवसाय चतुर गुन रूप सुधा निधि।
विद्यावन्त अपार करत बहुवाद विविध विधि॥
इहि विधि सब परदेश मे दूरि करत निज भक्त भय।
बोलत सब चहुँओर तें जय, श्रीगोकुलनाथ जय॥ १॥

"व्रजजीवन कवि-रचित" (फुटकर संग्रह से)
सर० भं० बन्ध ५२। २

आये। जयपुर में महाराज सवाई मानसिंहजी से इनका परिचय हुआ और उन्होंने वैष्णव-मन्त्र की दीक्षा लेकर राजा हो जाने पर एक गाम भेंट करने का वचन दिया।

सं० १८४६ के अन्त में गोकुलनाथजी महाराज की पत्नी के अष्टमासा का प्रस्ताव हुआ, जिसमें उदयपुर महाराणा की ओर से राज्य-दस्तूर आया। समयानुसार गोकुलनाथजी के निम्न-लिखित सन्तति हुई—

१	पुरुषोत्तमजी	प्रा० सं० १८४७ वै० कृ० ३०
२	पीताम्बरजी	,, ,, १८४९

प्रथम पुत्र पुरुषोत्तमजी विट्ठलनाथात्मज व्रजभूषणजी (तृ०) के अनन्तर कांकरोली के तिलायित-पद पर विराजमान हुए, क्योंकि व्रजभूषणजी के पुत्र गिरिधरजी का छोटी अवस्था में ही स्वर्गवास हो गया था। व्रजभूषणजी (तृ०) के नित्यलीला-प्रवेश के पूर्व गोकुलनाथजी भी गत हो चुके थे और पुरुषोत्तमजी सूरत में रहते थे। यह व्रजभूषणजी के काका के पुत्र (भाई) थे, अतः इन्हीं का अधिकार पहुँचता देखकर महाराणा भीमसिंहजी ने इन्हें बुलाकर सं० १८७६ में तिलकायित के स्थान पर बिठाया और अपने हाथ से राजकीय दस्तूर किया था, जिसका विशेष वर्णन आगे किया जायगा।

गोकुलनाथजी छोटे भाई होने के कारण कांकरोली के तिलकायित नहीं हो सके *।

सवाई मानसिंहजी की दीक्षा

अतः इनके नाम पर राजा-महाराजाओं के द्वारा किसी ग्राम के मिलने की सम्भावना भी नहीं थी। सं० १८४१ में द्विरागमन कराने को जयपुर जाने पर सवाई मानसिंहजी ने महाराजश्री से वैष्णव-मन्त्र की दीक्षा ली और गुरु-दक्षिणा में राज्यासन पर बैठ जाने पर एक गाम भेंट करने का वचन देकर वैशाख शु० ३ के दिन उसका रुक्का लिख दिया †, जैसा ऊपर कहा गया है।

* अभी तक अधिकांश ऐसा माना जाता रहा है कि—अपने बड़े भाई के बाद यह कांकरोली के तिलकायित हुए, पर पत्रादि से यह निश्चय हो चुका है कि इनके लिये ऐसा अवसर नहीं आया। इनके भतीजे व्रजभूषणजी (तृ०) वास्तविक उत्तराधिकारी थे और उन्हीं को यह पद प्राप्त हुआ। हाँ, यह उनके अभिभावक-रूप में अवश्य माने जाते थे।

†

श्रीसीतारामो जयति
श्रीमहाराजाधिराज
सवाई मानसिंहजी

सीतारामजी
सही

इससे इतना तो विदित होता है कि—गोकुलनाथजी का प्रभाव और व्यक्तित्व भी अच्छा था। मानसिंहजी उस समय राजकुमार की हैसियत में थे, ऐसा ज्ञात होता है।

प्रदेश-भ्रमण

सं० १८४८ के अन्त अथवा ४९ के आदि में विट्ठलनाथजी के बाद जब उनके पुत्र व्रजभूषणजी १५ वर्ष की अवस्था में तिलकायित हुए, उस समय गोकुलनाथजी उनके अभिभावक हुए और दो-तीन साल तक अपनी देख-रेख में प्रभु की सेवा और कांकरोली का प्रबन्ध कराते रहे। पर यह व्यवस्था अधिक समय तक चली हो, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। काका-भतीजे में, प्रबन्ध-विषय को लेकर आपस में मनमुटाव हो जाने के कारण अन्त में गोकुलनाथजी ने प्रदेश-परिभ्रमण शुरू कर दिया, और उन्होंने सूरत को अपना स्थायी निवास बनाया। सम्भवतः इसमें सूरत की गादी का विवाद भी एक अन्यतम कारण था।

सूरत का जातीय विवाद

सं० १८५१ के प्रारम्भ में सूरत के बालकृष्णजी ठाकुरजी के घर में महाराणी बहूजी ने गोस्वामि गोकुलोत्सवजी को गोद लेकर उत्तराधिकारी बनाने का विचार किया। पर गोकुलनाथजी को यह सह्य नहीं हुआ। इनका अभिप्राय था कि सूरत के बालकृष्णजी ठाकुरजी—जो पहिले द्वारकाधीश के आगे विराजते थे, और व्रजरायजी के समय में सूरत आये थे—के यहाँ आवश्यकता पड़ने पर गुसाईंजी के तृतीय पुत्र बालकृष्णजी के वंशजों का ही अधिकार पहुँचता है, और सम्प्रति उक्त वंश में उसके उत्तराधिकारी कांकरोलीवाले ही हो सकते हैं। वे नहीं चाहते थे कि उस घर में किसी अन्य गोस्वामिबालक को गादी का मालिक बनाया जाय। यह सोचकर उन्होंने विवाद खड़ा किया और अपना पक्ष पुष्ट करने लगे।

गोकुलनाथजी ने चारों ओर इसकी लिखा-पढ़ी की और जाति के द्वारा इसका विरोध कराना शुरू किया। उस समय नाथद्वारा और कांकरोली को मिलाकर एक, और गोकुल की दूसरी जाति-पंचायत थी। पहली पंचायत में कांकरोलीवाले और नाथद्वारा-वाले गोस्वामिबालकों का विशेष प्राबल्य था। अतः इसकी विशेषतया सम्भावना थी

सिधिश्री महाराजाधिराज महाराजश्री सवाई मानसिंहजी वचनात् श्रागे म्हे गुसाइजी महाराजश्री गोकुलनाथजी को मत्र सुन्यो जद गाव एक गुसाइजी महाराज की भेट कीवो छै सो मै राज पर वैठस्या जद गाव भेट कीयो छै मा मदावद गुसाइजी महाराज पाया करसी मिती वैशाख सुदि ३ स० १८४१।

कि—जाति के सम्मुख सूरतवालों को अवश्य दबना पड़ेगा। इसलिये अपना पक्ष प्रबल करने के लिये गोकुलनाथजी ने यत्र-तत्र पत्र* लिखकर अपना विशेष दल तैयार किया था।

स्वत्व प्राप्त करने का प्रयत्न

सूरत की गादी पर अपना अधिकार जमाने के लिये यद्यपि गोकुलनाथजी महाराज ने प्रयत्न किया, पर उन्हें सफलता मिलनी दुःशक्य हो गई। और ऐसा होने का कारण यह था कि—इनके भतीजे कांकरोली के तिलकायित व्रजभूषणजी (तृ०) पृथक् रूप से अपने लिये प्रयत्न कर रहे थे। और, यही कारण था कि काका-भतीजे (गोकुलनाथजी-व्रजभूषणजी) का पारस्परिक मनोमालिन्य हो गया था।

इधर व्रजभूषणजी के पीठाधीश्वर होने के कारण जाति का विशेष समुदाय उनके पक्ष में आ गया था और गोकुलनाथजी कुछ अपने सगे-सम्बन्धियों का सहारा लिये ही बैठे थे। इस कारण उन्होंने धर्मशास्त्रीय व्यवस्था प्राप्त करने के लिये पूना में विद्वानों की एक सभा बुलाई और दक्षिणादि से उन्हें सत्कृत कर अपने लिये व्यवस्था तैयार करा ली। सं० १८५४ ज्येष्ठ कृ० १३ के दिन कितने ही धर्म-शास्त्रियों ने व्यवस्था लिखकर हस्ताक्षर किये, जिसमें यह सिद्ध किया गया कि—विधवा महाराणी बहूजी को गोद लेने का अधिकार एक प्रकार से नहीं है। यदि उनका अधिकार माना ही जाय,

---

* श्रीहरि

श्रीमत्प्रभूणामग्रे स्मर्यते

स्वस्तिश्रीमत्सकलगुणगणालङ्कृतेषु सौजन्य सागरेषु परमाप्ततमेषु गोस्वामि गोकुलनाथजी त० लालजी पुरुषोतमजी शर्मसु गोस्वामि गोविन्दरायस्याशीर्नतय. शमत्र तत्रास्तु; अपरंच पत्र तुम्हारो आयो समाचार जाने इहाँ ते पत्र १ गोकुलोत्सवजी को लिखि के तुम्हारे पत्र मे बीडे है और अपने सदा सर्वदा स्नेह है तेसे ही रहेगो। हमारी ओरते काहू बात की चिन्ता न करोगे, स्नेह प्रतिक्षण वर्द्धमान राखोगे। कुशल पत्र लिखोगे, किमधिकम् मिती चैत्र सुदि १० भृगौ सं० १८५१, लालजी विट्ठलरायजी गोपेश्वरजी लक्ष्मण नृसिंहजी के नमस्कार।

श्रीहरिः

श्रीप्रभुन आगे सुधि करत हैं

स्वस्तिश्रीमत्परमाप्ततमेषु ज्येष्ठभ्रातृ-तनय प्राणाधिकप्रिय गोस्वामि गोकुलनाथजीषु गोस्वामि गिरिधराणामाशिष. शमिह तत्रास्तु, अपरंच पत्र आपुको आयो समाचार जाने आपु महज्जर की लिखे सो अब गोस्वामि गोविन्दरायजी दादा को त० पत्र १ हम लिखि दीने है सोजानिवे मे इनमु कार्य होय जायगो। स्नेह प्रतिक्षण वर्द्धमान राखि कुशल पत्र लिखेगे कि बहु मिती चैत्र शुक्ल १२ सम्वत १८५१

तो वह अपने वंश के अधिकारी समीपवर्ती गोकुलनाथजी को ही गोद ले सकती हैं, अन्य को नहीं * ।

* इस विषय में पूना के पंडित-समाज ने जो व्यवस्थापत्र लिखा, वह इस प्रकार था—

श्रीः

श्रीमद् भगवत्पादारविन्द-परिचर्या-सपादित सकल सत्कार्य नरार्य गोकुलस्थाचार्य श्रीवल्लभाचार्यात्मज. श्रीविट्ठलनामा, तदात्मजो मानववर्य बालकृष्णनामास स्वजनकाचार्याद्वाराध्यदेवस्य प्रतिमाद्वय, कतिपयाना गुर्जरदेशीयनृणा तद्वेवमनूपदेशदेशिकता च लेभे । तस्य द्वारकेश्वर व्रजनाथ व्रजभूषण पीताम्बर व्रजालकार पुरुषोत्तमा षट् सुता । तेषु ज्येष्ठो देवप्रतिमयो पूजामकरोत् । अनूपदेश च वणिग्जनेषु ।

तत्सन्तानोनमेनासन्तानेन श्रीगिरिधरलालाख्येन प्रतिमाद्वय श्रीबालकृष्ण कूटस्थस्य तृतीय व्रजभूषण-नामकपुत्रस्य प्रपौत्राय श्रीव्रजभूषणाय दत्तम् । तस्मात् कूटस्थपुरुषपुत्रान्तर पीताम्बरपौत्रो व्रजराजनामा तयोरेका प्रतिमा श्रीबालकृष्णजातानामस्माक साधारणस्वत्ववता मत्वा महताग्रहेणाग्रहीत् । सासन्तानेन तेन पितृव्यपौत्रायादायि, सोप्यसन्तान. कूटस्थपुत्रान्तर व्रजालकारप्रपौत्राय श्रीपुरुषोत्तमाय तामदात् । असन्ताना तत्स्नुषा श्रीबालकृष्णनामक कूटस्थान्वयानन्तर्गताय ता मूर्ति दातुमिच्छन्ती श्रीव्रजभूषणस्य व्रजभूषणनामक प्रपौत्रस्य व्रजभूषणनामकपौत्रस्य पौत्राय श्रीगोकुलनाथाचार्याय प्रवरसन्तानाय मुधैव न प्रयच्छतीत्येतदसाम्प्रतम् । यतो भर्तु कुलपरम्पराप्राप्ताया मूर्तेर्जीवनौपयिक्याः पतिसन्निहिताधीनीकरणस्या-विच्छिन्नस्वकुलाचारपारम्पर्यस्य श्रेयस्करस्य स्वीकारस्यैवौचित्यम् । स्मरणेभ्य. (?) । तत्र भगवान्याज्ञवल्क्यः प्राह .. ,

पत्नी दुहितरश्चैव इत्यादिना तत्रत्य गोत्रजा इति प्रतीकमुपादाय सपिंड गोत्रजाभावे असपिंडा अपि गोत्रजा रिक्थहारिण इत्यर्थं तस्योररीचक्रु. ।

सर्वेपि श्रीविद्यारण्य विज्ञानेश्वर प्रभृतय. मन्वाद्याचार्या सामयिकाचारा. कुलाचारा अपि प्रमाणमित्यूचु । राजभिश्च ते यथानुशासन चालनीया इत्यपि तत्र .

जाति जानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्मास्तथैव च, समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मान्प्रति पालयेत् । १ ।
जाति देश कुलाना च ये धर्मा प्राक् प्रवर्तिता , तथैव ते पालनीया प्रजा प्रक्षुभ्यतेन्यथा । २ ।
जातिदेशकुलधर्माश्चाम्नायैरविरुद्धा' प्रमाणमिति । कात्यिय वचने

"मृते भर्तरि भर्त्रश लभ्यते कुलपालिका यावज्जीव नहि स्वाम्य दानाधमनविक्रये"

"अपुत्राशयन भर्त पालयन्ती गुरौ स्थिता, भुंजीतामरणात्क्षान्ता दायादादूर्ध्वमाप्नुयु' तस्मात्सन्निहित दायादपीडाकर न कार्यम् । हठेन तथाकृतस्यापि प्रत्याहरण करण-बोधक वचासि

"काम क्रोधास्वतन्त्रार्त क्लीवोन्मत्त प्रमोहिते , व्यत्यास-परिहाराय यद्दत्त तत्पुनर्हरेत् ।"

इत्यादीनि सन्ति । व्यास नारदावप्याहतु स्म

स्त्रीणा स्वपतिदायन्तु उपभोगफल स्मृत , तापहार स्त्रिय कुर्यु. पतिवित्तात्कथचन । मृते भर्तर्यपुत्राया. पतिपक्ष प्रभु स्त्रिया , विनियोगेषु रक्षासु भरणेषु स ईश्वर । परिक्षीणे पतिकुले निर्मनुष्ये निराश्रये, तत्सपिंडेषु चासत्सु पितृपक्ष प्रभु स्त्रिया " इत्यादि वचनेषु सन्निहितगोत्रिणा असन्तानस्त्रीधनाधिकारित्व प्रकृते च प्रतिमासेवावृत्तिरूपा, अत सुतरामेव प्रतिमार्पणाधिकारो न तस्या , इति शास्त्रनिषिद्धमार्गान्निवर्तितव्य तया सा ज्येति युक्तम् ।

प्रस्तुत विषय में गोकुलनाथजी ने छठे घर पर अपना स्वत्व प्राप्त करने के लिये खूब दौड़-धूप की। एतदर्थ उन्होंने बम्बई, सूरत, पूना, भरूच आदि स्थानों की यात्रा कर वहाँ के मराठा, अंग्रेज एवं मुसलमान राज्य-कर्मचारियों से पत्रादि लिखवाये, पर भगवदिच्छा से इनका यह प्रयत्न सफल न हो सका।

ननु यस्मा इमां वृत्ति दातुमिच्छति त तत्पुत्रादिक वा दत्रिमन्वेन पुत्रीकृत्य तस्मैना भूति दातुमर्हतीति चेदत्र वदन्ति। दत्तक पुत्र-ग्रहणे विधवाया नाधिकार.। अपुत्रेणेत्यादि श्रुतिवाक्ये पुस्त्वश्रवणात्, "न स्त्री पुत्रं प्रतिगृह्णीयात्" इति वाशिष्ठे निषेधाच्च। यद्यप्यन्यत्र भर्तुरनुज्ञानादिलिङ्गेन भर्त्रनुज्ञया स्त्रीणामपि पुत्रग्रहणाधिकार उच्यते, तथापि सधवाया एव तत्सम्भवात् विधवाया अधिकाराभाव एव। केचन विधवाया अपि सधवाया इवाधिकारमाहु परन्तु प्रत्यासन्नाप्रत्यासन्नयो पुंसो प्रत्यासन्न एव पुत्रीकार्य अस्मिन्विषये सर्वेपि दाक्षिणात्यादि निबन्धकारा. सम्प्रतिपन्ना एव।

तथाच प्रकृताया. साध्व्या. धनादिग्रहणे श्रीगोकुलनाथाचार्याणामधिकार सन्निहितत्वात्। पुत्र-ग्रहणेच्छाचेदपि तत्पुत्र एव ग्राह्यो नान्यस्यासन्निहितस्य। असन्निहिताभावे एव अन्यग्रहणस्योक्तत्वात्। इत्यत्र विद्वद्वराणां सम्मतयो मान्या।

पिंगल नाम सम्वत्सरे ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदश्यामद पत्रमभवत सवत १७१६ शाके (वि० सं० १८५४)

अनुमतोयमर्थो भवदेवमिश्रस्य काशीवासिन।

श्रीशैलवंशसम्भूत वेंकटाचार्यसूनुना

तिरुवंगलाचार्येण लिखिता सम्मतिस्त्विह।

चन्द्रिकेत्युपनामस्यापूजोशीनामकस्य समतोयमर्थ.।

अयमर्थः समत पाण्डुरंगभट्ट पौराणिकस्य।

योग्यानां पंडितानांच दृष्ट्वा समतिमादरात्।

काशीस्थदेवोपाध्यस्य कृष्णस्याप्यस्तिसंमति।

पत्रार्थ समतो नीलकण्ठ ज्योतिर्विदः।

पत्रार्थ संमतो कृष्णाचार्यस्य।

अयमर्थः समतोनन्तनामकस्य शास्त्रिण।

अयमर्थ समतो गिरिंग शास्त्रिणः।

अयमर्थ. समतो वेंकटेश शास्त्रिणः।

अयमर्थः समतो धर्मवरस्थ वेंकटेरामशास्त्रिण।

अयमर्थ संमतो वेंगलूर नरसिंह शास्त्रिण.।

समतिरत्र देवराम शास्त्रिणाम्।

श्रीमदधिकारिणांबालशास्त्रिण सम्मतोयमर्थः

अयमर्थ. सम्मतो महादेव दीक्षितस्य।

भूदेव वासुदेवेन सममानि यतस्त्विद

मन्वाद्या पुनय. प्रोचु सत्र सम्प्रतिपद्यते।

समतोयमर्थो राघवाचार्यस्य।

समतोयमर्थो जगन्नाथ शास्त्रिण।

अयमर्थ. समतो बापूज्योतिर्विदः।

अयमर्थ. समतो विट्ठलोपाध्यायस्य।

अयमर्थ समत काशीस्थगुर्जरोपनामक नृसिंह शास्त्रिण.।

पत्रार्थः समतोत्र काशीस्थ चिन्तामणिशास्त्रिण

अय ममत. शास्त्रानुरोधेनकाशीस्थ गौरीशंकरस्य।

समतोयमर्थ. साठेउपनामक श्रीमयूरेश सूनो. महादेव शास्त्रिण.

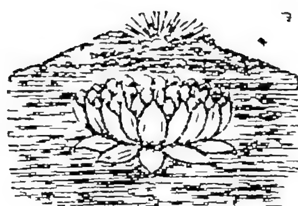
संमतोयमर्थोयशवन्त शास्त्रिणो जनस्थान निवासिनः।

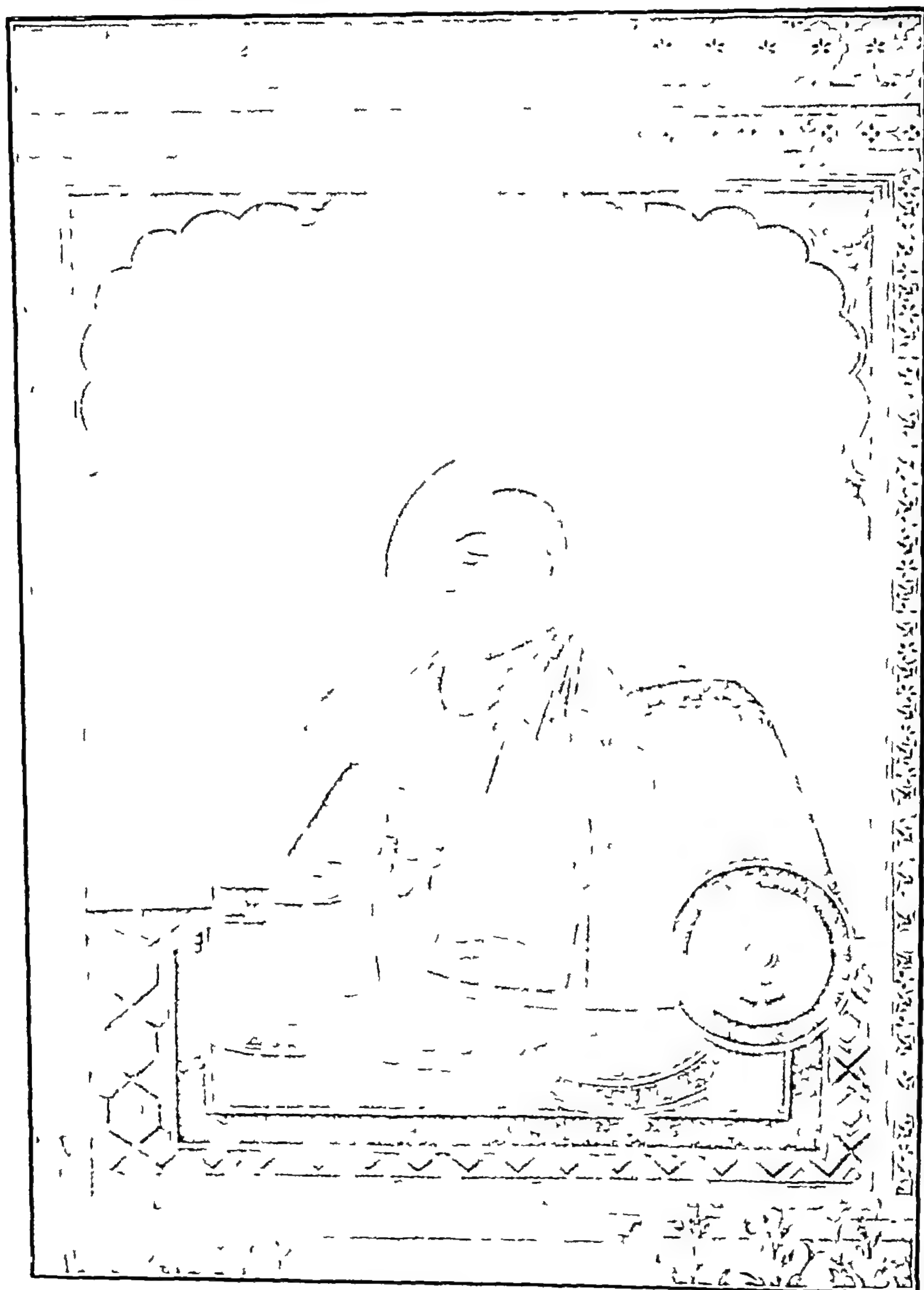
अयमर्थ समत. श्रीनिवासाचार्यस्य।

अयमर्थ समत सूरनारायण शास्त्रिण.।

सं० १८५५ चैत्र कृ० १२ को इनके पुत्र पुरुषोत्तमजी का यज्ञोपवीत-संस्कार व्रजभूषणजी महाराज ने कांकरोली में किया और इसके कुछ महीने बाद अर्थात् सं० १८५६ वैशाख कृ० ३० को गोकुलनाथजी का नित्यलीला-प्रवेश हो गया। संयोग ऐसा हुआ कि—इसी वर्ष आश्विन मास में सूरतवाली महाराणी बहूजी का भी उज्जैन में देहान्त हो गया, जिससे कांकरोली के व्रजभूषणजी (तृ०) और सूरत के गोकुलोत्सव जी का ही अदालत में मुक़द्दमा चलता रहा, जो सं० १८७१ में पूरा हुआ। इसके परिणाम का उल्लेख व्रजभूषणजी के चरित्र में किया जायगा।

ऐसा अनुमान होता है कि—गोकुलनाथजी के बाद उनके पुत्र पुरुषोत्तमजी सूरत के गोकुलनाथजी उर्फ लल्लूजी महाराज की गोद चले गये और वहीं रहे। यह गोकुलनाथजी लाडिलेशजी के मन्दिर के अधिपति थे, जिसका विशेष वर्णन पुरुषोत्तमजी महाराज के प्रसङ्ग में किया जायगा।





गो० श्रीव्रजभूषणजी (नन्दमहोत्सववारे)
प्रा० सत १८३५ चै० शुद्ध ६

सप्तम प्रकरण

(सं० १८४६ से १६०३)

—:❀:—

श्रीव्रजभूषणजी महाराज (अष्टम ति०)

(प्रा० सं० १८३५, ति० सं० १८४६, नि० सं० १८७६)

तथा तत्पुत्र

चि० श्रीगिरिधरलालजी (तृ०)

(प्रा० सं० १८५४, नि० सं० १८७०)

—❀:—

श्रीव्रजभूषणजी (तृ०) का जन्म सं० १८३५ चैत्र शु० ८ शनिवार के दिन हुआ* ।

जन्म, शिक्षा और संस्कार

इनके पिता का नाम श्रीविट्ठलनाथजी था, जो व्रजभूषणजी (द्वि०) के पौत्र और व्रजनाथजी के प्रथम पुत्र थे। यह महानुभाव और होनहार थे, जैसा कि—इनके चित्र की मुखाकृति को देखकर अनुमान होता है।

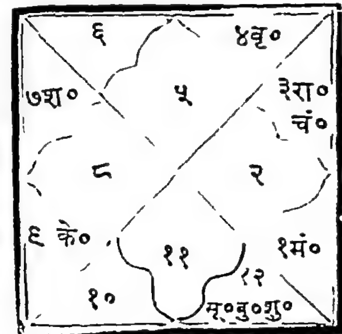
पिता की देख-रेख और लालन-पालन में इनका बाल्य-काल व्यतीत हुआ, पर सं० १८४९ के लगभग उनका गोलोकवास हो गया। अतः इनके काका गोकुलनाथ-जी इनके अभिभावक हुए।

सं० १८४८ प्र० चैत्र बदी ७ को इनका उपनयन-संस्कार हुआ, और यह

---

* जन्म-कुंडली—

संवत् १८३५ शाके १७०० प्रवर्तमाने वर्षे चैत्र शुक्ल ८ तिथौ घटी ५३।३६ शनिवासरे आर्द्रानक्षत्रे घटी ६।५८ परं पुनर्वसु जन्मर्क्षे अतिगड योगे घटी ३०।६ विष्टिकरणे मीनार्क गतांशा २४।२६।२ सूर्योदयात् गतघटी २५।८ समये सिंहलग्ने श्रीविट्ठलनाथात्मज श्रीव्रजभूषणजी-जन्म।



शास्त्रीय अध्ययन करने लगे। यथासम्भव इन्होंने अपने पिता और अन्य विद्वानों से भी साम्प्रदायिक अध्ययन किया, जिससे आगे चलकर यह विद्वान्, नीति-कुशल एवंच भक्तिपरायण बनकर अपने संस्थान को सँभाल सके।

इस समय देश और विशेषकर मेवाड़ का राजनैतिक वातावरण बड़ा ही पेचीदा हो रहा था। यह पहिले ही कहा जा चुका है कि यह परिस्थिति—जिसका प्रभाव कांकरोली पर भी पड़ रहा था—व्रजभूषणजी (द्वि०) के समय से ही उपस्थित हो गई थी, और महाराणा भीमसिंहजी इस समय शासन का भार सँभाल रहे थे। ऐसी अवस्था में परिस्थिति का असर इन महाराजश्री पर भी पड़ा, और घटनाओं ने इन्हें भी अपने अनुकूल समस्या सुलझाने के लिये कटिबद्ध किया। अपने समय में यह भी एक योग्य तिलकायित और पूर्ण नीतिज्ञ व्यक्ति हुए।

तिलकायित होना

सं० १८४९ के लगभग यह अपने पिता विट्ठलनाथजी के अनन्तर इस घर के तिलकायित की गद्दी पर विराजे। इस समय का कोई प्रमाण नहीं मिलता है; फिर भी विट्ठलनाथजी के चरित्र में उनके अन्तिम समय का अधिकांश निर्णय किया जा चुका है।

जिस समय व्रजभूषणजी तिलकायित हुए, उस समय इनकी अवस्था लगभग १५ वर्ष की थी। अतः काका गोकुलनाथजी इनके अभिभावक हुए और उनकी देख-रेख में यह श्रीद्वारकाधीश की सेवा और कांकरोली-ठिकाने का कार्य-संचालन करने लगे। प्रस्तुत प्रसंग में कुछ ऐसा आभास मिलता है कि—व्रजभूषणजी अपने काका से कुछ मनोमालिन्य रक्खा करते थे, जिससे उन(काका)को अपना समय प्रदेश में अधिकांश बिताना पड़ा। पं० इच्छारामजी के पत्र से भी कुछ ऐसा ही सङ्केत होता है—उन्होंने लिखा है कि—मर्यादा का अतिक्रम नहीं करना चाहिये।

लीला का अनुभव

व्रजभूषणजी महाराजश्री द्वारकाधीश की सेवा बड़े प्रेम-भाव और समारोह के साथ करते थे। इन्हें सेवा में लीला का अनुभव होता था। ऐसा प्रसिद्ध है कि—यह नन्द-महोत्सव करते समय आनन्द-मग्न हो जाया करते थे और २-३ दिन को अन्तर्धान भी रहा करते थे। इसी कारण इनका नाम 'व्रजभूषणजी नन्दमहोत्सववारे', इस प्रकार प्रख्यात हो गया था। इच्छारामजी-

जैसे साम्प्रदायिक विद्वान् ने इस प्रसंग में भगवद्भावावेश के गोपन करने का संकेत अपने पत्र में किया है * ।

विवाह और सन्तान

व्रजभूषणजी के विवाह का ठीक समय नहीं मिलता है, फिर भी इनके प्रथम पुत्र गिरिधरजी के जन्म सं० १८५४ से यह अनुमान होता है कि—इनका विवाह सं० १८५० के पूर्व इनके पिता विट्ठलनाथजी ने अपनी उपस्थिति में ही कर दिया था। इनकी पत्नी का नाम श्रीचन्द्रावली वहूजी था।

व्रजभूषणजी के समयानुसार निम्न-लिखित सन्तति हुई—

१	गिरिधरजी	प्रा० सं०	१८५४ भाद्र० शु० ९	प्रथम पत्नी से
२	गोपीनाथजी	,, ,,	१८५७ माघ १	
३	बेटीजी	,, ,,	१८५९ (अनुमान)	
४	श्रीलल्लूजी	,, ,,	१८७६ प्राचीन पंचांग में माघ शु० ५ को जन्म-दिन लिखा है।	

प्रथम पुत्र गिरिधरजी एक होनहार महानुभाव बालक थे। इनका यथोपलब्ध परिचय इसी प्रकरण में आगे दिया जा रहा है। द्वि० पुत्र गोपीनाथजी भी छोटी उमर में ही गत हो गये। सं० १८६३ में गिरिधरजी के यज्ञोपवीत हो जाने के बाद माघ शु० ३ भौमवार को व्रजभूषणजी महाराज की पत्नी चन्द्रावली वहूजी का देहान्त हो गया।

तृ० पुत्र श्रीलल्लूजी का जन्म सं० १८७६ में हुआ। इस समय इनकी माता (व्रजभूषणजी की द्वि० पत्नी) की वय कम-से-कम १८ वर्ष मानी जाय, तो कहना पड़ेगा कि उनका जन्म सं० १८५८ और विवाह सं० १८६६ के लगभग हुआ। सं० १८७१ में जबकि महाराजश्री इनका द्विरागमन करा कर लौट रहे थे, मार्ग

* "श्रीव्रजभूषण चरणेषु इच्छारामस्य पत्रदूत.। श्रीमदाचार्य प्राकट्यमारभ्य मर्यादातिक्रमो न जातः अतोऽधुनापि सा रक्षणीयावश्यम्, नैव त्याज्या। मिलनं तु वटपत्तन ग्रामात् निस्सरणानन्तरं. . . सम्पादयिष्यति। अन्यत् कियल्लेख्यम्। जनकाभिमुखात्सर्वबोद्धव्यम्। भगवत्स्वभावावेशगोपनं सर्वथा कर्तव्यम्।"

इनका परिचय पहिले दिया जा चुका है (व्रज० (२) परिशिष्ट—१)। प्रतिलिपि होने के कारण इसका संवत् और तिथि मिल नहीं सकी है, फिर भी इसके वाचक 'जनकाभिमुखात्' से व्रजभूषणजी के पिता का तात्पर्य लिया जाय तो मानना पड़ेगा कि यह संवत १८४९ के लगभग का पत्र है ; क्योंकि इस संवत् मे उनके पिता का गोलोकवास हो गया था।

में हुलकर की फौज द्वारा लूट लिये गये, जिसका वृत्तान्त आगे लिखा जा रहा है। द्वि० पत्नी का नाम चारुमती बहूजी था। तृ० पुत्र लल्लूजी का जन्म होते ही देहान्त हो गया था *, अतः व्रजभूषणजी के बाद महाराणा भीमसिंहजी ने सूरत से बुलाकर गोकुलनाथजी के पुत्र पुरुषोत्तमजी को— जो इनके भतीजे लगते थे— तिलकायित बनाया था।

सूरत-मन्दिर के स्वत्व का झगड़ा

सं १८५१ के प्रारम्भ में सूरत में बालकृष्णजी के मन्दिर के अधिकार का झगड़ा चला। वहाँ के तिलकायित गोवर्धनेशजी के बाद किसी औरस पुत्र के अभाव में उनकी पत्नी श्रीमहाराणी बहूजी ने श्रीगोकुलोत्सवजी (ज० सं० १८१६ श्रा० शु० १३) को गोद लेने का विचार किया। इस विषय पर जाति में इसका विचार होने लगा कि—इस स्थान पर कांकरोलीवाले व्रजभूषणजी का ही स्वत्व होना चाहिये। प्रस्तुत विवाद को मिटाने के लिये गोकुलनाथजी ने अधिक भाग लिया। परिणाम यहाँ तक पहुँचा कि वहाँ की अदालत में इसका मुक़दमा दायर हुआ।

इस समय में आये हुए पत्रों से यह स्पष्ट विज्ञात होता है कि—कांकरोलीवालों की ओर जाति का विशेष समुदाय था। इस समय गोस्वामिबालकों की जाति की गोकुल और सिंहाड (नाथद्वारा) प्रान्तीय दो पंचायतें ही थीं, जिसमें नाथद्वारा और कांकरोली का समुदाय एकमत रहा करता था। यह प्रथम लिखा जा चुका है कि—बालकृष्णजी ठाकुरजी द्वारकाधीश के आगे विराजते थे, और व्रजरायजी ने अहमदाबाद से ले जाकर उन्हें सूरत में विराजमान किया था। सन्तति न होने पर उन्होंने श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज (लेखवाले) को गोद लिया। उन्होंने भी पुत्र के अभाव में सं १७८२ के लगभग पुरुषोत्तमजी द्वितीय के नाम वसियतनामा लिखा।

---

* अनुचरदास ने इस प्रकार लिखा है:—

तृतिय नदन फेर प्रकटे नाम लल्लूजी धर्यो ॥
सवत अष्टादश छदोतेरा पूरन, पुन्यो हे सभी नेरा ॥
उदित इन्दू चारुमती कुख। गये दुख जु निरखि नैनन उदय अस्त एकै समै ॥

(बालकृष्णजी का मूल-पुरुष)

बाद में इनके पुत्र मुरलीधरजी और तत्पुत्र गोवर्धनेशजी ने ठाकुरजी की सेवा की। सं० १८२०-२१ के लगभग युवावस्था में गोवर्धनेशजी का नित्यलीला-प्रवेश हो जाने से उनकी पत्नी महाराणी बहूजी ने सं० १८५० तक अपना अधिकार रखकर स्वयं सेवा की। इस कारण कांकरोलीवाले महाराजश्री को अपना स्वत्व स्थापित करने का कोई अवसर नहीं था, क्योंकि जो भी वहाँ गोद आये, वे सब बालकृष्णजी (तृ० पुत्र) के वंशज ही थे। सं० १८५१ में महाराणी बहूजी ने जिन गोकुलोत्सवजी को गोद लिया, वे इस वंश-परम्परा में नहीं थे, और कांकरोलीवाले व्रजभूषणजी थे, इसीलिये इस समय यह सब विवाद उठ खड़ा हुआ था। वस्तुत प्रसङ्ग में अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये इनके काका गोकुलनाथजी ने भी बम्बई, सूरत, पूना आदि जाकर वहाँ के राज्याधिकारियों से परिचय बढ़ाकर अपने पक्ष में बहुत कुछ प्रमाण एकत्रित किये।

इधर सूरत से महाराणीजी बहूजी ने आदमी भेजकर महाराणा भीमसिंहजी से अपना अभिप्राय जाहिर कर व्रजभूषणजी के विरुद्ध उन्हें तैयार करना चाहा। इस समाचार को सुनकर व्रजभूषणजी ने भी महाराणा को पत्र में उक्त सब वृत्तान्त लिखा और गुरुघर के प्रति न्यायोचित कार्य करने का निवेदन किया।

जातीय निर्णय (महज्जर)

इस आपसी झगड़े में, जैसा पहिले कहा जा चुका है, व्रजभूषणजी और इनके काका गोकुलनाथजी ने अपना २ अधिकार प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना शुरू किया। यद्यपि व्रजभूषणजी को प्रथम यह ध्यान था कि गोकुलनाथजी मेरे लिये प्रयत्न कर रहे हैं, पर गोकुलनाथजी की जीवनी में यह लिखा जा चुका है कि वे अपने लिये ही प्रयत्न कर रहे थे, जिसकी सूचना मिलने पर अप्रत्यक्ष रूप में काका-भतीजे का मनोमालिन्य हो गया था।

इधर इसके लिये प्रबल प्रयत्न हो रहे थे, उधर सं० १८५६ में वैशाख में गोकुलनाथजी और आश्विन मास में महाराणी बहूजी का उज्जैन में नित्यलीला-प्रवेश हो गया, महाराजश्री ने शु० ५ के दिन से उनकी उत्तर-क्रिया शुरू की, और अपना उत्तरदायित्व तथा स्वत्व प्रकट किया। अब व्रजभूषणजी (कांकरोलीवाले) और गोकुलोत्सवजी (सूरतवाले), यही दो वादी-प्रतिवादी अवशिष्ट रह गए।

महाराजश्री ने अब जाति का सहारा लिया और नाथद्वारा आदि के समु-

दाय को एकत्रित कर सं० १८५७ श्रावण कृष्ण १४ रविवार को एक महज्जर लिखवाया*, जिसमें प्रस्तुत कार्य को साम्प्रदायिक मर्यादा के विरुद्ध बतलाया गया।

---

* श्रीगोवर्द्धनो जयति

लिखित समस्त गोस्वामिवर्ग। आगे श्रीद्वारकानाथजी पास श्रीवालकृष्णजी श्रीगिरिधरजी की अनुमति सूं बहुत काल विराजे सो यह वार्ता परम्परा ते सर्व विदित है।

पाछे व्रजरायजी ने पृथ्वीपति कू सेवासतुष्ट करिके श्रीवालकृष्णजी मागे जो मोको दिवाओ, तब पृथ्वीपति ने कही सब "मेरी प्रजा है" कोई कोभोंठ के कोई को देनो यह अन्याय मैं न करूंगो। तुम मेरे पास तें जो मागो सो देऊं, तब कहे व्रजरायजी जो मेरे तो और कछू न चाहिए। तब पृथ्वीपति ने कही—अन्याय कैसे करूं ? तब कही—जो मै हू छोटो भाई हू, पिता को पुत्र हू परंतु तुम्हारे प्रसाद तें मोकू ठाकुर मिले यामे अन्याय नहीं, तब पृथ्वीपति ने अहमदाबाद के ऊपर पत्र लिख दीनो—यथा योग्य इनको न्याव करोगे।

तब श्रीहरिरायजी ने गंगावेटी पास तें सेवार्थ श्रीवालकृष्णजी व्रजरायजी कों दिवाए। सो वार्ता हू परम्परा तें सब जानत हे।

सो अब वालकृष्णजी को वश छोड़ि के अन्य वंश मे ठाकुर को दै सो कैसे जाय ? पृथ्वीपति ने हू भाई जानि के आपने वश मे ही दिवाए हैं, और अपनी ज्ञाति की हू यही मर्यादा है। जो जाके वश की वस्तु होय ताही के वश कुं मिले, येही मर्यादा के बल ते व्रजरायजी पुरुषोत्तमजी कू दिए, वे हु मुरलीधरजी सुत पुरुषोत्तमजी कू दीये सो आज ताहीं श्रीवालकृष्णजी को वश ही सेवा करत आयो है।

सो अब महाराणी बहूजी कोई द्वेषादिक तें अन्य वंश के गोकुलोत्सवजी को दिए सो रीति शास्त्र तथा कुल तथा राज्यविरुद्ध है, तातें उन पासते पाछे लेके स्ववंश में देने। याको वचन—

काम क्रोधास्वतन्त्रार्त क्लीवोन्मत्त प्रमोहितैः,
व्यत्यास परिहाराय दत्त तत्पुनराहरेत्।

तातें अब श्रीवालकृष्णजी के कुल मुख्य व्रजभूषणजी है सो या निधि के वारस है सो इनकू पहौंचे यह कुल मर्यादा है। जो कोई अन्याय करिके काहू को घर लेहगो तो कुल मर्यादा उच्छिन्न होय जायगी। तातें सब पच मिलि के मरियादा रहे एसो कर्तव्य या सम्मति उपरान्त कोई अन्याय करै सो श्रीनाथजी ते, सातों स्वरूप ते, श्रीआचार्यजीते, श्रीगुसाईजीते विमुख है। मिति श्रावण कृष्ण १४ रवौ संवत १८५७।

सर्वनिर्णातेर्थे गोस्वामिश्री गोविन्दात्मज गिरिधारिण सम्मति.। सर्वनिर्णातेर्थे मित्रविन्दा बहूजी, चन्द्रावली बहूजी साक्षी ऊपर को लिख्यो सही।

अत्र साक्षी गोस्वामि मथुरामल्लजीसुत गोकुलनाथजी ऊपर को लिख्यो सही।

लिखित रघुनाथजी सुत गोविन्दरायजी श्रीवालकृष्णजी ठाकुरजी मे हमारी सत्ता नहीं, हम या वावत गोकुलोत्सवजी सू भेले होय के झगड़ै नहीं।

सूरत के इस विवाद का अन्त सं० १८७१ के प्रारम्भ में आया और अदालत ने व्रजभूषणजी का दावा खारिज कर गोकुलोत्सवजी को स्वीकार किया, और साथ में उन्हें वादी से खर्च भी दिलवाया। सूरत की अदालत ने जो फैसला दिया, उसका अनुवाद सारांश-रूप में यहाँ दिया जाता है:—

अदालत का फ़ैसला

फैसला अदालत सूरत तारीख १ फ़रवरी सन् १८१४ ई० नं० १००८

श्रीव्रजभूषणजी महाराज............वादी

श्रीगोकुलत्सवजी महाराज....... ....प्रतिवादी

दावा.........१,००,००० रु० बालकृष्णजी की मूर्ति बाबत।

इस मुक़दमा की तजवीज से मालूम पड़ता है कि पहिले व्रजभूषणजी ने बादशाह के अमल में बालकृष्णजी की मूर्ति व्रजरायजी महाराज के हवाले की थी, और घर के बड़े लोगों ने फारकती लिखकर मूर्ति के वारसा से अपना सारा हक्क उठा लिया था। वही मूर्त्ति पीछे तीसरे बड़े घर को छोड़कर क्रमशः चौथे घरवाले पीताम्बरजी के पुत्र पुरुषोत्तमजी (लेखवाले), उनके बाद पाँचवे घरवाले पुरुषोत्तमजी और मुरलीधरजी महाराज के पास आई।

अत्र साची कमला बहूजी। ऊपर को लिख्यो सही।

अत्र साची यमुना बहूजी ,, ,, ,,

अत्र साची रुक्मिणी बहूजी ,, ,, ,,

अत्र साची गो० श्रीजगन्नाथजी के बहूजी कृष्णप्रियाजी। ऊपर को लिख्यो सही।

अत्र साची गो० श्रीदामोदरजी की बहूजी भामनी बहूजी। ऊपर को लिखो सही।

अत्र सर्वनिर्णीतेर्थे गो० श्रीव्रजरायात्मज रघुनाथस्य सम्मतिः।

लिखित गोस्वामि श्रीयदुनाथजी सुत वल्लभजी अत्र साची ऊपर को लिखो प्रमाण।

यथार्थधर्म-निर्णीतेर्थे गोस्वामि घनश्यामजी सुत जदुनाथजी शर्मणोपि सम्मतिरस्ति यदुपरिष्टाल्लिखितं तत्तथ्य।

लिखितं गो० श्रीलक्ष्मणजी सुत गोवर्द्धनजी। अत्र साची ऊपर को लिख्यो सही।

अत्र साची गो० दामोदरजीसुत विट्ठलरायजी। ऊपर को लिख्यो सही।

अत्र साची गो० श्रीगोपालात्मज रामकृष्णेन सम्मति। ऊपर को लिख्यो सही।

अत्र साची मथुरानाथजीसुत द्वारिकेशजी ऊपर को लिख्यो सही।

लिखितं गोस्वामि लक्ष्मणजीसुत गोपीनाथजी साची। ऊपर को लिख्यो सही।

अत्र साची गो० श्रीगोकुलचन्द्रजीसुत ललुजी के बहूजी भामनी बहूजी ऊपर को लिख्यो सही।

लिखितं गो० श्रीलक्ष्मणजीसुत श्रीद्वारकानाथजी अत्र सम्मतिः।

अत्र साची गो० श्रीविट्ठलरायजीसुत गिरिधारिण. सम्मति. ऊपर को लिख्यो सही।

पुरुषोत्तमजी मुरलीधरजी महाराज के पास से उनके पुत्र गोवर्धनजी को मिली, और उन्होंने बिना पुत्र के जब लीला विस्तारी, तब वह मूर्ति उनकी बहूजी महाराणी बहूजी को मिली, इसलिये इतना ही विचारना है कि—बहूजी को अपनी इच्छा से पुत्र गोद लेने की योग्यता है अथवा नहीं।

गंगा बेटीजी और जानकी बहूजी के, तीसरे घर के श्रीव्रजभूषणजी के वारसा को छोड़कर चौथे घर के व्रजरायजी को फारकती लिख देने से मालुम पड़ता है कि—मूर्ति हवाले करने की योग्यता स्त्री को है, और बाप-दादा के वारस न होने पर दूसरे घर में से किसी एक को सौंपने की रीति है।

अदालत के शास्त्रियों की व्यवस्था से मालूम होता है कि—विधवा को दत्तक पुत्र करने का अधिकार है। दूसरे आज से २० वर्ष पूर्व श्रीगोकुलोत्सवजी की दत्तक पुत्र की स्वीकृति शाहआलम बादशाह ने भी दी, जिस पर सूरत के नवाब तथा बख्शी की मोहर भी की गई है।

यद्यपि श्रीजीद्वार और पूना के महज्जर ध्यान में लेने योग्य हैं, पर वे अदालत के आगे शपथ-पूर्वक उपस्थित नहीं किये गये, और महाराणी बहूजी के स्वामी ने युवावस्था में लीला विस्तारी, जिससे उनकी स्त्री के अधिकार में मूर्ति ५० वर्ष पर्यन्त रही, उस स्त्री का स्वामी बाप के बड़े पुत्र के कुल से पाँचवी पीढ़ी में है और वादी नवीं पीढ़ी में। इसलिये उन महज्जरों के ऊपर अदालत का हाकिम अमल कर सकने में विवश है। महाराणी बहूजी के पति के सगे-सम्बन्धियों में भी कोई नहीं है।

इसलिये इन सब बातों पर विचार करने पर दत्तक पुत्र कायम रहने का हुक्म दिया जाता है और फरियादी का दावा रद किया जाता है। फरियादी बिगत प्रमाण-खर्च दे।

खर्च की बिगत........ .... ५००० रु० कमीशन
४२ रु० कागज़-खर्च
५०४२ रु० एकत्र

व्रजभूषणजी महाराज (तृ०) के व्यक्तित्व का प्रभाव अपना विशेष स्थान रखता था। यह अपने प्रपितामह व्रजभूषण (द्वि०) की भाँति ही उदयपुर और जयपुर के महाराजाओं से अच्छा सम्बन्ध रखते थे, जिसके फलस्वरूप इनको कई स्थानों से जमीन-जागीर प्राप्त हुई। महाराणा भीमसिंहजी से

ग्रास जागीर और गाँव

इनका घनिष्ठ व्यवहार था, जिसके द्वारा समय २ पर नीचे-लिखी ज़मीन और जागीरें प्राप्त हुईं। सं० १८४९ आषाढ़ सुदी १२ शनि के दिन बाबा बख़्तावरसिंह के साथ उनकी पत्नी राठोडनी के सती होने पर चार बीघा जमीन दी गई (ता० प० नं ३२)। सं० १८५२ फा० कृष्ण १० शुक्रवार के दिन आसोटिया के उन खेतों की राजसमुद्र की पिलाई माफ कर ताम्रपत्र किया गया, जिनकी महाराणा अरिसिंहजी के द्वारा पिलाई का परवाना दिया गया था, इस समय उसका ताम्रपत्र किया गया*।

सं १८५२ फा० कृ० ११ शनि के दिन बारोल गाम की उस जमीन की स्वीकृति का तामापत्र कर दिया गया, जो भुवा रतनकुँवरि बाई ने भेंट की थी †। यह महाराणा जगतसिंहजी (द्वि०) की पुत्री और जोधपुर के कुँवर विजयसिंहजी की पत्नी थीं। इन्होंने महाराजश्री के प्रपितामह व्रजभूषणजी (द्वि०) से ब्रह्म-सम्बन्ध दीक्षा ली थी।

सं० १८५४ फा० बदी १ शुक्र के दिन रणापुरा की २० बीघा ज़मीन, जो नाणसिंघ की चौहाण वहू की थी, भेंट कर तामापत्र कर दिया गया (ता० प० नं० ४१)।

---

* ता० प० नं० ३ श्रीरामोजयति

श्रीगणेश प्रसादात् श्रीएकलिंप्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् गुसाइ श्रीव्रजभूपणजी जोग राजसमद रा नाला थी पाणी गाम काकडोली आसोट्या रा खेत पीवे है सो पीवाई महाराणा श्रीअरसिंहजी गुसाई श्रीव्रजभूपणजी रे चढाइ भेट कीदी जणरो प्रवानो श्रीमहाराणाजी रो सही रो सो या तावा पत्र श्रीदुरबारथी करे दीवाणो ऊदक आघट करे श्रीरामा अरपण करे पीवाई माफ है सदामट सो चोलण व्हेगा नहीं स्वदत्ता परदत्ता वा ये हरति वसुन्धरां, षष्टि वर्ष सहस्त्राणि विष्टायाजायते क्रमिः प्रत दुवे पडिहार मयाराम लीखता पंचौली वल्लभदास गीरधर लालोत, संवत् १८५२ वर्षे फागण वीद १० सुक्रे

† ता० प० नं० ६ श्रीरामो जयति

श्रीगणेश प्रसादात् श्रीएकलिंग प्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् गुसाई श्रीव्रजभूपणजी जो गाम बारोल प्रगणे ...जणी में कुडा ३ तीन खेरो १ अेक उदेराम वालो मीम नीम बीडा सुदी भुवा रतन कुवर बाई भेट कीदो तीरो यां तामापत्र श्रीदरबारथी करे दीवाणो ऊदक आघाट श्रीरामा अरपण करे चडाया लागत विलगत सरव सुदी सो चोलण वेगा नहीं। स्व दत्ता परदत्ता वा ....
दुवे श्रीमुख लीखतों पंचोली वल्लभदास गीरधरलालोत संवत् १८५२ वर्षे फागण वीद ११ सनौ . ...

सं १८५५ असाढ़ वदी ५ के दिन खीची के महाराज दुरजनसालजी ने एक गाम, परगना साढौर मौजा वरोदिया का, भेंट किया* ।

इसके बाद महाराणा भीमसिंहजी ने फिर नीचे-लिखे गाम और ज़मीन भेंट की—

सं० १८५७ वैशाख वदी १ भौमवार के दिन अपनी भुवा धनकुँवरि बाईजी के देहान्त हो जाने पर उनके ठाकुरजी श्रीमदनमोहनजी की सेवा कांकरोली पधरा कर ७ बीघा ज़मीन सेवार्थ भेंट की गई † ।

इन्होंने इस घर से वैष्णव-धर्म की दीक्षा लेकर सेवा पधराई थी ।

सं० १८५८ जेठ सुदी ७ सोमवार के दिन मुखिया मलूकचंद के द्वारा आंजणा-नामक गाम भेंट आया ‡ ।

---

* ता० नं० २२ श्रीरामजी

सही

श्रीद्वारकेशो जयति

श्रीमन्महाराजाधिराज गोस्वामी श्रीव्रजभूषणजी के गाव १ प्रगने साढौरे को गाव मौजे वरोदिया खीची महाराज श्रीराजाबाहादुर दुरजनसालजी ने लागत बीलगत भेटकरयो । या गाव मे काहात कीधो खेन्चल हौन पावे नही । श्लोक । स्वदत्त परदत्त वा यो हरेत सुरविप्रयो । .. . . जायते विट भुक् वर्षाणामयुतायुतम् । या बक्का करिके हमारे वंस को होई सो दसा पाले जाय मीती आसाढ वदी ५ संवत १८५५ । दसखत सेवक लाला नन्दलाल श्रीवासपति कायस्थ ।

† ता० प० न० ४० श्रीरामो जयति

श्रीगणेश प्रसादात् श्रीएकलिंग प्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् गुसांई श्रीव्रजभूषणजी जोग भुवाजी धनकु वर बाई रे सेवा रा ठाकुरजी श्रीमदनमोहनजी था सो भुवा जी देवलोक हुआ सो सेवा काकरोली श्रीद्वारकानाथ जी पधराई सो धरती बीघा ७ पीवल पता बावरी तथा गाम वडड्गाम महे भुवाजी रा हैवाला महे थी अम्बा रा गोट ८ राधेण १ सुदी आपरे उदक आघाट श्रीरामा अरपण करे चढाई रूख ब्रख लागत बिलगत सन्व सुदी सो चोलण वेगा नहीं स्व दत्ता पर दत्ता वा... . ...

दुवे श्रीमुख लीखता पंचोली वल्लभदास गीरधर लालोत संवत् १८५७ वर्षे वैशाख विद १ भौम

‡ ता० प० न० १९ श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादात् श्रीएकलिंग प्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् गुसाइजी श्रीव्रजभूषणजी जोग गाम आजणो प्रगणे. . तीरो उदक आधाट करे श्रीरामा अरपण करे दीदो लागत बिलगत सरब सुदी सो फणी बात रो चोलण वेगा नहीं स्वदत्ता पर प्रत दुवे पडियार मयाराम । लीखता पंचोली वल्लभदास गीरधर लालोत सवत १८५८ वर्षे जेठ सुदी ७ सोमे मारफत मुखिया मलूकचद ।

सं० १८५८ जेठ सुदी ७ सोमवार के दिन माजी महाराज के नाम पर गाम गोगुन्दा में २० बीघा धरती मुखिया मलूकचन्द के मारफत भेंट की गई (ता०प० नं० ३४)।

सं० १८५९ माह सुदी ७ शनिवार के दिन महाराणा भीमसिंहजी के द्वारा पेमा-खेडा-नामक गाम श्रीद्वारकाधीश के लिये भेंट चढ़ाया गया *।

सं० १८६१ आसोज सुदी ९ के दिन मुक़ाम सवाई जयपुर से महाराजा सवाई जगतसिंहजी द्वारा क्यासा गाँव (परगना टोडा रायसिंह) का पक्का परवाना कर दिया गया, जो स्व० महाराजा प्रतापसिंहजी से प्राप्त हुआ था और जिसका कच्चा परवाना अभी तक था, अर्थात् महाराजा जगतसिंहजी के गादी बैठने पर पुनः इसका दाखिल खारिज किया गया।

---

* ता० प० नं० १२ श्रीरामो जयति

सही

श्रीगणेशप्रसादात् श्रीएकलिंगप्रसादात्

महाराजाधिराज महाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् ठाकुर श्रीद्वारकानाथजी रे गाम पेमाखेडो ऊदक आघाट रामा अरपण करे भेट कीदो लागत विलगत सरव सुदी सो कणी वात री चोलण व्हेगा नहीं। आगे तावापत्र हो सो दगा रा सवव थी गमाणो यो करे दीवाणो। स्वदत्तां परदत्ता वा......

प्रत दुवे पडिहार मयाराम लीखता पचोली वल्लभदास गीरधर लालोत। संवत १८५९ वर्षे माह सुदी ७ सीनु।

श्रीरामजी

सही

श्रीसीतारामो जयति

श्रीमहाराजाधिराज सवाई जगतसिंहजी

सिधि श्रीमहाराजाधिराज महाराजा श्रीसवाई जगतसिंहजी देव वचनात् कमैती प्रगना टोडा रायस्यंघ का दसेसुप्रसाद·वंच्या अप·च वावति पुन्य गॉव गुसाईं जी श्रीव्रजभूषणजी आसोट्या नै जो मुवाफिक यादिदासति मे दसखत दीवानयान करार मिती आसोज वदी ४ संवत् १८६१ अरज पहौची जो पुन्य गॉव क्यास्या प्रगना टोडा रायस्यंघ तननही ज्मा कमाल संवत् १७७५ मै रुपया ६६० को उपेजा रुपया १,००० मै भोमि वागैरह सुधा इवतदाय सवत् १८५२ थे मुवाफिक प्रवाने सवती महाराजा वैकुठवासीजी श्रीसवाई प्रतापसिंहजी करार मिती सावण सुदि ५ साल सवत् १८५६ कै हुवो सो प्रवानं दफत्र मै दोडिय को हुओ न्ही।कचो हाथि राखै अरहासिल गॉव को संवत् १८६० ताई पायो अव इवतदाय संवत् १८६१ थे प्रवाना सवती का दसखत करायो चाहै फुरमावाछासो दसखत खास हुकम हुआ मुवाफिक लिखे प्रवानं सवती लिखोसो चाहिजे दीवान सरकार का प्रवाना लिखै मिती आसोज सुदि ३ संवत् १८६१ अरज मुकरर पहौची मुकरर गॉव मजकूर उपेजा रुपया १,००० का भोमि वागैरह सुधा एक मुवाफिक यादिदासति मै दसखत खास दीवानयान। मिती आसोज सुदि ६ संवत् १८६१ मुकाम सवाई जेपुर।

रजू दफत्र दीवान संगही अमरचंद। रजू दफत्र दीवान हजूरी। रजू दफत्र सदासुख मसतोफी (संक्षिप्त)

कुछ समय बाद महाराणा भीमसिंहजी ने फिर नीचे लिखे गाँव और जमीन भेंट की—

सं०१८६९ फा० सुदी ९ शुक्रवार के दिन परगना मोही के गाँव ओमडी का आधा हिस्सा श्रीद्वारकानाथजी और महाराजश्री के नाम भेंट किया गया * ।

सं० १८७० (चैत्रादि सं० ७१) जेठ वदी २ शुक्रवार के दिन भाटोली गाम (परगना मोही) महाराणा ने श्रीद्वारकाधीश के दर्शनार्थ कांकरोली आकर भेंट किया † ।

सं० १८७४ जेठ सुदी ९ शुक्रवार के दिन भूरवाडा गाम का ताम्रपत्र किया गया, जो रानी वड़ी (राठौर) की ओर से वडम (?) नानालाल कुँवर अमरसिंह के अन्त समय में श्रीद्वारकाधीश को भेंट किया गया था ‡ ।

---

* ता० प० नं० ६ श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादात् श्रीएकलिंगप्रसादात्

सही

महाराजाधिराजमहाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् ठाकुरजी श्रीद्वारकानाथजी गुसाईजी श्रीव्रजभूषणजी रे गाम ओमडी आदी प्रगणे मोही रे उदक आघाट श्रीरामा अरपण करे भेट करे चढाई । लागत विलगत सरव सुदी सो अणी गाम थी कणी वात री चोलण वेगा नहीं । स्वदत्ता परदत्ता वा.........

प्रत दुवे पडिहार मयाराम लिखता पचोली वल्लभदास गीरधरलालोत । सवत् १८६९ वर्षे फागण सुदी ९ शुक्रे ।

† ता० प० न० ७ श्रीरामोजयति

श्रीगणेशप्रसादात् श्रीएकलिंगप्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् ठाकुरजी श्रीद्वारकानाथजी रे गाम भाटोली प्रगणे मोहीरे श्रीजीद्वार दरसण करवा पधारया जदी श्रीरामाअरपण करे भेट चढाई । लागत विलगत डंड डोर सरव सुदी मा कणी वात री चोलण वेगा नहीं । स्वदत्ता परदत्ता वा .. . . ..

प्रत दुवे सहा सता दास लीखता पचोली चोखचन्द वल्लभदासोत । सवत् १८७० वर्षे जेठ बदी २ शुक्रे

डब्ल्यू० जी० २००

‡ ता० प० न० ११ श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादात् श्रीएकलिंगप्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् गाम भुरवाडो प्रगणे मोही रे राणी वडा राटोड री तरफ स वडम नानालाल कुँवर अमरसिंह रे अन्त समे ठाकुर श्रीदुवारकानाथजी रे भेंट । यो गाम नीम सीम लाग भोग हामल श्रीराड लागत विलगत रुख ग्रख सरव सुदी उदक आघाट श्रीरामा अरपण करे चढायो सो

सं० १८७२ पौष सुदी १५ के दिन गाम चेकली रावत सवाई मेघजी के बेटे मोहकमसिंहजी ने श्रीद्वारकाधीश के दर्शनों को आकर भेंट किया। रावत सवाई महासिंहजी ने यह गाम मोहकमसिंहजी को दिया था और उनके पुत्र ने उनसे पूछकर श्रीठाकुरजी को भेंट किया*।

सं० १८७५ भाद्रपद सुदी ४ के दिन गाँव पचावडी का ताम्रपत्र किया गया, जो महाराणा के चीरण भाई शिवदानसिंह ने श्रीद्वारकाधीश को भेंट चढ़ाया था†।

सं० १८५८ के अंत में जसवंतराव होल्कर ने मेवाड़ देश को लूटना प्रारंभ कर दिया। इस समय नाथद्वारा और कांकरोली पर भी उसने घेरा डाला। इस विषय में श्रीओझाजी ने इस प्रकार लिखा है—

होल्कर की चढ़ाई

"वि० सं० १८५८ (ई० सं० १८०२) में जसवंतराव होल्कर सिंधिया से गहरी हार खाकर मेवाड़ में चला आया, परंतु सिंधिया की सेना उसका पीछा करती हुई वहाँ भी आ पहुँची। तब वह नाथद्वारे की ओर चला गया। वहाँ के गोस्वामियों से उसने तीन लाख रुपए वसूल करना और मंदिरों की सम्पत्ति लूट लेना चाहा। इस

सारी उपज श्रीदुवारकानाथजी रे भंडार पुगसी म्हारा वसरा व्हेगा जोतो यो गाम ग्रथापसी नहीं। स्वदत्ता परदत्ता वा · ····

प्रत दुवे श्रीमुख लीखतां पचोली सुरतीग नाथुराम रा। संवत् १८७४ वर्षे जेठ सुद ६ सुकरे।

* ता० नं० २१ श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुद्रसणजी

रामा

सही

श्रीद्वारकानाथजी के मदिर श्रीगोस्वामीजी श्रीव्रजभूषणजी माहाराज के भेट करयो गाम चेकली रेख रूपीया ५० अके पचास की रावतजी सवाई मेघजी का वेटा रखवासराया मोहकमसिंहजी करयो रावत सवाई माहासिंहजी मोहकमसिंहजी ने बकसीसो म्है भेट करी रावत सवाई माहासिंहजी ने पुछने। स्वदत्ता परदत्ता · ··संवत् १८७२ मिती पोष सुदी १५। दरसन कू आये तब भेंट करयो।

† ता० प० न० १३ श्रीरामो जयति

श्रीगणेशप्रसादात् श्रीएकलिंगप्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणाश्री भीमसिंहजी आदेशात् गाम पचावडी ठाकुर श्रीदुवारकानाथजी रे चीरण भाई सिवदानसिंह भेट चडायो है सो रूख भख नीम सीम लोग भोग कुडा नीवाण टासटी सोग सरव सुदी ठाकुर श्रीदुवारकानाथजी रे भडार पुगसी, अणी गाम थी कोई बात री म्हारी तरफ सू चोलण वेगा पावेगा नहीं, स्वदत्ता परदत्ता ।

प्रत दुवे श्रीमुख लीखता पचोली सुरतसीघ नाथुराम। संवत् १८७५ वर्षे भादवा सुदी ४।

पर गोस्वामियों ने महाराणा को इसकी सूचना दी, जिस पर उसने देलवाडे के राज-कल्याणसिंह झाला, कटूँवा के ठाकुर विजयसिंह, आगरया के ठाकुर राठौड जगतसिंह, मोई के जागीरदार अजीतसिंह भाटी, साह एकलिंगदास बोल्या और जमादार नाथूसिंह को सेना-सहित नाथद्वारे की ओर रवाना किया। ये लोग वहाँ पहुँचकर गोस्वामी और तीनों मूर्तियों को लेकर चले। इतने में कोठारिया का रावत विजयसिंह चौहान भी मदद के लिये आ पहुँचा। होल्कर के नाथद्वारा आने के पहिले ये लोग ऊनवास गाम में ठहरे। यहाँ से आगे कुछ भय न होने से विजयसिंह अपने ठिकाने के लिये विदा हो गया। मार्ग में होल्कर की फौज द्वारा घिर जाने पर वह वीर अपने राजपूतों-सहित वहीं मारा गया। ऊनवास से वे तीनों मूर्तियाँ उदयपुर पहुँचा दी गईं *।"

---

* घटना-बोधक एक प्राचीन पत्र—

सवत् १८५८ के वर्ष में दखिणी हुलकर जसवंतराव मेवाडि देश में आयो, ताके भय तें माघ बदी ४ शनौ (इस वर्ष के पंचाग में आज के दिन प्रातः मकर लग्न १० मे श्रीनाथजी उठे) के दिन गोस्वामि श्रीगिरिधारीजी श्रीनाथजी को पाट ते उठाये। सो श्रीनाथजी त० श्रीविट्ठलेश रायजी तो उदयपुर पधारे और श्रीद्वारकानाथजी तो विराजे रहे। ता उपरान्त हुलकर के भले मनुष्य श्रीजीद्वार गये, सो मामलत रु० १,००,००० लाख एक ठहरे ताकी ओल में सिंघवी शभूमल्ल को ले गए। ता पाछे हुलकर के भले मनुष्य काकरोली मे आए, सो मामलत रु० ४०,००० हजार ठहरे, तामे सुवर्ण को पालना त० रूरा की चोखट दीने, कछूक घटे तामे बहू बेटीन को गहना दीने। या रीति सों चालीस हजार की भरती करि दीने। और गोस्वामि श्रीव्रजभूषणजी एसे कहे—जो या शीतकाल में मेरे ठाकुर सुख सों विराजे रहे, ताकी न्योछावरि चालीस हजार है।

ता उपरान्त वसन्त डोल श्रीनाथजी के उदयपुर में भयो।

फेरि वैसाख मे श्रीगिरिधारीजी ने घसार में मदिर बनायवे को मुहूर्त करे। उष्णकाल, हिन्डोरा, जन्माष्टमी उदयपुर मे भये।

फेरि भाद्र वदी में श्रीगिरिधारीजी के तीसरे लालजी को जन्म भयो। ता उपरान्त श्रीनाथजी स्वप्न में काहू को जताए जो मै इहाँ दुखी हौं, मोकों श्रीजीद्वार पाछे पधराओ, परन्तु पधराए नहीं।

ता पाछे आश्विन वदी मे श्रीगिरिधारीजी के बड़े लालजी लीला विस्तारे, ता उपरान्त बहूजी दोउ लालजी को लेके श्रीजीद्वार आये।

ता उपरान्त श्रीगिरिधारीजी ने श्रीव्रजभूषणजी सो अन्नकूट पर ठाकुर पधरायवे को आग्रह तो बहुत करे, परन्तु श्रीव्रजभूषणजी तो यही कहे, जो एक दिन को मार्ग होय तो सर्वथा पधराऊँ। चारि पाँच दिन को मार्ग, तामे मेरे ठाकुर दुख पावे।

पाछे श्रीनाथजी श्रीविट्ठलेशरायजी तो उदयपुर मे अन्नकूट अरोगे, और श्रीद्वारकानाथजी तो भली भाँति सों गोवर्द्धन पूजा करिके काकरोली मे ही अन्नकूट अरोगे।

नाथद्वारा से आकर जसवंतराव होल्कर ने कांकरोली पर घेरा डालने और यहाँ से भी रुपया वसूल करने के लिये अपने सरदारों को भेजा। इसके आने का समाचार पाकर महाराजश्री के सलाहकारों ने नाथद्वारा के गोस्वामियों की तरह श्रीद्वारकाधीश को उदयपुर लेकर चले जाने की सलाह दी, पर शीतकाल में ठाकुरजी को परिश्रम देकर ले जाना उन्होंने अपने सिद्धांत के विरुद्ध समझा, और भवितव्यता को द्वारकाधीश की इच्छा पर छोड़कर वे निश्चिंत हो गए।

कुछ दिनों बाद दल-बल-सहित होल्कर ने कांकरोली आकर डेरा जमाया और महाराजश्री से गहरी रकम अपने खर्च के लिये माँगी। उसे नाथद्वारा की सम्पत्ति में से बहुत कुछ द्रव्य मिल जाने के कारण इस बात का विश्वास हो गया था कि—इस सम्प्रदाय के मंदिर अत्यधिक सम्पत्तिशाली होते हैं, अतः उसने यहाँ भी अपना मुँह फैलाया।

महाराजश्री और होल्कर के बीच के भले आदमियों की दौड़-धूप तथा विचार-विनिमय से अंत में चालीस हजार रुपया लेकर कांकरोली में बिना किसी प्रकार का उपद्रव किये यहाँ से चले जाना तय हुआ और महाराजश्री ने रुपयों का प्रबंध कर देने का उसे वचन दे दिया।

कांकरोली-मंदिर के खज़ाने में उस समय इतना नगद रुपया नहीं था, जो होल्कर को देकर पिंड छुड़ाया जाता। फिर भी उसका किसी भी तरह भुगतान करना तो अनिवार्य ही था। फलतः एक सोने का पालना*, मंदिर के दरवाजे की चाँदी की

ता उपरान्त श्रीनाथजी जताए, जो मैं अन्नकूट नहीं अरोग्यो, तब कार्त्तिक सुदि १३ के दिन उदयपुर ते घसार पधारे। श्रीविट्ठलेशरायजी तो उदयपुर में ही रहे।

ता उपरान्त कार्त्तिक सुदी १५ के दिन श्रीनाथजी फेरि अन्नकूट अरोगे। श्रीविट्ठलेशरायजी तो अन्नकूट अरोगे बिना ही रहे।

ता उपरान्त श्रीगिरिधारीजी (काकडोली) आय के पौष वदी में बहूजी दोऊ लालजी को घसार ले गये।

इस पत्र में मिती संवत् नहीं है, पर जो वृत्तान्त लिखा गया है, वह ऐतिहासिक सत्य है।

* इस सोने के पालना के विषय में इस तरह कथानक प्रसिद्ध है—

बड़ौदा-निवासी हरिभक्तिवाले इस नाम से प्रख्यात एक सेठ ने आवश्यकता समझ और महाराजश्री की आज्ञा पाकर श्रीद्वारकाधीश के लिये यह पालना तयार कराकर भेट किया था। इसकी चार साकलें कमजोर देखकर महाराजश्री ने सेठ से उन्हें मोटी बनवा देने का आदेश दिया। सेठ के मन में महाराजश्री के लोभी होने की बात समा गई। जब इस बात की भनक महाराजश्री के कान में पड़ी, तो उन्होंने इसे आसुरी

चौखट और शेष में अपनी बहू-बेटियों के सोने-चाँदी के गहने देकर महाराजश्री ने उससे पीछा छुड़ाया *।

देवोत्तर सम्पत्ति के द्वारा भी अपनी निश्चित रक़म का भत्ता पूरा कराकर जसवंतराव होल्कर मेवाड़ के सरदारों से दंड के रूप में लाखों रुपये वसूल करता हुआ अजमेर होकर जयपुर की ओर चला गया।

इस प्रकार सं० १८५८ के अंत में कांकरोली संस्थान पर यह पहिला ही राजकीय अशांति का हमला हुआ। महाराजश्री ने धैर्य और विश्वास के साथ उस संकटमय विभीषिका का सामना किया, जिसकी सूचना-मात्र से नाथद्वारा के तिलकायित गोस्वामि श्रीगिरिधारीजी महाराज श्रीनाथजी जैसी अचल निधि को भी उदयपुर और घसियार जैसे विकट स्थानों में ले जाने को बाध्य हुए †।

हिंदुत्व के नाते होल्कर से यह तो आशा नहीं की जा सकती थी कि—वह सनातन धर्म का अनुयायी होते हुए भी औरंगजेब के समान देवताओं की मूर्ति तोड़ता और सारी सम्पत्ति लूटकर ले जाता। इस समय उसे द्रव्य की अत्यधिक आवश्यकता थी, अतएव उसने ऐसे स्थानों पर जमा किए हुए धन में से ले लेने की अपनी आसुरी इच्छा को पूरा किया था। इस घटना से इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि—कांकरोलीवाले महाराजश्री ने जो अपनी दृढ़ता दिखलाई, वह अनुपम थी। इस आदर्श ने आगे के लिये होल्कर के हृदय में धर्मस्थानों के प्रति ऐसी बर्बरता न करने की भावना अवश्य उत्पन्न कर दी, जिसका आगे चलकर यह फल हुआ कि—सं० १८६७ में उसने पुनः कांकरोली आने पर संस्थान की सुरक्षा का शिला-लेख लगवाया, जिसका वर्णन आगे किया जायगा।

द्रव्य कहकर ठाकुरजी के अंगीकार के योग्य न समझकर रख दिया। सेठ भी इसे छोड़कर चला गया। अन्त में यह होल्कर को दिया गया। कहते हैं, आजकल यह इन्दौर में अहिल्याबाई के मंदिर में रखा हुआ है।

* संवत् १८६२ (कार्त्तिकादि ६१) की रोकड़ में वैशाख शु० ६ के दिन इस रकम का जमा-खर्च हुआ। वहाँ लिखा है—"हुलकरनी फौज आवी, जीवराजसिंह बापू तथा शुभकर्णजी ए धनीए जुल्म करी रु० ४०४००) लीधा। ते मंदिर माथी मूलजी भाई तथा भाईदासजी ए जनस आपी तथा रोकड़ा हुन्डी आपी ते नामे मंडी छे।" (रो० पा० १४४)

† प्रस्तुत प्रसंग में 'ब्रजजीवन' कवि के कुछ पद्य मिलते हैं—

(स० भ० दि० बन्ध ५२। २) 'कवित्त संग्रह' ले० का० १८६७ श्री० व० १४ रवि।

ठारह से अट्ठावन की माह वदि चतुर्थी की, मद्धि अधराति को मनसूबो उपायो है।

महाराजश्री के अधिकांश समय में महाराणा भीमसिंहजी की बाल्यावस्था के कारण मेवाड़ में प्रबंध की शिथिलता हो रही थी, जिसका लाभ उठाकर उपद्रवी लोग जहाँ-तहाँ लूट-मार मचाने लगे थे। महाराणा ने यद्यपि शनैः-शनैः सुचारु प्रबंध करना शुरू कर दिया था, पर परितः प्रदीप्त उपद्रव-दावानल एकदम शांत न किया जा सकता था।

मेरों का उपद्रव

जिस प्रकार मरहठों ने मेवाड़ में आकर ठिकानों को लूटना शुरू किया था, उसी प्रकार 'मेरवाड़' के मेर लोग भी चुप नहीं बैठे रहते थे, वे भी जहाँ-तहाँ धावा मारते और जान-माल की बरबादी कर अपने देश को लौट जाते थे।

इनके उपद्रवों से कांकरोली का ठिकाना भी अछूता न बचा और उसके गाँवों पर उन्होंने जोर-जुल्म जारी कर दिया, जिससे जनता तंग आ गई थी।

प्रस्तुत विषय में ऐसा कहा जाता है कि—कांकरोली ठिकाने में जब मेर लोगों का उपद्रव बहुत बढ़ गया, तब सुरक्षा के लिये जनता ने महाराजश्री से कुछ प्रबंध करने की प्रार्थना की। महाराणा यद्यपि इसके लिये सतर्क थे, फिर भी उनकी शक्ति बटी हुई थी, अतः स्वयं महाराजश्री ने इसका उचित बंदोबस्त करने का विचार किया। कुछ समय बाद उन्होंने मौका मिलने पर मेरों के एक सरदार को कांकरोली बुलाया। उसने महाराजश्री के व्यवहार और द्वारकाधीश के दर्शनों से अत्यधिक प्रभावित होकर वैष्णव-धर्म की दीक्षा ली, और अपने आस-पास के समस्त जातीय सरदारों को एकत्र किया। इस विषय में ऐमा भी कहा जाता है कि—महाराजश्री ने एक मेर सरदार को बुलाकर बहुत-सा महाप्रसाद अपनी जाति के

बराजोरी इच्छा बिन प्रभु पधराए तबै बनास पार जाय भार अति ही बढ़ायो है।
बिनती कर्त-कर्त प्रभाकर छिपन लाग्यो बहुत मनुहार कर हाते पधरायो है।
मारग में कष्ट पाय मौत दिन बीते तबै उदियापुर मॉझ जाय मंदिर बनायो है॥ १० ॥
वल्लभ-कुल राज महराज व्रजभूषणजी जिन्के गुन गनत न पार सेस पायो है।
तन, मन, धन प्रीति करि प्रभु को समर्पि दियो सेवा मे मग्न होय आनंद बढ़ायो है।
दूरि ही की धमकि सों नाथ-नग्र भाजि गयो, परयो आय निकट तो हू साह बल पायो है।
जैजैकार होत व्रजभूषण द्वारिकेश जू को देश परदेश सब सुजश सुगायो है॥ १६ ॥

निश्चित दिन सवेरे नवाब अपने कुछ साथियों के साथ मन्दिर के चौक में आया। उसका आना सुनकर श्रीगिरिधरजी मुख्य दरवाजे के सम्मुख 'कानतिवारी' नामक स्थान में जा बैठे। जैसा कहलाया गया था, नवाब अदब के साथ चौक की सीढ़ियों से चढ़कर मन्दिर में ऊपर जाने लगा। उसने जैसे ही अपनी दृष्टि ऊपर की ओर की, कानतिवारी में उसे श्रीगिरिधरजी ने श्रीद्वारकाधीश के स्वरूप के दर्शन कराये। अतिशय सुन्दर और तेजोमय स्वरूप के दर्शन कर नवाब चकित हो गया। वह जैसे ही आगे सीढ़ियों पर चढ़ने लगा, सहसा असह्य ज्योति की चकाचौंध से उसकी आँखों में अन्धकार-सा छा गया, और वह आगे कुछ न देख सका। नवाब ने अब अधिक परीक्षा करने का विचार छोड़ दिया। वह ईश्वर की अलौकिक शक्ति पर विश्वास कर वहीं बैठ गया, और सीढ़ियों पर प्रणाम कर महाराजश्री से क्षमा-याचना करता हुआ अपने डेरे पर चला गया।

इस दृश्य के अलौकिक प्रभाव से प्रभावित होकर उसने कांकरोली गाम और मन्दिर को कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचाया। इसके साथ ही उसने भविष्य में मुसलमानों के द्वारा किसी प्रकार की आपत्ति न आवे, एतदर्थ फारसी में लिखा हुआ अपनी मुहर का फ़रमान और हिंदी में लिखवाकर एक शिलालेख सं० १८६७ वैशाख शु० ४ के दिन महाराजश्री को भेंट किया * और वह अपना मुकाम उठाकर गन्तव्य स्थान को चला गया।

अमीरखाँ का फरमान इस प्रकार है—

(यह मुहर फारसी लिपि में है)

१२१६ मुहम्मद अमीरखाँ वहादुर नवाब अमीरुद्दौला

* प्रस्तुत विषय का एक शिलालेख भी कांकरोली के प्रवेश-द्वार के दक्षिण-भाग में लगा हुआ है, जिसमें बीच की इबारत तो वही है, परंतु ऊपर-नीचे यह लेख विशेष है।

श्रीद्वारिकानाथजी

सूकर की आकृति है

× × × × ×

संमत १८६७ वर्षे। मारफत मुनशी दातारामजी की तथा जमायत मानसिंहजी की।

"सुरहपत्र भेंट कीनो श्रीद्वारकानाथजी महाराज के दरबार में सीरकार श्रीनवाब आमीरुद्दौला महमद आमीरखाँजी बहादुर की सीरकार सों आगे श्रीजीदुवार की सेवा सीरकार तरफ परसपरा सों चली आई है सो हमेसा नवाब के बनस में सेवा-टहल करत रहें। नवाबस्याही में जो होय हींदु व मुसलमान श्रीजी के दरसन को आवे आदब मरजाद राखे। जो कोई श्रीजी की सेवा सूँ विमुख होय ताकों सुरै गऊ व खुदा व कुरान की आन है। मी० वैसा० सु० ४ समत १८६७"।

(इसमें परम्परा से सेवा चले आने का तात्पर्य संभवतः उस जागीर से है, जो सं० १८४५ में सवाई महाराजा प्रतापसिंहजी ने टोंक के ज़िले में भेंट की थी, क्योंकि बाद में यह इलाका जयपुर के द्वारा अमीरखाँ को दिया गया था।)

अमीरखां के जाने के बाद ही सं० १८६७, वैशाख मास में कांकरोली में जसवन्तराव होल्कर भी आया, और उसने भी अमीरखाँ की देखादेखी अथवा अपने मन से ही कांकरोली के ठिकाने में किसी प्रकार का उपद्रव न हो, एतदर्थ मन्दिर के लिये एक शिलालेख लगवा दिया—

होल्कर का शिलालेख

श्रीरामजी

सुरैपत्र पटे कीनो सुब सुथान
कांकरोली के मुकाम श्रीठाकुर
जी श्रीदुवारकानाथजी के।

सरकार श्रीमहाराजाधिराज सुबेदारजी श्रीजसवन्तराव होलकर आलीजा बहादुर के श्रीठाकुरजी की सेवा परम्परा सूँ इस सरकार के तरफ करनी चली आवे है वसी

चैत्र कृष्ण १ को (होली के दूसरे दिन) प्रतिवर्ष कांकरोली में मन्दिर से इसी के स्मारक-स्वरूप बादशाह की सवारी निकाली जाती है। इसमें पहिले वह चौक की सीढ़ियों पर उपस्थित होकर श्रीठाकुरजी को प्रणाम करता है, और अपनी डाढ़ी से एक-दो सीढ़ियाँ साफ़ करता है।

यद्यपि यह एक प्रकार से फाल्गुन का खेल माना जाता है, फिर भी इसमें यही ऐतिह्य तत्त्व सन्निहित माना जा सकता है। और सभव है, उसी समय से इसका चलन हुआ हो। साम्प्रदायिक अन्य किसी मन्दिर में इस प्रकार का रिवाज देखने में नहीं आता, इससे भी उक्त वृत्त की बहुत कुछ पुष्टि होती है।

प्रमाण सरकार होलकर के...........जो इस सरकार के वंश मे होवेगा सो टहल-सेवा मे हाजिर रहेगे, मरजाद कायदा राख टेहेल करेगे, जो होलकर साही मे से हिन्दू तथा मुसलमान श्रीठाकुरजी के दरसन को आवे सो सुरेपत्र देख सेवा मे हाजिर रहै। कदाचित मुसलमान सेव कदी कदी करै उसकूँ सुवर गाय वा श्री सूरज की आन है। मिती वैशाख सुदी ७ सं० १८६७" *।

इसके देखने से विदित होता है कि इस समय हुलकर की वह खूँखार वृत्ति नहीं रह गई थी, जो आज से ७-८ वर्ष पूर्व थी, और जिसके वशवर्ती होकर उसने कांकरोली से चालीस हज़ार रुपया वसूल किया था। इस शिलालेख में लिखा हुआ है कि—हमारी सरकार के वंश में जो कोई भी विद्यमान हो, इस मन्दिर की टहल-सेवा करता रहे और इसे किसी प्रकार की क्षति न पहुँचावे।

श्रीनाथजी को घसियार से पधराना

सं० १८६७ श्रावण वदी ५ के दिन मेवाड़ की करुण घटना की मुख्य पात्री कृष्णाकुमारी के जीवन के समाप्त होते ही जोधपुर-जयपुर के महाराजा और नवाब अमीरखाँ के उपद्रव, मार-काट आदि भी एक प्रकार से शान्त हो गई थी। इधर अंग्रेज़ों के साथ मेवाड़ के सहयोग की बातचीत ने एवं उनके आस-पास के फैले हुए प्रभाव ने भी उस अन्धाधुन्धी को समाप्त करने में सहयोग दिया था। इस कारण नाथद्वारा के लिये अब किसी भय की आशङ्का नहीं रह गई थी। फिर भी वहाँ के तिलकायित गिरिधारीजी महाराज के नित्यलीला-प्रविष्ट हो जाने से इस समय उस घर में उनकी पत्नी और बाल-तिलकायित दामोदरजी उपनाम दाऊजी महाराज ही अवशिष्ट रह गये थे। इस समय उनकी वय १३ वर्ष की थी। ऐसी अवस्था में श्रीनाथजी को घसियार-नामक दुर्गम स्थान से वापिस नाथद्वारा पधरा लाने का कठिन काम कोई समर्थ व्यक्ति ही कर सकता था। उस समय कांकरोली के महाराजश्री ही ऐसे व्यक्ति थे, जो इस काम को उठा सकते थे। अन्य दूसरे गोस्वामि-बालकों की सामर्थ्य नहीं थी कि—वे अशान्तिमय देश के वातावरण से अपने-अपने घरों की रक्षा भी करते और सम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण इस कार्य को पूरा करते।

ऐसा भी प्रसिद्ध है कि—व्रजभूषणजी महाराज को श्रीनाथजी ने स्वप्न में इस प्रकार की प्रेरणा की कि मिहाड (नाथद्वारा) मुझे वापिस आना है।

---

* यह शिलालेख प्रधान दरवाजे के वाम बग़ल में गड़ा हुआ है।

इस प्रकार की भावना से प्रेरित होकर महाराजश्री ने महाराणा भीमसिंहजी से उदयपुर जाकर प्रस्तुत विषय में बातचीत की और उनके द्वारा उचित प्रबन्ध हो जाने पर वे घसियार गये। वहाँ दाऊजी महाराज की माता ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया। इस महत् कार्य का सारा खर्च महाराज व्रजभूषणजी ने अपने जिम्मे लिया और माजी महाराज ने श्रीनाथजी की मुख्य सेवा का भार उनको प्रदान किया।

महाराणा के द्वारा रक्षा का इन्तिजाम हो जाने पर महाराजश्री ने सं० १८६७ फाल्गुन वदी ७ के दिन श्रीनाथजी को बड़े ठाट-बाट के साथ घसियार से नाथद्वारा में लाकर विराजमान किया और पाटोत्सव कर उनकी पुनः यथावस्थित सेवा-प्रणाली प्रचलित की।

श्रीनाथजी के पुनः नाथद्वारा में आ विराजने के कारण वैष्णव-समुदाय का बड़ा उपकार हुआ। समुचित साधन एवं पूर्ण सुरक्षा का प्रबन्ध न होने से जो दर्शनार्थी-समुदाय श्रीनाथजी के दर्शनार्थ घसियार-जैसे दुर्गम स्थल में नहीं जा सकता था, पुनः नाथद्वारा आने-जाने लगा, जिससे वह स्थल फिर आबाद हो गया, जो आगे न जाने कब होता ? श्रीनाथजी को नाथद्वारा में पधराकर श्रीव्रजभूषणजी महाराज ने कई महीनों तक पूर्ण अधिकार से वहाँ का शासन-प्रबन्ध और सेवा की *।

---

* द्वा० प्रा० वार्ता (लल्लूभाई) पत्र ११७ में लिखा हुआ है कि—इस कार्य में श्रीव्रजभूषणजी के ७ लाख रुपया खर्च हुए, जिसमें से ४ लाख तो आ गये बाकी ३ लाख अब तक बाकी हैं।

प्रस्तुत प्रसंग में ऐसा भी सुनने में आया है कि—श्रीव्रजभूषणजी महाराज ने श्रीनाथजी को कुछ दिनों काकरोली में विराजने की प्रार्थना की, जिस पर श्रीनाथजी ने प्रतिवर्ष विजयादशमी के दिन भावना-स्वरूप से आना स्वीकार कर लिया। अब भी प्रतिवर्ष विजयादशमी के दिन कांकरोली में श्रीनाथजी भावना-रूप से पधारते हैं। यहाँ श्रीनाथजी की की वेणु अब भी विराजमान है।

यह भी प्रख्यात है कि—श्रीनाथजी की सेवा हो जाने पर "तालामगल" (ताले बंद) हो जाने पर चाबियाँ (कूमकाजी) नाथद्वारा से कांकरोली लाई जाती थीं, और प्रतिदिन प्रातःकाल पुनः महाराजश्री की आज्ञा लेकर नाथद्वारा ले जाकर सेवा का काम चालू होता था। महाराजश्री कभी नाथद्वारा में श्रीनाथजी की और कभी कांकरोली में रहकर श्रीद्वारकाधीश की सेवा किया करते थे।

सम्भवतः इसी कारण नाथद्वारावाले दाऊजी महाराज से इनका वैमनस्य हो गया था, जिसका वर्णन आगे किया जायगा।

जैसा प्रथम कहा जा चुका है, इस समय मेवाड़ में होल्कर तथा सिन्धिया का दौरदौरा और ज़ोरज़ुल्म चालू था। कभी कोई एक और कभी दोनो अथवा कभी उनके मुसाहिब यहाँ आकर लूट-मार करते और प्रजा को तंग कर रुपया वसूल करते थे। इस बार-बार की विपत्ति को सहते-सहते मेवाड़ की प्रजा जिस प्रकार दुर्दशाग्रस्त हो गई थी और उसकी इन ६० सालों में जो दयनीय दशा हो गई थी, वैसी मुगल-साम्राज्य के ४५० वर्षों के आक्रमण से भी नहीं हुई थी।

इसका प्रत्यक्ष और परोक्ष फल कांकरोली को भी भोगना पड़ता था। मेरवाड़ और मारवाड़ से मार्ग होने के कारण होनेवाले हमलों और सेनाओं के पड़ावों से कांकरोली के ठिकाने को बहुत नुक़सान उठाना पड़ता था। अराजकता के समय कौन किसकी पूछता, और कौन किसकी रक्षा करता था? उस समय अपने पैरों पर खड़े होकर अपने आप अपनी रक्षा करनी पड़ती थी। यदि इस समय तात्कालिक सूझ और साम-दाम से काम न लिया जाता, तो नाश तो अवश्यम्भावी ही था। इन सब बातों से महाराज व्रजभूषणजी की सावधानता और व्यवहार चातुर्य का पता चलता है।

सिन्धिया से पत्र व्यवहार

ऊपर कहे जा चुके प्रसङ्गों से अमीरखाँ और होल्कर की ओर से तो महाराजश्री को एक प्रकार से निर्भयता हो गई थी, पर अभी सिन्धिया की ओर से होनेवाले उपद्रवों और लूट-मार की आशङ्का उनको बनी हुई थी। सिन्धिया की फ़ौज और उनके सहयोगी गायकवाड़ कानूजीराव के पड़ाव पड़ते रहने के कारण कांकरोली को समय-समय पर भारी हानि उठानी पड़ती थी, और उजाड़-बिगाड़ होते रहने से जनता तंग आ जाती थी। इस झंझट को मिटाने के लिये महाराजश्री ने दौलतराव सिन्धिया से परिचय बढ़ाया और उसको पत्र * लिखकर इसका उचित प्रबन्ध कराया। सं० १८६१ की रोकड़ वही से पता चलता है कि—

---

* श्रीद्वारकेशो जयति
श्रीद्वारकानाथचरणशरणव्रजभूषणस्य
मुद्रिका

स्वस्ति श्रीव्रजभूषणजीगोस्वामिना श्रीमन्नन्दनन्दनचरणनलिनानुरागरञ्जितान्तःकरणेपु शौर्यौदार्य-वीर्याद्यखिलगुणमडितेपु श्रीमन्महाराजाधिराज आलीजाह सूवेदारजी श्री श्री श्री दौलतरावजीसिन्धेपु सत्रविांगपु शुभाशिषा राजयो राजन्ता शमिह श्रीमता तदनुदिनमेधमानमाशास्महे। अपरच हमारे यहाँ गायकवाड श्रीकानूजी राव को मुकाम आसोटियाके नाले के ऊपर पडे है सो ऊजाड-बिगाड बहुत होय है और भय हू बहुत बतावे है तासूँ आप याको पको बन्दोवस्त कर पको हजूरात भलो मनुष्य त०

सिन्धिया और उनके घर तथा परिवार के लोग यहाँ माघ शु० ३ के दिन आये थे, और उन्होंने श्रीप्रभु के दर्शन कर ४१११।।)।। भेंट के जमा किये थे *।

इन पिछले वर्षों में मेवाड़ की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई थी, जिसके साथ कांकरोली भी सम्मिलित थी। महाराणा जहाँ मेवाड़ की दशा सुधारने की चेष्टा कर रहे थे, वहाँ ठिकाने के प्रति भी उनकी उपेक्षा-दृष्टि नहीं थी। पूर्व-प्रकाशित ताम्रपत्रों से इसकी पुष्टि होती है कि—

महाराणा द्वारा सुरक्षा का प्रबंध

हलकारो पठाय के कुच कराय दिवावेंगे। या आपकी बड़ी सेवा है। हम यहाँ सेवा करिके प्रतिक्षण शुभोदय वाञ्छत है। आपको सिरे राज्य होहू। आपकी सदैव फतेह होहू यही निरन्तर आशीर्वाद देत है। और विशेष समाचार देवकृष्ण कहे तासूँ जानेंगे। हमारे आप उपरान्त और कछू है नहीं आप सर्व खे आप ही है। आपकी सेवा को कहा कहनो। कोटि वर्ष चिरंजीवि रहो। अखडित प्रताप होहू सकल मनोरथ सिद्ध होहू। यह तो आपको घर है या घर विषे जैसो स्नेह चित्त भक्ति श्रद्धा राखत हो तैसो ही राखोगे। कुशल पत्र पठवत रहेंगे। मिती माघ सुदि ८।

चि० लालजी गिरिधरलालजी के आशीर्वाद।

संभवत. यह पत्र सं० १८६६ माघ शु० ५ के पूर्व का है; क्योंकि इस दिन जिन सरदारों को पत्र और प्रसाद भेजा गया है, उनमें गायकवाड कानूजी का भी नाम है। यह पत्र और प्रसाद प्रतिवर्ष जिन-जिन सरदारों को भेजा जाता था, उनके नाम इस प्रकार थे। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय कौन-कौन व्यक्ति किस-किस अधिकार पर थे :—

१ हुलकर श्रीजसवन्तरावजी
२ सेव बालारामली
३ धरमानी कुँवरजी
४ दीवान गणपतरावजी
५ बाई तुलसाबाई हुलकर की बहू
६ शास्त्री अम्बारामजी
७ बाबा सखारामजी
८ फरनिवेश राजेश्री बालुरावजी
६ फरनिवेश राजेश्री वामनरावजी
१० पण्डित बापूजी
११ तात्या माधोरावजी
१२ सूबेदार भाउजी
१३ सूबेदार तालाजी खाडेराव, माधोकुँवरजी मुकाम अजमेर
१४ रावत श्रीलाखाजी मेर
१५ श्रीमन्त गायकवाड कानूजी
१६ दौलतराव सिन्धिया
१७ बापू सिरजीत रावजी
१८ करनल हीरासिंहजी
१६ कृष्णाजी भाउ
२० एगले श्रीमन्त अम्बाजी
२१ एगले श्रीमन्त बालेरावजी

मेवाड़ के सरदारों से तो महाराजश्री का पत्र-व्यवहार था ही, जिसके उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं है। नवाब अमीरखाँ के पत्र की लेखन-पद्धति इस प्रकार थी—

"स्वस्ति श्रीव्रजभूषणजी गोस्वामि के सवशुभोपमायोग्य नवाब साहिब श्री श्रीअमीरखाजी को आशिषः। इहाँ कुशल है, आपके कुशल चाहत है। अपरंच . .

* एक प्राचीन नोटबुक से।

महाराणा ने इस बीच में कांकरोली की आर्थिक स्थिति के सुधारने में क्रियात्मक भाग लिया था।

सं० १८७१ (श्रावणादि ७०) चैत्र मास में महाराणाजी भीमसिंहजी ने कांकरोली आकर श्रीद्वारकाधीश के दर्शन किये। परम्परागत गुरुभक्ति का परिचय देते हुए उन्होंने कई गामों की उठंत्री उठा दी और ठिकाने को सुरक्षित रखने के लिये वैशाख शु० ३ शनि के दिन एक शिलालेख (सुरे) लगवा दिया। रोकड़ वही (पाना २४७) देखने से पता चलता है कि—महाराणा ने सूरत के विषय में एक पत्र लिख दिया था। ऐसा अनुमान होता है कि इसी पत्र से महाराणा ने सूरतवाले गोस्वामियों का मेवाड़ में आना रोका था, क्योंकि इसी वर्ष सूरत की अदालत से महाराजश्री का दावा खारिज कर दिया गया था, जिसका वर्णन किया जा चुका है। इसी दर्शन के सिलसिले में महाराणा ने भाटोली-नामक गाम भी भेंट किया, जिसका उल्लेख हो चुका है। इस समय-महाराणा ने सभी प्रकार के मनुष्यों के उपद्रव को रोकने के लिये राजाज्ञा-स्वरूप एक शिलालेख (सुरे) चांदपोल दरवाजे पर लगवाया, जो अपना विशेष महत्त्व रखता है। वह इस प्रकार है—

श्रीद्वारकेशो जयति

श्रीएकलिंगप्रसादात् श्रीगणेशप्रसादात्

सूर्य गाय वछड़ा की आकृति चन्द्र

स्वस्ति श्रीमहाराजाधिराज महाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् प्रत दुवे सा सतीदास भट्ट अमरेश्वर, अपरंच श्रीठाकुरजी श्रीद्वारकानाथजी गुसाईंजी महाराज श्रीव्रजभूषणजी राजथान कांकरोली बैठक रायसमुद्र की पाल, सो दिवाणजी चैत्र वदी ११ अग्यारस गुरे संवत् १८७० रा वर्ष फौजबंदी करै दिवाणजी कांकरोली पधारया, चैत्र वदी १२ शुक्रे डेरो कीदो ने चैत्र सुदी १३ शनिवार के दिन श्रीदिवाण श्रीठाकुरजी रा दरसण करवा पधारा सो श्रीदिवाण श्रीठाकुरजी रे राजनगर किलादार तथा थाणेदार तथा कानूगा चौदरी तथा रजपूत सिपाई पठाण रंगडो तथा गिरि गुसाईं राजनगर माहे रहेगा, सो श्रीठाकुरजी थी तथा श्रीठाकुरजी री रेत तथा श्रीठाकुरजी रे शरणे आवे जणी थी चोलण करेगा जणीने श्रीजी पुगेगा। और मारा

वंसरो तथा जाला चौहाण चुण्डावत सकतावत राठोड तथा देसी परदेसी फौज आपणी तथा पराई सो श्रीठाकुरजी री पूरी मरजादा श्रीदिवाण अठे पधार्‌या जणी दिन सूं मरजाद वंधी जणी माफक पाल्या जाएगा। श्रीठाकुरजी तथा श्रीठाकुरजी री रेत री मरजादा सरणो तोडेगा जणी हे श्रीजी पूगेगा। हिन्दु मुसलमान ने, हिन्दु ने गौ मुसलमान ने सुअर राजनगर किला म्हे रहेने श्रीठाकुरजी री मेड मरजादा तोडेगा जणीने श्रीचितौड मार्‌यारो पाप गधेपत गाल अगवाणी श्रीहुजूर रे दुवा थी। लिख्यो संवत् १८७० वैशाख सुदी ३ शनीवार मुखिया जगन्नाथजी। श्लोक—स्वदत्तं परदत्तं वा विप्रदत्तं हरेत्तु यः, षष्टि वर्ष सहस्राणि विष्टायां जायते क्रमिः। १। श्रीः"।

(इसमें चैत्रादि संवत् १८७१ होता है।)

प्रदेश-यात्रा

व्रजभूषणजी महाराज को प्रदेश-भ्रमण और वैष्णव-सृष्टि में धर्म-प्रचार करने का अवसर अधिक नहीं मिला, क्योंकि उनके अधिकांश समय में मेवाड़ की स्थिति बहुत कुछ डवाँडोल थी। ऐसे समय घर छोड़कर जाना खतरे से खाली नहीं था, फिर भी आवश्यकतानुसार इन्होंने दो-तीन बार गुजरात आदि की यात्रा की और वैष्णव-धर्म का प्रचार कर अपनी वैष्णव-सृष्टि को सँभाला।

सं० १८५५ में भाद्र कृ० ६ के दिन प्रदेश कर वापिस कांकरोली आए। इसी वर्ष कार्तिक कृ० ६ भौमवार को महाराजश्री की दादीजी (विट्ठलनाथजी की माता और व्रजनाथजी की पत्नी) का गोलोकवास हो जाने पर महाराजश्री ने उत्तर-क्रिया की थी।

सं० १८५६ आषाढ़ शु० ६ के दिन महाराणा के आह्वान पर उदयपुर गए। जहाँ यथोचित स्वागत-सत्कार कर महाराणा तथा उनके परिवार ने सम्मान-पूर्वक भेंट चढ़ाई।

सं० १८६२ आश्विन शु० १० को महाराजश्री उत्तर-भारत में व्रज-यात्रा करने गए और मार्ग में, पुष्कर में ठहरकर सविध तीर्थ-स्नानादि किया। कार्त्तिक कृ० ४ शनिवार को वहाँ के पुरोहित को वृत्तिपत्र लिखकर प्रदान किया। इस यात्रा में खड्गसेन सवाई-नामक कोई व्यक्ति इनके साथ था। महाराजश्री यहाँ से मथुरा गए और वहाँ के समस्त स्थलों की यात्रा कर गिरिराज में विविध मनोरथोत्सव किए।

सं० १८७०-७१ में महाराजश्री पुनः गुजरात गए, और वहाँ इन्होंने कुछ समय निवास कर आनन्द और बड़ौदा में दो मन्दिरों की स्थापना की। यह दोनों 'बैठक' इस नाम से प्रसिद्ध हैं। आनन्द में 'श्रीदयालुमदन-मोहनजी'-नामक ठाकुरजी पधराए, और बड़ौदा में टॉकाकुई-नामक स्थान में श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप पधराकर सेवा-प्रणाली प्रचलित की। इसके पहिले यहाँ इस घर के वैष्णवों के लिये कोई मन्दिर नहीं था, पर मन्दिर के स्थापित हो जाने से उनको बड़ा मनस्तोष हुआ।

इस यात्रा से लौटते समय महाराजश्री के साथ रास्ता में एक घटना घट गई, जो आज तक इस घर के तिलकायितों के साथ कभी नहीं हुई थी। इसके पूर्व प्रायः सभी महाराजश्री यात्रा करने जाते थे और सकुशल लौटते तथा भेंट का द्रव्य भी साथ लाते थे। अस्तु।

इस वर्ष कार्त्तिक के पूर्व महाराजश्री प्रदेश-भ्रमण कर कांकरोली लौट रहे थे, 'सागवाडी'-नामक स्थान में उनका मुकाम हुआ। यहाँ से मुकाम उठने पर 'उनरी'-नामक गाँव में पहुँचे, जहाँ उस समय होल्कर की फौज का पड़ाव था। इन सबके सरदार रामदीन पुरबिया, चिमनाजी भाऊ, बक्सी बलंदखाँ, मलारखाँ और भवानीसिंह आदि ने जब भेंट का बहुत-सा द्रव्य, सेवा के लिये वैष्णवों द्वारा दिया हुआ उत्तम क़ीमती सामान महाराजश्री को साथ लाते देखा, तो लूटने का हुक्म दे दिया। सिपाहियों ने सारा साज-सामान लूटकर सपरिवार महाराजश्री को भी घेर लिया। कुछ समय बाद उन लोगों ने उनसे पौने चार लाख रुपये के तीन रुक्क़े लिखवाकर जाने की इजाजत दी।

इधर महाराजश्री के लुटने का समाचार जब आठ-दस दिन में कांकरोली पहुँचा, तो लोगों को बड़ा सङ्कट सामने दिखाई दिया। महाराजश्री की माता ने महाराणा को एक पत्र लिखकर सूचना भेजी कि 'जब तक होल्कर (जसवन्तराव), मल्हारराव और अहल्याबाई को सूचना भेजकर मेरे पुत्र को छुड़वाया न जायगा, मैं अन्न-जल ग्रहण न करूँगी *।'

माजी महाराज के पत्र द्वारा महाराजश्री के लुट जाने का समाचार पाकर

* सं० १८७१ मार्गशीर्ष बदी (अमान्त) ७ सोमवार की रोकड़बही, नोधपाना १५७, तथा माजी महाराज के पत्र से।

महाराणा ने बड़ी सतर्कता दिखलाई और शीघ्र ही होल्कर आदि को पत्र लिखकर तथा मनुष्य भिजवाकर उनके छुड़वाने का प्रबन्ध किया।

पत्रादि लिखकर महाराणा के व्यवस्था करने के पूर्व ही महाराजश्री से पौने चार लाख के रुक्के लिखाकर उपद्रवियों ने उन्हें छोड़ दिया था। फिर भी महाराणा के पत्र का प्रभाव पड़ा और होल्कर आदि ने अपने सरदारों को कड़ी चेतावनी दी और लूट का सब धन वापिस करने का हुक्म भेजा।

यह पहिले लिखा जा चुका है कि—सिन्धिया, होल्कर आदि महाराजश्री के व्यवहार से सन्तुष्ट थे, और धर्म-स्थान के प्रति ज़ोर-जुल्म न करने का उन्होंने आदेश शिलालेख द्वारा जारी कर दिया था। फिर भी अपनी फौज के द्वारा जान या अनजान में इस लूट से उन्हें पश्चात्ताप हुआ। अस्तु, उन्होंने इसका उचित प्रबन्ध करा दिया।

सं० १८७२ वैशाख शु० १० के दिन होल्कर की फौज के रामदीन राजाबहादुर ने लिखिया सदाराम और दोला ब्राह्मण के द्वारा साज-बाज, घोड़ा, गहना, वस्त्र, पौने चार लाख रु० के ३ रुक्के और द्रव्य आदि जो कुछ भी सामान लूटा था, 'राईरत्ती' भिजवा दिया *, और साथ में इसके लिये क्षमा-याचना की। इस प्रकार महाराजश्री ने वैष्णवों का वह समस्त दैवी द्रव्य लूट से पुनः प्राप्त किया, जो श्रीद्वारकाधीश के लिये भेंट-रूप में प्रदेश में आया था।

सं० १८७१ में होल्कर की फौज का एक सरदार सखाराम बापू मेवाड़ के गाँवों को लूटता हुआ कांकरोली-ठिकाने के 'एमड़ी' गाम में पहुँचा। यहाँ भी जनता को उसने लूटने का विचार किया, पर वहाँ लोगों के प्रार्थना करने पर दण्ड-रूप ३,१४१) रुपयों का रुक्का लिखवाकर वह आगे चला गया।

महाराणा का सौजन्य

महाराणा को जब इसका समाचार मिला, तो उन्होंने गुरुघर के प्रति हुए इस आर्थिक नुकसान को अपने ऊपर उठा लिया, और यह रक़म अपनी ओर से ठिकाने में जमा करा दी†।

---

* सं० १८७२ (कार्त्तिकादि ७१) वैशाख शु० १० की रोकड़, नोधपाना १५६, से।

† सं० १८७० (कार्त्तिकादि) के चैत्र वदी ६ (अमांत) रोकड़-पाना २४६, में इसका जमा-ख़र्च है।

सं० १८७४ में नवाब हिम्मतबहादुर, माधोकुँवरजी, तथा सुखराम बापू ने मेवाड़ में होकर गुज़रते समय ठिकाने के 'अमलोई' ग्राम में अपनी फौज का पड़ाव डाला, और वहाँ के ज़मींदारों से ५०००) रुपया वसूल किया। महाराणा के द्वारा यह रकम भी खालसा के गाम राजनगर के खाते लिखवा दी गई *।

इस प्रकार महाराणा ने जहाँ तक बन सका, ठिकाने को आर्थिक हानि नहीं उठाने दी और समय-समय होनेवाले उपद्रव, अशान्तियों को उन्होंने अपने उत्तरदायित्व में समझा, जिससे खराब स्थिति में भी कांकरोली पर विशेष बोझा नहीं पड़ा।

यह प्रथम कहा जा चुका है कि—महाराजश्री ने श्रीनाथजी को घसियार-जैसे दुर्गम स्थान से लाकर वापिस नाथद्वारा में विराजमान किया था, और इसी प्रसङ्ग में वहाँ का कुछ समय तक शासन भी। सम्भवतः इसी कारण को लेकर वहाँ के तिलकायित श्रीदामोदरजी (दाऊजी) महाराज से इनका मनोमालिन्य हो गया। इस कारण स्वत्व-सम्बन्धी किन्हीं छोटे-मोटे कारणों को लेकर झगड़े की नौबत आ गई, जिसमें वहाँ के कर्मचारियों ने आहुति का काम दिया।

व्रजभूषणपुरा का झगड़ा

व्रजभूषणजी महाराज (द्वि०) के समय उनके तथा उनके भाई गोपालजी महाराज के नाम से नाथद्वारा की सीमा में 'व्रजभूषणपुरा' और 'गोपालपुरा'-नामक दो मुहल्ला बसाये गये, जिनके लिये तत्कालीन तिलकायित श्रीगोविन्दरायजी महाराज ने भी प्रसन्नता से सहमति दी और साथ ही अपने नाम पर भी लालपुरा-नामक मुहल्ला बसाया था। व्रजभूषणजी (तृ०) के तिलकायित होने पर नाथद्वारा के तिलकायित गो० श्रीगिरिधरजी महाराज ने व्रजभूषणपुरा की नीति अपने पत्र द्वारा स्पष्ट कर दी †। उनके अनन्तर दाऊजी महाराज की अल्पावस्था के कारण नाथद्वारा का राज्य-कार्य भंडारी नारायणदास और सिंघवी शम्भूमल के हस्तगत था। वे अपने अधिकार-मद में आकर

* सं० १८७३ (कार्त्तिकादि) आषाढ़ शु० ६ की रोकड़, पाना ३२९ से।

† श्रीहरिः

श्रीप्रभून आगे सुधि करत है

उहाँ सुधि करोगे।

श्रीविट्ठलो जयति

स्वस्ति श्रीमत्सकलगुणगणालङ्कृतेषु सौजन्यसागरेषु चिरजीविव्रजभूषणजीषु गोस्वामिगिरिधराणामाशिषः। शमिह तत्रास्तु अपरच पुरा की दादाजी के आगे सू मरियादा राखे है वाही प्रमाण रहेगी। विना समझी कोई खेचल करेगो सो ओलवो पावेगो। मिती मार्गशीर्ष कृष्ण २ संवत् १८५०।

सभी ऊँच-नीच करने को तैयार थे, अतः उन्होंने महाराजश्री की देख-रेख से चिढ़कर उनके पुरा में ऊधम मचाना और वहाँ के रहनेवालों को तंग करना शुरू किया।

सं० १८७० से ७३ (अनुमान) के बीच में इस मनमुटाव ने उग्र रूप धारण किया और लालपुरा के सिपाहियों ने किसी छोटी-सी बात पर व्रजभूषणपुरा के एक तुलावट्या को पकड़कर कैद कर दिया। वहाँ से भी इसी प्रकार उत्तर दिया गया, फलतः तनातनी बढ़ गई और अढ़ाई सौ सिपाहियों ने व्रजभूषणपुरा को जा घेरा। इधर महाराजश्री ने भी मुखिया मलूकचन्द के साथ ५० बन्दूकें कांकरोली से भेजीं, जिन्होंने वहाँ पहुँचकर अपने पक्ष के आदमियों को छुड़ाया।

इसके परिणाम में कितनी खून-खराबी और हानि हुई, कुछ पता नहीं लगता है, पर इतना अनुमान होता है कि—महाराणा के बीचबचाव करने से यह झगड़ा जहाँ का तहाँ दब गया। सम्भवतः यह घटना भाद्रपद-आश्विन के बीच की है, क्योंकि जिस पत्र से इसका वृत्त मालूम हुआ है, उससे यह भी ज्ञात होता है कि—ऐसे झगड़े के समय महाराजश्री प्रतिवर्ष की भाँति अन्नकूट पर श्रीद्वारकाधीश को नाथद्वारा नहीं पधराना चाहते और कांकरोली में ही अन्नकूट का उत्सव करने का विचार कर रहे थे।

इस वर्ष द्वारकाधीश को महाराजश्री ने नाथद्वारा पधराया अथवा नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। पर इतना निर्विवाद है कि—यह झगड़ा उस समय से चलता ही रहा और भूतपूर्व महाराणाश्री फतेहसिंहजी ने अपने समय में इसे कांकरोली के पक्ष में तय किया, और इस स्थान पर कांकरोली का ही अधिकार मान लिया।

नित्यलीला-प्रवेश

अपनी अन्तिम अवस्था में व्रजभूषणजी एक बार श्रीनाथजी की सेवा करने नाथद्वारा गए। श्रीनाथजी की सेवा करते समय बातचीत चलने पर दाऊजी महाराज ने उनसे हास्य करते हुए कहा कि—आपकी अपने भाई-बन्धुओं से भी नहीं पटती और हम लोगों से भी आपका वैमनस्य रहता है, पर अन्तिम समय हम लोग ही काम आवेंगे।

इस बात को सुनकर महाराजश्री ने कहा कि—श्रीनाथजी हमारी लाज रक्खेंगे, आप लोगों की आवश्यकता न पड़ेगी। इस कथन को सुनकर श्रीदाऊजी महाराज चुप हो रहे। व्रजभूषणजी श्रीनाथजी की सेवा कर कुछ दिनों बाद वापिस कांकरोली आए।

अपना अन्तिम समय समीप आया जानकर उन्होंने मन्दिर के मुखियाजी से कहा

कि—मेरा अन्तिम समाचार नाथद्वारावालों के पास तब पहुँचाना, जब अग्नि-संस्कार हो जाय। यदि ऐसा न करोगे, तो तुम्हें प्रत्यवाय लगेगा।

कहते हैं, इस कथन के आठ दिन बाद महाराजश्री ने अपना इहलौकिक कर्तव्य समाप्त समझकर द्वारकाधीश का ध्यान करते हुए देह छोड़ दिया। आज्ञानुसार उनका अन्तिम संस्कार करने के पहिले चिता पर कर्मपात्र से जल सींचा गया। सहसा लोगों ने देखा कि—अग्नि प्रकट होकर चिता प्रज्वलित हो गई है। इस कृत्य के समाप्त हो जाने के बाद नाथद्वारा के सजातीय पुरुषों को सूचना भेजी गई। उन लोगों ने आकर समस्त वृत्तान्त सुनकर आश्चर्य प्रकट किया, और महाराजश्री की महानुभावता और वचन की दृढ़ता पर प्रसन्नता व्यक्त की।

सं० १८७६ (अनुमान) में महाराजश्री ने अपने इहजीवन का कृत्य समाप्त कर श्रीद्वारकाधीश के चरणारविन्द प्राप्त किए। इनके अनन्तर किसी औरस पुत्र के न होने से पुरुषोत्तमजी महाराज कांकरोली के तिलकायित हुए, जिसका उल्लेख अगले प्रकरण में किया जा रहा है।

महाराजश्री का व्यक्तित्व

महाराजश्री व्रजभूषणजी सम्प्रदाय के एक अच्छे विद्वान् थे और अपने जीवनकाल में इन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। पर इनके रचित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते। इसका कारण उस समय की अशान्तिमय राजनैतिक परिस्थिति हो सकती है। यह कवियों और विद्वानों के आश्रयदाता होने के साथ ही साथ कविता-प्रेमी और ग्रन्थ संग्रहकर्ता थे। सरस्वती-भंडार में इनके संगृहीत कई ग्रन्थ विद्यमान हैं, जिन पर इनके हस्ताक्षर हैं। इसी प्रकार इनके समय का विविध कवियों का स्फुट काव्य-संग्रह भी।

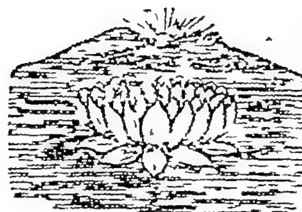
गोकुल से श्रीद्वारकाधीश के पधारने के समय से लेकर सं० १८७६ के भीतर एक सौ पचास वर्षों में 'श्रीव्रजभूषणजी' नाम के कांकरोली में तीन तिलकायित हुए। यह एक रहस्य पूर्ण बात है कि—इन तीनों समान नामधारी महाराजाओं के समय ठिकाने को विलक्षण राजनैतिक उथल-पुथल का सामना करना पड़ा, और तीनों ने अपनी विलक्षण प्रतिमा, एवं नीतिज्ञता से संस्थान की रक्षा की और उसे सम्पन्न बनाया।

परिशिष्ट—१

महाराजश्री के समय आगत राजा, महाराजा और उमराव तथा भेंट

संवत्	मिती	नाम तथा स्थान
१८५५	आषाढ़ सुदी १	राजाजी जालिमसिंहजी जोधपुरवाले विजयसिंहजी के पुत्र ने गाम काछवाला में देह छोड़ी, तब सिरपेच, हाथी, घोड़ा भेंट आया।
१८६३	माघ सुदी ३	दौलतरावजी सिन्धिया की फौज और कबीला आया, तब भेंट की।
१८६७	भाद्र० सुदी ९	दीवानजी के कुँवरजी अमरसिंहजी।
१८७१	वैशाख वदी ११	महाराणा भीमसिंहजी, उदयपुर।
१८७२	रोकड़-पाना १३३	सवाई महासिंहजी वेगम।

(प्राचीन रोकड़ से)



चि० श्रीगिरिधरलालजी (तृ०)

(प्रा० सं० १८५४, नि० सं० १८७१-७२ अनुमान)

——:०:——

जन्म, शिक्षा और संस्कार

चि० श्रीगिरिधरलालजी (तृ०) का जन्म सं० १८५४ भाद्र० शु० ८ उपरान्त ९ मंगलवार के दिन हुआ था * । यह होनहार और महानुभाव बालक थे । सं० १८६१ आषाढ़ बदी १० सोमवार को इनका मुण्डन-संस्कार हुआ और सं० १८६३ ज्येष्ठ कृ० ५ के दिन कांकरोली में इनके पिता महाराजश्री व्रजभूषणजी (तृ०) ने इनका यज्ञोपवीत-संस्कार किया । जनेऊ के इसी वर्ष माघ शु० ३ भौमवार को इनकी माता का देहान्त हो गया, जिससे इन्हें मातृ-वियोग का दुःख उठाना पड़ा ।

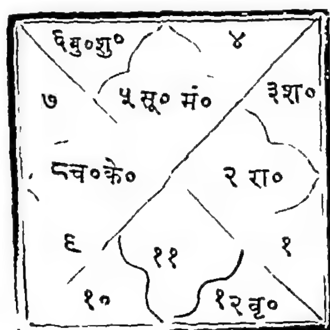
चमत्कार-दर्शन

गिरिधरलालजी बाल्यावस्था से ही श्रीद्वारकाधीश की सेवा के रसिक थे । यह अपने पितृचरण की देख-रेख में अपने मार्ग के ग्रन्थों का अध्ययन करते थे । जिस समय इनकी वय लगभग १३-१४ वर्ष की थी, कांकरोली में नवाब अमीरखाँ सं० १८६७ वैशाख शु० ४ के दिन आया, और उसने महाराजश्री से कुछ चमत्कार दिखाने अन्यथा मन्दिर लूट लेने की धमकी दी । जैसा कहा जा चुका है, महाराजश्री ने इन्हीं गिरिधरलालजी के द्वारा उसे श्रीद्वारकाधीश के स्वरूप के दर्शन कराए, जिससे उसने यहाँ उपद्रव करने का विचार छोड़ दिया । इस घटना से इनकी छोटी वय में ही महानुभावता का पता चलता है ।

---

* जन्म-कुडली—

स० १८५४ शाके १७१९ प्रवर्तमाने वर्षे भाद्रपदमासे शुक्ल-पक्षे ८ तिथौ घटी ५०।२० भौमवासरे अनुराधानक्षत्रे घटी २६।२३ परं ज्येष्ठानक्षत्रे वैधृतियोगे घटी १७।१७ बालवकरणे सूर्योदयात् गत घटी ५६।१ समये सिंहलग्ने श्रीव्रजभूषणात्मज श्रीगिरिधरजी जन्म ।





गो० श्रीगिरिधरलालजी महाराज
प्रा० सं० १८५४ भाद्र० कृ० ६

गंगा-फाइनआर्ट प्रेस, लखनऊ

उक्त घटना के समय चमत्कार दिखलाने के अतिरिक्त इनका कोई अन्य प्रसंग नहीं मिलता। इससे ज्ञात होता है कि—यदि यह विद्यमान रहते तो एक आदर्श व्यक्ति होते। जहाँ तक ज्ञात होता है, इनका प्रारम्भिक साम्प्रदायिक और शास्त्रीय अध्ययन लगभग पूर्ण हो गया था।

सं॰ १८६८ वैशाख वदी १२ के दिन गिरिधरलालजी की सगाई के लिये गहना-कपड़ा भेजने का रोकड़ में उल्लेख मिलता है। अतः जाना जाता है कि—यह इस समय तक विद्यमान थे।

अपने पिता के पूर्व ही सं॰ १८७० से ७३ के भीतर इनका देहान्त हो गया*, जिससे उन्हें पुत्र-वियोग उठाना और अपने उत्तराधिकारी के लिये चिन्तित होना पड़ा। इनके गत हो जाने से इनके पिता के बाद पुरुषोत्तमजी महाराज तिलकायित हुए।

नित्यलीला-प्रवेश

---

* प्रस्तुत विषय मे एक पत्र प्राप्त होता है—

श्रीहरिर्विजयते।

श्रीद्वारकाधीश चरणनलिन सन्निधौ कृपया सपरिवारः स्मर्तव्यः

स्वस्तिश्रीमन्नन्दराज कुमार चरण परिचरण प्रवर्तित स्वीयेषु परम पूज्यतमेषु श्री ६ गोस्वामि श्रीव्रजभूषणजी महाराज के माजी महाराज चरण सरोजेषु निदेशानुवर्ति सकुमार जालिमसिंह वर्मणो असख्याता दंडवत्प्रणतय.। समुल्लसन्तु शाश्वतिक शुभ भवताम् भवतामनुकम्पयात्रापि भव्य, अपरञ्च श्रीमहाराज ने कृपापत्र महाप्रसाद प्रसादी वस्त्र पठायो सो माथे चढाय लीनो। साम्प्रत असमजस भयो सो वहुत ही मन मे खेद भयो परन्तु शक्य नहीं, ईश्वर चरित्र दुर्विभाव्य है सो श्रीमहाराज वड़े है, ज्ञाता है आपके श्रीमस्तक पर वडी निधि विराजे है तासों चित को समाधान राखेगे। सेवक को आज्ञा लिखी सो सेवक कौन वात लायक है परन्तु आपने कृपा करिके कृपापत्र महाप्रसाद पठायो सो वडी कृपा भई। आज्ञा लिखी सेवा की सो आज्ञानुसार तत्पर है। जापता की बंदूक वीस जमादार १ पठाए है सो हाजर रहेगी। विशेष प्रार्थना मुखिया जेकृष्ण मालुम करेगो। आपकी कृपा क्षण भूलत नहीं। वर्द्धमान रखावेगे, महत्सु किमधिकम्। मिति वैशाख शुक्ल ८ स॰ १८७३।

रेखाङ्कित वाक्यों पर ध्यान देने से उक्त अनुमान होता है।

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज (नवम ति०)

(प्रा० सं० १८४७, ति० सं० १८७६, नि० स० १६०३)

जन्म, शिक्षा और संस्कार—श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज का जन्म सं० १८४७ वैशाख शु० प्रतिपदा बुधवार के दिन कांकरोली में हुआ था। इनके पिता का नाम गोकुलनाथजी महाराज था, जो श्रीविट्ठलनाथजी के लघु भ्राता और श्रीव्रजनाथजी के द्वि० पुत्र थे।

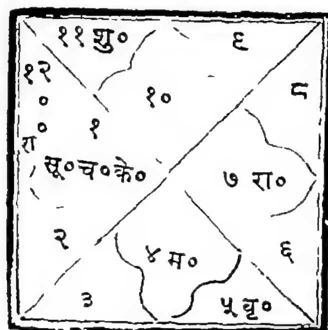
सं० १८५५ में इनका मुण्डन, कर्ण-वेध आदि संस्कार हो जाने पर चैत्र कृ० १२ के दिन यज्ञोपवीत-संस्कार तत्कालीन तिलकायित श्रीव्रजभूषणजी महाराज (तृ०) ने बड़े उत्साह से किया। जबकि यह ९ वर्ष के थे, सं० १८५६ वै० आमावास्या के दिन इनके पिता दिवंगत हो गये। ऐसी अवस्था में व्रजभूषणजी महाराज ने इनकी समुचित देख-रेख रक्खी और आवश्यक शास्त्रीय अध्ययन कराया।

पुरुषोत्तमजी ने किसके पास और कितना अध्ययन किया, इसका कुछ विशेष अनुसन्धान नहीं मिलता। फिर भी यह साम्प्रदायिक साधारण वैदुष्य से वञ्चित नहीं थे, यह कहा जा सकता है। तलस्पर्शी विद्वान् न होने पर भी यह काव्य-प्रेमी और स्वयं कवि थे। ग्रन्थ-संग्रह का इन्हें शौक़ था और कवियों का यह आदर किया करते थे। इनके रचित कुछ हिन्दी-पद्य, कीर्तन और गद्य-वार्ताएँ उपलब्ध होती हैं। सरस्वती-भंडार में इनके हस्ताक्षर से लिखित कई भाषा-कविता-ग्रन्थ विद्यमान हैं।

---

* जन्म-कुडली—

सवत् १८४७ शाके १७१२ प्रवर्तमाने वर्षे वैशाखमासे कृष्णपक्षे अमाया तिथौ घटी २८। २० पर बुधवासरे रेवती नक्षत्रे घटी ७। २३ पर अश्विनी जन्मर्क्षे प्रतिपदि विष्कुम्भयोगे घटी ५१। ५ किंस्तुघ्न-करणे मेषार्क गतांशा ४।३२।५५ सूर्योदयात् गत घटी ४८।१६ समये मकरलग्ने श्रीगोकुलनाथात्मज पुरुषोत्तमजी जन्म।



गो० श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज
प्रा० सं० १८४७ वै० शु० १

गंगा फाइनआर्ट प्रेस, लखनऊ

पुरुषोत्तमजी महाराज को चित्रकला का खूब शौक़ था। इन्होंने चित्रों का अच्छा संग्रह किया था। यह चित्रकार द्वारा अपने चित्र भी तैयार कराया करते थे, जिनमें वह विभिन्न वेश-भूषा में सज्जित दृष्टिगोचर होते हैं।

इन्होंने अपने शिष्य अभयराम(अनुचरदास)-नामक व्यक्ति से हिन्दी-पद्यात्मक 'श्रीबालकृष्णजी का मूल-पुरुष'-नामक ग्रन्थ बनवाया, जो साधारणतया एक छोटा-सा ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

पुरुषोत्तमजी महाराज का प्रथम विवाह सं० १८६९ ज्येष्ठ मास के लगलग

विवाह और सन्तति

गोविन्दकृष्ण महात्मा गोटीशाल दामोदर भट्टजी की पुत्री श्रीचारुमतीजी के साथ अहमदाबाद में हुआ, जिसके लिये यह वैशाख शु० ८ को कांकरोली से बरात लेकर रवाना हुए। सं० १८७४ वैशाख बदी ११ के दिन द्विरागमन कराकर महाराजश्री कांकरोली आये, और वैशाख शु० १ के दिन गृह-प्रवेश तथा सं० १८८० में आषाढ़ शु० १३ रविवार के दिन 'अष्टमासा' का प्रस्ताव हुआ, जिससे निम्न-लिखित कन्या सन्तति हुई—

१ जमना बेटीजी प्रा० सं० १८८०

२ व्रजकुँवरि बेटीजी प्रा० सं० १८९५ पौ० शु० ५

प्रथम पुत्री का विवाह सं० १८९६ मार्ग० कृ० १० को और द्वितीय का सं० १९०५ में हुआ*। द्वि० बेटीजी के पति का नाम पंचनदी विट्ठलनाथ भट्ट था, जो जयपुर-निवासी थे।

सं० १८९६ के श्रावण में महाराजश्री की प्रथम पत्नी का देहान्त हो गया। सं० १८९७ के श्रावण में इनका वार्षिक श्राद्ध हो जाने पर महाराजश्री ने अपनी मौसी चन्द्रावली बहूजी (गोकुल) के आग्रह और उत्तराधिकारी पुत्र की प्राप्ति की इच्छा से सं० १८९८ आषाढ़ मास में दुबारा विवाह किया, जिसके लिये इन्हें चारों ओर कन्या के अन्वेषणार्थ पत्र-व्यवहार करना पड़ा। इसी वर्ष मार्ग० कृ० ५ के दिन द्वि० पत्नी श्रीपद्मावती बहूजी का गृह-प्रवेश हुआ†। इस समय महाराजश्री की वय ५९ और पत्नी की ६ वर्ष थी, जो सामाजिक दृष्टि से सर्वथा अनुचित थी।

---

* प्राचीन रोकड़। सं० १८९६ भा० कृ० ४ का चन्द्रावली बहूजी का पत्र।

† सं० १८९८ वैशाख शु० ८ का महापात्र पद्माकर भट्ट का पत्र।

व्रजभूषणजी महाराज (तृ०) के चरित्र में लिखा जा चुका है कि—उनके एक-

तिलकायित होना

मात्र पुत्र चि० गिरिधरजी का सं० १८७३ के पूर्व नित्यलीला-प्रवेश हो जाने से कोई उत्तराधिकारी पुत्र नहीं था। यद्यपि पुरुषोत्तमजी अधिकांश कांकरोली में ही रहे थे, पर वे इनके अवसान-समय यहाँ उपस्थित नहीं थे, और सम्भवतः सूरत के लल्लूजी महाराज के मन्दिर के अधिपति हो गए थे। व्रजभूषणजी के औरस पुत्र के अभाव में निकट होने से इनका ही स्वत्व पहुँचता था। अतः सं० १८७७ में महाराणा ने भले मनुष्य भेजकर, इन्हें सूरत से बुलाकर कांकरोली के तिलकायित-पद पर विराजमान किया, और राजकीय दस्तूर कर अपनी सद्भावना प्रकट की।

यह पहिले लिखा जा चुका है कि—पुरुषोत्तमजी के पिता गोकुलनाथजी

सूरत का लल्लूजी का मन्दिर

महाराज महाराणी बहूजी के उत्तराधिकार के झगड़े के समय सं० १८५१ में अपना अधिकार स्थापित करने को सूरत गए थे, जहाँ उन्होंने गोपीपुरा के लाडिलेशजी के मन्दिर में निवास किया था।

इन लाडिलेशजी ठाकुरजी को कामवन-निवासी माधवदास कक्कड़ की स्त्री चिम्मो वहू ने गो० श्रीमुरलीधरजी के पास सं० १७३० आश्विन कृ० ५ शनिवार के दिन पधरा दिए थे *। यह मुरलीधरजी तृ० पीठाधीश्वर बालकृष्णजी के पञ्चमात्मज व्रजालंकारजी के पौत्र और विट्ठलरायजी तृ० के पुत्र थे।

---

* इस विषय का एक प्राचीन पत्र उपलब्ध होता है, जो इस प्रकार है—

श्रीहरि.

रामचन्द्र कक्कड ताको सुत मोहनदास, ताको सुत बाबूराय, ताको सुत माधवदास ताकी स्त्री चिम्मो वहू तिन लिखायत, आगे ठाकुर श्रीलाडिलेशजी को मैं आपनी खुसी सों श्रीमुरलीधरजी श्रीविट्ठलजी सुत उनको दिये। ठाकुर श्रीलाडिलेश में इनके और भाई बंधु तथा मेरे और कोऊ वारिस तिनको दावा धक्का नहीं। आगे मेरे मूए गए इनके और भाई-बंधु तथा मेरे वारिस कोऊ श्रीमुरलीधरजी सों ठाकुर श्रीलाडिलेशजी को दावा धक्का करे सो झूठो।

मुकाम कामवन.....

मत चिम्मो वहू ऊपर को लिख्यो सही।

मत कृष्णाई ऊपर को लिख्यो सही, मत लीछमन सेठी बोनीसुत ऊपर लिख्यो सो सही।

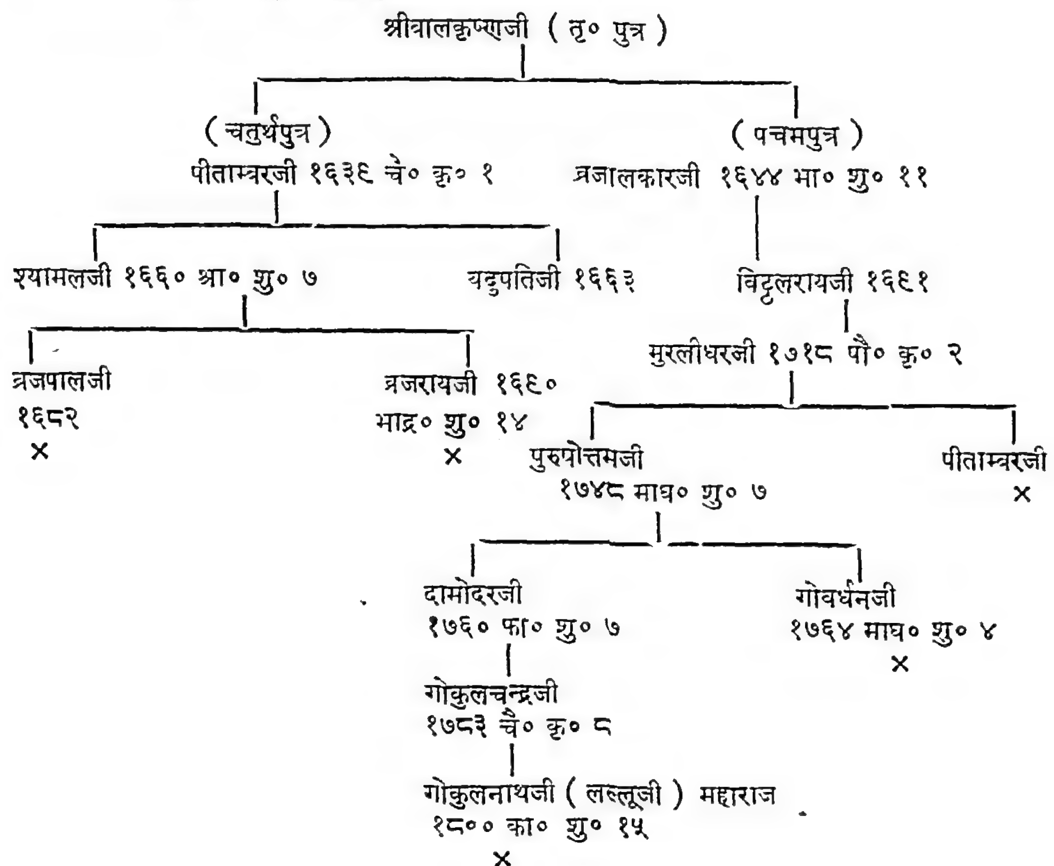
संवत् १७३० वर्षे आश्विन वदी ५ शनौ। सही स्वस्तिक का चिन्ह है।

तात्कालिक राजनैतिक स्थिति को देखते हुए ऐसा भासित होता है कि—मुरलीधरजी अपने पिता के साथ औरंगजेब के भय से सूरत जाकर बस गए थे। इसी समय व्रजरायजी ने भी द्वारकाधीश के पास से बालकृष्णजी ठाकुरजी को ले जाकर सूरत में अपना मुकाम बना लिया था। यह मुरलीधरजी के सहकुटुम्बी भी थे, अतः सूरत में बसने में एक आश्रय लेने के कारण लाडिलेशजी का वहाँ मन्दिर बनाया गया।

इस हिसाब से सं० १७३०-४० के भीतर सूरत में इस मन्दिर की स्थापना मानी जा सकती है। मुरलीधरजी के वंश में सं० १८०० कार्तिक शु० १५ के दिन श्रीगोकुलनाथजी (उपनाम लल्लूजी) महाराज* का प्राकट्य हुआ। इनके समय में यह मन्दिर 'लल्लूजी के मन्दिर' के नाम से प्रख्यात हुआ।

---

* इनकी वंशपरम्परा इस प्रकार है:—



लल्लूजी महाराज के कोई पुत्र-सन्तति नहीं हुई, ऐसा अनुमान होता है। अतः यह अपनी उत्तरावस्था में उत्तराधिकारी के लिये चिन्तित थे। इधर सूरत के मुकदमा के प्रसंग में कांकरोलीवाले गोकुलनाथजी का आवागमन सूरत होता था, और वे अधिकांश यहीं लल्लूजी के मन्दिर में ठहरा करते थे। इनका मनोमालिन्य अपने भतीजे व्रजभूषणजी (तृ०) से था, यह कहा जा चुका है। इन दोनों बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि—कांकरोलीवाले गोकुलनाथजी ने अपने पुत्र पुरुषोत्तमजी को लल्लूजी के दत्तक पुत्र बनाने का विचार किया होगा। यद्यपि पुरुषोत्तमजी अपने पिता गोकुलनाथजी के गोलोक-वास के समय सं० १८५६ में १० वर्ष के थे, और अधिकांश कांकरोली ही में रहा करते थे।

सं० १८७४ में पुरुषोत्तमजी के द्विरागमन कराकर कांकरोली ही आने से ज्ञात होता है कि—इस समय तक न तो यह सूरत के मन्दिर के मालिक ही हुए थे, और न वहाँ के गोकुलनाथजी (लल्लूजी) महाराज का देहान्त ही हुआ था। इसके बाद पुरुषोत्तमजी सूरत के मन्दिर के मालिक हो गये, और सं० १८७७ में व्रजभूषणजी (तृ०) के नित्यलीलास्थ हो जाने पर कांकरोली के तिलकायित बनाये गये। अतः सं० १८७४ से ७६ के भीतर इनका वहाँ गोद जाना अथवा मालिक बनना माना जा सकता है।

जैसा कहा गया है—सूरत का गोपीपुरा का यह मन्दिर लाडिलेशजी अथवा लल्लूजी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। लल्लूजी के जन्म-दिन कार्तिक शु० १५ को यहाँ पाटोत्सव माना जाता है। मन्दिर में गोकुलनाथजी (लल्लूजी) और पुरुषोत्तमजी महाराज की चित्रसेवा विद्यमान होने से ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है कि—सं० १७३०-४० के लगभग इस मन्दिर की स्थापना न हुई हो, और लल्लूजी महाराज ने ही अपने समय में इसे स्थापित किया हो। कुछ भी हो, पुरुषोत्तमजी महाराज के वहाँ अधिष्ठित हो जाने से और बाद में कांकरोली में उनके तिलकायित बन जाने से इस मन्दिर पर तृतीयपीठाधीश्वरों का स्वामित्व हो गया।

राजनैतिक परिस्थिति

विगत प्रकरणों में कहा जा चुका है कि—महाराणा भीमसिंहजी के राज्यकाल में अधिक अशान्ति रही। उनकी सहायता, और अंगरेजों के सहयोग से इस समय मेवाड़ की अशान्ति का कुहरा दूर हो रहा था और सुखशान्ति की किरणों के छिटक का समय आ रहा था। यद्यपि सं० १८७३

में नवाब दिलेरखाँ ने चित्तौड़ के आसपास गाँवों में लूटमार मचाने पर महाराणा और सरदारों द्वारा उसके मार भगाये जाने पर देश में चिरशान्ति का सूत्र-पात होने लग गया था।

सं० १८७४ पौष सुदी ७ (ता० १३ जनवरी सन् १८१८) के दिन महाराणा भीमसिंहजी और ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से गवर्नर जनरल हेस्टिंग के प्रदत्त अधिकारों से मि० चार्ल्स थियोफिलस मेटकाफ के द्वारा मेवाड़ में सन्धि हो जाने से चारों ओर शान्ति का प्रभाव जमने लगा। मेवाड़ सरकार और अंगरेज सरकार एक दूसरे की रक्षा और शान्ति स्थापन के लिये प्रयत्नशील बन गये। इस प्रकार की प्रशान्त राजनैतिक स्थिति हो जाने पर कांकरोली को अब कोई भय नहीं रह गया था, उसके ऊपर से आतंक और हुल्लड़बाजी के बादल निकल गये थे। महाराणा की छत्रच्छाया से अब उसे फलने फूलने का अवसर अधिगत हुआ था!

सं० १८८५ चैत्र शु० १४ को भीमसिंहजी के कैलासवास हो जाने पर महाराणा जवानसिंहजी का राज्याभिषेक हुआ।

महाराणा जवानसिंहजी ने जब अपने राज्य की व्यवस्था सुधारने के लिये शेरसिंह को प्रधान बनाया, तो कुछ समय बाद पुरुषोत्तमजी महाराज ने भी अपने ठिकाने की आन्तरिक और पारस्परिक शासन-व्यवस्था सुधारने का प्रयत्न किया, एतदर्थ उन्होंने महाराणा से मिलकर कुछ माँगें पेश कीं।

सं० १८९४ कार्तिक शुक्ल १० के पत्र में महाराणा जवानसिंहजी ने पुरुषोत्तमजी महाराज को लिखकर यह अधिकार दिया कि—कांकरोली के ठिकाने का शासन कांकरोली के महाराजद्वारा होगा और न्याय दंड यहीं से हुआ करेगा। यदि किसी मुकद्मा की अपील उदयपुर में होगी तो उसकी तगमीर आपको दी जाया करेगी।

संभव है, इसी समय से कांकरोली को आन्तरिक शासन करने का अधिकार प्राप्त हुआ। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि—महाराजश्री का महाराणा पर अच्छा प्रभाव था जिसके कारण वह एक प्रकार से स्वायत्त शासन प्राप्त कर सके। सं० १८९५ में १० वर्ष राज्य करने के बाद इन महाराणा का कैलासवास हो गया और इनके

बाद उदयपुर की राजगद्दी पर सं० १८९५ भाद्र० शु० १५ के दिन महाराणा सरदारसिंहजी का राज्यतिलक हुआ।

सं० १८९८ में महाराणा सरदारसिंहजी अथवा उनके सरदारों द्वारा नाथद्वारा के स्वर्गीय तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज की पत्नी श्रीलक्ष्मीबहूजी के साथ स्थानीय प्रबन्ध-विषय में कुछ अन्याय हो गया, जिससे वैष्णव-समाज और गोस्वामिबालकों में खलबली मच गई। अस्तु, राज्य-कर्मचारियों का यह काम पुरुषोत्तमजी महाराज को भी सह्य नहीं हुआ, और इन्होंने भी भविष्य में अपने साथ इसी प्रकार के अन्याय होने की आशंका से श्रीद्वारकाधीश को जयपुर पधरा ले जाने का विचार कर लिया। पर पता नहीं चलता है कि आगे क्या हुआ और यह समस्या किस प्रकार सुलझी।

सं० १८९९ के आषाढ़ सुदी ७ के दिन महाराणा सरदारसिंहजी का भी देवलोक हो गया, और उनके स्थान पर अष्टमी के दिन महाराणा सरूपसिंहजी का राज्य-तिलक हुआ।

इस थोड़े-से समय में ही तीन महाराणाओं के बदल जाने से महाराजश्री को ऐसा अवसर नहीं मिल पाया, जो उनका कुछ अधिक परिचय उनसे होता, और कुछ गुरु-घराने के लिये प्राचीन प्रथा के अनुसार ग्राम-जमीन भेंट आदि प्राप्त होती। महाराणा भीमसिंहजी के बाद जो उदयपुर के दो राणा हुए, उन्हें इतना अवकाश ही नहीं मिल पाया कि—वे इस ओर विशेष ध्यान देते। यद्यपि महाराणा सरूपसिंहजी ने सं० १९१८ कार्तिक शु० १४ तक कुछ लम्बे समय तक राज्य किया था, पर इधर सं० १९०३ में ही पुरुषोत्तमजी का नित्यलीला-प्रवेश हो गया, जिससे दोनों के विशेष परिचय होने का अवसर भी नहीं आने पाया।

इन सब कारणों से पुरुषोत्तमजी महाराज के समय उदयपुर के महाराणाओं के राज्याश्रय द्वारा कांकरोली को विशेष स्थायी सम्पत्ति प्राप्त नहीं हो सकी। और न बाहर के अन्य महाराजाओं से भी इनका विशेष परिचय हो सका। फिर भी जो कुछ ग्राम प्राप्त हुए, वे निम्नलिखित हैं—

सं० १८६९ पौष शु० २ के दिन १५११ रु० सालीना आमदनी के 'सादी'-नामक गाम (ठिकाना बेगूँ) की जमीन बेगूँ के सरदार रावत सवाई महासिंहजी ने

प्रदान की। इसके साथ सं० १८७८ में 'चमनपुरा' गाम में एक हवेली भी भेंट हुई*।

इसके प्रथम पौष शु० १ के दिन महाराजश्री ने वेगूँ पधारकर कुँवर किशोर-सिंहजी को नाम-दीक्षा दी थी। अतः इसी गुरु-दक्षिणा में यह गाम भेंट हुआ।

सं० १८७७ कार्त्तिक वदी ५ गुरुवार के दिन महारावत गोकुलदासजी के द्वारा राजावत जवानसिंहजी ने श्रीप्रभु के लिये ५०१ रु० सालाना उपज वाला गाँव पवराणा का खेड़ा भेंट किया†।

सं० १८८१ जेठ वदी २ के दिन महाराजा सवाई जयसिंहजी (तृ०) ने गाँव 'मानपुर' (परगना चाटसू) श्रीद्वारकानाथजी के मन्दिर, जयपुर के लिये भेंट किया।

---

* ता० नं० ४२।१।३

श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुद्रसणजी

दसक्त हयअखरा राम सही अखदल जो मारा वंस
को असल होसी जो अणी गाम री नमासी।
दसकत रावत सवाई म्हासीघ का जात सीसोदा
चूडावत गोवत। खास वेगु।

श्रीदुवारकानाथजो का मद्र गोस्वामीजी श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री परसोत्तमलालजी माहाराज वेगम पदारया समत १८६६ का पोस सुद १ कुवर किसोरसिंग ने नाव सुणा जदी जदी भेट करी रावत सवाई माहासींघ कुंवर कसोरसिंग पटा वेगु का प्रगणो आतरी का मे त्रीगत गाम सादी १५०० रोपिया पदरासो की सत्र काल साको पीवल माल चौतरफ काकड सुदी ओर आगणो होली हजे जीकी जीक सावत छे।

११ वावडी अेक साहा भीमजी मोगरा की वाडी वीगा २ रोख व्रष सुदी चमनपुरा मद्द जम रुपीया १५११ पंदरासो ग्यारा की आपदत्तं परदत्तं ....

प्रवानगी साहा सवलाल सीसोदया की दसगत साहा जसकरण कानोडा का हाथ का। मिती पोस सुद २ समत १८६६।

१ हवेली अेक चमनपुरा मद्द परोत रामलाल रहतो ज्या कपडदार मोडा की भेट करी समत १८७८ सावण सुद १।

† ता० नं० २०।५ श्रीरामजी

सही

सिधश्री महारावतजी श्रीगोकलदासजी वचनात गाम कांकडोली श्रीदवारकानाथजी री भेट गाम पवराणा रो खेडो सीव नीव सुदी चंडायो गामरी रेख रुपया ५०१ अखरे पांचसो एक रो श्रीहुजूर श्रीरामा अरपण कीधो जीरो पुन श्रीहजूर ने होसी। दः राजावत जवानसिंग। श्लोक—अपदत्तं परदत्तं .... दसखत पंचोली गोमदराम रामु चदोत नरानदास। श्रीरामजी संवत १८७७ काती वदी ५ गुरे।

यह मन्दिर स्व० महाराजा सवाई जगतसिंहजी की रानी माजी श्रीसीसोदणीजी ने तिरपोलिया के भीतर बनवाया था। जिसकी सेवा-पूजा कांकरोली के महाराजश्री की देखरेख में होती थी। इस गाँव की उपज १६०२ में, ९७३ रु० आठ आना श्रीद्वारकानाथजी की और ८८ रु० आठ आना श्रीगुलावेश्वर महादेवजी की, सेवा के लिये नियत थी *।

सं० १८८२ फा० वदी १३ सोमवार के दिन महाराणा भीमसिंहजी ने गाम सादी परगना वेगूँ श्रीद्वारकानाथजी के लिये भेंट किया (जिसका ताम्रपत्र वेगूँ के ताम्रपत्र नं० ४२ के साथ सम्मिलित है)। इस गाम को महाराणा ने महाराजश्री के इस साल उदयपुर पधारने पर भेंट किया था †।

---

* श्रीरामजी श्रीसीतारामो जयति
सही श्रीमहाराजाधिराज
सवाई जयसिंहजी

सिधश्री महाराजाधिराज महाराजा श्रीसवाई जयसिंहजी देव वचनात कमैती प्रगना चाटसू का दसेसु प्रसाद वंच्या अपरंच वावति भोग गाव भोमि वागैरह सुधां उपेजा रुपया १०६२ का मैं ठाकुर श्रीद्वारकानाथजी वागैरह विराजमान कसबा सवाई जयपुर में मुसतलिख तिरपोल्या के मन्दिर माजी श्रीसीसोदणीजी महैल महाराजा वैकुठवासीजी श्रीसवाई जगतसिंहजी का नवो वणायो त्या के वास्ते मुवाफिक यादिदासति में दसखत दीवानयान करार मिती चैत सुदी १३ साल सवत १८८१ अरज पहौंची भोग नैसे जीनां वसूली रुपया ३ का सालीना रुपया १०६२ करि देवा को हुकुम हुवो। मुकररा तनखाह गांव मानपुर गेट प्रगना चाटसू को इब्तदाय साख उन्हालू संवत १८८१ थे सीगे भोग के जाणि हासिल हवाले करिवो कीज्यो। भोमि वागैरह सुधां उपेजा रुपया एक हजार वासठ......१०६२ . .. .

ठाकुरश्री द्वारकानाथजीरो जीनां रुपया २॥) का सालीना रुपया नौसौ साढा तिहेत्रि ६७३॥)

महादेवजीश्री गुलावेश्वरजी रोजीना रु० आना ४ चार का सालीना रुपया साढा अठ्यासी ८८॥)

मुवाफिक यादि दासति मे दसखत खास व दीवानयान मिती जेठ वुदि २ संवत १८८१।
मुकाम सवाई जैपुर — रजू दफत्र दीवान नौ नंदराम — रजू दफत्र दीवान सगही अमरचन्द — रजू दफत्र सूरजमल मुसतोफी हजुर

जयसिंहजी का जन्म सं० १८७५ और निधन स० १८९१ है। (नाथावतों का इतिहास)।

† ता० प० नं० ४२। २ श्रीरामो जयति
श्रीगणेशप्रसादात् श्रीएकलिंगप्रसादात्
सही

महाराजाधिराज महाराणा श्रीभीमसिंहजी आदेशात् ठाकुर श्रीदुवारकानाथजी रे गाम सादी प्रगणे नेगम रे लोग भोग हद वीराद नीम सीम सुदी लागत बीलगत सरव सुदी ऊदक आघाट श्रीरामा अरपण

वेगूँ-ठिकाने के सरदार महासिंहजी ने अपने यहाँ श्रीद्वारकानाथजी श्रीव्रज-गोपालजी का मन्दिर बनवाकर सेवा-पूजा स्थापित की, और उसका सारा प्रबन्ध महाराजश्री की देख-रेख में रखकर उसे भेंट किया था। इन्हीं स्वरूपों के साथ श्रीबाल्लकायजी और श्रीसुदर्शनजी की भी सेवा-पूजा होती थी। सं० १८९५ के आश्विन शु० पूर्णिमा के दिन जब यह सब स्वरूप तुला में विराजमान हुए, उस समय दो बीघा जमीन रावत महासिंहजी ने और भी भेंट चढ़ाकर कार्त्तिक वदी १ के दिन इसका ताम्रपत्र कर दिया *।

पुरुषोत्तमजी महाराज ने समय-समय पर प्रदेश-यात्रा की और वैष्णव-समुदाय को धार्मिक उपदेश दिया। सबसे प्रथम ११ वर्ष की वय में सं० १८५८ में इन्होंने गुजरात का प्रदेश किया, और वैष्णव-शिष्य-समाज से श्रीप्रभु के लिये सेवा-संग्रह किया।

प्रदेश-यात्रा और राज्य-सम्मान

सं० १८६३ में जयपुर-जोधपुर के देश का परिभ्रमण कर यह पाली के मार्ग से कांकरोली आये। सं० १८६९ के द्वि० वैशाख में, अहमदाबाद में, अपना विवाह कर कांकरोली आये, और पौष मास में यह वेगूँ-रावजी के आमन्त्रण पर वेगूँ पधारे। वहाँ कुँवर किशोरसिंह को जनोई में गायत्री की दीक्षा दी तथा नाम सुनाया था।

सं० १८७६ में जब महाराजश्री गुजरात का भ्रमण कर रहे थे, उस समय कांकरोली में व्रजभूषणजी महाराज (तृ०) के गोलोक-वास हो जाने पर यह महाराणा भीमसिंहजी के बुलाने से कांकरोली आये।

करे भेट चडायो है। सो हासल भोग श्रीजीरे भंडार पुगसी श्रीगुसांइजी म्हाराज श्रीउदेयपुर पदारया। जदी यो गाम प्रसन व्हेने चडायो है सो कणी वात री चोलण व्हेगा नहीं कुसी थी आवादान करेगा। स्वदत्तां परदत्ता वा...प्रत दुवे पाणीरी एकलिंगदास लीखता पंचोली सुरतसिंह नाथुरामोत। संवत् १८८२ रा फागण वीद १३ सोमे।

* ता० नं० ४२।६

श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुद्रसणजी

राम
सही

·स्वस्तिश्री महाराजाधिराज श्रीश्री१०८ श्रीद्वारकानाथजी श्रीव्रजगोपालजी श्रीवाल्लकायजी श्रीसुद्र-सणजी तला विराज्या संवत् १८९५ का आसोज सुदी १५ चंद्रग्रहण समे दस रावत सवाई माहासिंहजी व्रचनात जमी वीगा दोय पीवल आछ्यु गाम डोराई म्हे सुप्रत करी जात दायमी वास वेगम रहे ब्रम्हणी किसना व्रहने दीदी थी जीवे जतरे या वाआये टे का वस को वेसी सो आपे। श्रोक—स्वदत्तं परदत्तं..........
कातक वदी १ सवत् १८९५।

सं० १८८० भाद्रपद में सपरिकर मथुरा जाकर इन्होंने बड़ी धूमधाम से व्रज-परिक्रमा की, और पौष मास में जयपुर पधारे। यहाँ के महाराजा सवाई जयसिंहजी (द्वि०) ने परम्परागत सम्मान किया, और वैकुण्ठवासी जगतसिंहजी की रानी द्वारा बनवाये हुए श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर और उसकी जागीर भेंट की, जिसका वर्णन किया जा चुका है। यहाँ से माघ में सोरों-क्षेत्र की यात्रा कर वहाँ के तीर्थ-पुरोहित 'दुगू' और 'गणेश'-नामक उपाध्याय को श्रीगुसाईंजी के हस्ताक्षर देखकर वृत्तिपत्र लिख दिया।

सं० १८८१ कार्त्तिक के बाद यह धंधूका का प्रदेश करने पधारे। सं० १८८२ फाल्गुन में उदयपुर जाने पर महाराणा भीमसिंहजी ने इनका अच्छा स्वागत किया, और प्रसन्न होकर वेगूँ-परगना का 'सादी' गाँव भेंट किया। इसमें से सालाना १५००) का ज़मीन का हासिल वहाँ के रावतजी द्वारा सं० १८६९ में भेंट हो चुका था।

सं० १८८५ चैत्र शु० १५ के दिन भीमसिंहजी के बाद महाराणा जवानसिंहजी * के राज्याभिषेक के समय महाराजश्री ने उदयपुर जाकर उन्हें तिलक किया। इसी वर्ष मार्गशीर्ष शु० १२ को महाराणा ने कांकरोली आकर द्वारकाधीश के दर्शन किये और परम्परागत प्रथा के अनुसार नक़द रुपया, वस्त्र, गहना और घोड़ा भेंट किया। इन्हीं महाराणा ने आगे चलकर सं० १८९४ में १०,०००) भेंट किए †।

सं० १८८६ मार्गशीर्ष में गुजरात में धंधूका का प्रदेश और वहाँ की वैष्णव-सृष्टि में धार्मिक प्रचार किया। सं० १८८८ वैशाख शु० २ को बड़ौदा गए और भाद्रपद १५ बुध के दिन पुष्कर-स्नान कर पुरोहित को वृत्तिपत्र प्रदान किया। आश्विन मास में गया जाकर धार्मिक श्रद्धादि किए, और कार्त्तिक मास में कांकरोली आए। सं० १८९१-९२ में बड़ौदा-प्रान्त का प्रदेश किया।

सं० १८९५ भाद्र शु० १५ को जवानसिंहजी के अनन्तर महाराणा सरदारसिंहजी ‡ का राज्यतिलक हुआ। उन्होंने पौष शु० १२ के दिन अपनी बड़ी पुत्री के विवाह में

* इनका जन्म सं० १८५७ मार्ग० शु० ३ और कैलास-वास सं० १८९५ भाद्र० शु० १० को हुआ।

† सं० १८९४। रोकड़ पाना ८०।

‡ इनका जन्म सं० १८५५ भाद्र० कृ० ३ और कैलास-वास स० १८९९ आषाढ शु० ७ को हुआ।

महाराजश्री को उदयपुर आमन्त्रित किया। यह विवाह बीकानेर के कुँवर सरदार-सिंह के साथ हुआ था। इस समय कन्या और वर के पक्षवालों ने महाराजश्री का यथोचित राजकीय सम्मान किया था। सं० १८९७ में वैशाख के अन्त में सूरत से कांकरोली आए। सं० १८९८ में कार्त्तिक के बाद महाराजश्री ने पुनः सूरत और बड़ौदा जाकर वहाँ के मन्दिरों की व्यवस्था की।

सं० १८९९ आषाढ़ शु० ८ को सरदारसिंहजी के बाद सरूपसिंहजी महाराणा हुए* इस समय महाराजश्री ने उदयपुर जाकर राज्यतिलक किया। महाराणा ने भी इनका यथोचित सत्कार किया।

सं० १९०० में महाराजश्री ने मथुरा जाकर व्रज की यात्रा की। और इसी वर्ष मथुरा में 'सतघरा'-नामक स्थान में श्रीनाथजी की चरण-चौकी प्रकट की। यह स्थान गुसाईंजी के निवास के लिये रानी दुर्गावती ने बनवा दिया था। गुसाईंजी के चरित्र में लिखा जा चुका है कि—उनके प्रदेश चले जाने पर सं० १६२३ के अन्त में गिरिधरजी ने श्रीनाथजी को मथुरा लाकर इसी स्थान पर २-३ मास तक विराजमान किया था। इसके बाद यह स्थान यवनोपद्रव से नष्ट-भ्रष्ट हो गया और उस ज़मीन का नाम केवल 'सतघरा' रह गया था। महाराजश्री ने वहाँ प्राचीन खंडहरों में इस समय तक अज्ञात अवस्था में पड़ी हुई श्रीनाथजी के विराजने की चरण-चौकी प्रकट की, और इस ऐतिहासिक स्थान की सुव्यवस्था कर वहाँ पुनः सेवा-पूजा प्रचलित की†।

सं० १९०२ आषाढ़ कृ० १० को महाराजश्री महाराजा सवाई रामसिंहजी को कंठी बाँधने जयपुर पधारे। उदयपुर के महाराणाओं की भाँति जयपुर में भी गद्दी बैठ जाने पर महाराजा इस घर की वैष्णव-धर्म की दीक्षा लेते थे। राज्य की ओर से इनका स्वागत हुआ और शुभ मुहूर्त में रामसिंहजी ने वैष्णव-धर्म की दीक्षा ली‡।

---

* इनका जन्म सं० १८७१ पौ० कृ० १२ और देवलोक सं० १९१८ कार्त्तिक शु० १४ को हुआ था।

† १२० वचनामृत (गिरिधरजी महाराज-कृत)।

‡ रामसिंहजी (द्वि०) का जन्म सं० १८९० द्वि० भाद्र शु० १४ को हुआ था, स० १८९१ के माघ में पिता के गत हो जाने पर १॥ साल की उम्र में यह गद्दी पर बैठे थे। सं० १९३७ भाद्र० कृ० १४ को

सं० १८७८ में नाथद्वारा के तिलकायित दामोदरजी (दाऊजी) महाराज ने अगले वर्ष कार्त्तिक मास में सम्प्रदाय के सातों स्वरूपों को नाथद्वारा में पधराकर एक महान् उत्सव करने का विचार किया, और सर्वत्र पत्र लिखकर तथा मनुष्य भेजकर सहमति प्राप्त की। प्रायः अधिकांश स्थानों से स्वीकृति आ जाने पर वह स्वयं निमन्त्रण देने कोटा और गोकुल गये, और वहाँ से गोकुलनाथजी एवं मथुरेशजी को सं० १८७९ वैशाख में नाथद्वारा पधरा लाये। जब मथुरेशजी कुरज गाम में आये, तब श्रीमित्रवृन्दावहूजी ने उन्हें द्वारकाधीश के पास कांकरोली पधराने का मन्तव्य प्रकट किया। पर वृष्टि की अधिकता और दाऊजी महाराज की ज़िम्मेवारी न लेने के कारण उसे स्थगित कर देना पड़ा। फलतः मथुरेशजी सीधे नाथद्वारा पधारे*।

नाथद्वारा में सात स्वरूप का उत्सव

इस समय महाराजश्री गुजरात में प्रदेश-भ्रमण कर रहे थे। अतः उत्सव के समय श्रीद्वारकाधीश को नाथद्वारा पधराने के विषय में पत्र-व्यवहार होने लगा। यदि इस समय द्वारकाधीश नहीं पधारते, तो समस्त उत्साह और मनोरथ की शोभा नष्ट होती थी। छठे घर का झगड़ा उठ खड़े होने की आशंका से दाऊजी को सूरत से बालकृष्णजी ठाकुरजी को पधराने का विचार छोड़ देना पड़ा। जिससे वहाँ के तिलकायित और ठाकुरजी बालकृष्णजी नाथद्वारा नहीं पधार सके, और उत्सव के समय उनकी भावना करके ही मनोरथ पूरा किया गया था +।

सं० १८७९ भाद्रपद मास में पुरुषोत्तमजी महाराज के प्रदेश से आ जाने पर शुक्ल १४ शनि के दिन नाथद्वारा से दाऊजी महाराज गो० गोपालजी और वल्लभजी के साथ कांकरोली आये, और उन्होंने द्वारकाधीश को भावी उत्सव में पधराने की

वैकुण्ठवास हुआ (नाथावत इ०)। होश सँभालने पर इन्होंने एक लक्ष्मणगिरि-नामक शैव-सन्यासी से दीक्षा लेकर ऐसी साम्प्रदायिक कट्टरता बरती, जिसके कारण समस्त वैष्णवाचार्यों को जयपुर से अपने २ ठाकुर लेकर और मंदिरों की जागीर छोड़कर अन्यत्र चले जाना पड़ा। इसी प्रसंग में कांकरोली की परंपरागत जागीर भी जाती रही। उक्त संन्यासी ने चारों वैष्णव-सम्प्रदायों से ६४ प्रश्न किये, जिसका सप्रमाण उत्तर भा० मा० पं० श्रीगट्टूलालजी ने "सत्सिद्धान्तमार्तण्ड" द्वारा दिया था। सवाई रामसिंहजी कांकरोली के घर के अन्तिम वैष्णव-शिष्य थे।

* ज्ये० शु० ३ स० १८७६ को मित्रवृन्दा वहूजी का पत्र। यह मथुरेशजी (कोटा) के तिलकायित श्रीगिरिधरजी की पत्नी और अपने पति के बाद मंदिर की अधिष्ठात्री थीं।

+ 'गोस्वामिकुलयशोवर्णन' (मथुरानाथात्मज गो० द्वारकेशजी-रचित)।

प्रार्थना की। परन्तु पुरुषोत्तमजी महाराज ने अपने बहनोई भट्टजी से सलाह कर अपनी शर्तें पूरी हो जाने पर ही द्वारकाधीश को पधराने का विचार व्यक्त किया।

प्रस्तुत विषय में प्रसिद्ध किम्वदन्तियों और 'सप्त स्वरूपोत्सव' की वार्ता* में उक्त भट्टजी पर ही दोषारोपण कर पुरुषोत्तमजी को अकिंचित्कर बताया गया है। पर प्राचीन पत्रों के देखने से यह निराधार ज्ञात होता है। यह भट्टजी व्रजभूषणजी (तृ०) के बहनोई थे, और कुल-प्रथा के अनुसार कांकरोली में ही रहते थे। वृद्ध और मान्य होने के कारण ऐसे विषयों में इनसे परामर्श लिये जाने का अर्थ यह नहीं था कि—उस समय इन्हीं का बोल बाला था, और महाराजश्री नाममात्र के मालिक थे। अस्तु।

नाथद्वारा और कांकरोली के तात्कालिक आगत पत्रों से विदित होता है कि—पुरुषोत्तमजी के सम्मुख स्वत्व और अधिकार की रक्षा का सवाल था, जिसके तीन पहलू थे—

१—सूरतवाले बालकृष्णजी ठाकुरजी कांकरोलीवालों को दिला दिये जावें, और इस उत्सव में यदि वे आवें तो उनकी पृथक् स्वतंत्र सत्ता न मानी जावे।

२—नाथद्वारा के व्रजभूषणपुरा का परंपरा-प्राप्त अधिकार कांकरोलीवालों को दे दिया जाय, जो कुछ समय से झगड़े में डाल दिया गया है।

३—नाथद्वारा में आते समय कांकरोलीवाले महाराजश्री का नकीब बोलना, छड़ी, छत्र, चमर आदि की समान मर्यादा पर कभी भी आघात न किया जाय, और बंद करने के लिये क्षमा माँगी जावे।

उपर्युक्त तीनों बातों पर दाऊजी महाराज ने कुछ ध्यान नहीं दिया और महाराणा भीमसिंहजी के आदेश द्वारा द्वारकाधीश को पधराने की चाल चली। पर उन्होंने जब अपना भला आदमी भेजकर कांकरोलीवालों का मन्तव्य मँगवाया तो वे भी उक्त शर्तों को सुनकर चुप हो गए। उक्त वार्ता में लिखा है कि—"हम भट्टजी-सहित रायसागर में पड़ेंगे।" इस प्रकार के पुरुषोत्तमजी के उत्तर से महाराणा चुप हो गए। पर यह सर्वथा मिथ्या है। न तो महाराणा को ऐसा उत्तर ही दिया जा सकता था, और न वे इस घर के प्रति गुरुभाव से बलात् द्वारकाधीश को नाथद्वारा पधरा ही

---

* 'शुद्धाद्वैत' (वर्ष १४, अंक ८) में प्रकाशित।

सकते थे। वास्तव में स्वयं महाराणा उक्त तीनों माँगों की पूर्ति करने में विवश थे। अन्तिम दो बातें आपसी व्यवहार से सम्बन्ध रखती थीं, और पहिली सम्प्रदाय की बहुत पुरानी उलझी हुई पहेली थी। इस झमेले में अन्य उत्सवों की बात तो दूर रही, अन्नकूट पर भी प्रतिवर्ष की भाँति द्वारकाधीश के पधारने का विचार स्थगित हो गया, और कांकरोली में ही उसकी तैयारी होने लगी।

यह कहा जा चुका है कि—सात स्वरूपों को पधराने की अभिलाषा से यद्यपि दाऊजी महाराज बालकृष्णजी को भी सूरत से पधराना चाहते थे, पर उनका आना ही झगड़े की जड़ समझकर उन्होंने इसके लिये विशेष आग्रह नहीं बतलाया था। परंतु द्वारकाधीश के पधारने की व्यवस्था जब महाराणा के द्वारा होते न देखी, तो उन्होंने जाति के प्रधान २ व्यक्तियों को इसका भार सौंपा। कुछ गोस्वामिबालक, भट्टजी, व्रजवासी और वैष्णवों ने मिलकर कार्त्तिक कृ० १४ के दिन कांकरोली आकर महाराजश्री से वर्तालाप किया, पर कुछ भी निश्चय न हो सका, और वे सब बैरंग वापिस लौट गये। इसके पहिले अहमदाबाद से नटवरलालजी, जयपुर से गोकुल-चन्द्रमाजी तथा मदनमोहनजी नाथद्वारा पधार चुके थे। अब अन्नकूट के लिये केवल द्वारकाधीश का पधारना अवशिष्ट और आवश्यक था। सूरतस्थ बालकृष्णजी के तिलकायित श्रीव्रजरत्नजी महाराज ने तो कांकरोलीवालों का अभिप्राय जानकर अपने ठाकुरजी को नाथद्वारा पधराना ठीक नहीं समझा, अतः यह पहिली समस्या स्वतः सुलझ गयी, और अन्तिम दोनों बातें दाऊजी के ऊपर निर्भर रह गईं।

प्रस्तुत विषय में किसी प्रकार का निश्चय न हो सकने से कांकरोली में ही अन्नकूट की सब सामग्री सिद्ध की जाने लगी, जिससे विवश होकर दाऊजी महाराज ने दीपावली के दिन अन्तिम निश्चय कर गो० कल्याणरायजी और माधवरायजी को कांकरोली भेजा। उन्होंने पुरुषोत्तमजी महाराज को बतलाया कि—दाऊजी ने उनकी दोनों शर्तें स्वीकार कर ली हैं। अतः श्रीप्रभु को अन्नकूट के दिन नाथद्वारा पधराने में अब आपको आग्रह नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार पुरुषोत्तमजी महाराज की प्रथम माँग तो बालकृष्णजी के न आने से जहाँ की तहाँ रह गई, और शेष दो माँगें दाऊजी महाराज ने अपने उच्च मनोरथ के

लिये स्वीकार कर लीं * । अतः पुरुषोत्तमजी को अब कोई विपत्तिपत्ति नहीं रही, और द्वारकाधीश के नाथद्वारा पधारने का निश्चय दृढ़ हो गया ।

---

* स० १८७६ कार्त्तिक वदी १३ और का० शु० ३ के श्रीदाऊजी के पत्र ।

श्रीहरिः

श्रीप्रभून आगे सुधि करत है

उहाँ सुधि करेगे ।

श्रीविट्ठलो जयति ।

स्वस्तिश्रीमत्सकलगुणगणालकृतेषु सौजन्य सागरेषु गोस्वामि पुरुपोत्तमजीपु गोस्वामि दामोदराणामाशिपः । शमिह तत्रास्तु अपरंच आपको पत्र आयो तामे लिख्यो सो श्रीद्वारकानाथजी को द्रव्य उठे है तासू प्रभु हमारे मनोरथ मे नहीं पधारे । परन्तु हम श्रीजी को द्रव्य या मनोरथ मे खरचे है नहीं परभारो पट्टन सूं वाबू वैजनाथदास को द्रव्य आयो सो उठेगो । आप सुखेन श्रीद्वारकानाथजी का पधराइए, और आपने लिखी सो श्रीजी को द्रव्य नहीं उठे सो धरम की वात है । याकू लोपे सो अधरमी है और आज पाछे हम तथा हमारे वंस के वहू वेटी भाई भानेज जमाई चाकर कामेती त० सेवक यामेसू जो द्रव्य श्रीजी को लियो चाहे तो आप तथा आपके वंस के जो होंय तो श्रीजी को द्रव्यादिक विगडवे देवे नहीं । सदासूं आपकी श्रीजी के घर मे सेवा सिवाय या प्रमाण मरजादा है सो लिख दीनी है और हमारे इहाँ व्रजभूषणपुरा तथा खिडक तथा मदिर वगेरे त० मथुरा दरवाजे वगेरे आपके है तासूं कवहूँ खेचल होयगी नहीं, और जो कोई आपके चाकर वगेरे या लिखे ऊपरात कसर दीखे तो सुखेन पूछवे को अखत्यार है, या लिखे को जो कोई मेटेगो सो श्रीजी सू वहिर्मुख होयगो । पन श्रीद्वारकानाथजी को सर्वथा पधरावोगे । आपके मंदिर मे जल की अडचन पडती जानो तो मदिर मे कुवा खुदाय लेहोगे आपकी प्रसन्नता होय तहा । स्नेह राखोगे । कुशल पत्र लिखोगे । किमधिकम् । मिती कार्त्तिक वदी १३ संवत् १८७६ के ।

श्रीगोवर्द्धनो जयति ।

लिखित गोस्वामी दामोदरजी श्रीवालकृष्णजी की गादी सूरत की गोस्वामी पुरुषोत्तमजी कू पहुँचे । श्रीवालकृष्णजी के वंश विना और कोई वारस नहीं । गोस्वामी व्रजरत्नजी कूं पहुँचे नहीं । हम गोस्वामी पुरुषोत्तमजी मे भेले है गोस्वामी व्रजरत्नजी मे भेले नहीं । अरु साती स्वरूप को अन्नकूट पीछे कार्त्तिक सुदी ३ कूं समस्त पचन को लिख्यो कराय देनो । जो गोस्वामी व्रजरत्नजी हमारो तया पंचन को कह्यो न माने तो श्रीनाथजी के चरणस्पर्श करे नहीं स्ववश सुद्धा । अरु पचन सू वाहिर स्ववश सुद्धा अरु पर के हम विना विचारे ही गोस्वामी व्रजरत्नजी कू अन्नकूट पे वुलाये तापे गोस्वामी पुरुपोत्तमजी के अरु हमारे विरुद्धता वहुत भई श्रीद्वारकानाथजी अन्नकूट पे पधारे नहीं । सो अव के सवत् १८७६ की साल हम सातों स्वरूपन कू अन्नकूट भेले अरोगायवे को मनोरथ करे तापे वड़ो समुदाय भयो । तासूँ हम गोस्वामी पुरुपोत्तमजी सू ऐक्यता किए अरु इहाँ श्रीनवनीतप्रियजी के सृंगार करवाए । सो टीकेत जव आवे तव सदा करै हम उहाँ न करैं । अव हमारे मनमे द्वेप तथा कछू कापट्य राखे नहीं । यह सव हमारी प्रसन्नता सू उचित हती सो लिखे अरु शास्त्र मे कह्यो है सो झूठ ही वोल के वड़ो कार्य करावनो सो वा श्लोक को या लिखे मे प्रमाण नहीं या लिखे मे न्यूनता पडे तो हमकू श्रीजी की शपथ है ।

दीपावली की रात्रि में जब अन्नकूट के दिन श्रीद्वारकाधीश के पधारने के निश्चय का समाचार दाऊजी महाराज को मिला तो वे अतिशय प्रसन्न होते हुए प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल सेवा से पहुँचकर कांकरोली प्रभु को पधराने आये। यहाँ सेवा में स्नान कर उन्होंने पुरुषोत्तमजी महाराज के साथ अन्नकूट के लिये सिद्ध की गई समस्त सामग्री गोपीवल्लभ-भोग में समर्पी, और राजभोग कर मध्याह्न में बड़ी सजधज, लवाजमा और उत्साह के साथ श्रीप्रभु को नाथद्वारा पधराया।

नाथद्वारा में श्रीद्वारकाधीश के पधारने से चारों ओर उल्लास और आनन्द का सागर उमड़ उठा। दाऊजी महाराज तो अपने मनोरथ की पूर्त्ति समझकर कृत-कृत्य हो गये। श्रीनाथजी के पास विराजे हुए अन्य उपस्थित स्वरूपों के साथ श्रीद्वारकाधीश के अन्नकूटोत्सव के दर्शन कर वैष्णव-जनता कृतार्थ हो गई। इस अन्नकूटोत्सव पर श्रीनाथजी—नवनीतलालजी के समीप मथुरेशजी, विट्ठलनाथजी, द्वारकाधीशजी, गोकुलनाथजी, गोकुलचन्द्रमाजी और मदनमोहनजी, यह छै स्वरूप पधारे। केवल छठी निधि बालकृष्णजी नहीं आ सके। मथुरेशजी के गोद के ठाकुरजी नटवरलालजी भी अहमदाबाद से पधारे थे। इस प्रकार सम्प्रदाय की प्रत्यक्ष छै निधियों, और भावना से सातों निधियों के पधारने से सं० १८७९ कार्त्तिक शु० १ का यह अन्नकूटोत्सव 'सातस्वरूप' का उत्सव नाम से प्रसिद्ध हुआ *।

इस उत्सव में अन्नकूट अरोग कर श्रीद्वारकाधीश दूसरे दिन कांकरोली पधार आये, और शेष स्वरूप नाथद्वारा में ही कुछ दिन रहे, जहाँ दाऊजी महाराज ने अन्य मनोरथ किये। इसी वर्ष मार्गशीर्ष मास में मथुरेशजी वापिस कोटा पधारे, और जब 'राजियावास' गाम में मुकाम हुआ, तब अमावास्या के दिन पुरुषोत्तमजी महाराज ने वहाँ जाकर उनकी सेवा की और मनोरथ किया †।

यह कागद गोस्वामी दामोदरजी पञ्चों की सामे सबके श्रीत्रिधरा बालकृष्णभट्टजी सू समस्त आज्ञा करिके लिखवाए। संवत् १८७९ कार्त्तिक सुदी १ गुरु।

* इसका विशेष वर्णन 'गोस्वामि कुल-यशोवर्णन' (मथुरानाथात्मज द्वारकेश्वर-रचित, रचना सं० १८८०) में दिया गया है। इस समय नाथद्वारा में ६६ गोस्वामी और महाराणा भीमसिंहजी उपस्थित थे।

† प्राचीन रोकड़।

सूरतवालों में असहकार

यद्यपि नाथद्वारा के इस उत्सव में सूरतवाले व्रजरत्नजी महाराज ने अपने ठाकुरजी को नाथद्वारा नहीं पधराया था, उन्हें भय था कि—महाराणा के राज्य में शासन-बल से कहीं बालकृष्णजी ठाकुरजी छीन न लिये जायँ, पर उनके आने का विचार अवश्य था। सं० १८७८ के अन्त में उनके उत्पात की आशंका से पुरुषोत्तमजी महाराज ने कुछ सिपाही नौकर रक्खे थे, और महाराणा भीमसिंहजी तथा नाथद्वारावालों से प्रस्तुत प्रसंग में उचित न्याय एवं प्रबन्ध करने की इच्छा प्रकट की थी। जिस पर नाथद्वारावाले तिलकायित दामोदरजी ने सूरतवालों के लिये श्रीनाथजी की सर्वदा के लिये सेवा बन्द कर दी और पत्र * लिखकर महाराजश्री को विश्वास दिला दिया। इस प्रकार आपसी सलाह से सूरतवालों को सेवा से वंचित होना पड़ा।

कांकरोली, नाथद्वारा का पारस्परिक व्यवहार

सं० १८७८ से सं० १९०० तक कांकरोली और नाथद्वारा के पारस्परिक व्यवहार में बहुत कुछ परिवर्तन हुए, जिनका यहाँ प्रासंगिक वर्णन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है—

सं० १८७८ में नाथद्वारा के तिलकायित दाऊजी महाराज ने श्रीनाथजी का अन्नकूट का उत्सव किया था। जिसमें किसी कारण से पुरुषोत्तमजी महाराज ने आगे के लिये वहाँ जाना बन्द कर दिया। परंपरा से नाथद्वारा में कांकरोलीवाले महाराज की सवारी में राजकीय चिह्न आया-जाया करते थे, जिसमें वहाँ के तिलकायितों को कोई आपत्ति नहीं होती थी। पर सं० १८७८ के लगभग दाऊजी महाराज को यह सह्य नहीं हुआ, और उन्होंने कांकरोलीवालों की सवारी में

---

* पत्र की प्रतिलिपि—

श्रीहरिः

श्रीप्रभुन आगे सुधि करत है

वहाँ सुधि करोगे।

श्रीविट्ठलो जयति

स्वस्तिश्रीमत्सकलगुणगणालंतेपु सौजन्यसागरेपु गोस्वामि श्रीपुरुषोत्तमजीपु गोस्वामि दामोदराणामाशिषः। शमत्र तत्रास्तु अपरंच आपके श्रीबालकृष्णजी बाबत झगडा है सो गोस्वामि व्रजरत्नजी के वंस वगेरे कोई श्रीजी द्वार मे आयवे दे नहीं चरणस्पर्श करवे दे नहीं। या मे जो हमारे वंस को पलटे तो श्रीजी सूँ बहिर्मुख हमारे वस को होयगो सो इनको नाम नहीं लेहेगो। यह हमारी प्रसन्नतापूर्वक लिख दीनो है। किमधिकं। मिती वैशाख सुदी ३ संवत् १८८१ के।

चमर, छत्र, छड़ी, नकीब बोलना आदि महाराणा द्वारा प्रदत्त सम्मान भी नाथद्वारा की सरहद में बन्द करने का आदेश दे दिया। इस कारण कदाचित् मानभंग हो जाने के भय से पुरुषोत्तमजी महाराज ने वहाँ जाना ही बन्द कर दिया, और साथ ही श्रीद्वारकाधीश का भी अन्नकूट पर पधारना स्थगित हो गया; क्योंकि तिलकायित के बिना प्रभु के पधारने की रीति नहीं थी। यह मामला यहाँ तक बढ़ा कि दोनों स्थानों के तिलकायितों में आन्तरिक वैमनस्य-सा हो गया और विवाह आदि प्रस्तावों पर भी आना-जाना स्थगित कर दिया गया *।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है, इस आपसी झगड़े का सूत्रपात व्रजभूषणजी महाराज (तृ०) के समय से व्रजभूषणपुरा के मामले से पैदा हुआ था। उस समय के एक पत्र से विदित होता है कि—व्रजभूषणपुरा के किसी आसामी को नाथद्वारावालों ने मारा-पीटा और पकड़कर अपने यहाँ क़ैद कर दिया था। इस पर कांकरोलीवालों ने भी उनका मुक़ाबिला किया, और नाथद्वारा के एक आसामी को पकड़कर अपने यहाँ क़ैद कर दिया। इससे मामला बढ़ गया और परस्पर वैमनस्य का बीज जमा। सं० १८७९ में सातस्वरूप के उत्सव के समय विवश होकर दामोदरजी महाराज ने परस्पर पत्र-व्यवहार कर कांकरोलीवालों की मान-मर्यादा पूर्ववत् स्वीकार कर ली †, जिससे इस वैमनस्य का अन्त हो गया। सं०

* प्राचीन रोकड़ से पता लगता है कि—स० १८८४ से १८८८ तक लगातार ५ वर्ष अन्नकूट काकरोली में ही हुआ। स० ८९ से नाथद्वारा में द्वारकाधीश के पधारने का उल्लेख मिलता है, और फिर १९०० और १९०१ मे पुनः काकरोली में अन्नकूट होना पाया जाता है। सं० ८४ से ८८ तक नाथद्वारा न पधारने का कारण वहाँ का जातीय झगड़ा था।

(स० १८८५ मार्ग० ब० ४ त्रिगृह मथुरानाथ भट्ट का पत्र)

† श्रीहरि.

श्रीप्रभुन आगे सुधि करत है

उहाँ सुधि करेगे।

श्रीविट्ठलेशो जयति

स्वस्तिश्रीमत्सकलगुणगणालकृतेषु सौजन्यसागरेषु गोस्वामि श्रीपुरुषोत्तमजीषु गोस्वामि दामोदराणामाशिष.। शमत्र तत्रास्तु अपरंच हमने सुना है के आप यहा नहीं पधारेगे क्योंके यहा भैया बन्द सब भेले भये है सो सवारी मे सबन की छडी चमर बन्द है परन्तु आपकी तो सदा सू छडी चमर हमारी सवारी मे तथा प्रस्ताव मे बिनेगी मे नकीब बोले याही प्रमाणे ठेठसू परपरा सू है ताही प्रमाण रहेगी क्योंके आपके दद्दा को यहा के ऊपर भोत यस है। सो आपके घर के वंस केन की सदैव मर्यादा है ता प्रमाणे

१८८१-८२ में नाथद्वारा के दाऊजी महाराज के गोलोक-वासी हो जाने पर गोविंद-रायजी तिलकायित हुए। इनके छोटे होने के कारण इनको गोद लेनेवाली माता लक्ष्मीबहूजी अपनी देख-रेख में सेवा का कार्य चलाने लगीं। इधर नाबालिगी का अनुचित लाभ उठाकर श्रीनाथजी के सेवा-अधिकार में अपना हस्तक्षेप करने का प्रयत्न श्रीकृष्णरायजी महाराज ने शुरू किया, जो द्वि० गृह के तिलकायित श्रीगोपेश्वर-जी के द्वि० पुत्र थे। जब इसकी शिकायत महाराणा के निकट पहुँची, तब उन्होंने एजन्ट साहब के द्वारा ५ कलमें क़ायम कर दीं*, और नाथद्वारा की योग्य व्यवस्था कर लक्ष्मीबहूजी को कुछ अधिकार प्रदान किये। परन्तु योग्य कार्यकर्ता के अभाव में कुछ दुष्ट कर्मचारियों के द्वारा जब काम विशेष बिगड़ने लगा, तो बहूजी महाराज को चिंता होने लगी। अंत में सं० १८८५ वैशाख शु० ३ के दिन उन्होंने पत्र † लिखकर पुरुषोत्तमजी महाराज को अपना सरमुख़तार बनाया और उनके परामर्श से ठिकाने का कार्य करने लगीं। इसके पहिले इसी साल चैत्र शु० १४ के दिन महाराणा भीमसिंहजी का देवलोक हो गया था, और जवानसिंहजी गादी बैठे थे। इस समय किसी प्रकार की उथल-पुथल न हो, इसके लिये भी किसी प्रभावशाली आत्मीय व्यक्ति की आवश्यकता थी, और इस योग्य सन्निकटस्थ पुरुषोत्तमजी महाराज ही थे। अतः

रहेगी और हमारे बंस के या घर से होयगे सो माने जायगे। आप प्रसन्नता सूं वेग पधारेगे कोई वात को सन्देह जानोगे नहीं। स्नेह प्रतिक्षण वर्द्धमान राखेगे। कुशल पत्र लिखेगे। किमधिक। मिती कार्त्तिक सुदी ३ संवत् १८७६।

* दामोदरजी महाराज का प्रा० स० १८५४, नित्यलीला-प्रवेश सं० १८८२ मे हुआ। गोविंदरायजी का जन्म सं० १८७६ है।

श्रीहरि

† श्रीप्रभून आगे सुधि करत हैं
उहाँ सुधि करोगे।

स्वस्तिश्रीमत्सकलगुणगणालंकृतेषु सौजन्यसागरेषु गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजीषु गोस्वामिनी लक्ष्मी-बहूजीनामाशिषः। शमत्र तत्रास्तु अपरंच श्रीजी के घर को द्रव्यादिक की त० बेमरजाद कोई वल्लभ-कुल त० हमारे बंस के बालक त० चाकर करे तो तिनकू तुम रस्ता चलावो और श्रीजी को घर बिगडबे देनो नहीं, इतनी मुखत्यारी तुम कू दीनी हमारी प्रसन्नता सू और या निमित्त द्रव्य खरच पड़े तो श्रीजी को उठेगो, परंतु आपसू बने इतरो तो आप करोगे त० राजा राणा उमराव अंगरेज वगेरे से बन्दोबस्त करावोगे। हमारे इहाँ की मुखत्यारी तुम कू सोंपी है या बात कू उत्थापे कोई तो श्रीजी सूं बहिर्मुख। किमधिकम्। मिती वैसाख सुदी १३ संवत् १८८५।

गिरिधरजी महाराज ने तो इस विषय में अत्यधिक नम्रता बतलाते हुए अपने पत्र में लिखा है कि—मेरी लाज रखना आपके हाथ है। यदि आप श्रीद्वारकाधीश को नाथद्वारा नहीं पधरावेंगे तो यह चार-स्वरूप का उत्सव सम्पन्न न हो सकेगा। ऐसा ज्ञात होता है कि—महाराजश्री ने अन्नकूट के दिन और पुनः इस का० शु० १० को होनेवाले मनोरथ में श्रीद्वारकाधीश को पधराकर गिरिधरजी महाराज (काशीस्थ) के अनुरोध की रक्षा की थी। इस समय श्रीनाथजी के पास श्रीविट्ठलनाथजी, श्रीद्वारकाधीशजी, श्रीनवनीतप्रियजी तथा श्रीमुकुन्दरायजी पधारे और महान् उत्साह के साथ यह महोत्सव पूर्ण हुआ।

छप्पन भोग का मनोरथ

पुरुषोत्तमजी महाराज श्रीप्रभु की सेवा के बड़े प्रेमी एवं विविध मनोरथों के द्वारा अपने संचित द्रव्य का सदुपयोग करने के आग्रही व्यक्ति थे। सं० १८९६ मार्गशीर्ष कृ० १० को इन्होंने अपनी पुत्री श्रीजमना बेटीजी का विवाह-संस्कार बड़े रंग-ढंग से किया, और उसके बाद प्रभु का मनोरथ करने का विचार किया। फलतः बड़े पैमाने पर तैयारी की जाने लगी। गुजरात आदि प्रदेशों में वैष्णवों के लिये निमंत्रण-पत्र भेजे गये, और सजातीय महानुभावों तथा राजा-महाराजा, उमराव, ठाकुर, जागीरदार, सेठ आदि सभी को आग्रह-पूर्वक आमंत्रण दिया गया। आनेवाले दर्शनार्थियों के निवास, भोजन-प्रसाद आदि का सुचारु प्रबन्ध किया गया। इस प्रकार सं० १८९६ पौष कृष्ण ७ के दिन श्रीद्वारकाधीश का बड़े उत्साह के साथ छप्पन भोग का मनोरथ हुआ। यह छप्पन भोग मंदिर के विशाल गोवर्द्धन-चौक में किया गया, जिसमें नाना प्रकार के पक्वान्न मिष्ठान्न, सखडी तथा फल आदि सामग्रियों से समस्त चौक भर गया था। महाराणा सरदारसिंहजी तथा हज़ारों दर्शनार्थियों ने श्रीप्रभु के दर्शन कर अपने को कृतकृत्य किया। उत्सव के अनन्तर महाराजश्री ने सेवक, टहलुआ तथा कार्यकर्ताओं को अच्छा पारितोषिक वितरण किया, और उपस्थित समाज को प्रसाद से सन्तुष्ट किया था।

महाराजश्री का व्यक्तित्व

यह महाराजश्री जिस प्रकार राजा, महाराजा और सरदारों पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डालते थे, उसी प्रकार जाति के ऊपर भी उनका दबदबा था। नाथद्वारावाले दाऊजी महाराज के समय जहाँ महाराजश्री का बराबरी का दावा था, वहाँ तिलकायित गोविन्दरायजी की बाल्यावस्था के समय

उनके स्वत्वाधिकारों की रक्षा करने का भी उत्तरदायित्व उन पर था। पत्रों के देखने से सिद्ध होता है कि श्रीलक्ष्मीवहूजी की प्रार्थना और आग्रह पर नाथद्वारा की तात्कालिक विषम समस्याओं को सुलझाने में महाराजश्री ने काफी प्रयत्न किया था। जहाँ महाराजश्री न्यायोचित अधिकारों के लिये नाथद्वारा के वाल-तिलकायित का पक्ष करते थे, वहाँ अव्यवस्था, अधाधुन्धी और अनुचित कार्यों से अपने को तटस्थ भी रखते थे। यही कारण था कि—गोविन्द्रायजी के उदयपुर से स्वतन्त्र होने के समय वे तटस्थ हो गये थे।

महाराजश्री के समय जातीय प्रायश्चित्त-सम्बन्धी वहुत-से झगड़े हुए। ऐसा भासित होता है कि—श्रीवल्लभाचार्य के वंशजों में इसी समय से प्रायश्चित्त-युग का प्रारंभ हुआ, और जातीय उच्च आदर्श की न्यूनता आने लगी। इसका कारण विद्वत्ता एवं सात्विक जीवन का प्रायः अभाव और वैभव-विलासिता का सूत्रपात था। अस्तु। जहाँ तक विदित हुआ है, पुरुषोत्तमजी महाराज ने अपने निर्णयों की वहुत कुछ रक्षा की है। उन्हें जो कार्य करना होता था, वे करते थे, और जो नहीं करना होता था, उसे वे किसी से प्रभावित होकर भी नहीं करते थे। इसी विशेषता के कारण जाति का गोकुल-प्रान्तीय समुदाय इनकी समालोचना और छिद्रान्वेषण भी करता था। ऐसे भी पत्र उपलब्ध होते हैं, जिनमें महाराजश्री के स्वेच्छाचार के प्रति जातिवालों ने अंगुलीनिर्देश कर उनसे प्रायश्चित्त लेने का षड्यन्त्र चलाया है, पर उन सबको इनके विशाल व्यक्तित्व से पराहत होकर अन्त में चुप होकर वैठ जाना पड़ा है।

महाराजश्री ने अपने समय में कांकरोली-ठिकाने को अधिकांश सम्पन्न वनाने का कार्य किया। राजनैतिक वातावरण की विषमता और उदयपुर के महाराणाओं के थोड़े-थोड़े समय में ही वदलते रहने के कारण, यद्यपि जैसा चाहिये, अवसर नहीं मिला; फिर भी एतदर्थ प्रयत्न कर सफलता प्राप्त की गई। इन्होंने द्वारकाधीश की सेवा-शृंगार-प्रणाली क़ायम की और मंदिर की श्रीवृद्धि। इनके समय में कांकरोली-नगरी की उन्नति हुई, और उसमें एक नियमित शासन-प्रणाली का सूत्रपात हुआ। इन्होंने ठिकानों से प्राप्त जागीर का भी सुप्रवन्ध कर यथावस्थित हासिल मिलते रहने के लिये योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की। सं० १८९१ में जयपुर की समस्त जागीरों की हासिल के लिये प्रति वर्ष ६००१) रु० पर दस साल का ठेका गोरवा श्रीकृष्ण को दिया गया।

महाराजश्री के कोई पुत्र-संतति नहीं थी, यह पहिले कहा जा चुका है। एतदर्थ

नित्यलीला-प्रवेश

इन्होंने प्रथम पत्नी के गत हो जाने पर द्वि० विवाह भी किया था, जिसे अधिक समय भी व्यतीत नहीं होने पाया था कि सहसा इनका अन्तिम समय आ पहुँचा, जिससे वह अपना कोई उत्तराधिकारी भी नियत न कर सके।

सं० १९०३ में महाराजश्री सर्वदा की भाँति गुजरात का परिभ्रमण करने गए और वड़ौदा में जाकर अपना मुकाम किया। यात्रा करते समय स्वस्थ और पूर्ण हृष्ट-पुष्ट होने के कारण किसी को भी इनके रोगाक्रांत होने की संभवना नहीं थी, पर सहसा वे बीमार पड़ गए। उपस्थित परिकर एवं वैष्णव-समाज ने कुशल वैद्यों के द्वारा उपचार कराया, पर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में आश्विन कृ० ७ के दिन महाराजश्री का वड़ौदा में नित्यलीला-प्रवेश हो गया, जिससे समस्त परिवार और वैष्णव-वर्ग में शोक छा गया। यहीं टाँकाकुई के श्रीद्वारकाधीश के मंदिर के पीछे खेतों में महाराजश्री का अन्तिम संस्कार किया और वहाँ एक स्मारक बनाया गया *। उक्त महाराजश्री की पेटलाद और डभोई, इन दो स्थानों में भी बैठकें हैं। महाराजश्री के अनन्तर ४ वर्ष के बाद उनकी पत्नी श्रीपद्मावती माजी महाराज ने श्रीगिरिधरलालजी को गोद लेकर उत्तराधिकारी बनाया।

परिशिष्ट—१

महाराजश्री के समय आगत राजा, महाराजा और उमराव अथवा भेंट

संवत्	मिती	नाम तथा गाम
१८७८	मार्गशीर्ष वदी ५	महाराजा सूरतसिंहजी, बीकानेर। भेंट आई।
१८८०	आश्विन वदी ५	रावत सवाई महासिंहजी, वेगूँ की भेंट।
१८८५	श्रावण वदी २	महाराणा भीमसिंहजी के कैलासवास और रानियों के सती होने पर भेंट।
,, ,,	मार्गशीर्ष सुदी २	महाराणा जवानसिंहजी। गादी बैठने के बाद आये।

* ऐसा प्रसिद्ध है कि—अन्तिम सस्कार की अग्नि के शान्त हो जाने पर महाराजश्री का यज्ञोपवीत और तुलसी-माला प्राप्त हुई, जो हरि-भक्तिवाले सेठ के यहाँ अद्यापि विद्यमान है।

१८८७	वैशाख सुदी १०	महाराजा गोविन्दसिंहजी।
१८९०		ठाकराँ माधोसिंहजी, गाम रायपुर जुटाना।
१८९१	आश्विन वदी १२	रावतजी महासिंहजी वेगूँवालों की भेंट।
,, ,,	,, ,, ,,	महाराजा नवलसिंहजी, जहाजपुर।
,, ,,	,, ,, ,,	ठाकराँ जोधसिंहजी, गाम वदनौर।
१८९१		जयपुर के गामों के मुकाते गोरवा श्रीकृष्णजी हस्ते १० साल की उघाई साठ हजार एक सौ रुपए की लिखत हुई, प्रतिवर्ष ६००० रु०।
१८९३	आषाढ़ सुदी ११	वनेड़ा-राजाजी।
१८९४	श्रावण सुदी ४	रावतजी सवाई महासिंहजी की भेंट आए।
१८९६	पौष वदी ७	महाराणा सरदारसिंहजी, छप्पनभोग के दिन आये।
१८९७	ज्येष्ठ शु०	जैसलमेर के महाराज गजसिंहजी आये।

जो स्वयं आये, उनके नाम दिये गये हैं, और जिनकी भेंट आई है, उसका उल्लेख किया गया है। प्राचीन रोकड़ में कार्त्तिकादि संवत् और अमान्त मास को दिया गया। चैत्रादि और पूर्णिमान्त बतला दिया गया है। बीच की कुछ रोकड़ों के अनुपलब्ध होने या बिगड़ जाने से अन्य नोट नहीं मिल सके।

परिशिष्ट—२

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के नाम आवश्यक पत्र

(१) व्रजपुरा (नाथद्वारा) के बाबत महाराणा भीमसिंहजी का पत्र—

श्रीएकलिंगजी

श्रीबाणनाथजी श्रीनाथजी

म्हारी डंडवत मालम व्हे।

स्वस्तिश्री सरव ओपमा लायेक श्रीम्हाराजाधिराज म्हाराजश्री श्रीगुसाईजी श्रीश्री-

प्रसोत्तमलालजी म्हाराज श्रीहजुर सदा सेवग दासानदास राणा भीमसिंघ री डडव्रत, पगे लागणो मालम व्हे । अप्र आपरो कीरपापत्र आयो समाचार वाचे माथे चढ़ाये ली दो । आपसु पुरा बाबत श्रीश्रीगुसाईंजी म्हाराज श्रीश्रीदामोदरजी म्हाराज रा भला मनष खेचल करी जीरो जाब लखवा म्हे आयो सो म्हारा लखवारी ही जभी तो म्हे सगली लखी ने पुराम्हे श्रीश्रीठाकुर श्रीश्रीदुवारकानाथजी रो अमल वो म्हारे तो आप सवाये कई दूजी बात न्ही है । आप घणा प्रसन रहेगा और समाचार मुनसी अमरलाल अरज करेगा । कीरपा करे पत्र लखवो करवी अठे तो आपरा हुकम री बात हे । संवत् १८७५ र्व्पे काती सुद ५ ... ।

※ ※ ※

(२) अधिकार बाबत महाराणा जवानसिंहजी का पत्र—

श्रीएकलिंगजी

श्रीवाणनाथजी श्रीनाथजी

स्वस्तिश्री सरब ओपमा लायेक म्हाराजाधिराज म्हाराजश्री श्रीश्रीगुसाईंजी श्री-पुरुषोत्तमजी म्हाराज हजुर सदासेवग दासानदास राणा जवानसिंघ री सासटाग डंडवरत पगे लागणो मालम व्हे । १ अप्रं अठे ऊठारी बात झुठी साची ऊठी जी ऊप्रे आपसु वीणती कराई जद आपरो पदारवो अठे हुवो सो आप प्रसन्न व्हेने पत्र लख दीदो अर सेवग या वीणती लख दीदी है सो अणी माहे दुसरी न्ही वेगा । आप प्रसन्न रहेगा... .....श्रीदवारकानाथजी म्हारे माथे वीराजे हे, सो म्हासु वणे जणी मरजाद सेवा म्हे कसर नहीं पडेगा । त्था आपरी मरजाद म्हे कसर नहीं पडेगा ..काकडोली म्हे त्था दुजा पटा रा गामा म्हे कणी म्हे चुक तगसीर पडेगा तो न्याव कांकडोली मे वेगा । ऊठे दुरम न्ही वे और अठे आवे तो न्याव कर समजाये देवायगा । तगसीर आवेगा सो भंडार पुगाये देवायेगा कु'वा झगडा ऊठे वे जी से अठे बुलावा सो मेल देगा । न्याव करावा श्रीलालजी म्हाराज छोटा मंदरवाला री आपरा गरमे मरजाद रे जीमे तफावज न्ही पाडेगा । हमेसा सनेव रवो करे अर अणी में कोई वचहार आदमी भ्रात पाडवारी करे ज्यो आपने दीखे तो सेवग ने आज्ञा लखे । सो ज्यो भ्रात पाडवारी सावत पकी वेजावेगा तो कसुर प्रमाणे करेगा जा'ने गंज्या दागा ओर पंडपो म्हे सुर लख्यो करपो हे । सेवा वा चाकरी भडार

ई हे । जणी म्हे कसर पडे तो न्यायरी राट सु वाजवी साबत होये सो आपसु वीणती कराये । कसुर प्रमाणे लीख्या देणी...चाकर हे सो आपरी आज्ञा प्रमाणे सेवा चाकरी करे । जणारी तो आप प्रवसती रखावेगा अर आपरी आज्ञा ऊलंघन करेगा जणी रे आप लखेगा जी प्रमाणे सीख्या देवायगा कसुर प्रमाणे देखने । संवत् १८९४ वर्ष काती सुद १० भोमे ।

*　　*　　*

(३) कर्नल जान सदरलेन्ड का पत्र—

श्रीरामजी

सिधिश्री सरव ओपमां विराजमांन गुशांईजी श्रीपरशोतमजी महाराज जोग्य करनेल जांन सद्रलेन साहिब बहाद्र लिखावतां डंडवत बचावसी अठा का समाचार भला है । म्हाराज का सदा भला चाहिजै । अपरंच खरीता आपका आया बहोत खुसी हुई वास्ते परवाने राहदारी ओर चपडासी कै आपने लिखा थो सो चपडासी कुं मयै परवाने कै आपकै मुखया की साथ कर दीया है सो जानोगे । कृपा करके हमेसे खूसी मीजाज की लिखावोगै । ता० २९ अकतुबर सन १८४२ ईस्वी

जान सदरलेन्ड (अंग्रेज़ी में दस्तखत)
२९, अक्टूबर, १८४२

*　　*　　*

(४) नाथद्वारा के प्रबन्ध-सम्बन्ध में कर्नल टामस राविन्सन का पत्र—

४५ नंबर　　श्रीरामजी १

(अंग्रेजी में दस्तखत)

सिधश्री कांकडोली सुभ सुथाने सरब उपमां लायक गोसामीजी श्रीपुरसोतमानन्दजी महाराज एतांन राजेश्री करनेल तामीस राविनसन साहेब बाहदुरजी ली० सलाम बचावसी ईठारा समाचार भले हैं । आपके सदा भला चाहिजे । अपरंच खरीता आपका माघ बुदी १३ का लीखा आया । समाचार बांच वाकीफ हुआ । श्रीजी दुवारे की बेबदोबसती का समाचार सुण अफसोस हे । हमने ईसके बदोबमत बासते श्रीद्रवार महा-

राणा साहेब बहादुर ओर गोसामी श्रीगोबीदरयजी महाराज के नाम खरीते लिखे हे। ईकीन है महाराणा साहेब की मेरवानी से बदोवसत हो कदीम मरजाद माफीक बरतन रेसी। आप खातर जमा राखसी ओर कांम काज हमेसे लीखसी। समत १९०१ का माह सुदी २, तारीख ८ फरवरी १८४५ ईसवी।



अष्टम प्रकरण

सं० १६०३ से सं० १६३६ तक

—o—

श्रीपद्मावती माजी महाराज

(प्रा० सं० १८६२, नि० सं० १६३६)

—o—

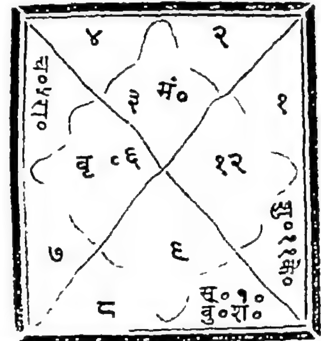
जन्म और विवाह—श्रीपद्मावती माजी महाराज का जन्म सं० १८६२ माघ कृष्ण ५ बुधवार* को हुआ। यद्यपि इनके असली जन्म-पत्र में संवत् के अंक स्पष्ट नहीं थे, पर एक वर्ष-पत्र के संवत् से उक्त जन्म-संवत् की पुष्टि हो जाती है †।

सं० १८६८ आषाढ़ मास में, जबकि इनकी वय ६ वर्ष की थी, इनका विवाह कांकरोली के नवम तिलकायित गो० श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के साथ हुआ। यह महाराजश्री की द्वितीय पत्नी थीं। जिस समय इनका विवाह हुआ, उस समय महाराजश्री की वय लगभग ५१ वर्ष

---

* जन्म-कुंडली—

संवत् १८९२ शाके १७५७ प्रवर्तमाने वर्षे माघ कृष्ण ४ तिथौ घटी २०।५२ परं ५ बुधवासरे पूर्वा फा० नक्षत्रे घटी ११।११ परं उत्तरा फा० जन्मर्क्षे शोभनयोगे घटी १०।२४ कौलव-करणे मकरार्क गतांशाः १०।५३ सूर्योदयात् गत घटी २४।२५ समये वागरोदी रघुनाथ भट्ट—गृहे श्रीपद्मावती जन्म।



† इनके पितृगृह के विषय में प्राचीन रोकड़ में एक सूचना लिखी मिली है। पद्मावती माजी महाराज का पितृगृह हैदराबाद से १६ कोस दूर नरसिंहपुर, पितृनाम—अनन्तराम भट्टजी, मातृनाम—अंतमा अम्माजी। अम्माजी तीन बहिन थीं—१ रामक्का, २ कृष्णक्का, ३ चेसक्का। माजी महाराज का प्रथम नाम तीम्मक्का था। कृष्णचन्द्र भट्टजी—माजी महाराज के पितृपक्ष के काका और गो० दाऊजी दामोदरजी साढ़ू थे। पितृगोत्र—कौशिक, यजुर्वेद। अतः यह कहाँ तक प्रामाणिक है, कहा नहीं जा सकता, क्योंकि जन्म-कुंडली और इसके पितृनाम में अन्तर है।

की थी। महाराजश्री की प्रथम पत्नी का देहान्त हो गया था और उनके केवल दो पुत्रियाँ थीं, पुत्र सन्तति कोई नहीं थी, इसलिये यह विवाह किया गया। इसी वर्ष मार्गशीर्ष ५ को इनका कांकरोली में नवगृह-प्रवेश हुआ।

वैधव्य—गार्हस्थ्य सुख की बात तो दूर रही, युवावस्था को भी जब यह प्राप्त नहीं हुई थीं, सं० १६०३ मे, इनके पति का गोलोकवास हो गया, और १२ वर्ष की वय मे इन्हें बाल-वैधव्य का दुःसह दुःख उठाने को बाध्य होना पड़ा। वास्तव में यह इनके साथ एक सामाजिक अन्याय था, जो दैवेच्छा से होकर ही रहा।

पति के इस असामयिक निधन के कारण इनको जो दारुण दुःख उठाना पड़ा, वह लेखनी से लिखा नहीं जा सकता, किसी योग्य अवस्थावाले पुत्र के न होने और कांकरोली के घर का भार सँभालने की चिन्ता से इन पर जो गुरुतर शोक और उत्तरदायित्व आ पड़ा, वह भी एक विचारणीय विषय हो गया। फिर भी इन्होंने ऐसे समय धैर्य से काम लिया, और ठिकाने का कार्य सँभालकर श्रीद्वारकाधीश की आजन्म सेवा की, यह एक अभिनन्दनीय कार्य था।

इस समय मेवाड़ के राजसिंहासन पर महाराणा सरूपसिंहजी* विराजमान थे, यह महाराणा योग्य शासक होने के साथ-ही-साथ धर्मनिष्ठ और प्राचीन मर्यादा के परिपालक थे। इस कारण माजी महाराज को किसी राजकीय हस्तक्षेप का भय नहीं था, माजी महाराज के इच्छानुसार महाराणा ने ठिकाने का प्रबंध कर दिया, और ठिकाने की समस्त जिम्मेवारी उनको ही सौंप दी। माजी महाराज के समय मे उदयपुर में मेहता शेरसिंहजी का प्राधान्य था, जो कांकरोली के घर के शिष्य थे। अतः वे माजी महाराज के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते और उन्हें कार्य-संचालन में उचित परामर्श दिया करते थे। समय-समय पर आगत पत्रों से इसकी पुष्टि होती है।

गिरिधरलालजी को गोद लेना

सं० १६०४ से लेकर सं० १६१८ के लगभग जब तक कि गोद लिये हुए गिरिधरलालजी महाराज वयस्क नहीं हो गये, तब तक माजी महाराज ने श्रीद्वारकाधीश की सेवा और ठिकाने का अच्छा प्रबंध किया। प्रथम तीन-चार वर्ष तक इसी प्रकार कार्य चलता रहा, पर वैष्णव-सृष्टि के संतोषार्थ और तृतीय घर की गादी चलाने के लिये किसी तिलकायित की आवश्यकता थी। किसी योग्य बालक को गादी पर बैठाने और उसे अपने अधीन रखकर सुशिक्षित

---

* इनका जन्म स० १८७१ पौष बदी १३, राजगद्दी स० १८६६ आषाढ सुदी ८ और कैलासवास स० १६१८ कार्तिक शु० १४ को हुआ था।

बनाने के विचार से माजी महाराज ने छोटी अवस्था के किसी बालक को ही गादी बैठाने का निश्चय किया।

सं० १९०७ के प्रारम्भ में माजी महाराज ने मथुरा से पत्र-व्यवहार कर गोस्वामी श्रीद्वारकेश्वरजी के कनिष्ट पुत्र लालजी यशोदानन्दनजी को गोद लेने का विचार किया, यह द्वारकेश्वरजी गुसाईंजी के प्रथम पुत्र श्रीगिरिधरजी के वंशज थे। महाराणा के आदेश से परस्पर कुछ बाते तय हुई और आपस में लिखा-पढ़ी की गई, माजी महाराज ने कुछ शर्तें लिखीं, जिनको यशोदानन्दनजी तथा उनके पिता द्वारकेश्वरजी ने स्वीकार किया। महाराणा के आदेश के अनुसार भी तीनों ओर से लिखा-पढी हुई और सब कुछ तय हो जाने पर लालजीय शोदानन्दनजी को गोद लेने का प्रबन्ध हो गया।

लालजी यशोदानन्दनजी, जिनका कांकरोली में श्रीगिरिधरलालजी नाम रक्खा गया, का जन्म सं० १८९८ फाल्गुन कृ० ४ के दिन हुआ था।

प्रस्तुत विषय में माजी महाराज को पत्र लिखकर श्रीयशोदानन्दनजी (गिरिधरलालजी) ने जो शर्तें स्वीकार कीं, वे इस प्रकार थीं—

श्रीहरिः

श्रीमन्नवनीत प्रियो जयति

स्वस्तिश्रीमत्सकल गुणगणालंकृतासु सौजन्य सुरसरित्सु गोस्वामिनी श्री ६ माजी महाराज श्रीपद्मावती बहूजी महाराज कूं आज्ञाकारी चिरंजीव लालजी यशोदानन्दनस्य प्रणतय. शमिह तत्रास्तु, अपरच श्रीदरबार की सत्ता ले श्रीदादाजी महाराज के नामे लिखी जो आपके लालजी कूं श्रीद्वारकानाथजी की सेवा के लीने पठावोगे सो श्रीदादाजी ने लिखितं कर दीनो है सो हमारे कबूल है और या प्रमाणे हमने लिख दीनो है—

१ श्रीद्वारकाधीशजी की सेवा सिंगार आपके तथा श्रीबेटीजी के करते बचेगो सो आपकी आज्ञा ते मैं करूंगो।

२ श्रीछोई बेटीजीन को सिरस्ता श्रीमहाराज ने बाँध दियो है तथा आप बाँध देंगे श्रीदरबार की सत्ता सूं तामें कसर पडेगी नहीं।

३ जमाई भटजी के सिरस्ता प्रमाणे इनकूं बरतेंगे।

४ श्रीद्वारकाधीशजी के भंडार तथा मंदिर को काम सामधरमी चाकर आपकी आज्ञा और श्रीदरबार की सत्ता को होय जासूं करावनो, बिगाडू आदमी के चाले लगनो नहीं।

५ श्रीदरबार के माथे श्रीद्वारकाधीशजी बिराजे हैं और उनको गुरुद्वारा है, सो सब तरह की ठीक श्रीदरबार कूं राखी चाहिजे और हम श्रीदरबार की बीनती प्रमाणे बरतेंगे चलेंगे।

६ और सब तरह सूं हुकुम के मालिक आप है, आपके हुकुम बिना हम कछू करेंगे नहीं। और हम कोई सटपट करै ताके चाले लगै नहीं और हमारी ओर सूं कोई भूल साबित होय तो एक बेर तो आप समुझाय दीजियो, कदाच हम आपके समझाये प्रमाणे नहीं चलै तो आप और श्रीदरबार राखेगे जेसे रहैगे ताको उज्जर नहीं करेंगे। और आप सिरस्ता बांध देंगे ता प्रमाणे करेंगे। हमारे तो आपकी आज्ञा प्रमाणे और श्रीदरबार की सत्ता प्रमाणे चलेगे।

७ हमारे पिता काका बाबा भाई सगे सोई वगैरह कोई आवे सो हमारे पास नहीं रहेंगे। और विनके ठेठ सूं सेवा सिंगार को ब्योहार है, सो आवें तो दोय च्यार दिन रेह के चले जावेंगे। हमारे उनसूं कछू वास्तो नहीं।

८ श्रीठाकुरजी के घर में नौकर खवास बाई अधिकारी भंडारी मुखिया सावधरमी होय तो जासूं आपकी आज्ञा प्रमाणे, काम लेगे हमार आदमी कोई रहेगो नहीं।

ये लेख हमारी राजी खुसी सूं लिख दीनो। यामे कसर पड़े, तो श्रीद्वारकाधीशजी सू बहिर्मुख होय, वा श्रीमाजी महाराज हजूर ये कलमे लिख दीनी और हम यामे कसर पाडे तो श्रीमाजी महाराज हम कू दूरकर मरजी होय जिनकू गादी बैठावे श्रीदरबार की सत्ता सूं, जामे हमारो उज्जर नहीं। और जो बिगाड़ू आदमी हमारे पास राखे, वाकू श्रीदीवानजी पकड़ लेये। हमारी सदा आज्ञा है। ये अक्षर हम राजी खुसी सू लिख पठाये, कृपा स्नेह प्रतिक्षण वर्द्धमान राखेगे। कुशल पत्र लिखेगे, किमधिकम् मिती मार्गशीर्ष शुक्ल १३ शनौ संवत् १६०८ (अन्तिम अंक स्पष्ट नहीं है।) अक्षर गोस्वामि द्वारिकेश्वरजी के तथा लालजी गोपिकालंकारजी के।

ऊपर को लिख्यो सही ये अक्षर श्रीलालजी यशोदानन्दनजी के कहे सूं करे। अक्षर लालजी गोपिकालंकारस्य। ऊपर को लिख्यो सही। ये अक्षर लालजी यशोदानन्दनजी के कहे सूं करे।

अक्षर लालजी यशोदानन्दनजी के, ऊपर को लिख्यो सही।

श्रीमथुरानाथजी के मंदिरवारेन की सेवासिंगार वगेरे की परंपरा की रीत है, तामे कभी कसर नहीं पड़ेगी।

——:o:——

सं० १६०८ फाल्गुन कृ० ४ के दिन यशोदानन्दनजी को माजी महाराज ने गोद लिया और

स्थानीय प्रबंध

श्रीगिरिधर[illegible]ी—इस नाम से कांकरोली के घर का तिलकायित बनाया।
महाराणा [illegible] लिये राजकीय दस्तूर भेजकर मान्यता प्रदान की।
ने भी [illegible] मे रहकर श्रीद्वारकाधीश की सेवा की और ठिकाने
[illegible] के [illegible]यित हो जाने पर भी उनकी

बाल्यावस्था के कारण ठिकाने का सारा काम माजी महाराज के नाम से ही होता था और महाराणा के यहाँ से माजी महाराज के नाम ही लिखा-पढ़ी होती थी।

माजी महाराज ने गिरिधरलालजी का १० वर्ष की वय मे स० १६०८ में कोटा मे विवाह किया। महाराजश्री की धर्मपत्नी का नाम श्रीकमलावती वहूजी था।

जब तक गिरिधरलालजी महाराज जीवित रहे, तब तक वे और उनकी पत्नी कमलावती वहूजी माजी महाराज की आज्ञानुसार वर्तन करते रहे। पर सं० १८३५ मे गिरिधरलालजी का स्वर्गवास हो जाने पर उनकी पत्नी कमलावती वहूजी से माजी महाराज का कुछ मनमुटाव हो गया।

गिरिधरलालजी के कोई सन्तान नहीं थी, अत. उनकी पत्नी किसी अन्य गोस्वामिवालक को गोद लेना चाहती थीं, पर यह उनकी सास की विद्यमानता मे अनधिकार चेष्टा थी। इधर माजी महाराज ने वालकृष्णलालजी को सं० १६३६ मे गोद लिया, इसी कारण कमलावती वहूजी अपनी सास से अलग होकर मथुरा जा वसीं। यहाँ उन्होंने श्रीगोवर्द्धननाथजी का मन्दिर कुछ द्रव्य लेकर भेंट-स्वरूप में किसी से ले लिया और आजीवन यहीं निवास किया। वालकृष्णलाल-जी महाराज ने भी २००) मासिक देकर उनका प्रवन्ध कर दिया। सं० १६६७ फाल्गुन कृ० १४ के दिन कमलावती वहूजी का मथुरा में देहान्त हो गया। इसके बाद यह मन्दिर और सम्पत्ति कांकरोली-ठिकाने के अधिकार मे आ गयी*।

गिरिधरलालजी को गोद लेकर माजी महाराज ने जिस निश्चिन्तता का अनुभव किया था, वह उनके असामयिक निधन और किसी उत्तराधिकारी पुत्र के अभाव के कारण फिर न रही, माजी महाराज को पुनः इसके लिये चिंता करनी पड़ी।

संवत् १६३६ के प्रारंभ में माजी महाराज ने गुसाईंजी के छठे पुत्र श्रीयदुनाथजी के वंशज मथुरानिवासी श्रीकल्याणरायजी के तृ० पुत्र श्रीवालकृष्णलालजी को अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित किया, और महाराणा श्रीसज्जनसिंहजी से पूँछकर संवत् १६३६ कार्त्तिक वदी ७ के दिन उनको कांकरोली के घर का तिलकायित बनाया। महाराणा ने कांकरोली आकर राजकीय दस्तूर किया, और कांकरोली के स्वायत्त शासन के लिये १० कलमे नियत कीं, जिनका वर्णन आगे किया जा रहा है।

महाराजश्री की अवस्था इस समय १२ वर्ष की थी, अत ठिकाने का सारा कामकाज माजी महाराज की आज्ञा से ही होता था। इस प्रकार उन्होंने क्रमश. गिरिधरलालजी और वालकृष्ण-लालजी, इन दोनों की योग्य वय होने तक राज्य का भार सँभाला। कहना पड़ेगा कि—इनके

---

* इस मन्दिर को सेठ कुशाल ने सन् १८३० (स० १८८७) में वनवाया था, जो वड़ौदा-राज्य के सेठ वावू कामदार नाम से प्रसिद्ध थे। "मथुरा" पत्र १७८।

समय में इस ठिकाने को किसी प्रकार की असमञ्जस उठानी नहीं पडी। यह सम्प्रदाय में पहिला ही संयोग था, जब एक महिला ने इस योग्यता के साथ राजकीय कार्य का संचालन किया। पुत्र-संतति के अभाव मे राज्य का कितना हस्तक्षेप हो सकता है, यह बात राजनीति के जानकारों से छिपी नहीं है। ऐसी अवस्था मे अपने ठिकाने की मान-मर्यादा की रक्षा करते हुए उसे किसी प्रकार के आर्थिक संकट मे न पडने देना, यह सर्वतोभावेन योग्य व्यक्ति के अभाव मे असंभव है। इन सब बातों को देखकर कहना पडता है कि—पद्मावती माजी महाराज मे जो योग्यता विद्यमान थी, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रदेश यात्रा और राज्यसम्मान

अपने पति के गत हो जाने पर श्रीपद्मावती बहूजी, जो अब माजी महाराज के नाम से सम्बोधित होने लगी थीं, किं-कर्तव्य-विमूढ बनकर बैठी नही रही। उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता और तत्सामयिक चतुर कर्मचारियो के द्वारा श्रीद्वारकाधीश की सेवा का प्रबन्ध करना शुरू कर दिया। उन्होंने ठिकाने की प्रतिष्ठा और मना-मर्यादा रखकर उसे समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया। एतदर्थ अपने घर के शिष्य सेवक राजा-महाराजाओं के साथ सम्मान-पूर्ण व्यवहार चालू रक्खा और आवश्यकता पर प्रदेश-परिभ्रमण कर स्थानीय वैभव बढ़ाने का प्रयत्न किया।

सर्वप्रथम माजी महाराज ने अपनी पुत्री श्रीव्रजकुँवरि वेटीजी के साथ सं० १६०६ के वैशाख मे देवगढ-रावरणजीतसिहजी के आमंत्रण पर देवगढ़ की यात्रा की, जहाँ इनका राजकीय सम्मान किया गया। देवगढ़-राव रणजीतसिहजी ने दो कोस आगे आकर स्वागत किया, और शहर के दरवाजे से महल तक स्वयं चमर डुलाते हुए, नंगे पैर साथ मे चलकर उन्हें मुक़ाम पर पधराया। ठिकाने की ओर से सब प्रकार के साधन उपस्थित किये गये।

यहाँ कुछ दिन निवास हो जाने के अनन्तर एक दिन माजी महाराज की महलों मे पधरावनी हुई, जहाँ भेंट मे १४५७) चढाये गये, और माजी चम्पावतजी का बनवाया हुआ नया मन्दिर कांकरोली-ठिकाने को भेंट किया गया। यहाँ के ठाकुरजी की पुष्टिमार्गीय पद्धति से प्रतिष्ठा की गई और साम्प्रदायिक सेवा-प्रणाली प्रचलित हुई।

देवगढ से लौटते समय मार्ग मे आमेट-राव पृथ्वीसिहजी ने अपने महलों मे सत्कार के साथ पधरावनी की और भेंट चढाई।

सं० १६०६ आश्विन वदी १ को माजी महाराज श्रीगिरिधरलालजी महाराज को लेकर उदयपुर पधारे, जहाँ महाराणा सरूपसिहजी ने उनका राजकीय परम्परागत सम्मान किया, और ठिकाना का कर्ज चुकाने के लिये पचीस हजार रुपया चांदौडी भेंट किया। सं० १६१३ आषाढ़

शु० ६ को वे पुन: उदयपुर पधारे और वहाँ से श्रावण शु० ४ को वापिस कांकरोली आए। इस यात्रा मे महाराणा ने पुन भेंट आदि चढ़ाकर इनका सम्मान किया।

सं० १६१० जेष्ठ शु० ६ को रावत सवाई महासिंहजी ने अपने ठिकने की जमीन में से ८ बीघा जमीन भेट कर प्रतिवर्ष उसका हासिल कांकरोली पहुँचाते रहने का ताम्रपत्र किया*। यह रावतजी इस घर के सेवक थे, और यह जमीन इन्होंने भागवत तथा तुलसीजी के विवाह के अर्थ भेंट की थी।

स० १६१४ पौष वदी १० गुरुवार को माजी महाराज गिरिधरलालजी को लेकर गुजरात की यात्रा और प्रदेश करने गए, और वहाँ इस घर की वैष्णव-सृष्टि से सेवार्थ द्रव्य प्राप्त किया। यह यात्रा प्राय एक वर्ष मे समाप्त हुई, और यह सब सं० १६१५ कार्तिक वदी अमावस्या को कांकरोली आए।

सं० १६१६ मे माजी महाराज ने ८४ कोस व्रजमंडल की यात्रा की, और यथास्थान इन्होंने श्रीप्रभु के विविध मनोरथ कर वैष्णव-सृष्टि को आनंदित किया। इस यात्रा मे कई हजार वैष्णव यात्री साथ थे, जिनका समस्त प्रबंध और रक्षा माजी महाराज की ओर से किया गया था।

सं० १६२८ आश्विन कृ० ११ शुक्रवार के दिन पुन: माजी महाराज ने व्रजयात्रार्थ कांकरोली से प्रस्थान किया, और मथुरा जाकर दूसरी बार सपरिकर ८४ कोस व्रजमंडल की सविधि यात्रा सम्पूर्ण की।

इसी वर्ष पौष शु० ६ शुक्र के दिन वैष्णवो के आग्रह से यह मन्दसोर प्रदेश करने गये। जहाँ वैष्णवों ने बडे उत्साह और श्रद्धा से इनका स्वागत किया, तथा सेवार्थ द्रव्य भेट किया।

सं० १६२६ मार्गशीर्ष कृ० ११ मगलवार को माजी महाराज अलवर पधारे, तब बाई साहबा रूपकुँवरि तथा राजाजी शिवदानसिंहजी बाग मे पेशवाई के लिये आये, और लवाजमा के

---

* ता० न० ४२।७

श्रीव्रजगोपालजी। श्रीसुदर्पणजी

राम

सिद्धिश्री महाराजाधिराज महाराजा रावजी श्रीसवाई महासिंहजी वचनात श्रीकाकडोलीजी-श्रीद्वारकानाथजी के जमी बीगा ८ ई मुलव भेट करी ' ६ बहराजावतजी भेट करी गाम पलास्या मे

२ श्रीभगवतीजी की भेट खाती का कुडाम धाकड भागचद सामा की कर जीमध

४ श्रीतुलसीजी का बाव मे भेट नुवा कुडी मे सु धाकड नमो सकवाड्या कर जी मध २ लाडी बद मे भेटकरी श्रीभागवत क कसबा बेगम दलथमण मे सू माली कतो सत्नो कर अनीम

बीगा ८ आठ भेट करी जो ई जमी को हासल श्रीकाकरोली भडार पुगसी आपदत्त परदत्त जे प्रवानगी श्रीहजुर का हुकम सु दसकत साह्य सुरजमल कानोडा का। समत १६६० जेठ सुद ६।

संग-संग नगर में पधरा ले जाकर दरबार के मन्दिर में उनका मुक़ाम कराया। चार-पाँच दिन निवास और आतिथ्य हो जाने के अनन्तर अलवर-नरेश ने राजकीय सम्मान के साथ बड़े हर्ष से मार्गशीर्ष कृ० ३० के दिन माजी महाराज की जनाना महल में पधरावनी कराई, और ८२४ रु० भेंट किये। माजी महाराज के व्यक्तित्व का वहाँ अच्छा प्रभाव पडा, जिससे मार्गशीर्ष शु० ७ के दिन माजी महाराज से बाई रूपकुँवरि ने ब्रह्म-संबंध-दीक्षा ली और गुरु-दक्षिणा में १०००) सालाना अपनी जागीर से भेंट किया*। मार्ग शु० ८ को माजी महाराज की बिदाई हुई, जिसमें महाराजा आदि की ओर से ६८४) भेंट हुए।

सं० १९३२ आषाढ़ बदी ११ के दिन माजी महाराज के नाम राजस्थानवाले रावल मोखम-सिंहजी ने पाँच बीघा जमीन भेंट की, रावलजी इन दिनों कांकरोली में श्रीप्रभु के दर्शनार्थ आये थे, और यहाँ आकर इन्होंने नाम-दीक्षा ली थी †। मालूम पड़ता है, इस समय गिरिधरलालजी

---

* सही श्रीरामजी

श्रीद्वारकाधीसजी

श्रीसीतारामजी

सिद्धश्री सर्वोपमाविराजमान अनेक ओपमा लायक पुज्य श्रीगोस्वामीजी माजी महाराज श्री ५ श्री-पद्मावती वहूजी जोग अलवर थी बाई रूपकुँवरजी लिखता दडवत मालुम हो अपरच महाराज की सेवा के वास्ते हमने अपनी जायदाद की आमदनी मेसु रुपैया १०००) एक हजार सालयाना अर्पण की या है, जब तक जायदाद हमारे नाम मुकर्रिर रहेगी जितने रुपैया साल दर साल दिया जायगा ता तफसील।

साख सीयालूनी आमद मेसु ६००) साखउनालीनी आमदमेसू ४००)

इस माफिक भेट होती रहेगी। मगसर सुदी ७ सवत् १९२९

(रोकड से) (मुहर)

† ता० न० ३८ श्रीः

सही

सधश्री माहाराजाधराज गोस्वामीजी श्री १०८ श्रीपदमावती बहूजी माहाराज ठाकर रावले मोखम-सिंघजी राजथान वाल वाला श्रीकांकरोली दरसण करवाने आया नाव सुण्या जदी चरस १ जमी वीघा पाँच ५ अखरे पाँच भेट कीदी सो रामा अरपण कीदी ई जमी सु कोई मारा बस रोवै ज्यो खेचल करै नही पाल्या जवगा ई रो हासल माल वीगोडा वै सी सो श्रीजी में आया जायगा, मुखिया आय ले जावेगा, स्वदत्त परदत्त वा चरस भोम्या वालो, दुवे भाई लछमणसिंगजी हुकुम थी मारफत मुखीया घनस्यामजी लालुसुत संवत १९३२ आसाड व्दी ११।

द. रषभ वजेराम, खुदाई उसता, अमाम बगस सुत पीर बगस, १९३२ री नुकसारी वही मद्दे खाते पाने ६

महाराज प्रदेश में होने के कारण कांकरोली में विद्यमान नहीं थे, अन्यथा यह भेंटपत्र उन्हीं के नाम होता।

सं० १६३५ का० सुदी ५ के दिन रावजी राज श्रीहरीसिंहजी ने ५० रु० सालाना की, पार्वती-विलास बाग और रूपाहेली माताजी के मन्दिर के पास की जमीन भेंट की *।

माजी महाराज की एक वार पुनः व्रजयात्रा करने का समय सं० १६३५ से ३८ के भीतर कहा जाता है। इस प्रकार प्रसिद्ध है कि—इस व्रजयात्रा के समय इन्होंने वडे उत्साह से खर्च किया था और साथ के हज़ारों यात्रियों के लिये सब प्रकार का प्रबन्ध कराया था। इस यात्रा में, जब कि ज्येष्ट मास था, व्रज में जल का वड़ा त्रास था, गिरिराज में यात्रियों के लिये प्रबन्ध कराकर नहरों से जल पहुँचाया गया था। राधा-नामक कंजरी को जनता की जान-माल की रक्षा का भार सौंपा गया था। इस व्यक्ति का इतना दबदबा था कि—यात्रा में कभी किसी प्रकार की चोरी नहीं होने पाई। गुमा हुआ यात्रियों का सामान तलाश कर यथास्थान पहुँचा दिया जाता था, जिससे वैष्णव-जनता को वड़ा संतोष था।

माजी महाराज ने गिरिराज में अभूतपूर्व छप्पन भोग का मनोरथ किया और बारहों महीनों के उत्सव कराये। वृद्ध लोगों के मुख से सुना जाता है कि—ऐसे उत्साह और प्रबन्ध के साथ ऐसी व्रजयात्रा फिर नहीं हुई, और न ऐसे उत्सवों का आयोजन ही किया गया। इस

---

* ता० नं० ३६

श्रीपीताम्बरजी माहाराज श्रीरामजी

सही

सीध श्री रावजी राजश्रीहरीसिंघजी वचनात श्रीजी माहाराजराजश्री जी १०८ श्रीश्री दुवारकाधीसजी काकडोली के मंदिर पुन अरथ बाग पारवती विलास रुपाहेली माताजी महाराज का मींदर कने लगावो सो भेट करो जाको हासल का रुपिया ५० पचास सीक चीतोडी श्रीजी के भेजा जावसी रुपीया २५ पचीस सावण रुपीया २५ पचीस उनालू जुमले रुपीया ५० पचास भेजा जावसी और जलधाती का चडस में जमी पीवल नडाग बीघा २ भोग तालुक भेट करी सो बुको हासल सदीव आया जावसी जणी माह कोई तफावत करें नही जो करें तो हीदुन तो गाय मारा की हीसा मुसलमान ने सुर मारा की हीसा होसी आपदत्तं परदत्त ..... जो कोई ई लीखा में दखल करसी सो श्रीजी की दरगा में दामनगीर होसी, समत १६३५ का काती सुदी ५ सनीवार, दसखत मुनसी पंनालाल पंचौली मेडतावाला का छै श्रीहुकमसू लीखो छै, ई बाग की जमी बीघा ५ पाच छै।

राजथान देवलो हरी सीघ सादुल सीघ
त खोप जोधाचंद सीणोत
दसगत हरीसीघ का ऊपरलो लख्यो सही छै

यात्रा का प्रबन्ध माजी महाराज ने सेठ नारायणदासजी को सौंपा था, जो राजाधिराज मन्दिर के सेठ साहब के मुनीम मांगीलालजी के पुत्र थे।

इस प्रकार जहाँ तक पता चलता है, माजी महाराज ने अपने समय मे आवश्यक प्रदेश-भ्रमण किया। तत्कालीन राजा, महाराजा, सरदार और सेठ-साहूकारों के साथ उचित सम्मान-पूर्ण व्यवहार करके इन्होंने उन्हे अपने व्यक्तित्व से प्रभावित किया, जिससे ठिकाने की वैभव-वृद्धि को बहुत कुछ अवकाश मिला। महाराणा सज्जनसिंहजी इन पर बडी भक्ति रखते थे। उन्होंने माजी महाराज के प्रति लिखे गये पत्रों में अपने को 'सेवक' और 'दासानुदास' शब्द से बोधित किया है*। स्त्री-विग्रह होने पर भी इस प्रकार व्यक्तित्व स्थापित करने का एक यही उदाहरण पुष्टि-सम्प्रदाय के इतिहास मे सर्व-प्रथम मिलता है।

अधिकार-प्राप्ति

हम पहिले पुरुषोत्तमजी महाराज के प्रसंग मे कह आये हैं कि—महाराणा जवानसिंहजी ने सं० १८९४ कार्तिक शु० १० के पत्र द्वारा कांकरोली के ठिकाने को कुछ अधिकार प्रदान किये थे, जिनका पालन अभी तक होता आया था। सं० १९३५ में सज्जनसिंहजी ने राज्य की सुव्यवस्था के लिये कलमबन्दी की और ठिकानों के सभी उमरावों को यह प्रदान की, जिनमे ८ कलमे है। परन्तु गुरुवर की कुछ विशेषता रखने के लिये जब महाराणा से मालूम की गई, तब उन्होंने कांकरोली के लिये दो विशेष कलमे लिखकर प्रदान की। सं० १९३६ कार्तिक वदी ७ गुरुवार के दिन नीचे-लिखी कलमबन्दी कांकरोली के लिये पद्मावती माजी और कमलावती वहूजी के नाम प्राप्त हुई—

नम्बर ३२

श्रीवाणनाथजी   श्रीएकलिंगजी   श्रीनाथजी

स्वस्तिश्री सर्वोपमा लायक श्रीश्रीश्री० माजी श्रीश्री पदमावतीजी बहूजी श्रीकमलावती वहूजी महाराज हजुर सदा सेवक दासानुदास राणा सज्जनसिंह की साष्टांग दंडवत ज्ञात होवे अपरंच आपको लिखो काती वद ३ संमत हाल को बाबत काररवाई दीवाणी फौजदारी को आयो सो आप कलमा लिखी है जी माफिक आप अमल दरामद रखावे, अठासू नीचे कलम लिखी है जी माफिक वरताव रहेगा... .....

१—इजलास खास या मेहकमे खास के हुकुम या फेसले की तामील करावता रहै, मुकदमात दीवाणी व फौजदारी जीन में के मुद्दई और मुदायेला पटे कांकरोली का हो उनसे सिवाय मुकदमात मुनदरजे दफे ४ अलावा अपील के दसत अन्दाजी न होगी।

२—जब कीसी आसामी को तलब करना या कीसी कीसम की काररवाई करना जरूर

* देखो आगे स० १९३६ का 'कलमबन्दी' का महाराणा का पत्र।

होगा तो ईजलास खास या मेहकमे खास कांकरोली का वकील की मारफत करेगा, और म्होलत वकील को ईस कदर दी जावेगी के जीससे वो तामील हुकुम की वखूवी करसके, अगर मयाद के अन्दर वकील जवाव नहीं देगा तो ईजलास खास अपने तौर पर आसामी तलब करेगा, या मुनासिव काररवाई करेगा।

३—फौजदारी मुकदमात जीनमे के रयाया किसी जागीर के पटे की एक फरीक हो और काकडोली पटे की दुसरा फरीक हो याने वारदात की हो या उस वारदात के मुजरम पटे कांकरोली मे पनाह पंजीर हो तो उन मुजरमों को माफिक तलवी इजलास खास या मेहकमे खास के भेज दिया करे।

४—मुकदमात कतल वस्ती वड के तीरहजनी जिनमे की कोई सखस मारा गया हो या खोफ मरजाने का हो ओर वरदाफरोसी व जालसीका ईनकी इतेला वकत वारदात के इजलास खास में करा दीया करैं, और मीसल वाद तेहकीकात के मनजूरी के वास्ते इजलास खास भेज दिया करैं, और इन जुरमों के मुजरमों को भी तलव करने प्र भेज दीया करैं, या मुकदमा मे ईजलास खास या म्हेकमे खास मुनासिव समझेगा तो परभारी तेहकीकात भी कराय लेगा।

५—कानून हकरसी जो जारी हुआ है या और कोई कानून ज्यो वास्ते कुल मेवाड के जारी होगा उसी माफिक काररवाई पटे काकरोली मे भी करावे।

६—मुकदमात दीवाणी वो फोजदारी मे जव के एक फरीक पटे काकडोली का अर दुसरा फरीक खालसा या दुसरे पटे का हो तो एसे मुकदमात मे मुदेई को हाकम कुमलगढ़ के पास नालस करना चावै और हाकम कुमलगढ़ को एसे मुकदमान मे ज्यो आसामी तलव करना या कोई काररवाई करना जरूर होवेगा तो काकडोली की मारफत कीया करेगा, और एसे मुकदमात मे अपील हाकम कुमलगढ के सिवाय इजलास खास के किसी दुसरी अदालत मे समायेत न होगी।

७—मुकदमात दीवाणी जीन मे की मुदाएला पटे काकडोली मे रहेता हो अर मुदेइ कीसी दुसरी जगे का होवे अर तेदाद दावा ५०० पानसै से जादा न हो तो मुदेई को नालीस काकडोली करनी होगी, ओर जरे काकडोली से मुकदमा तैह हो जावेगा उसकी अपील सिवा ईजलास खास के और किसी दुसरी अदालन मे न होगी, और एसे मुकदमे मे जवाव वगेर वजै काफी काकडोली से देर होगी तो ईजलास खास को दो दफे ईतला देने के वाद मीसल तलव करने या फैसला करने का ईखतार है।

८—जव के काकडोली के पटे की कीसी आसामी को कीसी जुरम की सजा ईजलास खास या हाकम कुमलगढ़ के याहा से दी जावे और मयाद केद की ५ साल से ज्यादा न होवे तो

एसे मुजरमो कु केद भुगताने के वास्ते काकडोली के जेलखाने मे वसीरस्ते उठे जेलखाना को उमदा वन्दोवस्त होगा भेज दिया जायेगा।

६—मुकदमात फौजदारी मे जब किसी काकडोली पटे के मुजरीम पर जुरमाना किया जावे तो काकडोली की मारफत वसुल किया जावा की आप पत्र मे लीखी सो यो गरुघर है जीसु याहा की प्रसनता सु काकडोली पटे की आसामी प्र जुरमानो वेगा वो.. ...श्री.... जी के भेट होय भंडार जमा करायो जायगा।

१०—जव के पटे काकडोली की रयाया राज की किसी अदालत मे नालिस करेगा तो इस्टाम माफक दसतूर के देगा और कायदा ईसटाम माफक अमल द्रामद राखेगा। समत १६३६ रा काती वुद ७ गरुवार।

इस पत्र के प्रारम्भ मे हासिया मे महाराणा के इस प्रकार हस्ताक्षर है ... .
"सेवक को साष्टांग दंडवत परणाम ज्ञात होवे।"

अन्य कार्य—माजी महाराज ने जहाँ प्रदेश-भ्रमण कर श्रीप्रभु के लिये सेवा एकत्रित की, वहाँ उन्होंने नगर मे गृह-निर्माण के भी अनेक कार्य किये।

सं० १६०४ वैशाख कृ० ११ को रात्रि मे मन्दिर मे 'पादुकाजी'-नामक स्थान मे अग्नि के प्रकोप से वहुत कुछ प्राचीन भवन का नुक़सान हो गया था, अत ज्येष्ठ कृ० ६ को उसकी शांति कराकर उन्होंने वह स्थान पुन' नवीन वनवाया।

स० १६०५ के लगभग इन्होंने श्रीव्रजकुँवरि वेटीजी का विवाह जयपुर-निवासी विट्ठलनाथ भट्टजी के साथ किया और उसमे मुक्त-हस्त होकर व्यय किया। यद्यपि यह पुरुषोत्तमजी महाराज की प्रथम पत्नी की पुत्री थीं, पर माजी महाराज का इस विषय मे कोई द्वैध-भाव नहीं था। सं० १६०७ वै० कृ० १२ को इनके द्विरागमन का प्रस्ताव हुआ।

सं० १६०६ मे 'नजरवाडी' की वावडी की मरम्मत कराई गई, और संवत् १६०७ मे दरबार से आज्ञा लेकर पनघट-घाट पर रहट वनवाये, जिससे बाग के लिये तालाव का पानी ले जाया जा सके। इसी वर्ष मन्दिर मे 'कमल चौक' मे संगमरमर के पत्थर लगवाये जाकर उसकी शोभा वढाई गई।

स० १६०८ आषाढ कृ० ३ को नगर के वाहर 'सूरजपोल' दरवाजे का मुहूर्त किया गया, और उसके निर्माण का कार्य शुरू हुआ।

सं० १६११ के मध्य मे कांकरोली मे महामारी (हैजा) की वीमारी फैली, जिससे माजी महाराज ने जनता को आवश्यक साहाय्य प्रदान किया, और रोगोपद्रव की शान्ति के लिये मन्दिर मे अनुष्ठान कराया।

सं० १९१५ मे, माजी महाराज के समय मे, जबकि गिरिधरलालजी महाराज नाबालिग थे, कांकरोली के आस-पास सिपाही-विद्रोह की विपत्ति आई। इस समय कांकरोली के पास के गॉव जावद, रतनगढ़ आदि मे उपद्रव की आशंका होने लगी, जिसे कप्तान शावर्स ने शान्त किया। इसके बाद एक बार पुनः इस उपद्रव की घटा ने इस ओर अपना रुख फेरा। उदयपुर-राज्य के इतिहास मे उस समय की परिस्थिति के विषय मे इस प्रकार लिखा है—

राजनैतिक स्थिति

"इसके उपरान्त फीरोज तथा दो हजार बागियो को साथ लेकर तॉतिया टोपी मारवाड़ की ओर से मेवाड़ मे घुसा। ई० स० १८५९ ता० १७ फरवरी (वि० स० १९१५ माघ सुदी १५) को कांकरोली पहुँचा*। फिर ब्रिगेडियर सामरसेट तथा कप्तान शावर्स के आने की खबर पाकर वे बॉसवाडे की ओर चले गए। पर सामरसेट ने रास्ते मे ही उन्हे जा दबाया और उनकी सेना तितर-बितर कर दी।" (पत्र ७७५)

इस समाचार से यह विदित नहीं होता कि—कांकरोली के पास लड़ाई हुई, तथापि किन्हीं लोगो के साथ, चाहे वे उदयपुर-राजनगर के सिपाही हों या कांकरोली के, उन लोगों की मुठभेड़ अवश्य हुई थी। जावद के पास का मैदान अब भी लड़ाई के लिये प्रख्यात है। इस समय विद्रोहियों के पास से छीनकर लाया हुआ एक लम्बा पैना खॉडा कांकरोली के संग्रहालय में विद्यमान है, जिससे इसका पता लगता है।

इस प्रकार माजी महाराज के समय मे एक यही राजनैतिक विपत्ति कांकरोली पर आई या आनेवाली थी, पर वह उदयपुर-राज्य की तात्कालिक सतर्कता से शीघ्र ही निकल गई।

माजी महाराज की विद्यमानता मे मेवाड़ से सरूपसिंह, शम्भुसिंह और सज्जनसिंह, इन तीन महाराणाओ का राज्य-काल रहा। यद्यपि यह तीनो महाराणा भिन्न २ प्रकृति के थे, पर माजी महाराज के साथ सबका योग्य श्रद्धा-भाव था। अत ऐसा कोई अवसर नाथद्वारा की तरह कांकरोली पर नहीं आया, जब महाराणाओ की दृष्टि कुछ भी टेढ़ी हुई हो। जैसा पहले कहा जा चुका है, उदयपुर के महाराणाओं की सदा कांकरोली के घर के प्रति आदर की दृष्टि रही है। उसी प्रकार कांकरोली का ठिकाना भी सदा इस राज्य का शुभेच्छु रहता आया है। इस घर का यह भाव किसी स्वार्थ-वश नहीं, प्रत्युत उस हेतु से था, जो गुरु का शिष्य के प्रति होता आया है। सं० १९२२ पौष वदी ११ के, महाराणा शम्भुसिंहजी के, पत्र से इस विषय पर कुछ प्रकाश पड़ता

* कांकरोली की इस वर्ष की रोकड़ मे श्रावण सु० ३ को काले लोगों की फौज के द्वारा भेंट किये हुए रुपयो का और अँगरेजो की फ़ौज के लिये घास-लकडी के रुपयों का जमा-खर्च होने मे ओझाजी द्वारा लिखित मिती ठीक नहीं जँचती। इन लोगों का आवागमन सं० १९१५ श्रावण मास मे हुआ था।

है। जिसमे माजी महाराज ने गिरिधरलालजी के प्रदेश जाने के लिये महाराणा से आदेश मॉगा था, और इस पत्र के द्वारा महाराणा ने शीघ्र ही वापस आने की सलाह देते हुए उन्हे अपनी स्वीकृति दी थी।

पद्मावती माजी महाराज ने इस प्रकार औरस पुत्र न होने पर भी गिरिधरलालजी और आगे चलकर बालकृष्णलालजी महाराज के साथ जो पुत्र-वात्सल्य निभाया और इन दोनो को सुशिक्षित, योग्य एवं गुणी बनाकर अपने घर की मर्यादा अक्षुण्ण रक्खी, यह कांकरोली के लिये सौभाग्य की बात होने के साथ ही एक दृष्टान्त था, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

अपने पति पुरुषोत्तमजी के अनन्तर क्रमश गोद लिये हुए पुत्रद्वय, गिरिधरलालजी और बालकृष्णलालजी, की बाल्य अवस्था मे योग्य कर्मचारियो के द्वारा माजी महाराज ने जो अनुभव प्राप्त किया, उसी का यह फल था कि—उनके समय मे कांकरोली मे किसी प्रकार की अशान्ति का वातावरण उत्पन्न नही हुआ और संस्थान का कार्य सुचारु रूपेण चलता रहा।

माजी महाराज ने सं० १६२६ भाद्रपद मास मे व्रज की यात्रा की, और तीर्थस्थल मे जाकर यथायोग्य दान-पुण्य किया। इन्होंने श्रीगिरिराजजी जाकर वहां एक विशाल छप्पन भोग का मनोरथ किया। योग्य वय मे गिरिधरलालजी महाराज का विवाह कर आप निश्चिन्त हो गई थीं, पर उनके आगे किसी उत्तराधिकारी पुत्र के उत्पन्न न होने से आपको चिन्ता बनी ही रही। श्रावण कृष्ण २ सं० १६३५ मे गिरिधरलालजी के बसोगाम मे निधन हो जाने पर सं० १६३६ श्रा० कृ० ७ गुरुवार के दिन आपने बालकृष्णलालजी को गोद लिया।

व्रजयात्रा और गिरिराजजी के छप्पन भोग (स० १६३५ से ३८ के बीच) के बाद आप व्रजमंडल मे ही कुछ समय तक निवास करती रहीं। अन्त में सं० १६३६ के आश्विन कृ० ६ के दिन इनका गोलोकवास श्रीराजाधिराज के मन्दिर मे हुआ, जहाँ यह निवास करती थी।



परिशिष्ट—१

श्रीमाजी महाराज के समय आगत राजा, महाराजा तथा उमराव अथवा भेंट

संवत्	मिती	नाम तथा स्थान
१६०७	वैशाख कृष्ण १५	महाराणा सरूपसिंहजी की ओर से सालाना सामग्री के लिये ५० रु० भेंट।
,, ,,	पौष सुदी १४	रावजी रणजीतसिंहजी, देवगढ़ दर्शनार्थ आये।

यहाँ जो स्वयं आये हैं, उनके नाम लिखे गये हैं, जिनकी भेंट आई है, उसका उल्लेख किया गया है। प्राचीन रोकड़ से लिया हुआ यह नोट है, इसमें कार्तिकादि संवत् और अमान्त तिथियाँ दी गई थीं, जो यहाँ चैत्रादि और पूर्णिमान्त बतलाई गई हैं। अन्य व्यक्तियों का श्रीगिरिधर-लालजी महाराज के प्रसंग में उल्लेख किया गया है।



श्रीगिरिधरलालजी महाराज (दशम ति०)

(प्रा० सं० १८९८, आ० १९०८, नि० १९३४)

—·—— :० ———

श्रीगिरिधरलालजी महाराज (च०) का जन्म स० १८९८ भाद्रपद शु० २ बुधवार के दिन हुआ था *। इनका प्रथम नाम यशोदानन्दनजी (उपनाम चट्टूजी महाराज) और औरस पिता का नाम श्रीद्वारकेश्वरजी था। यह द्वारकेश्वरज गुसाईंजी के प्र० पुत्र गिरिधरजी के वंशज थे और जतीपुरा (गिरिराज) मे रहा करते थे।

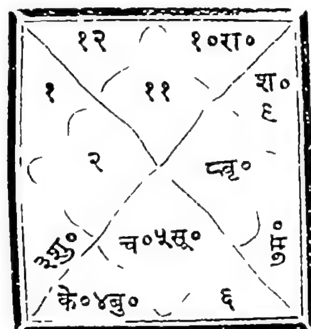
जन्म, सस्कार और विद्या-प्रेम

इनके पिता ने इनकी आठ वर्ष की वय हो जाने पर सं० १९०६ के लगभग इनका यज्ञोपवीत-संस्कार किया, और सम्प्रदाय के आवश्यक ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ कराया। यशोदानन्दनजी वाल्यावस्था से ही मेधावी, धीर, गम्भीर और भगवत्-सेवा-रसिक पुरुष थे। अत इनके वाल्य-जीवन से ही इनमे साम्प्रदायिकता का भाव आ गया था, फिर भी यह अन्य धर्मों के लिये बडे उदार थे। कांकरोली मे गोद आ जाने पर इन्होने और भी अध्ययन किया, साथ ही श्रीप्रभु की सेवा का विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

जहाँ यह महाराजश्री सेवा के रसिक, अनुभवी और मन्दिर की सम्पत्ति के वढ़ानेवाले थे, वहाँ स्वयं विद्वान् और विद्या-प्रेमी तथा गुण के पारखी थे। इन्होंने मथुरानाथात्मज गो० श्रीद्वारकेश्वरजी से दीक्षा ली थी, अत उन्हे अपना गुरु मानते थे। इनको लेखनकला से विशेष प्रेम था। अवकाश मिलने पर यह अपने हाथों से श्रीभागवत लिखा करते थे। इन्होंने अपने जीवन मे १०८ भागवत लिखवाकर योग्य, विद्वान् ब्राह्मणों को दक्षिणा के साथ प्रदान की थीं। इनकी लिखी हुई एक भागवत† विद्या-विभाग के सरस्वती-भण्डार मे विद्यमान है। इन्होंने कई अच्छे २

* जन्म-कुंडली—

सवत् १८९८ शाके १७६३ प्रवर्तमाने वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे २ तिथौ बुधवासरे इष्ट घटी ३१।६



† महाराजश्री ने अपने श्रीहस्त से जो भागवत लिखी, उसका समय इस प्रकार है—"सं० १९३२ चैत्र शुक्ल १३ वार आदित्ये लिखितमिद गोस्वामि गिरिधरलालेन।" इन्होने मगलाचरण लिखने के वाद इस प्रकार लिखा है—

श्रीद्वा० भा० वार्ता



गो० श्रीगिरिधरलालजी महाराज, कांकरोली
१० ति० प्रा० सं० १८६८ भाद्र० शु० २.

गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

ग्रंथ मूल्य से खरीदकर अथवा लिखवाकर अपने सरस्वती-भंडार के लिये संगृहीत किये। सरस्वती-भंडार की पुस्तको का अधिकांश संग्रह इन्हीं के द्वारा किया गया है, जिस पर इन्होंने अपने हस्ताक्षर किये हैं। समय-समय पर आगत विद्वानों, कवियों और गुणियों का सत्कार कर महाराजश्री ने अपने जीवन मे अपनी विद्या-प्रियता का कई वार परिचय दिया था।

यथावकाश यह वैष्णवों को कुछ-न कुछ स्वमार्गीय उपदेश दिया करते थे। इस प्रकार के उपदेशों का संग्रह इनके शिष्य अमथाभाई * ने किया, जो "श्रीगिरिधरलालजी के १२० वचनामृत" के नाम मे प्रकाशित हो गया है। इस ग्रंथ की रचना पौप कृष्ण ११ मंगलवार सं० १९३३ के दिन हुई थी।

सं० १९०३ में जव कांकरोली के नवम तिलकायित पुरुषोत्तमजी महाराज का नित्यलीला-प्रवेश हो गया, तव कुछ वर्ष बाद उनकी पत्नी पद्मावत. माजी महाराज ने किसी योग्य वालक को द्वारकाधीश के घर का तिलकायित वनाने का विचार किया। प्रस्तुत विपय में माजी महाराज की दृष्टि यशोदानन्दनजी पर पड़ी, और उन्होंने इन्हें योग्य देखकर उनके पिता द्वारकेश्वरजी से पत्र-व्यवहार किया। इधर उदयपुर के तात्कालिक महाराणा सरूपसिंहजी से परामर्श कर इसका निश्चय किया गया।

गोद आकर तिल-कायित होना

माजी महाराज ने यशोदानन्दनजी तथा उनके पिता द्वारकेश्वरजी से कुछ शर्तें लिखाईं, जो सं० १९०८ मार्ग० शु० १३ शनि के दिन लिख दी गईं। यह पत्र माजी महाराज के चरित्र (पत्र ४) में प्रकाशित किया गया है।

"वालकृष्णमहं वदे विट्ठलेशसुतं गुरुं, कमलाप्राणनाथं च पदात्मजं सुवं परम् ॥ २६ ॥ श्रीमद्-गिरिधरं वन्दे तत्सुतं व्रजभूपणं। तत्सूनुं व्रजनाथं च वालकृष्णान्वयं भजे ॥ २७ ॥ श्रीमद्विट्ठलनाथं च काकरोल्यां विराजितं। अनेकराजभिः सेव्यं तत्सूनुं व्रजभूपणं ॥ २८ ॥ श्रीमद्गोकुलनाथं च व्रजनाथसुतं भजे। पार्वतीवल्लभं शब्दनानाग्रन्थकरं प्रभुम् ॥ २९ ॥ श्रीमद्गोकुलनाथानामात्मजं पुरुषोत्तमम्। पार्वतीनन्दनं वन्दे सदापद्मावतीप्रियम् ॥ ३० ॥ श्रीगुरुं द्वारकेशं च शास्त्राभरणभूपितम्। श्रीमद्भागवताब्धीन्दुं तं नमामि पुनः पुनः ॥ ३१ ॥ पंचाक्षरप्रदातारं पुष्टिलीलारसप्रदम्। एतादृशं गुरुं वन्दे मथुरानाथनन्दनम् ॥ ३२ ॥

इस भागवत के साथ गीता भी है। इस प्रकार कुल मिलाकर महाराजश्री के हस्त-लिखित पत्रों की संख्या १६५५ है। उक्त संवत् मे इसका लेखन प्रारम्भ हुआ है, और यह काकरोली मे लिखी गई है। इसकी समाप्ति स० १९३२ पौप सुदी १३ को हुई।

* अमथाभाई सलेटानिवासी खुसालदास वैश्य के लड़के थे, और महाराज के समय काकरोली के मन्दिर मे कुछ समय अधिकारी का काम कर चुके थे। इन्हें भी प्राचीन साहित्य के संग्रह करने का शौक़ था।

बात यह थी कि—सं० १८८८ में नाथद्वारा के तिलकायित गोविंदरामजी ने महाराणा से अलग होकर स्वतन्त्र राजा बनने का प्रयत्न किया, और कुछ मुँहलगे आदमियों के कहे-सुने मे आकर राजपूताना के एजेन्ट गवर्नर जनरल के पास अपना वकील भेजा, पर उनका यह षड्यन्त्र सिद्ध न हो सका। इसी प्रकार का कोई उपद्रव आगे चलकर कांकरोली में न हो, इस बात को सोचकर महाराणा और माजी महाराज ने गिरिधरलालजी से इस प्रकार की शर्तें लिखवा ली थी, अन्यथा गोद लेते समय इस प्रकार की किसी लिखा-पढ़ी की कोई आवश्यकता नहीं थी। अस्तु।

सं० १६०८ फाल्गुन कृष्ण ४ के दिन बडी धूमधाम के साथ माजी महाराज ने यशोदानन्दन-जी को गोद लेकर पुरुपोत्तमजी महाराज का उत्तराधिकारी और कांकरोली के घर का तिलकायित बनाया। इस समय उनका नाम श्रीगिरिधरलालजी महाराज रक्खा गया। महाराणा की ओर से उनके प्रधान कर्मचारियों ने उपस्थित होकर राजकीय दस्तूर किया। माजी महाराज ने इस समय ठिकाने मे खूब उत्सव मनाकर श्रीप्रभु का मनोरथ किया। कांकरोली की गद्दी के लिये यह प्रथम ही अवसर था, जब गुसाईंजी के तृ० पुत्र, और तृ० पीठ के प्र० तिलकायित श्रीबालकृष्णजी के वंश की पूर्णता हो जाने से षष्ठ पुत्र श्रीयदुनाथजी के वंश से इन्हें गोद लिया गया ※।

महाराजश्री ने माजी महाराज की आज्ञा में चलकर श्रीद्वारकाधीश की सेवा और ठिकाने का प्रबन्ध करना सीखा, जिससे इनके व्यवहार से माजी महाराज को यावज्जीवन किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं रही, यह एक सौभाग्य की बात थी। यही कारण था कि महाराजश्री के प्रति उदयपुर के महाराणाओं का सदा आदर-भाव बना रहा। इनके गोद आजाने से इस घर में फिर चहल-पहल दीखने लगी और श्रीद्वारकाधीश की सेवा मे सौकर्य हो गया। वैष्णवों को भी अपने गुरुघर मे तिलकायित के दर्शनों का सद्भाग्य मिला।

विवाह

सं० १६१३ चै० सु० १५ को माजी महाराज ने गिरिधरलालजी का कोटा में विवाह किया। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीकमलावती बहूजी था, जो रेही बालमुकुन्द भट्टजी की पुत्री थीं †। एक वर्ष-पत्र के देखने से विदित हुआ है कि—इनका जन्म सं० १६०४ वैशाख सुदी ३ के दिन हुआ था। सं० १६१७ मे द्विरागमन हुआ, और कार्त्तिक सुदी १३ को व्रजयात्रा समाप्त कर महाराजश्री सपत्नीक कांकरोली आए, जहाँ इनका गृह-प्रवेश का प्रस्ताव किया गया।

※ सम्प्रति गोस्वामिबालकों मे गुसाईंजी के सात पुत्रों में से प्रथम और छठे पुत्र का ही वंश विद्यमान है। † स० कल्पद्रुम का नकशा।

जहाँ तक पता लगता है—गिरिधरलालजी के कोई सन्तान नहीं हुई, यदि हुई भी तो वह अधिक समय तक जीवित नहीं रही। यही कारण था कि सं० १६३५ में इनके गत हो जाने पर पद्मावती माजी महाराज ने मथुरानिवासी गोस्वामी श्रीकल्याणरायजी के तृ० पुत्र श्रीवालकृष्ण लालजी को सं० १६३६ में गोद लेकर उत्तराधिकारी वनाया। इस गोद के विषय में जैसा प्रथम कहा जा चुका है—गिरिधरलालजी की पत्नी कमलावती वहूजी के साथ माजी महाराज का मनमुटाव भी हो गया, जिससे सं० १६३८ में कमलावती वहूजी मथुरा में जा वसीं, और वहाँ कुछ रुपयों में खरीदकर गोवर्द्धननाथजी के मंदिर* में उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। यहाँ वालकृष्णलालजी महाराज ने उनके खर्च के लिये मासिक ३००) का प्रवन्ध राजाधिराज के मन्दिर द्वारा करा दिया†। सं० १६६७ फाल्गुन कृ० १४ को कमलावती वहूजी का गोलोकवास हो गया।

जव तक गिरिधरलालजी वयस्क नहीं हुए, तव तक माजी महाराज महाराणा से सम्मति लेकर इन्हें प्रदेश भेजती और कांकरोली के घर की वैष्णव-सृष्टि को सँभालती रहीं। इसके वाद भी कई वर्ष तक महाराणा से प्रदेश जाने के लिये सम्मति मँगाई जाती रही, जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि—पैदल रास्ता होने के कारण महाराणा यात्रा की कुछ सुविधाएँ प्रदान करते थे‡।

राज्य-सम्मान

यद्यपि नियमानुसार वयस्क न हो जाने तक गिरिधरलालजी के नाम ग्राम प्राप्त न होकर माजी महाराज के नाम पर प्राप्त हुए हैं, जिन्हें हमने उन्हीं के चरित्र में लगा दिया है, पर फिर भी, सं० १६१३ के लगभग गिरिधरलालजी का नाम राजकीय लिखा-पढ़ी में आने लगा था। इस प्रकार का सं० १६१३ का एक जयपुर-रियासत का रुक्का मिलता है §।

* मथुरा में द्वारकाधीश के मन्दिर को छोड़कर यह सवसे अधिक लम्बा-चौड़ा है। इसे सेट कुशाल नामक एक गुजराती धनी व्यक्ति ने सं० १८८७ में वनवाया था। यह कांकरोली ठिकाने के अधीन है।

† स० १६३८ आषाढ़ शु० ४ गुरुवार का, महाराजश्री का, आज्ञा-पत्र।

‡ स० १६२२ पौष वदी ११ का महाराणा शंभुसिंहजी का पत्र।

§ श्रीरामजी

श्रीरामजी

श्रीमहाराजाधिराज सवाई रामसिंहजी

गुसाईं जी श्रीगिरिधरलालजी काकडोली का मुखिया अधकारना अत्र थाकै मातमपुरसी का रु० २६७६ ॥ द्वादस आना ठहरया ती मैं सीगै परवरस कै छोड्या रु० ६७८ साढ़ दस आना वाकी रु० २२०१ अके रुपया

बात यह थी कि—सं० १८८८ मे नाथद्वारा के तिलकायित गोविंदरामजी ने महाराणा से अलग होकर स्वतन्त्र राजा बनने का प्रयत्न किया, और कुछ मुँहलगे आदमियों के कहे-सुने मे आकर राजपूताना के एजेन्ट गवर्नर जनरल के पास अपना वकील भेजा, पर उनका यह षड्यत्र सिद्ध न हो सका। इसी प्रकार का कोई उपद्रव आगे चलकर कांकरोली में न हो, इस बात को सोचकर महाराणा और माजी महाराज ने गिरिधरलालजी से इस प्रकार की शर्तें लिखवा ली थी, अन्यथा गोद लेते समय इस प्रकार की किसी लिखा-पढी की कोई आवश्यकता नहीं थी। अस्तु।

सं० १९०८ फाल्गुन कृष्ण ४ के दिन बड़ी धूमधाम के साथ माजी महाराज ने यशोदानन्दनजी को गोद लेकर पुरुषोत्तमजी महाराज का उत्तराधिकारी और कांकरोली के घर का तिलकायित बनाया। इस समय उनका नाम श्रीगिरिधरलालजी महाराज रक्खा गया। महाराणा की ओर से उनके प्रधान कर्मचारियों ने उपस्थित होकर राजकीय दस्तूर किया। माजी महाराज ने इस समय ठिकाने मे खूब उत्सव मनाकर श्रीप्रभु का मनोरथ किया। कांकरोली की गद्दी के लिये यह प्रथम ही अवसर था, जब गुसाईंजी के तृ० पुत्र और तृ० पीठ के प्र० तिलकायित श्रीबालकृष्णजी के वंश की पूर्णता हो जाने से षष्ठ पुत्र श्रीयदुनाथजी के वंश से इन्हे गोद लिया गया *।

महाराजश्री ने माजी महाराज की आज्ञा मे चलकर श्रीद्वारकाधीश की सेवा और ठिकाने का प्रबन्ध करना सीखा, जिससे इनके व्यवहार से माजी महाराज को यावज्जीवन किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं रही, यह एक सौभाग्य की बात थी। यही कारण था कि महाराजश्री के प्रति उदयपुर के महाराणाओं का सदा आदर-भाव बना रहा। इनके गोद आजाने से इस घर में फिर चहल-पहल दीखने लगी और श्रीद्वारकाधीश की सेवा मे सौकर्य हो गया। वैष्णवों को भी अपने गुरुघर मे तिलकायित के दर्शनों का सद्भाग्य मिला।

सं० १९१३ चै० सु० १५ को माजी महाराज ने गिरिधरलालजी का कोटा मे विवाह किया।

विवाह

इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीकमलावती बहूजी था, जो रेही बालमुकुन्द भट्टजी की पुत्री थीं †। एक वर्ष-पत्र के देखने से विदित हुआ है कि—इनका जन्म सं० १९०४ वैशाख सुदी ३ के दिन हुआ था। सं० १९१७ मे द्विरागमन हुआ, और कार्त्तिक सुदी १३ को व्रजयात्रा समाप्त कर महाराजश्री सपत्नीक कांकरोली आए, जहाँ इनका गृह-प्रवेश का प्रस्ताव किया गया।

---

* सम्प्रति गोस्वामिबालकों मे गुसाईंजी के सात पुत्रों मे से प्रथम और छठे पुत्र का ही वंश विद्यमान है। † सं० कल्पद्रुम का नक़शा।

जहाँ तक पता लगता है—गिरिधरलालजी के कोई सन्तान नहीं हुई, यदि हुई भी तो वह अधिक समय तक जीवित नहीं रही। यही कारण था कि सं० १६३५ में इनके गत हो जाने पर पद्मावती माजी महाराज ने मथुरानिवासी गोस्वामी श्रीकल्याणरायजी के तृ० पुत्र श्रीबालकृष्ण लालजी को सं० १६३६ में गोद लेकर उत्तराधिकारी बनाया। इस गोद के विषय में जैसा प्रथम कहा जा चुका है—गिरिधरलालजी की पत्नी कमलावती बहूजी के साथ माजी महाराज का मनमुटाव भी हो गया, जिससे सं० १६३८ में कमलावती बहूजी मथुरा में जा बसीं, और वहाँ कुछ रुपयों में खरीदकर गोवर्द्धननाथजी के मंदिर* में उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। यहाँ बालकृष्णलालजी महाराज ने उनके खर्च के लिये मासिक ३००) का प्रबन्ध राजाधिराज के मन्दिर द्वारा करा दिया †। सं० १६६७ फाल्गुन कृ० १४ को कमलावती बहूजी का गोलोकवास हो गया।

जब तक गिरिधरलालजी वयस्क नहीं हुए, तब तक माजी महाराज महाराणा से सम्मति लेकर इन्हें प्रदेश भेजती और कांकरोली के घर की वैष्णव-सृष्टि को सँभालती रहीं। इसके बाद भी कई वर्ष तक महाराणा से प्रदेश जाने के लिये सम्मति मँगाई जाती रही, जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि—पैदल रास्ता होने के कारण महाराणा यात्रा की कुछ सुविधाएँ प्रदान करते थे ‡।

राज्य-सम्मान

यद्यपि नियमानुसार वयस्क न हो जाने तक गिरिधरलालजी के नाम ग्राम प्राप्त न होकर माजी महाराज के नाम पर प्राप्त हुए हैं, जिन्हें हमने उन्हीं के चरित्र में लगा दिया है, पर फिर भी, सं० १६१३ के लगभग गिरिधरलालजी का नाम राजकीय लिखा-पढ़ी में आने लगा था। इस प्रकार का सं० १६१३ का एक जयपुर-रियासत का रुक्का मिलता है §।

---

* मथुरा में द्वारकाधीश के मन्दिर को छोड़कर यह सबसे अधिक लम्बा-चौड़ा है। इसे सेट कुशाल नामक एक गुजराती धनी व्यक्ति ने स० १८८७ में बनवाया था। यह कांकरोली ठिकाने के अधीन है।

† सं० १६३८ आषाढ शु० ४ गुरुवार का, महाराजश्री का, आज्ञा-पत्र।

‡ सं० १६२२ पौष वदी ११ का महाराणा शम्भुसिंहजी का पत्र।

§ श्रीरामजी

श्रीरामजी

श्रीमहाराजाधिराज सवाई रामसिंहजी

गुसाईं जी श्रीगिरिधरलालजी काकडोली का मुखिया अधकारना अत्र थाके मातमपुरसी का रु० २६७६. ।ढादस आना ठहरया ती में सीगै परवरस कै छोड्या रु० ६७८ साढ दस आना बाकी रु० २३०१ अके रुपया

बात यह थी कि—सं० १८८८ में नाथद्वारा के तिलकायित गोविंदरामजी ने महाराणा से अलग होकर स्वतन्त्र राजा बनने का प्रयत्न किया, और कुछ मुँहलगे आदमियों के कहे-सुने मे आकर राजपूताना के एजेन्ट गवर्नर जनरल के पास अपना वकील भेजा, पर उनका यह षड्यत्र सिद्ध न हो सका। इसी प्रकार का कोई उपद्रव आगे चलकर कांकरोली में न हो, इस बात को सोचकर महाराणा और माजी महाराज ने गिरिधरलालजी से इस प्रकार की शर्तें लिखवा ली थी, अन्यथा गोद लेते समय इस प्रकार की किसी लिखा-पढ़ी की कोई आवश्यकता नहीं थी। अस्तु।

सं० १९०८ फाल्गुन कृष्ण ४ के दिन बड़ी धूमधाम के साथ माजी महाराज ने यशोदानन्दनजी को गोद लेकर पुरुपोत्तमजी महाराज का उत्तराधिकारी और कांकरोली के घर का तिलकायित बनाया। इस समय उनका नाम श्रीगिरिधरलालजी महाराज रक्खा गया। महाराणा की ओर से उनके प्रधान कर्मचारियों ने उपस्थित होकर राजकीय दस्तूर किया। माजी महाराज ने इस समय ठिकाने मे ख़ूब उत्सव मनाकर श्रीप्रभु का मनोरथ किया। कांकरोली की गद्दी के लिये यह प्रथम ही अवसर था, जब गुसाईंजी के तृ० पुत्र और तृ० पीठ के प्र० तिलकायित श्रीबालकृष्णजी के वंश की पूर्णता हो जाने से पष्ठ पुत्र श्रीयदुनाथजी के वंश से इन्हें गोद लिया गया *।

महाराजश्री ने माजी महाराज की आज्ञा मे चलकर श्रीद्वारकाधीश की सेवा और ठिकाने का प्रबन्ध करना सीखा, जिससे इनके व्यवहार से माजी महाराज को यावज्जीवन किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं रही, यह एक सौभाग्य की बात थी। यही कारण था कि महाराजश्री के प्रति उदयपुर के महाराणाओं का सदा आदर-भाव बना रहा। इनके गोद आजाने से इस घर में फिर चहल-पहल दीखने लगी और श्रीद्वारकाधीश की सेवा मे सौकर्य हो गया। वैष्णवों को भी अपने गुरुघर मे तिलकायित के दर्शनों का सद्भाग्य मिला।

विवाह

सं० १९१३ चै० सु० १५ को माजी महाराज ने गिरिधरलालजी का कोटा में विवाह किया। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीकमलावती बहूजी था, जो रेही बालमुकुन्द भट्टजी की पुत्री थीं †। एक वर्ष-पत्र के देखने से विदित हुआ है कि—इनका जन्म सं० १९०४ वैशाख सुदी ३ के दिन हुआ था। सं० १९१७ मे द्विरागमन हुआ, और कार्त्तिक सुदी १३ को व्रजयात्रा समाप्त कर महाराजश्री सपत्नीक कांकरोली आए, जहाँ इनका गृह-प्रवेश का प्रस्ताव किया गया।

---

* सम्प्रति गोस्वामिबालको मे गुसाईं जी के सात पुत्रों मे से प्रथम और छठे पुत्र का ही वंश विद्यमान है।

† स० कल्पद्रुम का नकशा।

जहाँ तक पता लगता है—गिरिधरलालजी के कोई सन्तान नहीं हुई, यदि हुई भी तो वह अधिक समय तक जीवित नहीं रही। यही कारण था कि सं० १६३५ मे इनके गत हो जाने पर पद्मावती माजी महाराज ने मथुरानिवासी गोस्वामी श्रीकल्याणरायजी के तृ० पुत्र श्रीबालकृष्ण लालजी को सं० १६३६ मे गोद लेकर उत्तराधिकारी बनाया। इस गोद के विषय में जैसा प्रथम कहा जा चुका है—गिरिधरलालजी की पत्नी कमलावती वहूजी के साथ माजी महाराज का मनमुटाव भी हो गया, जिससे सं० १६३८ मे कमलावती वहूजी मथुरा मे जा वसीं, और वहाँ कुछ रुपयों मे खरीदकर गोवर्द्धननाथजी के मंदिर* मे उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। यहाँ वालकृष्णलालजी महाराज ने उनके खर्च के लिये मासिक ३००) का प्रबन्ध राजाधिराज के मन्दिर द्वारा करा दिया †। सं० १६६७ फाल्गुन कृ० १४ को कमलावती वहूजी का गोलोकवास हो गया।

जब तक गिरिधरलालजी वयस्क नहीं हुए, तब तक माजी महाराज महाराणा से सम्मति लेकर इन्हें प्रदेश भेजती और कांकरोली के घर की वैष्णव-सृष्टि को सँभालती रहीं। इसके बाद भी कई वर्ष तक महाराणा से प्रदेश जाने के लिये सम्मति मँगाई जाती रही, जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि—पैदल रास्ता होने के कारण महाराणा यात्रा की कुछ सुविधाएँ प्रदान करते थे ‡।

राज्य-सम्मान

यद्यपि नियमानुसार वयस्क न हो जाने तक गिरिधरलालजी के नाम ग्राम प्राप्त न होकर माजी महाराज के नाम पर प्राप्त हुए हैं, जिन्हे हमने उन्हीं के चरित्र मे लगा दिया है, पर फिर भी, सं० १६१३ के लगभग गिरिधरलालजी का नाम राजकीय लिखा-पढ़ी में आने लगा था। इस प्रकार का सं० १६१३ का एक जयपुर-रियासत का रुक्का मिलता है §।

---

* मथुरा मे द्वारकाधीश के मन्दिर को छोड़कर यह सबसे अधिक लम्बा-चौड़ा है। इसे सेठ कुशाल नामक एक गुजराती धनी व्यक्ति ने स० १८८७ मे बनवाया था। यह कांकरोली ठिकाने के अधीन है।

† सं० १६३८ आषाढ शु० ४ गुरुवार का, महाराजश्री का, आज्ञा-पत्र।

‡ स० १६२२ पौष वदी ११ का महाराणा शम्भुसिंहजी का पत्र।

§ श्रीरामजी

श्रीरामजी

श्रीमहाराजाधिराज सवाई रामसिंहजी

गुसाई जी श्रीगिरिधरलालजी काकडोली का मुखिया अधकारना अत्र थाके मातमपुरसी का रु० २६७६. ।द्वादस आना ठहरया ती मैं सीगैं परवरस कैं छोड्या रु० ६७८ साढ दस आना बाकी रु० २३०१ अके रुपया

स० १६१२ आषाढ शु० ६ को महाराज गिरिधरलालजी, माजी पद्मावतीजी, दोनों बेटीजी तथा बहूजी उदयपुर गये और श्रा० शु० ४ को वापिस कांकरोली आये। उदयपुर में महाराणा ने इन सबका स्वागत-सत्कार किया और अच्छी बिदाई की।

सं० १६१३ चैत्र शु० १५ के दिन महाराणा सरूपसिंहजी ने गिरिधरलालजी महाराज के लिये ३०२ तोला सोना भेंट किया, जिसके ५७४३ ।।) रु० ह० मेहता शेरसिह तथा भंडारी विट्ठलदास के जमा हुए। ऐसा भासित होता है कि इस समय महाराजश्री तथा उनकी धर्मपत्नी के लिये पहिनने को सोने के लंगर भेंट किये गये थे, जो राजकीय एक बड़ा सम्मान है।

सं० १६१३ पौ० सुदी ३ को रावराजा रणबहादुरचन्द्र (गाम कोट कांगडा, इलाका जम्बू) दर्शनार्थ कांकरोली आये और ३००० रु० सालाना का धोलपुर गाम (परगना नादौन) भेंट किया और खत लिख दिया।

सं० १६१५ * और १७ † में कुछ ज़मीन गिरिधरलालजी के समय श्रीठाकुरजी के नाम पर भेंट आई। जिससे ज्ञात होता है कि इस समय से इनका नाम राजकीय लिखा-पढ़ीमें आ चुका था।

दोय हजार तीनसै एकै हाली ठहरया सौ ख़ातर जमा राखि खजाने भर रसीद लीज्यो। मिती काती वदी ११ सामाती १६१३।

* श्रीलछमीनारायणजी श्रीरामजी

सीही

श्रीजी की भेट करी काकडोली क मदर नासरीज दरजण सीघजी माल वी० २ तेली का माल म सु ई जमी को हासल आयसी जो श्रीजी क अरपण होसी ई म कोई अरगर करसी जीन श्रीजी रहसी। माली वी० दोई भाई परतापजी मोकजी काजोड़ा को। अप दत्त ग परदत्त ग जेपाल जे बसंधरा जबलग दवे चदेक राजे लोप जे नरक जायग जबलग दवेचदकरा।

द० भरुदास का दरजणसीघजो का कामदार। मी० भाद व० १ स० १६१५।

† श्रीरामजी

सही

गव सगर

सधाश्री काकडोली श्रीदुवारकाधीसजी माहाराज का हजुर म तावादार चरणारवन्दा की रज वका जोदपुरी वावराहाला नी सास डडोत परणाम सत मालम होसी अप्रच मानो श्रीठाकुरजी सीवक अरण कराओ अ आदो तो श्रीदवारकाधीसजी महाराज के अर आदले रामदुवारा है सो आदा का भगत भ ग तो श्रीजी क है अर आदा का भगत भोय रामदुवारा है। सलोक आप दत्त परदत्त ... ... वसाख सुद १ समत १६१७ का दसखत वडा जोदपुरीजी का साल दरसाल लक मुजब आपक रामदुवार भगतां जासी दीन लाप न होला पतो सान भो नरक भुगतसी।

मारफत परसराम की।

सं० १६१६ चैत्र शु० १० मंगलवार को झालरापाटन के राजा पृथ्वीसिंहजी दर्शनार्थ काकरोली आये। उन्होंने श्रीप्रभु के दर्शन कर भेंट चढ़ाई और एक मनोरथ कराया।

इसी वर्ष चैत्र कृष्ण ६ के दिन कोटा के महारावजी अपने राजकुमार, रानी तथा परिकर-सहित कांकरोली आये। दर्शन कर इन्होंने श्रीप्रभु की गुलाब-मंडली का सामयिक मनोरथ कराया।

सं० १६१८ कार्त्तिक शु० १४ को महाराणा सरूपसिंहजी का कैलासवास हो गया, अतः उनकी मातमपुरसी करने के लिये महाराजश्री प्रदेश से आये। और मार्ग० वदी ६ को उदयपुर जाकर ६ को कांकरोली आए। पौष वदी ६ को महाराणा शंभुसिंहजी की * गद्दीनशीनी हो जाने के बाद पौ० शु० १३ को महाराज उन्हे कंठी बाँधने उदयपुर पधारे। महाराणा ने भी योग्य सम्मान कर उनसे दीक्षा लेकर अपना गुरु बनाया। महाराजश्री यहाँ से विदा होकर माघ वदी १० को कांकरोली आये।

सं० १६२३ प्र० जेठ वदी ७ सोमवार के दिन बेगम के रावत सवाई महासिंहजी ने ३७ बीघा जमीन महाराजश्री को भेंट की। इस समय उनको बेगम रावजी ने अपने यहाँ पधराया, और यथायोग्य सम्मान प्रदान किया था। इस समय बेगम रावजी तथा उनके परिवार के कुछ लोगों ने दीक्षा ली और गुरुदक्षिणा में यह जमीन भेंट की †।

सं० १६२५ आषाढ़ वदी ८ शुक्रवार के दिन बेगम रावजी महासिंहजी के पुत्र मेघसिंहजी ने बेगम ठिकाने में कुछ जमीन और कुआँ भेंट किया। इस ताम्रपत्र मे

---

* इनका जन्म सं० १६०४ पौष वदी १, और कैलासवास १६३१ आश्विन वदी १२ को हुआ था।

† श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुदरसणजी

राम सही

सीधरी श्रीकांकडोलीजी का टीकेत गुसाई जी श्री महाराज श्रीगिरिधरलालजी महाराज बेगम पदारा प्रथम जेठ बुद ७ क दिन जद रावत सुवाई माहासीगजी कुडो १ गाम सोनगर में बीगा बीस २० पीथा वालो भेट कर्यो, अर कुवर आसकरणजी गाम मडावदा कुडी का वाड में बीगा ७ सात पटेल मोती अप्र कानो काहाडे नुवो कुडो खोदो जी मे सु भेट करी, अर कुवर अमरसिंगजी गाम सुरजपुरा में जमी बीगा ५ देवो करजी कुडा म सु भेट करी अर बहु राठौडजी जमी बीगा ५ पाच गाम खेडी बाग ५ पान्च गाम खेड़ी बाग पाछली महताई का कुडा मधे कह सुखा पोकड दो करजी बट मे सु भेट करी जो आकरे हासल भोग श्रीकाकडोली जी सु भेटिया आसी ज्या के हात पुगमी, आप दत्त परदत्त जे ... . प्रवानगी होकम सु दसकत साहा सुरजमल कानोडा का समत १६२३ प्रथम जेठ सुदी ७ सोम।

सं० १६२३ मे महाराजश्री के वेगम गाम आने और महासिंहजी के जमीन भेंट करने का भी उल्लेख है ॐ।

सं० १६२७ का० कृ० १ के दिन महाराणा शंभुसिंहजी गादी बैठने के बाद प्रथम ही अजमेर जाते समय दर्शनार्थ कांकरोली आये। अजमेर में इन दिनों लार्ड मेयो का आगमन हुआ था और दर्बार में महाराणा का आमन्त्रण किया गया था। कांकरोली आकर महाराणा ने राजकीय दस्तूर के मुताबिक दर्शन तथा भेंट की, एवं महाराजश्री से बिदा होकर दशमी के दिन अजमेर पहुँचे। अजमेर से महाराणा पुष्कर गये, और वहाँ चाँदी की तुला करके पौष कृ० १ के दिन वापिस कांकरोली आये। यहाँ उन्होंने श्रीप्रभु की सेवा मे कई जड़ाऊ आभूषण भेंट किये, और महाराजश्री से बिदा होकर उदयपुर गये।

सं० १६२८ ज्ये० शु० १ के दिन मोही-ठाकुर प्रतापसिंहजी ने अपने पुत्र गोपालसिंहजी के विवाहोत्सव पर महाराजश्री की पधरावनी की, तथाच योग्य सत्कार कर ५ बीघा जमीन और कुछ द्रव्य भेंट किया।

सं० १६३० कार्त्तिक कृ० ६ बुधवार को दरबार शंभुसिंहजी राणीजी तथा माजी-सहित चारभुजा होकर पुन: कांकरोली आये। कांकरोली में प्रभु के सपरिवार दर्शन कर महाराणा ने भेंट चढ़ाई।

सं० १६३२ ज्ये० कृ० १२ को महाराणा सज्जनसिंहजी † गादी बैठने के बाद प्रथम ही दर्शन करने कांकरोली आये, भेंट चढ़ाकर और बिदा होकर महाराणा यहाँ से चारभुजाजी

ॐ श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुद्रसणजी

म्हारी डडवत मालम होसी आ

जमी भेट करी ह जो हासल राज लेसी

सीध श्रीकाकडोलीजी सुभस्थाने सरवओपमा लायक गोसवामीजी माहाराज श्रीगिरधरलालजी माहाराज अेतान वेगम सु रावत सुवाई मेगसीगकी डडोत मालम हयसी अप्रच मारा मनोरथ सु कुडो १ गाम सोनगर मधे कडपीथका नामा को जमी सुदा भेट करो ·· ··२० आप वेगम पदारा जद मारा श्रीहजुरवा माहासीगजी भेट करी वीगा वीस पीवल च० २ हु सेदल परण काकडोली आया जद मैभेट करी वीगा सुवा आट दो वसवा जाम पीवल २ १ अेक साली ५ . १ १ ही कुडा को खड लाखड लागजो। जमी वीगा २६ २ में भेट करी, ओ कुडो जमी नीम सीम रुख व्रख बडल खडल सुदी भेट करी जो ई को हासल भोग आवसी को आपक श्री भंडार पुगसी, आपदत्त परदत्त ··· · ·· प्रवानगी मारी वा माभा सात्र मेरतणीजी आचारज वालमुकुनजी दसकत सुरजमल कानोडा का समत १६२५ का आसाड बुद ८ सुके।

† इनका जन्म स० १६१६ आषाढ शु० ६, गद्दीनशीनी सं० १६३१ आश्विन बदी १३ और कैलासवास सं० १६४१ पौष शु० ६ को हुआ था।

गये और ज्येष्ठ शु० २ को यह वापिस कांकरोली आये। इस समय महाराजश्री ने महाराणा का अच्छा स्वागत किया। गुरुवर के प्रति आदर-भाव से महाराणा ने अपनी वग्घी नगारखाने के दरवाज़े के बाहर ही खड़ी रक्खी और भीतर चौक मे पैदल ही पधारे। महाराजश्री ने भी एक दिन महाराणा की विनौली बडे ठाठ-बाठ से निकाली और खोल भरी। महाराणा भी ने मन्दिर और महाराजश्री को अच्छी भेंट चढाते हुए एक हथिनी और घोड़ा दिया और विदा ली।

विनोली काढ़ने और खोल भरने से अनुमान होता है कि महाराणा का शीघ्र ही विवाह होनेवाला था। इस वर्ष की रोकड़ से पता चलता है कि महाराणा का यह विवाह कृष्णगढ में हुआ था। जब वह वहाँ से विवाह कर रानीजी-सहित लौटे, नाथद्वारा से उन्होंने श्रीद्वारकाधीश के लिये भेंट भेजी।

सं० १६३३ चैत्र कृ० १४ को झाबुआ-नरेश राजा गोपालसिंहजी अपने जनाना के साथ कांकरोली दर्शन करने आये, यहाँ आकर उन्होंने प्रभु की सामग्री के लिये द्रव्य भेंट किया।

सं० १६३४ आषाढ़ बदी ८ और पौषी अमावास्या को महाराणा सपत्नीक पुनः दर्शनार्थ कांकरोली आये, और नौचौकी पर मुकाम हुआ।

एक ताम्रपत्र * सवाई महासिंहजी का प्राप्त होता है, जिससे मालूम होता है कि उन्होंने जब जनोई की दीक्षा ली, तब श्रीठाकुरजी के लिये दो बीघा जमीन भेंट की थी।

सं० १६३६ मे बेगम के रावजी मेघसिंहजी ने २३ बीघा के आसरे भेंट की हुई जमीन का ताम्रपत्र भेंट किया †। यद्यपि इस समय के पूर्व महाराजश्री का देहान्त हो गया था, पर ऐसा ज्ञात होता है कि जमीन महाराजश्री को भेंट हो गई थी और बाद मे ताम्रपत्र भेजा गया।

---

* श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुद्रसणजी

राम

सही

सीध श्रीमाहाराजाधिराज माहाराज श्रीरावतजी श्रीसुवाई महासीगजी वचनात श्रीहजुर ने जनेव लीदी जद लार देरा सरी सवलाल ने जनेव लुवाई जद जमी बीगा दो अेरो नदी क ढाव पुन अरप दीदी जो आज मीदरासरी की वहु श्रीकाकरोली जी श्रीदुवारकानाथ जी क भेट करी है जो ई जमी को हासिल भोग श्रीकाकरोलीजी के भंडार पुगसी। आपदत्तं पर दत्त ... .. प्रवानगी श्रीहजुर हुकुमसु दसगत सहा सुरजमल कानोडा का . . ..

† श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुद्रसणजी

सेवग की सासटाग डडोत मालम होसी

सीधश्रीश्री गोसवामीजी श्री श्री श्री श्री श्री १०८ श्रीश्रीगिरिधरलालजी महाराजश्री काकडोलीजी वाला का

सं० १६२३ मे महाराजश्री के वेगम गाम आने और महासिंहजी के जमीन भेंट करने का भी उल्लेख है ॐ।

सं० १६२७ का० कृ० १ के दिन महाराणा शंभुसिंहजी गादी बैठने के बाद प्रथम ही अजमेर जाते समय दर्शनार्थ कांकरोली आये। अजमेर में इन दिनों लार्ड मेयो का आगमन हुआ था और दर्बार में महाराणा का आमन्त्रण किया गया था। कांकरोली आकर महाराणा ने राजकीय दस्तूर के मुताबिक़ दर्शन तथा भेंट की, एवं महाराजश्री से विदा होकर दशमी के दिन अजमेर पहुँचे। अजमेर से महाराणा पुष्कर गये, और वहाँ चाँदी की तुला करके पौष कृ० १ के दिन वापिस कांकरोली आये। यहाँ उन्होंने श्रीप्रभु की सेवा मे कई जड़ाऊ आभूषण भेंट किये, और महाराजश्री से बिदा होकर उदयपुर गये।

सं० १६२८ ज्ये० शु० १ के दिन मोही-ठाकुर प्रतापसिंहजी ने अपने पुत्र गोपालसिंहजी के विवाहोत्सव पर महाराजश्री की पधरावनी की, तथाच योग्य सत्कार कर ५ बीघा जमीन और कुछ द्रव्य भेंट किया।

सं० १६३० कार्त्तिक कृ० ६ बुधवार को दरबार शंभुसिंहजी राणीजी तथा माजी-सहित चारभुजा होकर पुनः कांकरोली आये। काकरोली में प्रभु के सपरिवार दर्शन कर महाराणा ने भेंट चढ़ाई।

सं० १६३२ ज्ये० कृ० १२ को महाराणा सज्जनसिंहजी † गादी बैठने के बाद प्रथम ही दर्शन करने कांकरोली आये, भेंट चढ़ाकर और विदा होकर महाराणा यहाँ से चारभुजाजी

ॐ श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुद्रसणजी

म्हारी डडवत मालम होसी आ

जमी भेट करी ह जो हासल राज लेसी

सीध श्रीकाकडोलीजी सुभस्थाने सरवओपमा लायक गोसवामीजी माहाराज श्रीगिरधरलालजी माहाराज ऐतान वेगम सु रावत सुवाई मेगसीगकी डडोत मालम हयसी अप्रच मारा मनोरथ सु कुडो १ गाम सोनगर मधे कडपीथका नामा को जमी सुदा भेट करो ....२० आप वेगम पदारा जद मारा श्रीहजुरवा माहासीगजी भेट करी वीगा वीस पीवल च० २ हु सेदल परण काकडोली आया जद मैभेट करी वीगा सुवा आठ दो वसवा जाम पीवल २ १ ओक साली ५ ..१ १ ही कुडा को खड लाखड लागजो। जमी वीगा २६ २ में भेट करी, ओ कुडो जमी नीम सीम रुख ब्रख वडल खडल सुदी भेट करी जो ई को हासल भोग आवसी को आपक श्री भंडार पुगसी, आपदत्त परदत्त .... प्रवानगी मारी वा माभा सात्र मेरतणीजी आचारज वालमुकुनजी दसकत सुरजमल कानोडा का समत १६२५ का आसाड वुद ८ सुके।

† इनका जन्म स० १६१६ आषाढ़ शु० ६, गद्दीनशीनी स० १६३१ आश्विन वदी १३ और कैलासवास स० १६४१ पौष शु० ६ को हुआ था।

गये और ज्येष्ठ शु० ८ को वह वापिस कांकरोली आये। इस समय महाराजश्री ने महाराणा का अच्छा स्वागत किया। गुरुवर के प्रति आदर-भाव से महाराणा ने अपनी सवारी नगारखाने के दरवाजे के बाहर ही खड़ी रक्खी और भीतर चौक में पैदल ही पधारे। महाराजश्री ने भी एक दिन महाराणा की बिनोली बड़े ठाठ-बाट से निकाली और गोठ भी की। महाराणाजी ने मन्दिर और महाराजश्री को अच्छी भेंट चढ़ाते हुए एक हथिनी और घोड़ा दिया और बिदा ली।

बिनोली आदि और गोठ करने से अनुमान होता है कि महाराणा का शीघ्र ही विवाह होनेवाला था। इस वर्ष की रोकड़ से पता चलता है कि महाराणा का यह विवाह ईडरगढ़ में हुआ था। जब वह वहाँ से विवाह कर राणीजी-सहित लौटे तब नाथद्वारा से उन्होंने श्रीद्वारकाधीश के लिये भेंट भेजी।

सं० १९३३ चैत्र कृ० १२ को साबुआ-नरेश राजा गोपालसिंहजी अपने जनाना के साथ कांकरोली दर्शन करने आये, यहाँ आकर उन्होंने प्रभु की सामग्री के लिये द्रव्य भेंट किया।

सं० १९३४ आषाढ़ वदी ८ और पौष अमावास्या को महाराणा सपत्नीक पुनः दर्शनार्थ कांकरोली आये, और नौचौकी पर मुकाम हुआ।

एक खास रुक्का के सवाई माधोसिंहजी का प्राप्त होता है, जिससे मालूम होता है कि उन्होंने जब जनोई की दीक्षा ली, तब श्रीठाकुरजी के लिये दो थान दुशाल भेंट की थी।

सं० १९३६ में नेपाल के राणाजी सेरसिंहजी ने २१ थान के आसपास भेंट की हुई दुशाल का खास रुक्का भेंट किया है। यद्यपि इस समय के पूर्व महाराजश्री का देहान्त हो गया था, पर ऐसा ज्ञात होता है कि दुशाल महाराजश्री को भेंट हो गई थी और बाद में खास रुक्का भेजा गया।

[illegible]

सं० १६२३ में महाराजश्री के वेगम गाम आने और महासिंहजी के ज़मीन भेंट करने का भी उल्लेख है *।

सं० १६२७ का० कृ० १ के दिन महाराणा शंभुसिंहजी गादी बैठने के बाद प्रथम ही अजमेर जाते समय दर्शनार्थ कांकरोली आये। अजमेर में इन दिनों लार्ड मेयो का आगमन हुआ था और दर्बार में महाराणा का आमन्त्रण किया गया था। कांकरोली आकर महाराणा ने राजकीय दस्तूर के मुताबिक़ दर्शन तथा भेंट की, एवं महाराजश्री से बिदा होकर दशमी के दिन अजमेर पहुँचे। अजमेर से महाराणा पुष्कर गये, और वहाँ चाँदी की तुला करके पौष कृ० १ के दिन वापिस कांकरोली आये। यहाँ उन्होंने श्रीप्रभु की सेवा मे कई जड़ाऊ आभूषण भेंट किये, और महाराजश्री से बिदा होकर उदयपुर गये।

सं० १६२८ ज्ये० शु० १ के दिन मोही-ठाकुर प्रतापसिंहजी ने अपने पुत्र गोपालसिंहजी के विवाहोत्सव पर महाराजश्री की पधरावनी की, तथाच योग्य सत्कार कर ५ बीघा ज़मीन और कुछ द्रव्य भेट किया।

सं० १६३० कार्त्तिक कृ० ६ बुधवार को दरबार शंभुसिंहजी राणीजी तथा माजी-सहित चारभुजा होकर पुन: कांकरोली आये। कांकरोली में प्रभु के सपरिवार दर्शन कर महाराणा ने भेंट चढ़ाई।

सं० १६३२ ज्ये० कृ० १२ को महाराणा सज्जनसिंहजी † गादी बैठने के बाद प्रथम ही दर्शन करने कांकरोली आये, भेंट चढ़ाकर और बिदा होकर महाराणा यहाँ से चारभुजाजी

---

* श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुद्रसणजी

म्हारी डडवत मालम होसी आ
जमी भेट करी ह जो हासल राज लेसी

सीध श्रीकाकडोलीजी सुभस्थाने सरवओपमा लायक गोसवामीजी माहाराज श्रीगिरधरलालजी माहाराज ओतान वेगम सु रावत सुवाई मेगसीगकी डडोत मालम हयसी अप्रच मारा मनोरथ सु कुडो १ गाम सोनगर मधे कडपीथका नामा को जमी सुदा भेट करो ... २० आप वेगम पदारा जद मारा श्रीहजुरवा माहासीगजी भेट करी वीगा वीस पीवल च० २ हु सेदल परए काकडोली आया जद मैभेट करी वीगा सुवा आट दो वसवा जाम पीवल २ १ ओक साली ५ . १ १ ही कुडा को खड लाखड लागजो। जमी वीगा २६ २ में भेट करी, ओ कुडो जमी नीम सीम रुख व्रख वडल खडल सुदी भेट करी जो ई को हासल भोग आवसी को आपक श्री भंडार पुगसी, आपदत्त परदत्त ... . प्रवानगी मारी वा माभा सात्र मेरतणीजी आचारज वालमुकुनजी दसकत सुरजमल कानोडा का समत १६२५ का आसाड वुद ८ सुके।

† इनका जन्म स० १६१६ आषाढ शु० ६, गद्दीनशीनी सं० १६३१ आश्विन वदी १३ और कैलासवास स० १६४१ पौष शु० ६ को हुआ था।

कृ० १ को उन्होंने प्राचीन प्रथा के अनुसार महाराणा को वैष्णव-धर्म की दीक्षा देकर कण्ठी बाँधी। महाराणा ने भी महाराजश्री को गुरु-भेंट चढ़ाई, तथाच विदाई से सत्कार किया।

उदयपुर से लौटने के बाद महाराजश्री अपने बड़े भ्राता श्रीमट्टूजी महाराज की अस्वस्थता का समाचार पाकर माघ शु० १५ को गिरिराज गये।

सं० १६२० में सूरतवाले गोस्वामी श्रीयदुनाथजी के झगड़े में महाराणा के परामर्शानुसार महाराजश्री समझौता करने के लिये पोष शु० ३ शनि को उदयपुर गये, और वहाँ से फाल्गुन वदी ५ बुध को वापिस आये। इस प्रसंग में फा० कृ० ११ को पुन उदयपुर जाना एवं चैत्र वदी ६ को पुनः आना पड़ा। महाराजश्री ने महाराणा की सलाह से सूरतवालों के झगडे को मिटाने के लिये करीब पाँच हजार रुपया व्यय किया, पर यदुनाथजी उदयपुर न गये। इस पर नाराज होकर महाराणा ने सूरतवालों का मेवाड़-प्रवेश बंद कर दिया*।

सं० १६२३ वैशाख शु० ६ को महाराजश्री प्रदेश-यात्रा करने रवाना हुए और ज्ये० कृ० ७ को बेगूँ रावजी के आमन्त्रण पर स्वकीय परिकर के साथ बेगूँ पधारे, यहाँ रावजी तथा उनके परिवार के बहुत-से लोगों ने महाराजश्री से नाम-दीक्षा लेकर शिष्यता प्राप्त की और गुरुदक्षिणा मे जमीन भेंट की, जिसका प्रथम निर्देश किया जा चुका है। बेगूँ से प्रस्थान कर महाराजश्री ने गुजरात का भ्रमण किया, और सेवा एकत्र कर कार्तिक कृ० ११ को कांकरोली पधारे। सं० १६२६ मार्ग कृ० ३ को महाराजश्री ने पुन गुजरात की यात्रा की।

सं० १६२८ मे महाराणा शम्भुसिंहजी को अंग्रेज सरकार की ओर से जी० सी० एस० आई० का खिताब मिला। उसके लिये मार्गशीर्ष वदी ६ के दिन बड़ा भारी दरबार हुआ और उत्सव मनाया गया। इस समय महाराणा ने अपने मित्र-भाव से गिरिधरलालजी महाराज को उदयपुर आमन्त्रित किया और उत्सव मे उन्हे भी सम्मिलित कर सम्मानित किया।

सं० १६२६ मे, काशी में, श्रीगिरिधरजी महाराज की बेटी श्यामाबेटीजी ने श्रीगोपाललालजी का छप्पनभोग का मनोरथ किया, और उस समय महाराजश्री को वहाँ बुलाया। इन्होंने बड़ौदा से वहाँ जाकर श्रीप्रभु की सेवा की, और सविधि काशी-यात्रा। कार्तिक वदी ६ को काशी से लौटकर कांकरोली आये।

सं० १६३६ के अन्त में श्रीराजाधिराज मन्दिर के सञ्चालक सेठ गोविन्ददासजी आदि ने महाराजश्री को मथुरा पधराया, और यहाँ लिखा-पढ़ी कर उस मन्दिर का इनको गद्दीनशीन आचार्य बनाया। यहाँ महाराजश्री के परामर्शानुसार सं० १६३७ ज्येष्ठ शु० ११ के दिन से

* आगे चलकर बालकृष्णलालजी महाराज के द्वि० विवाह के समय महाराणा फतहसिंहजी ने इसका खुलासा किया।

प्रदेश-यात्रा

महाराजश्री ने अपने जीवन मे भारत के कई प्रान्तों की यात्रा की, और वहाँ अपने सम्प्रदाय के साथ धार्मिक जागृति उत्पन्न की। इनकी यात्रा का बहुत-सा विवरण इनके रचित १२० वचनामृत-नामक ग्रन्थ से प्राप्त होता है।

सं० १६१४ में महाराजश्री माजी महाराज के साथ प्रदेश करने बड़ौदा, गुजरात में गये और यहाँ के आस-पास के गाँवों में इन्होने परिभ्रमण कर अपनी वैष्णव सृष्टि को सँभाला। यह यात्रा विशेषकर श्रीद्वारकाधीश की सेवा-सौकर्य और कांकरोली की आर्थिक व्यवस्था सुधारने के लिये हुई थी। इन्होंने यात्रा में वैष्णव-समाज से भेंट लेकर श्रीप्रभु की सेवा के लिये नित्य काम में आनेवाले चाँदी-सोने के पात्र बनवाकर भेंट किये। मन्दिर में इसके प्रथम ऐसा वैभव नहीं था। और कहते हैं, साधारण पात्र ही श्री की सेवा मे काम आया करते थे।

इस प्रदेश-यात्रा से सं० १६१५ का० कृ० ३० को महाराजश्री वापिस कांकरोली आये।

सं० १६१६ के मध्य में महाराजश्री ने बड़े हर्ष और ठाट-बाट से सपरिकर व्रज चौरासी कोस की परिक्रमा की, जिसमें हजारों वैष्णव यात्री आपके साथ मे थे।

सं० १६१७ के प्रारम्भ में यह जगदीशपुरी की यात्रा करने गये। महाराजश्री ने श्रीजगन्नाथराय-जी की सेवा और मनोरथ किया। यहाँ से वापिस लौटकर अन्नकूट का उत्सव किया, तथाच मार्ग कृ० १२ को माजी महाराज के साथ मन्दसोर का प्रदेश करने गये।

स० १६१८ कार्त्तिक शु० १४ को महाराणा सरूपसिंहजी का देवलोक हो गया। अत महाराजश्री मार्ग कृ० ६ को मातमपुरसी करने उदयपुर गये, और ६ को वापिस आये। इनके बाद का० शु० १५ को शंभुसिंहजी राजगादी पर विराजमान हुए। पौष बदी ६ को उदयपुर मे राज्य-दरबार हुआ। इसके बाद महाराजश्री पौष शु० १३ को उदयपुर पधारे और यहाँ माघ

चरणारवन्दा वेगं सु सेवग रावत सुवाई मेघसिंग का सासटाग डंडोत मालम होसी। अप्रञ्च आपरा चरणार वन्दा जमी ई प्रमाणे भेट करी। जी की बीगत... ...

७ समत १६३१ का मगसर में काकाजी आसकरणजी रामसरण हुआ जद जमी बीगा आठ मडावदा म धाकड दीया पडोप की डोरी म सु पावल जा पकी डोरी सु बीगा

७ वडो कुडो कुडी का खडम ह जी मसु जमी बीगा ७ सात धाकड हीरो गुलगावोपा कसनो खानो वानदी पोपडो कर जा श्रीग काकाजी भेट करी जो।

६ । १ कसव कुडो मालो हरज वर कुसाल नादर का नामा को बीगा ६ । १ नो बीगा छ कसवा काकीजी खीचणजी वरम समबन्द लीदो जद भेट करी। वार मुडोद वाई महाकुडो हो जो।

२३ । १ तईस बीगा छई वसवा पकी डोरी सुद्दी प्रमाण श्रीवोडरी जमी चरणारवन्दा म भेट करी नी को हासल भोग आप लीजो आपर पुगाश्रा जावागा। आपदत्त पर दत्त .... प्रवानगी प्रगे दवो काकाजी अमरसिंगजी को दसगत साह्य कसनलाल कानोडा का समत १६३६ . . .बुद १३।

कृ० १ को उन्होंने प्राचीन प्रथा के अनुसार महाराणा को वैष्णव-धर्म की दीक्षा देकर कण्ठी बाँधी। महाराणा ने भी महाराजश्री को गुरु-भेंट चढ़ाई, तथाच विदाई से सत्कार किया।

उदयपुर से लौटने के बाद महाराजश्री अपने बडे भ्राता श्रीमद्टूजी महाराज की अस्वस्थता का समाचार पाकर माघ शु० १५ को गिरिराज गये।

सं० १६२० मे सूरतवाले गोस्वामी श्रीयदुनाथजी के झगड़े मे महाराणा के परामर्शानुसार महाराजश्री समझौता करने के लिये पोष शु० ३ शनि को उदयपुर गये, और वहाँ से फाल्गुन वदी ५ बुध को वापिस आये। इस प्रसंग मे फा० कृ० ११ को पुनः उदयपुर जाना एवं चैत्र वदी ६ को पुन. आना पड़ा। महाराजश्री ने महाराणा की सलाह से सूरतवालों के झगडे को मिटाने के लिये करीब पाँच हजार रुपया व्यय किया, पर यदुनाथजी उदयपुर न गये। इस पर नाराज होकर महाराणा ने सूरतवालों का मेवाड़-प्रवेश बंद कर दिया*।

सं० १६२३ वैशाख शु० ६ को महाराजश्री प्रदेश-यात्रा करने रवाना हुए और ज्ये० कृ० ७ को वेगूँ रावजी के आमन्त्रण पर स्वकीय परिकर के साथ वेगूँ पधारे, यहाँ रावजी तथा उनके परिवार के बहुत-से लोगों ने महाराजश्री से नाम-दीक्षा लेकर शिष्यता प्राप्त की और गुरुदक्षिणा मे जमीन भेट की, जिसका प्रथम निर्देश किया जा चुका है। वेगूँ से प्रस्थान कर महाराजश्री ने गुजरात का भ्रमण किया, और सेवा एकत्र कर कार्तिक कृ० ११ को कांकरोली पधारे। सं० १६२६ मार्ग कृ० ३ को महाराजश्री ने पुन गुजरात की यात्रा की।

सं० १६२८ मे महाराणा शम्भुसिंहजी को अंग्रेज सरकार की ओर से जी० सी० एस० आई० का खिताब मिला। उसके लिये मार्गशीर्ष वदी ६ के दिन वड़ा भारी दरबार हुआ और उत्सव मनाया गया। इस समय महाराणा ने अपने मित्र-भाव से गिरिधरलालजी महाराज को उदयपुर आमन्त्रित किया और उत्सव मे उन्हे भी सम्मिलित कर सम्मानित किया।

सं० १६२६ मे, काशी मे, श्रीगिरिधरजी महाराज की बेटी श्यामाबेटीजी ने श्रीगोपाललालजी का छप्पनभोग का मनोरथ किया, और उस समय महाराजश्री को वहाँ बुलाया। इन्होंने बड़ौदा से वहाँ जाकर श्रीप्रभु की सेवा की, और सविधि काशी-यात्रा। कार्तिक वदी ६ को काशी से लौटकर कांकरोली आये।

सं० १६३६ के अन्त मे श्रीराजाधिराज मन्दिर के सञ्चालक सेठ गोविन्ददासजी आदि ने महाराजश्री को मथुरा पधराया, और यहाँ लिखा-पढ़ी कर उस मन्दिर का इनको गद्दीनशीन आचार्य बनाया। यहाँ महाराजश्री के परामर्शानुसार सं० १६३० ज्येष्ठ शु० ११ के दिन से

* आगे चलकर बालकृष्णलालजी महाराज के द्वि० विवाह के समय महाराणा फतहसिंहजी ने इसका खुलासा किया।

श्रीराजाधिराज की सेवा-पूजा प्रचलित की गई। इस मन्दिर का पूर्व वृत्त और लिखा-पढ़ी का विवरण आगे दिया जा रहा है। सं० १६३० में माघ शु० ६ सोम के दिन छप्पनभोग कर महाराजश्री द्वारका-यात्रा करने पधारे, और श्रीद्वारकानाथजी की सेवा कर उन्होंने सविधि तीर्थ-यात्रा की।

सं० १६३१ आश्विन वदी १२ को महाराणा शम्भुसिंहजी का देहान्त हो जाने का समाचार सुनकर महाराजश्री बम्बई से कांकरोली आये और उदयपुर जाकर उन्होने मातमपुरसी का दस्तूर किया। इसके बाद जब मार्गशीर्ष वदी २ को महाराणा सज्जनसिंहजी की गद्दीनशीनी का उत्सव हुआ, तब महाराजश्री राजतिलक करने उदयपुर पधारे, और वहाँ २० दिन रहकर मार्गशीर्ष शु० ७ को काकरोली आये।

सं० १६३३ ज्येष्ठ कृष्ण ८ के दिन आपने तीसरी बार पुष्कर-क्षेत्र की यात्रा की, और वहाँ के पुरोहित को वृत्तिपत्र लिखकर प्रदान किया, जिसमें स० १६१३ ज्येष्ठ वदी ५ शनि और सं० १६२६ माघ वदी १४ की अपनी गत दो यात्राओं का भी उल्लेख किया है।

सं० १६३४ के प्रारम्भ मे इन्होंने अन्तिम बार गुजरात की यात्रा और प्रदेश-परिभ्रमण किया। इसी प्रदेश मे वसो-नामक ग्राम में इनका गोलोकवास हुआ था।

महाराजश्री के समय मे यद्यपि मेवाड़ मे राजनैतिक विषम वातावरण पैदा नहीं हुआ, फिर बागियो का आगमन— भी भारत के गदर का असर इस ओर अवश्य पड़ा।

सं० १६१४-१५ मे जब कि महाराजश्री पूर्ण वयस्क नहीं हुए थे, हिन्दुस्थान मे फ़ौजी विद्रोह उठ खड़ा हुआ। इसकी एक लपट मेवाड मे भी आई, और उससे कांकरोली भी अछूती न बची। सं० १६१३ के माघ मास में यह विद्रोह फैलने लगा। इन दिनों मेवाड़ के पोलीटिकल एजन्ट कप्तान शावर्स आबू पर रहते थे। सं० १६१४ ज्येष्ठ मास में वे उदयपुर आकर महाराणा की सुरक्षा मे रहने लगे। इसके एक-दो दिन बाद नीमच-छावनी मे सेना बागी हो गई और उसने चारों ओर उपद्रव मचाना शुरू कर दिया।

सं० १६१५ के श्रावण मास मे विद्रोही सेना और उनका पीछा करती हुई गोरों की फ़ौज कांकरोली आई। विद्रोही सेना ने ठिकाने मे कुछ भी उपद्रव नहीं किया सो तो ठीक, पर उसने किस अज्ञात शक्ति से प्रभावित होकर द्वारकाधीश के दर्शन किये, और कुछ रुपये भेंट चढ़ाये। कांकरोली के महाजन, सेठ-साहूकारों ने दबाव डाले जाने पर श्रीमन्दिर के भण्डार से खाने-पीने का सामान उधार लेकर उस फ़ौज को दिया, और उसकी क़ीमत भण्डार मे जमा कराई *।

* रोकड़ से।

बागी सेना के आगे बढ़ जाने पर उनका पीछा करती हुई सरकारी गोरों की फौज आई, उसके लिये भी महाजनों द्वारा इसी प्रकार रसद का प्रबन्ध किया गया।

कप्तान शावर्स साहब मेवाड में वागियों के आने की खबर पाकर उनका पीछा करने के लिये भीलवाड़ा होकर हमीरगढ़ गये, और वाद में चित्तौड होकर गङ्गापुर। गुल्लूजी को पीछा करने के लिये कुवाँरिया की ओर भेजा गया। वे कुवाँरिया होकर कांकरोली आये। सरकारी फौज की, वागियों से कोठारिया के नवाण्या गाम के मैदान में, मुठभेड़ हो गई, पर अन्त में दुश्मन भाग निकले, जिनका पीछा किया गया। इसके कुछ समय वाद शावर्स साहब और उनके साथी अर्जुनसिंह सहीवाला कांकरोली आये। इस समय साहब के लिये दो घोड़ों की आवश्यकता हुई, जिसमें एक महाराजश्री की आज्ञानुसार मन्दिर से दिया गया *।

इस समय के लगभग नौचौकी मुकाम पर ग्यारह दिन तक गोरी फौज का पड़ाव रहा। यद्यपि देवस्थान से रसद आदि किसी रूप में देने का रिवाज नहीं था, फिर भी राजनगर के कामदार प्रतापमल भण्डर तथा महता फूलचन्दजी उदयपुरवालों के आपसी व्यवहार के कारण दिया गया, जिसकी कीमत के लगभग ६००) रुपया उन्होंने भंडार में जमा कराये †।

इस प्रकार महाराजश्री तथा देवस्थान के प्रभाव से कांकरोली इस राजनैतिक उथल-पुथल से बच गई और विद्रोहियों ने यहाँ किसी प्रकार का उपद्रव नहीं किया। इसके साथ ही विकट राजनैतिक परिस्थिति के समय भी देवस्थान पर किसी प्रकार का वोझा न डालने की नीति वर्ती गई, जो महाराणा अरिसिंहजी (द्वि०) के समय पुष्ट हुई थी।

सूरतवालों का झगड़ा

महाराजश्री अपनी जातीय मान-मर्यादा के कट्टर रक्षक और जाति-विद्वेष को दूर करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहा करते थे। पहिले लिखा जा चुका है कि—श्रीद्वारकाधीश के पास से श्रीबालकृष्णजी ठाकुरजी को ले जाने के कारण सूरतवाले गोस्वामियों का मेवाड़-प्रवेश निषिद्ध था। यहाँ तक कि वे श्रीनाथजी की सेवा के लिये भी मेवाड़ में नहीं आ सकते थे। महाराजश्री के समय मे सूरत के गोस्वामि श्रीयदुनाथजी महाराज ने मेवाड मे आकर श्रीनाथजी की सेवा करनी चाही, और उसके लिये नाथद्वारा के तिलकायित से आज्ञा प्राप्त कर ली। वहाँ के तिलकायित ने इस शर्त पर कि—आगे के लिये कांकरोलीवालों से मिलकर झगडे का फैसला कर लिया जाय, उन्हें इजाजत दे दी और कांकरोलीवालों को ऐसा करने के लिये राजी कर लिया। नाथद्वारा और

* अर्जुनसिंह सहीवाला का जीवनचरित्र (पत्र ७३)।

† प्राचीन रोकड़ से। इस लड़ाई के समय मिला हुआ एक तेगा कांकरोली के संग्रहालय में विद्यमान है।

श्रीराजाधिराज की सेवा-पूजा प्रचलित की गई। इस मन्दिर का पूर्व वृत्त और लिखा-पढ़ी का विवरण आगे दिया जा रहा है। सं० १६३० में माघ शु० ६ सोम के दिन छप्पनभोग कर महाराजश्री द्वारका-यात्रा करने पधारे, और श्रीद्वारकानाथजी की सेवा कर उन्होंने सविधि तीर्थ-यात्रा की।

सं० १६३१ आश्विन वदी १२ को महाराणा शम्भुसिंहजी का देहान्त हो जाने का समाचार सुनकर महाराजश्री बम्बई से कांकरोली आये और उदयपुर जाकर उन्होने मातमपुरसी का दस्तूर किया। इसके बाद जब मार्गशीर्ष बदी २ को महाराणा सज्जनसिंहजी की गद्दीनशीनी का उत्सव हुआ, तब महाराजश्री राजतिलक करने उदयपुर पधारे, और वहाँ २० दिन रहकर मार्गशीर्ष शु० ७ को काकरोली आये।

सं० १६३३ ज्येष्ठ कृष्ण ८ के दिन आपने तीसरी बार पुष्कर-क्षेत्र की यात्रा की, और वहाँ के पुरोहित को वृत्तिपत्र लिखकर प्रदान किया, जिसमे स० १६१३ ज्येष्ठ वदी ५ शनि और सं० १६२६ माघ वदी १४ की अपनी गत दो यात्राओं का भी उल्लेख किया है।

सं० १६३४ के प्रारम्भ मे इन्होंने अन्तिम बार गुजरात की यात्रा और प्रदेश-परिभ्रमण किया। इसी प्रदेश मे वसो-नामक ग्राम मे इनका गोलोकवास हुआ था।

महाराजश्री के समय मे यद्यपि मेवाड़ मे राजनैतिक विषम वातावरण पैदा नहीं हुआ, फिर बागियो का आगमन— भी भारत के गदर का असर इस ओर अवश्य पड़ा।

सं० १६१४-१५ मे जब कि महाराजश्री पूर्ण वयस्क नहीं हुए थे, हिन्दुस्थान मे फौजी विद्रोह उठ खडा हुआ। इसकी एक लपट मेवाड़ मे भी आई, और उससे कांकरोली भी अछूती न वची। सं० १६१३ के माघ मास में यह विद्रोह फैलने लगा। इन दिनों मेवाड़ के पोलीटिकल एजन्ट कप्तान शावर्स आबू पर रहते थे। सं० १६१४ ज्येष्ठ मास में वे उदयपुर आकर महाराणा की सुरक्षा मे रहने लगे। इसके एक-दो दिन वाद नीमच-छावनी में सेना वागी हो गई और उसने चारों ओर उपद्रव मचाना शुरू कर दिया।

सं० १६१५ के श्रावण मास मे विद्रोही सेना और उनका पीछा करती हुई गोरों की फौज कांकरोली आई। विद्रोही सेना ने ठिकाने में कुछ भी उपद्रव नहीं किया सो तो ठीक, पर उसने किस अज्ञात शक्ति से प्रभावित होकर द्वारकाधीश के दर्शन किये, और कुछ रुपये भेंट चढ़ाये। कांकरोली के महाजन, सेठ-साहूकारों ने दबाव डाले जाने पर श्रीमन्दिर के भण्डार से खाने-पीने का सामान उधार लेकर उस फौज को दिया, और उसकी क़ीमत भण्डार मे जमा कराई ❀।

❀ रोकड़ से।

कांकरोली के बीच ही साम्प्रदायिक सेवा पर पड़ा, और लौकिक व्यवहार की प्रधानता ने अलौकिक व्यवहार को दबा दिया।

सं० १६१८ के लगभग कोटा मे गिरिधरलालजी महाराज का द्विरागमन हुआ। कोटा और नाथद्वारा की जातीयता में एक दूसरे के प्रति ऊँच-नीच के भाव बहुत समय से चले आ रहे हैं—और यही कारण विदित होता है कि—गिरिधरलालजी के कोटा में विवाह-सम्बन्ध ने नाथद्वारा के तिलकायित को अपनी मर्यादा रखने को बाध्य किया। फलतः सेवा मे सम्पर्क मिल जाने का बहाना लेकर कांकरोलीवालों से प्रायश्चित्त लेने की आपत्ति खड़ी की गई। इसका असर यहाँ तक पड़ा कि—सं० १६१८ से सं० १६३२ तक नाथद्वारा मे सम्मिलित अन्नकूट होने का अवसर नहीं आया। इसमे सूरतवाले यदुनाथजी महाराज का झगड़ा भी एक अन्तर्निहित कारण था।

यद्यपि बीच मे, सं० १६२३ मे, दोनों स्थानों के जातीय व्यक्तियों मे पारस्परिक मेल हो गया, और श्रीपद्मावती माजी महाराज आषाढ़ कृ० ६ शुक्रवार को सेवा का खुलासा हो जाने से श्रीनाथजी के चरण-स्पर्श सेवा करने नाथद्वारा गये, परंतु इसके प्रथम दोनों ठिकानों के तिलकायितों में एक व्यक्ति-विशेष के कारण मनोमालिन्य हो चुका था। जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है.—

नाथद्वारावाले श्रीगिरिधारीजी महाराज के पास एक वृद्ध, अनुभवी भगवती-नामक गूजर वैष्णव रहकर श्रीनाथजी की सेवा कुछ किया करता था। वह निस्पृही और भगवत्सेवा का अभिलाषी होने के साथ कार्य करने में चतुर और प्रखर-बुद्धि था। एक दिन किसी साधारण कार्य पर गिरिधारीजी महाराज उस पर नाराज़ हो उठे और उसे उन्होंने क़ैद कराना चाहा। वह भागकर कांकरोली पहुँचा, और महाराजश्री गिरिधरलालजी से अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना कर शरणागत हो गया।

महाराजश्री उसके व्यवहार और नेकचाल से परिचित थे, अतः उन्होंने उसे अभय-वचन देकर अपने पास रख लिया और कुछ समय बाद मन्दिर का अधिकारी बना दिया। नाथद्वारावाले इस बात को कब सह सकते थे? वे मन-ही-मन कुडकुडा रहे थे। पर कुछ कर न सकते थे। अब वे कोई अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

सं० १६२३ मे कार्तिक वदी अमावस्या बुधवार को अन्नकूट का उत्सव आया और प्राचीन प्रथा के अनुसार श्रीद्वारकाधीश की सवारी श्रीनाथजी के पास अन्नकूट के लिये नाथद्वारा पधारी। सवारी मे श्रीठाकुरजी के आस-पास महाराजश्री और अधिकारी घोड़े पर सवार होकर साथ मे जा रहे थे। गिरिधारीजी महाराज ने जब यह सुना कि—ठाकुरजी के साथ वही

कांकरोली के महाराजों मे इस प्रकार की एक लिखा-पढ़ी हो गई थी, जिसके कारण सूरतवाले महाराज को श्रीनाथजी की सेवा कांकरोलीवालों से विना पूछे नहीं दी जा सकती थी।

सं० १६२० में भाद्रपद मास मे महाराणा शंभुसिंहजी से भी परामर्श कर नाथद्वारा के तिलकायित गिरिधारीजी महाराज ने दोनों ठिकानों का वैमनस्य दूर कर देना चाहा, और परस्पर पत्र-व्यवहार कर सूरतवाले महाराजश्री को नाथद्वारा बुलाया। सूरतवालों ने यह स्वीकार कर लिया कि—हम महाराणा के समक्ष उनके आदेशानुसार आपस में तसफिया कर लेंगे।

यह सब तय हो जाने पर सूरतवाले महाराज ने नाथद्वारा आकर श्रीनाथजी की सेवा की, पर वे महाराणा के आह्वान करने पर भी अपने वचन को भूल ही नहीं गये, प्रत्युत उसकी उपेक्षा भी कर दी। महाराणा के आदेशानुसार गिरिधरलालजी महाराज कांकरोली से माघ मास के लगभग और सं० १६२१ मे कार्तिक के लगभग, इस प्रकार दो बार उदयपुर गये। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने मनुष्य भेजकर भी करीब पॉच हजार रुपया व्यय किया। पर सूरतवाले महाराजश्री ने इसकी कोई परवाह नहीं की और वे श्रीनाथजी की सेवा का अपना मतलब निकालकर नाथद्वारा से सीधे सूरत को रवाना हो गये। महाराणा ने इस प्रकार की चालाकी से अतिशय क्रुद्ध होकर सूरतवालों को मेवाड़ में आने के लिये रोक लगा दी। यह रोक सूरतवालों के लिये स० १६४८ तक लगी रही, जब तक आगे महाराज श्रीबालकृष्णलालजी का विवाह सूरत में नहीं हुआ।

अन्नकूट का झगडा

नाथद्वारा के तिलकायित श्रीगिरिधारीजी महाराज स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे, अपने आग्रह पर उचितानुचित का विचार न कर विषम परिस्थिति पैदा करने मे वे हिचकिचाते नहीं थे। इस प्रकार की एक घटना कांकरोलीवाले महाराज गिरिधरलालजी के साथ भी घटी, जिससे अन्नकूट पर श्रीद्वारकाधीश का नाथद्वारा पधारना भी बंद हो गया। इस आपसी खींचातानी ने सम्प्रदाय की प्राचीन प्रथा पर भी अपना प्रभाव डाला।

गत प्रकरण मे कहा जा चुका है कि—पुरुषोत्तमजी महाराज के समय में सं० १८८८ तक श्रीद्वारकाधीश का अन्नकूटोत्सव कांकरोली मे ही हुआ, जिसका कारण पारस्परिक जातीय व्यवहार था। सं० १८८६ मे यह झगडा समाप्त हुआ, और अन्नकूट उत्सव पर श्रीप्रभु नाथद्वारा पधारे। यह क्रम सं० १८६६ तक क़ायम रहा, पर सं० १६०० मे फिर यही नौवत आई, जो स० १६०१ तक विद्यमान रही। इसके बाद पद्मावती माजी महाराज के समय पुन: समझौता हो गया। जिससे प्रभु सं० १६०२ से लेकर लगातार सं० ६१७ तक नाथद्वारा पधारते रहे।

जहॉ तक ध्यान है, जातीय प्रायश्चित्तादि-प्रथा का प्रभाव, सर्वप्रथम नाथद्वारा और

कांकरोली के बीच ही साम्प्रदायिक सेवा पर पड़ा, और लौकिक व्यवहार की प्रधानता ने अलौकिक व्यवहार को दबा दिया।

सं० १६१८ के लगभग कोटा में गिरिधरलालजी महाराज का द्विरागमन हुआ। कोटा और नाथद्वारा की जातीयता में एक दूसरे के प्रति ऊँच-नीच के भाव बहुत समय से चले आ रहे हैं—और यही कारण विदित होता है कि—गिरिधरलालजी के कोटा में विवाह-सम्बन्ध ने नाथद्वारा के तिलकायित को अपनी मर्यादा रखने को बाध्य किया। फलतः सेवा में सम्पर्क मिल जाने का बहाना लेकर कांकरोलीवालों से प्रायश्चित्त लेने की आपत्ति खड़ी की गई। इसका असर यहाँ तक पड़ा कि—सं० १६१८ से सं० १६३२ तक नाथद्वारा में सम्मिलित अन्न-कूट होने का अवसर नहीं आया। इसमे सूरतवाले यदुनाथजी महाराज का झगड़ा भी एक अन्तर्निहित कारण था।

यद्यपि बीच मे, सं० १६२३ मे, दोनों स्थानों के जातीय व्यक्तियों मे पारस्परिक मेल हो गया, और श्रीपद्मावती माजी महाराज आषाढ़ कृ० ६ शुक्रवार को सेवा का खुलासा हो जाने से श्रीनाथजी के चरण-स्पर्श सेवा करने नाथद्वारा गये, परंतु इसके प्रथम दोनों ठिकानों के तिलकायितों में एक व्यक्ति-विशेष के कारण मनोमालिन्य हो चुका था। जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है.—

नाथद्वारावाले श्रीगिरिधारीजी महाराज के पास एक वृद्ध, अनुभवी भगवती-नामक गूजर वैष्णव रहकर श्रीनाथजी की सेवा कुछ क्रिया करता था। वह निस्पृही और भगवत्सेवा का अभिलाषी होने के साथ कार्य करने में चतुर और प्रखर-बुद्धि था। एक दिन किसी साधारण कार्य पर गिरिधारीजी महाराज उस पर नाराज हो उठे और उसे उन्होंने क़ैद कराना चाहा। वह भागकर कांकरोली पहुँचा, और महाराजश्री गिरिधरलालजी से अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना कर शरणागत हो गया।

महाराजश्री उसके व्यवहार और नेकचाल से परिचित थे, अत. उन्होंने उसे अभय-वचन देकर अपने पास रख लिया और कुछ समय बाद मन्दिर का अधिकारी बना दिया। नाथद्वारा-वाले इस बात को कब सह सकते थे ? वे मन-ही-मन कुडकुडा रहे थे। पर कुछ कर न सकते थे। अब वे कोई अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

सं० १६२३ मे कार्तिक वदी अमावस्या बुधवार को अन्नकूट का उत्सव आया और प्राचीन प्रथा के अनुसार श्रीद्वारकाधीश की सवारी श्रीनाथजी के पास अन्नकूट के लिये नाथद्वारा पधारी। सवारी मे श्रीठाकुरजी के आस-पास महाराजश्री और अधिकारी घोड़े पर सवार होकर साथ मे जा रहे थे। गिरिधारीजी महाराज ने जब यह सुना कि—ठाकुरजी के साथ वही

सायंकाल लौटते समय महाराजश्री तामझाम मे आये और साथ में महाराणा तथा उनके भाई-बन्द सरदार आदि सवारी मे शामिल होकर मन्दिर में वापिस आये। इस प्रकार कांकरोली में ही सवारी के जलसे से महाराणा और महाराजश्री तथा जनता को बड़ा आनंद आया।

एक बार महाराणा के आग्रह से महाराजश्री गनगौर के दिनों मे उदयपुर पधारे। दरबार की ओर से वहाँ नाव की सवारी निकाली गई, जिसमें महाराणा ने गिरिधरलालजी को भी साथ मे विराजमान किया। चारों ओर रोशनी और सजावट की गई तथा आतिशबाज़ी छुड़ाई गई। इस समय महाराजश्री ने अपने गोपाल खवास को पीछे तकिया लगाने का हुक्म दिया, पर इसे प्राचीन मर्यादा के विरुद्ध देखकर राजपुरोहितजी ने उसे मना कर दिया। महाराणा को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने अपने गुरुघर के प्रति ऐसी कोई रुकावट नहीं रक्खी, फलत· महाराणा के आदेश से गिरिधरलालजी की गादी पर तकिया लगाया गया। महाराणा के इस प्रकार के व्यवहार से महाराजश्री के मन में किसी भी प्रकार का विषम विचार नहीं आया और महाराणा ने गुरुघर के लिये एक प्रकार से और भी प्रतिष्ठा प्रदान कर अपने उदार हृदय का परिचय दिया।" इस प्रकार उदयपुर जाकर गिरिधरलालजी ने महाराणा के साथ निजत्व का व्यवहार स्थापित किया।

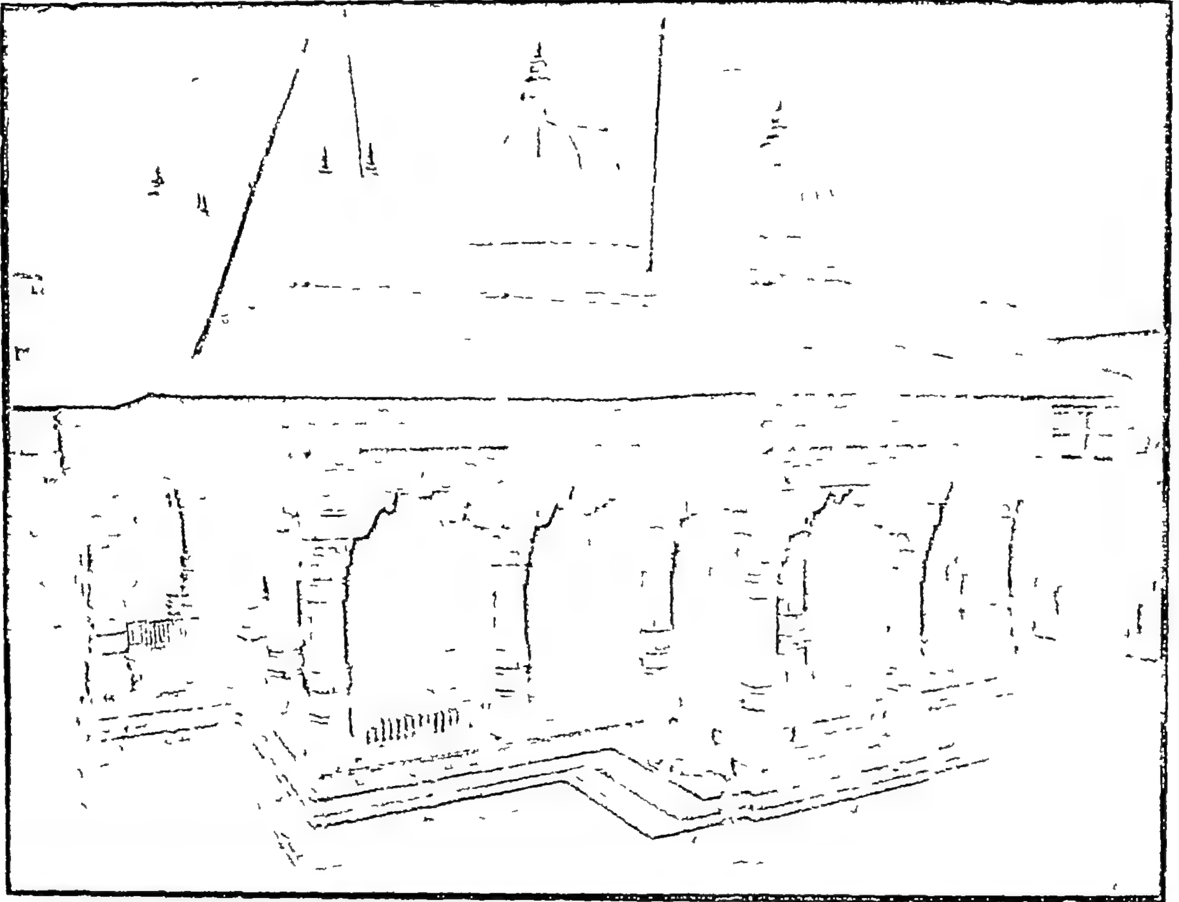
राजाधिराज मन्दिर के संस्थापक पारिखजी का परिचय

पारिख गोकुलदासजी नागर बनिया और बड़ौदा राज्यान्तर्गत सीनौर के निवासी थे। यह कांकरोली के घर के सेवक और गवालियर के महाराजा दौलतराव सिन्धिया * के खज़ाञ्ची थे। इनकी राजप्रियता के कारण आस-पास के कर्मचारी इनसे आन्तरिक ईर्षा रख इन्हें नीचा दिखाने का प्रयत्न किया करते थे, फिर भी इनकी नीति-कुशलता के कारण ऐसा अवसर नहीं आया, जब इनको राजा के सामने नीचा देखना पडा हो।

यद्यपि सिन्धिया-सरकार ने उज्जैन सर कर लिया था, फिर भी वहाँ के नागाओं ने अपना उपद्रव कम न किया। फलत जब-तब वहाँ टंटा-बखेड़ा उठ खडा होता था। इस उपद्रव को शांत करने के लिये सिन्धिया-सरकार ने अपने अच्छे, प्रतिष्ठित कई सरदार समय-समय पर भेजे, पर वहाँ चिर शांति स्थापित नहीं हो सकी। ऐसा ही समय जब एक बार फिर आया तो कर्मचारियों को अवसर मिला और पारिख गोकुलदासजी को नीचा दिखाने का षड्यंत्र रचा गया। दौलतराव

---

* इनका जन्म सं० १८३५ के लगभग हुआ, और सं० १८५१ के लगभग १६ वर्ष की उम्र में अपने काका माधवजी सिन्धिया की गोद आये। सं० १८५२ के लगभग इन्होंने गवालियर पर क़ब्ज़ा हासिल किया, और १८६७ मे उज्जैन से राजधानी उठाकर वहाँ राजधानी क़ायम की। सं० १८८४ के लगभग दौलतराव सिन्धिया की मृत्यु हो गई।



श्रीराजाधिराज-श्रीद्वारकाधीश का मन्दिर
मथुरा

पाटोत्सव
सं० १८७१
आषाढ़ कृ० ८

अधिकृत
सं० १९३०
वैशाख शु० ७

गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस लखनऊ

गवालियर में पारिखजी का नाम खूब प्रसिद्ध हुआ। इधर उनके व्यवहार से सब लोग मनीरामजी को ही उनका उत्तराधिकारी मानने लगे थे। जब मनीरामजी के पुत्र हुआ, तब पारिखजी ने उसका दष्टौन बड़ी शान-शौकत के साथ किया। इस व्यवहार मे मेल-मुलाक़ात के लोगों से क़रीब एक लाख रुपया आया। जब बालक का नाम रक्खा जाने लगा, तो पारिखज ने कहा कि—जिसके नामकरण मे ही इतना द्रव्य आया है, उसका क्या नाम रक्खा जाय? वह तो स्वयं लक्ष्मीचन्द है। फलत मनीरामजी के पुत्र का नाम लक्ष्मीचन्द रक्खा गया। मनीरामजी के राधाकृष्णजी और गोविन्ददासजी-नामक दो पुत्र और हुए। लक्ष्मीचन्दजी को पारिखजी ने आगे चलकर अपना उत्तराधिकारी बना लिया।

पारिखजी के अनुग्रह अथवा भाग्य के फेर से मनीरामजी तो वैभवशाली बन गये, पर पारिखजी के दूसरे मुनीम चम्पारामजी साधारण स्थिति मे ही रह गये *।

पारिख गोकुलदासजी गवालियर मे जिस स्थान मे रहकर अपना कारोबार करते थे, वह 'पारिखजी का बाड़ा' इस नाम से आज भी प्रसिद्ध है। कुछ समय बाद उन्होंने वहाँ नये सिरे से मकान बनवाना शुरू किया और खुदाई का काम होने लगा।

राजाधिराज का प्राकट्य

कहते हैं, एक दिन प्रात काल जब नींव की खुदाई जारी थी, ज़मीन के नीचे से 'होले-होले' इस प्रकार की प्रतिध्वनि मजदूरों को सुन पड़ी। काम बन्द कर इसकी ख़बर पारिखजी को दी गई। सन्ध्यावन्दन नित्य-कर्म से उठकर वे उस स्थान पर आये और अपने गत रात्रि के स्वप्न को सच होते देख स्वयं अपने हाथ से वहाँ की मिट्टी हटाने लगे। कुछ देर के परिश्रम के फल-स्वरूप "श्रीद्वारकाधीश, राजाधिराज' और एक शिवजी का स्वरूप उन्हे प्राप्त हुआ। रात्रि के स्वप्न के अनुसार प्रभु का स्वरूप पाकर वे अपने को कृतार्थ समझने लगे। पारिखजी ने वहीं मन्दिर बनवाकर श्रीप्रभु की सेवा-पूजा बड़े वैभव के साथ प्रारम्भ की। राज्य ने भी उसका उचित प्रबन्ध कर दिया। वह स्थान "श्रीद्वारकाधीश का मन्दिर" (पारिखजी का बाड़ा) नाम से आज भी प्रख्यात है।

श्रीप्रभु को व्रज में पधराना

वृद्ध हो जाने पर पारिखजी ने व्रज-वास करने के विचार से अपने इष्टदेव श्रीद्वारकाधीश को भी वहीं पधरा ले जाने की राजा से इच्छा प्रकट की। राजा ने उनकी इतने दिनों की राजसेवा के परिणामस्वरूप उज्जैन के द्रव्य के साथ "श्रीद्वारकाधीश राजाधिराज" को ले जाने की इजाज़त दे दी। वैष्णवों

* इस विषय मे लोगों मे "दौलत दौलतराव की पारिखजी का जस चम्पाराम चूतिया और मनीराम मस्त।' यह कहावत प्रसिद्ध हो गई।

के मनस्तोपार्थ उक्त स्थान मे श्रीप्रभु का एक दूसरा स्वरूप पधरा दिया गया, जो आज भी वहाँ विराजमान है।

पारिखजी 'श्रीद्वारकाधीश' के साथ समस्त द्रव्य लेकर व्रज में आये और उन्होंने मथुरा-वृन्दावन के बीच 'भतौड़'-नामक स्थान मे एक विशाल मन्दिर बनवाया और बाग लगवाया, जो आज भी वर्तमान है। यह वह स्थान है, जहाँ यज्ञपत्नियों ने भगवान् श्रीकृष्ण को भोजन कराया था। भतौड़ में श्रीप्रभु की बड़े राजवैभव से सेवा-पूजा होने लगी और उनके प्रसाद से हजारों ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन कराया जाने लगा। साथ ही प्रत्येक ब्राह्मण को एक-एक रुपया दक्षिणा दी जाने लगी। यहाँ पारिखजी ने सारा वैभव प्रभु-सेवार्थ लगा दिया।

मथुरा के वर्तमान मन्दिर का निर्माण

यद्यपि पारिखजी ने इस स्थल पर मन्दिर बनवा लिया था, पर इससे वैष्णवों को जैसा चाहिये, दर्शन का सुख नहीं था। कारण कि—यह स्थान मथुरा और वृन्दावन दोनों के बीच में स्थित होने से दूर पड़ता था। यात्रियों के सौकर्य के विचार से पारिखजी ने 'श्रीद्वारकाधीश का मन्दिर' इन दो स्थानों में से किसी एक मे बनवाने का निश्चय किया। उनके इस विचार को सुनकर वृन्दावन और मथुरा के ब्राह्मणों में तनातनी बढ़ गई। दोनों दल अपने-अपने लाभ के लिये अपने-अपने नगर में ठाकुरजी को पधरा ले चलने का आग्रह करने लगे। इस प्रसङ्ग से आपस मे लड़ाई होने तक का प्रसङ्ग आ खड़ा हुआ। इस ब्रह्मक्लेश को मिटाने के लिये पारिखजी ने युक्ति सोच-कर श्रीठाकुरजी के सामने दोनों स्थानों की दो चिट्ठियाँ डाली। बालक के द्वारा एक चिठी उठाये जाने पर मथुरा का नाम आया, जिससे पारिखजी ने श्रीप्रभु को वहाँ पधराने का विचार पक्का कर लिया। अधिक क्लेश बढ़ जाने की संभावना से शीघ्र ही प्रबन्ध कर श्रीद्वारकाधीश मथुरा नगर मे पधरा लाये गये और वहाँ 'गोलपाडा जूना मन्दिर' (जहाँ आजकल रामगोपाल मालानी की धर्मशाला है।) में विराजमान किये गये। मथुरा पधराते समय वहाँ के चौबों ने बड़ा हर्ष मनाया *।

पारिखजी ने यहाँ एक विशाल मन्दिर बनवाने का विचार किया और उसका काम शुरू किया गया। इस जमीन (जहाँ मन्दिर वर्तमान है) के लिये पारिखजी को बहुत कुछ द्रव्य खर्च करना पड़ा था। कहते हैं, जहाँ आजकल जनाना दरवाजा है, उस ओर की सारी जमीन शर्फुद्दीन-नामक एक मुसलमान के तावे मे थी। उससे बहुत कुछ कहा-सुनी करने पर यह

---

* कविरत्न स्व० नवनीतजी के पुत्र प० गोविन्ददत्त चतुर्वेद के द्वारा ज्ञात हुआ कि उस समय चौबों ने बड़े उल्लास के साथ यह गीत बनाकर गाया था—

हो जाने पर लक्ष्मीचन्दजी ने छोटे भाई को सान्त्वना दी। उन्होंने स्वयं वृन्दावन जाकर अपना धन ही नहीं लगाया, अपितु भ्रातृ-सौहार्द से परिश्रम कर स्वयं मन्दिर के लिये बड़े-बड़े पत्थर भी ढोये। श्रीरङ्गजी का मन्दिर बन जाने पर उन्होंने अपने भाई को वह मन्दिर सौंप दिया और उसकी स्थायी व्यवस्था भी बाँध दी*।

सेठ राधाकृष्णजी ने रामानुजसम्प्रदाय के आचार्य द्वारा मन्दिर की प्रतिष्ठा और दक्षिण से लाकर श्रीरङ्गजी की स्थापना कराई। जब वह मन्दिर की सम्पत्ति का सङ्कल्प छोड़ने लगे, तो सेठ लक्ष्मीचन्दजी ने उन्हें ऐसा करने को मना कर दिया। उन्होंने कहा कि—मन्दिर को केवल भेंट कर देना चाहिये। शास्त्र के अनुसार सङ्कल्पित द्रव्य की कोई भी वस्तु अपने काम मे नहीं आती, पर वैष्णव-सिद्धान्त के अनुसार प्रसादी वस्तुओं का ग्रहण करना आवश्यक होता है। अत. वैष्णव-धर्म मे सङ्कल्प या दान न कर श्रीप्रभु को समस्त वस्तुएँ भेंट-समर्पण या निवेदन की जाती हैं। इस प्रकार उनकी प्रसादी वस्तु लेने से धर्मशास्त्रानुसार किसी प्रकार का प्रत्यवाय नहीं लगता। अस्तु, अपने वडे भाई के कथन को आदर देकर सेठ राधाकृष्णजी ने श्रीरङ्गजी का मन्दिर और उसकी समस्त सम्पत्ति भेंट कर दी, उसका दान नहीं किया।

राजाधिराज के मन्दिर का भेंट आना

सेठ लक्ष्मीचन्दजी अफीम का व्यापार किया करते थे। एक-दो बार घाटा पड़ जाने से उन्हें अपनी स्थिति सँभालना कठिन हो गया। अन्त मे विवश होकर उन्होंने राजाधिराज की चरण-चौकी मे रक्खा हुआ द्रव्य निकाला और अपनी स्थिति ठीक की। इस आर्थिक संकट के समय जामनगर के गोस्वामी श्रीव्रजरायजी महाराज ने सेठ लक्ष्मीचन्दजी को अच्छा सहारा दिया था, जिसकी कृतज्ञता में उन्होंने 'श्रीराजाधिराज का मन्दिर' इन्हीं महाराजश्री को भेंट कर देने का विचार पक्का कर लिया। आह्वान आने पर महाराजश्री भी इसे लेने के लिये मथुरा आते समय मार्ग मे जबलपुर के आस-पास के जङ्गल में शेर के शिकार हो गये। उनके इस प्रकार गत हो जाने से सेठजी की इच्छा पूरी न हो पाई। फलतः मन्दिर भी भेंट होते-होते रह गया। इस प्रकार पारिखजी गोकुलदासजी की अन्तिम इच्छा ने मन्दिर को अन्यत्र भेंट हो जाने से रोक दिया।

सेठ लक्ष्मीचन्दजी के पुत्र रघुनाथदासजी और सेठ राधाकृष्णजी के पुत्र लक्ष्मणदासजी हुए। रघुनाथदासजी के कोई सन्तति नहीं हुई। सेठ लक्ष्मणदासजी आगे चलकर एक प्रसिद्ध पुरुष और विद्वान् व्यक्ति हुए। इन्हें राजा की उपाधि और सी० आई० ई० का खिताब मिला। इनके द्वारकादासजी और दामोदरदासजी-नामक दो पुत्र हुए।

---

* इस मन्दिर का निर्माण सं० १६०२ मे प्रारभ हुआ, और स० १६०८ में यह सम्पूर्ण बनकर तैयार हुआ था। इसमे ४५,००,००० रु० व्यय हुआ। भारत-भ्रमण प्र० खं० पत्र १६६।

सेठ लक्ष्मीचन्दजी और राधाकृष्णजी के गत हो जाने पर उनके छोटे भाई सेठ गोविन्ददासजी रह गये। इनके भी कोई सन्तान नहीं थी, अतः उन्होंने पारिखजी की अन्तिम इच्छा को आदर देकर अपने दोनों भतीजों से सलाह की और कांकरोली के तिलकायित श्रीगिरिधरलालजी महाराज को मन्दिर भेंट करने का विचार किया।

सं० १६२६ माघ वदी ६ के दिन महाराजश्री कांकरोली से मथुरा पधारे। वहाँ सेठों ने उनका अच्छा स्वागत-सत्कार किया। मन्दिर की व्यवस्था के लिये बातचीत तय होकर कुछ नियम बनाये गये और उनकी पाण्डुलिपि महाराजश्री को सुनाई गई। इन नियमों में एक कलम यह भी थी कि—"इस मन्दिर की सम्पत्ति में से महाराजश्री कुछ भी कमोवेश न कर सकेंगे।" महाराजश्री ने इस पर आपत्ति की और इसे स्वीकार करने से निषेध कर दिया। जब इसका कारण पूछा गया, तो उन्होंने सेठों को बुलाकर कहा कि—सम्पत्ति में से कम करने का अधिकार तो हम स्वयं नहीं चाहते, पर क्या उसमें वेश (आधिक्य) करने का भी हमें अधिकार नहीं है ? यदि ऐसा है, तो हमें यह स्वीकृत नहीं है। इस बात से महाराजश्री की नीयत साफ़ देखकर सेठ लोग गद्गद हो गये और उन्होंने लिखावट के इस मुहावरे के लिये माफ़ी माँगी। सब कुछ तय हो जाने पर मन्दिर की सुव्यवस्था के लिये सं० १६३० वैशाख शु० ७ (ता० ३ मई सन् १८७३) के दिन सेठ गोविन्ददासजी आदि ने दस्तावेज़ लिखकर महाराजश्री को भेंट किया और ता० १६ मई को नियमानुसार इसकी रजिस्ट्री करा दी गई, जिसका संक्षिप्त सारांश आगे दिया जा रहा है।

इस प्रकार बहुत समय बाद स्व० पारिख गोकुलदासजी की इच्छा कार्य-रूप में परिणत हुई और 'श्रीराजाधिराज' का मन्दिर उनके गुरुघर कांकरोली मे भेंट आ गया। सं० १६३० ज्येष्ठ शु० ११ के दिन से श्रीराजाधिराज की मर्यादा-मार्गीय सेवा-पूजा के स्थान पर पुष्टिमार्ग की रीति से सेवा होने लगी। महाराजश्री गिरिधरलालजी ने भी आवश्यक भेंट और कुछ आभरण (गहने) आदि, जो इस सम्प्रदाय के अनुसार आवश्यक थे, श्रीठाकुरजी के लिये तैयार कराकर समर्पित किये।

सेठ गोविन्ददासजी के कोई सन्तान नहीं थी। इधर राजा लक्ष्मणदासजी के द्वारकादासजी और दामोदरदासजी-नामक दो पुत्र हुए, पर दोनों अधिक अवस्था तक जीवित नहीं रहे। इनके कोई सन्तान न होने के कारण जैन मत के अनुसार सेठ द्वारकादासजी की विधवा स्त्री सेठानी ने गोपालदासजी को और दामोदरदासजी की विधवा स्त्री ने मथुरादासजी को गोद लिया। सेठ गोपालदासजी का भी छोटी वय मे अन्तकाल हो गया, अतः उनकी विधवा सेठानी ने भगवानदासजी को गोद लिया है। जो सम्प्रति विद्यमान हैं, और अपने इस प्राचीन

प्रसिद्ध घराने का प्रबन्ध करते हैं। सेठ मथुरादासजी के वाद उनकी स्त्री ने सेठ मनीरामजी के सगे भाई फ़तहचन्दजी के वश मे से सेठ गुलाबचन्दजी के पुत्र को गोद लिया।

इस प्रकार पारिखजी गोकुलदासजी ने जहाँ श्रीद्वारकाधीश को मथुरा-जैसे प्रसिद्ध तीर्थस्थल मे विराजमान कर, मन्दिर बनवाकर नगर की शोभा-वृद्धि की, और यात्रियों के लिये एक आकर्षक भक्ति का स्थान बनवाया। वहाँ महाराजश्री गिरिधरलालजी ने उसे पुष्टि-मार्ग के अन्तर्गत कर इस सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाया, और मथुरा-जेसे स्थल में तृतीय पीठ कांकरोली का एक प्रसिद्ध स्थान कायम किया, जो अन्य सम्प्रदायों के लिये एक स्पर्धा की वस्तु माना जाता है।

मन्दिर का उत्कर्ष और स्थायी प्रबन्ध

श्रीराजाधिराज के मंदिर द्वारा जो परोपकार, साधु-सेवा, अतिथि-पालन और यात्रियों में भक्ति का प्रचार होता है, वह अपना साम्य नहीं रखता। यह कथन अत्युक्ति-पूर्ण न गिना जायगा कि—यदि श्रीद्वारकाधीश राजाधिराज का यह भारतप्रसिद्ध मन्दिर मथुरा मे स्थापित न होता, तो उस नगरी की ऐसी शोभा न होती, जो उसे आज प्राप्त हो रही है। इस मन्दिर के समय-समय के दर्शन, उत्सव और मनोरथ सदा से यात्रियों के हार्दिक सन्तोष के कारण बनते चले आये हैं। प्रत्येक दर्शन और समैयों के उत्सवों पर जो अपार जन-समुदाय वहाँ एकत्र होकर आनन्द-विभोर होता हुआ आत्मकल्याण का अनुभव करता है, वह वास्तव मे पारिखजी के महान् पुण्यों का परिचायक माना जाना चाहिये। जिस यात्री ने इस मन्दिर मे आकर दर्शन नहीं किये, उसकी मथुरा-यात्रा एक प्रकार से अपूर्ण ही मानी जाती है। इसकी स्थायी व्यवस्था भी वास्तव में एक अनुकरणीय प्रथा है। अस्तु।

मन्दिर की रजिस्ट्री

प्रस्तुत देवोत्तर सम्पत्ति के सुप्रबन्ध के लिये महाराजश्री गिरिधरलालजी तथा सेठ लोगों ने नियमानुसार उसकी लिखा-पढ़ी कर सरकारी रजिस्ट्री भी कराई। असल दस्तावेज अठारह रु० के स्टाम्प पर विद्यमान है और इसकी रजिस्ट्री ता० १६ मई, सन् १८७२ के दिन की गई। इस दस्तावेज़ में जो शर्तें लिखी गईं उनका सारांश नीचे दिया जाता है—

१—पारिखजी महाराज के समय से इस मन्दिर का राग-भोग, सेवा-पूजा जिस प्रकार चला आया है, उसी प्रकार सदा-सर्वदा चलता रहेगा।

२—श्रीद्वारकाधीश के मन्दिर की सब प्रकार की जायदाद मन्दिर की सम्पत्ति होगी और वह इसके सिवाय अन्य किसी काम मे खर्च न की जायगी।

३—इसका समस्त प्रबन्ध गोस्वामीजी महाराज के अधीन होगा, वे इसके इन्तिजाम के लिये किसी योग्य व्यक्ति को नियत कर इसकी समय-समय पर जाँच करते रहे।

४—मंदिर की समस्त जायदाद इसके मालिक के न तो बटवारे मे आ सकेगी और न वह नीलाम या कुर्क की जा सकेगी। इसका रुपया किसी निजी खर्च में काम न लाया जा सकेगा।

५—मन्दिर का हिसाब सदा साफ और सिलसिलेवार रहेगा। इसके सम्बन्धी कागज, दस्तावेज़ आदि लिखा-पढ़ी मन्दिर मे ही सुरक्षित रक्खी जायगी।

६—गोस्वामिजी महाराज अपनी इच्छानुसार अपने वंश मे से किसी को सेवा-पूजा के लिये नियुक्त कर सकेंगे, उस व्यक्ति को इन सब स्वीकृत नियमों का परिपालन करना आवश्यक होगा।

७—श्रीद्वारकाधीशजी की सेवार्थ जो पोशाक तैयार होती आई है, सदा ही होती रहेगी। वह पाँच साल तक तो मन्दिर के तोशाखाने में जमा होती रहेगी और पॉच साल की पुरानी हो जाने के बाद उसे गोस्वामिजी अपनी इच्छानुसार उपयोग मे लाने के अधिकारी होंगे।

८—हमारे वंशज यदि वैष्णव-धर्म के माननेवाले होंगे, तो इस बात के सदा अधिकारी माने जावेंगे कि—यदि मन्दिर में स्वीकृत नियमों का यथावत पालन अथवा इनके विरुद्ध कोई बात होती होगी, तो उसका योग्य प्रबन्ध करा सकें। पर वे इस पर अपना स्वामित्व न रख सकेंगे और न इसे वापिस ले सकेंगे।

९—मन्दिर की जायदाद से जो रुपया आता रहेगा, उसमें से २५०००) रु० सदा ही मन्दिर के भाण्डार मे इसलिये जमा रक्खा जायगा कि कभी वसूली न हो सकने पर सरकारी मालगुजारी के चुकाने के काम मे आ सकें। इस रकम से यदि ज्यादा जमा हो, तो उसमें श्रीठाकुरजी की स्थायी सम्पत्ति बढ़ाई जावे, उसका निजी काम मे उपयोग न किया जा सकेगा।

१०—मन्दिर की आमद मे से तीन सौ रुपया माहवार कांकरोली के श्रीद्वारकाधीश की सेवा में इसलिये पहुँचता रहेगा कि—उससे दस रुपया रोज का भोग उनको लगता रहे।

११—मन्दिर के सुरक्षित स्थान में श्रीठाकुरजी के कुल जेवरात और उत्सव आदि का कीमती सामान सुव्यवस्थित और सुरक्षित रक्खा रहेगा। आवश्यकता होने पर काम में लाया जायगा। गोस्वामिजी महाराज की अनुपस्थिति मे हमारे वंशजों की उपस्थिति में, यदि वे वैष्णव-धर्मानुयायी होंगे, वह निकाला और ठाकुरजी के उत्सव आदि मे काम मे लाकर यथावस्थित रख दिया जायगा। इसकी सूचना समय-समय पर गोस्वामिजी अथवा उनके उत्तराधिकारियों को दी जाया करेगी।

१२—इसका जो प्रबन्ध इस समय किया गया है, उसको तीन साल तक देखा जायगा। इसके बाद यदि २५०००) रु० के जमा न होने और किसी प्रकार की सेवा-पूजा मे कमी आती नज़र आवेगी, तो हम अथवा हमारे वंशज उसको पूरा कर उसे व्यवस्थित कर देंगे।

इस वास्ते यह चन्द कलमे बतरीक दस्तावेज इस्तक़रार इस्तेमाल जायदाद मनकूला व गैर-मनक़ूला मन्दिर के लिख दिये कि सनद रहे और व.क़ हाजत के काम आवे।

मीज़ान कुल क़ीमत तख़मीनी अशियाय मुफ़स्सिले ७६१५०१ रु०

४५०७५४ रु० ज़ेवर मुरस्स. हीरा व.पन्ना व चुन्नी वगैरह।

१५०००० रु० क़ीमती तफसील ज़मीदारो परगना मांट.नौहझील जिला मथुरा।

१५०००० जमई १५२३० रु० साढ़े तीन आने अठारह मौजे।

१८०७४७ रु० तफसील देहात माफ़ी वाक़े अमलदारी झालरापाटन, परगना छप्पा, वड़ौदा।

क़ीमती १८०७४७ रु० जमई १४७००) मौजे ११।

एक मंजिल मन्दिर पुख्ता व संगीन श्रीठाकुर श्रीद्वारकाधीशजी महाराज मय दुकानात।

तहरीर मिस्ल तारीख़ तीसरी माह मई सन् १८७३ ई० मुताविक़ वैशाख सुदी ७ सं० १९३० रोज़ शम्बह वक़लम शफ़रउद्दीन साकिन मथुरा।

द० सेठ गोविंददास

गवाहशुद सेठ रघुनाथदास गवाहशुद सेठ लछिमनदास

" " मन्नीलाल वल्द हाथीराम कौम वैश्य मथुरा गवाहशुद नारायणदास वल्द मन्नीलाल मथुरा

" " सुखदेवदास वल्द गुलावचन्द मथुरा गवाहशुद केशोराम वल्द विन्दावनदास मथुरा

" " सीताराम वल्द दामोदरदाम मथुरा

इस दस्तावेज की रजिस्ट्री ब नम्बर ६६८ व सफे ३५३ लगायत सफ़े ३५६ जिल्द ३३ रजिस्टर नं० १ मे की गई। १६ मई सन् १८७३ ईसवी। दस्तख़त सब-रजिस्ट्रार बक़लम धनपतराय मुहर्रिर अव्वल।

वैभव-वृद्धि और •लोकोपकार

सं० १९१६ के लगभग महाराजश्री ने कांकरोली. मे श्रीप्रभु के शैया-मन्दिर मे आवश्यक संशोधन कर कला को प्रश्रय देते हुए काच का घुटवाँ काम कराया।

सं० १९१७ के प्रारम्भ मे महाराजश्री ने श्रीठाकुरजी के लिये चाँदी का हिंडोला बनवाने का विचार किया। इसके पहिले काष्ठ के हिंडोले में श्रावण का उत्सव मनाया जाता था। चैत्र शु० ६ के दिन १०२६॥। तोला चाँदी सूरत मे ११४६॥|)। क़ीमत की ख़रीदकर अधिकारी व्रजभूपणदास-काशीदास के हस्ते वडौदा भेजी गई, जहाँ वह तैयार किया जाकर स० १९१८ माघ कृ० ६ को काकरोली आया, एवं स० १९१९ के श्रावण मास मे प्रभु के अंगीकार कराया गया।

सं० १९२० के भाद्रपद मास के लगभग महाराजश्री ने संस्थान की गायों की चराई और रक्षा के लिये 'फयावडी' की गोशाला फिर से तैयार कराई, जो वर्षा के कारण गिर पड़ी थी।

इसके वाद आसोटिया की गोशाला के लिये सं० १६२३ मे वावडी खुदवाकर पक्की वॅधाई। सं० १६२४-२५ में रायसागर का जल सिंचाई के लिये बागों में पहुँचाने के लिये गो-घाट पर नये रहट वनवाये, और सं० २७ मे इनकी दुवारा दुरुस्ती कराई गई *।

सं० १६२५ मे वृष्टि न होने से मेवाड़ ही नहीं, समस्त राजपूताना में अकाल पड़ गया। इसके कारण लोगों को जल और भोजन मिलना मुश्किल हो गया। इस बीच में हैज़ा भी फैला, जिससे हज़ारों मनुष्य काल-कवलित हो गये। सं० १६२६ मे यद्यपि वर्षा अच्छी हुई, पर भूखे मनुष्यों ने कच्चा अनाज ही खाना शुरू कर दिया, जिससे अधिकांश लोगों की मृत्यु होने लगी। इस विपत्ति के समय महाराणा शम्भुसिंहजी ने अच्छी सहायता प्रदान कर अधिकांश जनता की प्राण-रक्षा की †। इस समय महाराजश्री ने भी आवश्यकता से अधिक साहाय्य देकर हज़ारों मनुष्यों का पालन किया। इन वर्षों के बीच कांकरोली मे होनेवाले अन्नकूट—जो भोग लगने के वाद भीलों को लुटा दिया जाता है—से गरीव जनता को वहुत कुछ सहारा मिला। इधर महाराजश्री ने 'विट्ठल-विलास' वाग के मन्दिर और कोट का इमारती काम भी शुरू करवा दिया था, जिसमे कई मनुष्यों को काम मिलने लगा। इस वाग के मन्दिर का काम सं० १६२६ के लगभग प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे सं० १६३५ तक चलता रहा, जिसमे कुल १२,५००) रु० लगा। सं० १६३० में वारलीवाडी मे नई वावडी महाराजश्री ने वनवाकर जनता के लिये पानी का सौकर्य कर दिया।

महाराजश्री के समय मे कांकरोली-नगरी के कई मकान और कुछ महाराजश्री के निजी निवास-स्थान तथा मन्दिर के वहुत-से भाग पक्के वनाये गये थे, जो अभी तक साधारण कच्चे थे। इस प्रकार नगर की शोभा वढ़ी और उसमें व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त होने से जनता की आर्थिक स्थिति भी सुधरने लगी। इसके साथ ही महाराजश्री ने श्रीप्रभु की सेवा मे वैभव-वृद्धि की और कई रत्न-जटित आभरण वनवाकर भेंट किये। कहते हैं, उनका विचार था कि—विट्ठल-विलास वाग में श्रीद्वारकाधीश को पधराकर विशाल छप्पन भोग का मनोरथ किया जाय, पर वह कार्य-रूप में परिणत न हो सका, और उनका असामयिक गोलोकवास हो गया।

व्यक्तित्व और नित्य-लीला-प्रवेश

इस प्रकार श्रीगिरिधरलालजी महाराज ने अपने जीवन मे अनेक प्रकार के वातावरण का पर्यवलोकन किया। अनुभव प्राप्त करने पर भी वे अपनी माता का आज्ञाकारी पुत्र रहे, और उनके परामर्श से ही ठिकाने का प्रवन्ध करते रहे। इन्होंने प्रदेश-भ्रमण कर अपने घर की वैष्णव-सृष्टि को सॅभाला और उसे अपने मार्ग का विशेषतया अपने गुरुघराने का आग्रही वनाया।

* प्राचीन रोकड़ से।
† उद० रा० इतिहास ७६४।

उन्होंने विशेष प्रयत्न कर ठिकाने को समृद्ध बनाया और उसकी भावी उन्नति के लिये प्रयास किया। कांकरोली को ऐसा सौभाग्य अधिगत नहीं हुआ कि—वह उनकी अधिक उपस्थिति से लाभ उठाकर और भी गौरव प्राप्त करती। फिर भी जो कुछ हुआ, वह इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। इधर महाराणा शम्भुसिहजी से मित्रता का व्यवहार कर उनके मन में ठिकाने की प्रतिष्ठा का बीज बोना और इधर मथुरा के राजाधिराज-जैसे प्रसिद्ध समृद्धिशाली मन्दिर पर अपना स्वामित्व स्थापित करना साधारण बात नहीं थी।

सं० १६३५ के प्रारम्भ में महाराजश्री ने गुजरात का प्रदेश शुरू किया। वे भ्रमण करते हुए वसो-नामक ग्राम में पधारे और यहाँ अपने सेवक, बड़ौदा राज्य के अमीन, के घर मुकाम किया। उनकी साधारण बीमारी से किसी को यह ध्यान नहीं था कि ऐसा अचिन्त्य प्रसंग आ उपस्थित होगा। श्रावण कृ० २ भौम के दिन महाराजश्री ने इहलोक-लीला संवरण की, और शाश्वत कल्याणस्वरूप श्रीद्वारकाधीश के चरणारविन्द प्राप्त किये ❀।

परिशिष्ट—१

महाराजश्री के द्वारा संस्थापित मन्दिर

महाराजश्री ने प्रदेश-भ्रमण करते हुए जिन मन्दिरों की स्थापना की, उनकी नामावली निम्न प्रकार है। यद्यपि इनका समय नहीं मिला है, फिर भी उनका उल्लेख कर देना उचित है—

१	मथुरा	श्रीराजाधिराज द्वारकाधीश का मन्दिर महाराजश्री की संरक्षकता में आया और उसकी व्यवस्था की गई।
२	धमोणज	श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप पधराकर मन्दिर बनवाया।
३	सिद्धपुर	श्रीद्वारकाधीश का चित्र चौधरी के बाग मे पधराया, बाद मे बालकृष्णलालजी महाराज ने मन्दिर बनवाकर वहाँ स्वरूप पधराया।
४	वसई	श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप पधराकर मन्दिर बनवाया।
५	वीसनगर, ६ वडनगर, ७ भादरण	मे द्वारकाधीश का स्वरूप पधराकर मन्दिर बनवाया।
८	पाटन	श्रीद्वारकाधीश की चित्र-सेवा पधराई थी, बाद में बालकृष्णलालजी महाराज ने स्वरूप पधराया।

❀ महाराजश्री की और्ध्वदैहिक क्रिया में एक प्रत्यक्ष गजदान बड़े चौबे नारायणजी को दिया गया।

९	दरापुरा, १० माकवा श्रीगिरिधरलालजी महाराज की वैठक है।	
११	संखेडा	श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप पधराकर मन्दिर वनवाया।
१२	बहादरपुर	श्रीगोवर्द्धननाथजी का स्वरूप पधराकर मन्दिर वनवाया।
१३	वायडईडर-राज्य	श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप पधराकर मन्दिर वनवाया।
१४	धोलका	श्रीमोहनलालजी ठाकुरजी (राजा आशकरण के सेव्य) के मन्दिर की व्यवस्था वाँधी।
१५	हालोल	श्रीछगनमगनलालजी ठाकुरजी पधराकर मन्दिर वनवाया।
१६	डभोई	श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप पधराकर मन्दिर वनवाया।
१७	वेगूँ मेवाड़, १८ देवगढ़ श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप पधराकर मन्दिर वनवाया।	

इनमे से किसी-किसी मन्दिर की व्यवस्था और उसका निर्माण वालकृष्णलालजी महाराज के समय हुआ है। संभव है, कुछ मन्दिरों का नाम रह भी गया हो।

परिशिष्ट—२

श्रीगिरिधरलालजी महाराज के समय आगत राजा-महाराजा तथा उमराव अथवा उनकी भेंट

संवत्	मिती	नाम तथा स्थान
१९०९	द्वि० भाद्र शु० ३	राजा सरदारसिंहजी बीकानेर गादी बेठे, उसकी भेंट आई।
१९१०	पौष सुदी १	श्रीदरवार की ओर से सालाना सामग्री के लिये भेट आई।
"	"	श्रीदरवार सरूपसिंह की ओर से कांकरोली-ठिकाने का कर्ज चुकाने को भेट आई।
१९१२	चैत्र वदी १० सोम०	जयपुर के गामों की हासिल के जमा।
१९१३	चैत्र सुदी १५	हस्ते महता शेरसिंहजी के श्रीमहाराणा सरूपसिंहजी की ओर से सोनातोल रु० ३०२ भर भेंट।
"	पौष वदी १	जयपुर के गामों का हासिल सं० १९१२ का। रु० ६००० ।
"	पौष सुदी ३	रावराजा रणवहादुरचन्द्र गाम कोट काँगडा, इलाका जम्मू

		ने आकर धोलपुर परगने का गाम नादौन रु० ३००० का भेंट किया।
,,	,,	जयपुर के गामों के हासिल उनाली का २००० रु०।
,,	,,	,, ,, सं० १९०८, ९, १०, ११ का जमा।
१९१५	श्रावण सुदी ३ गुरु०	विद्रोही काले लोगों की फ़ौज की भेंट आई।
,,	भाद्र बदी ६	जयपुर के गामों की हासिल सालाना जमा। सं० १९१४ का।
१९१६	चैत्र सुदी १० भौम०	राजराणा श्रीपृथ्वीसिंहजी, झालरापाटन आये।
,,	वैशाख सुदी ४	देवगढ़ रावजी दर्शनार्थ आये।
,,	चैत्र कृष्ण ६	महारावजी कोटा महाराजकुमार तथा रानीजी-सहित आये।
,,	चैत्र कृष्ण १४	ठाकरा गुमानसिंहजी, गाम सांगरिया।
१९१७	चैत्र सुदी १	रावतजी अदीतसिहजी, गाम वोईडा की ओर से दाजीराज बख्तावरसिंहजी के हरि-शरण होने के समय भेंट।
,,		जयपुर के गामों की सालाना हासिल सं० १९१६ के ६००१ रु०।
१९१८	वैशाख कृष्ण १	ठाकर गुमानसिंहजी हरिशरण हुए, तब चाँदी के वासन भेंट।
,,		जयपुर के गामों की सालाना हासिल ६००० रु०।
,,	पौष बदी ९	महाराणा सरूपसिंहजी के कैलासवास हो जाने पर हाथी भेंट।
,,	,,	महाराज राणा पृथ्वीसिंहजी झालरापाटनवालों की पुत्री के लग्ननिमित्त भेंट।
१९१९	...	जयपुर के गामों का सालाना हासिल ६००० रु०।
१९२१	...	,, ,, ५९४० रु०।
१९२२	...	,, ,, ५९४० रु०।
१९२४	...	रावजी रणजीतसिंहजी देवगढ़वाले हरिशरण हुए तब हाथी, घोड़ा, सामग्री के रुपया भेंट।
१९२७	कार्त्तिक वदी १ और पौष वदी १	महाराणा शम्भूसिंहजी, उदयपुर गादी बैठने बाद प्रथम बार अजमेर जाते समय और वहाँ से लौटते समय कांकरोली दर्शनार्थ आये।
१९२८	ज्येष्ठ सुदी १	ठाकुर प्रतापसिहजी के कुँवर गोपालसिहजी, गाम मोई के विवाह के समय महाराज के पधारने पर भेंट।

१६३०	कार्त्तिक कृष्ण ६ बुध०	महाराणा शम्भूसिंहजी, राणीजी तथा माजी चारभुजा से वापिस आये।
१६३१		रानी रूपकुँवरि बाई अलवर की तरफ़ से गाम की हासिल के जमा दो साल के रु० १००१४
,,	...	अलवर के गाम का १००० रु० । सालाना हासिल सं० ३१ का जमा
१६३२	ज्येष्ठ कृष्ण १२	महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुर गादी बैठने के बाद प्रथम दर्शन करने आये।
,,	,, सुदी २	महाराणा सज्जनसिंहजी चारभुजा से वापिस आए।
,,		अलवर के गामों की सालाना भेंट १००० रु०।
१६३३	मार्ग सुदी ११	बावाजी भगतसिंहजी सोनान्यावाले आये।
,,	पौष सुदी १५	,, ,, की ओर से एक साल की ३६० रु० भेंट।
,,	चैत्र बदी १४	राजाजी गोपालसिंहजी, गाम झाउवा दर्शनार्थ आये।
१६३४	ज्येष्ठ वदी ८	महाराणा सज्जनसिंहजी जनाना-समेत आये।
,,	माघ वदी ३०	,, ,,



नवम प्रकरण

(सं० १६३६ से सं० १६७६)

श्रीबालकृष्णलालजी महाराज (ए० ति०)

(प्रा० सं० १६२४, आ० सं० १६३६, नि० स० १६७३)

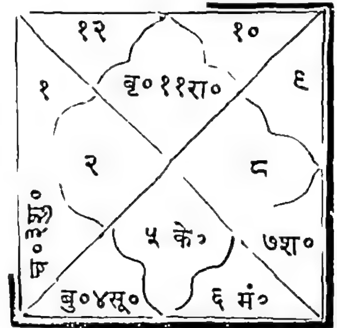
जन्म, शिक्षा और संस्कार

श्रीबालकृष्णलालजी महाराज (द्वि०) का जन्म सं० १६२४ श्रावण कृष्ण १३ सोमवार * के दिन मथुरा में हुआ था। इनके औरस पिता का नाम गो० श्रीकल्याणरायजी महाराज था, जो श्रीदाउजी मदनमोहनजी के मंदिर के अधिपति और गुसाईंजी के छठे पुत्र श्रीयदुनाथजी के वंशज थे †।

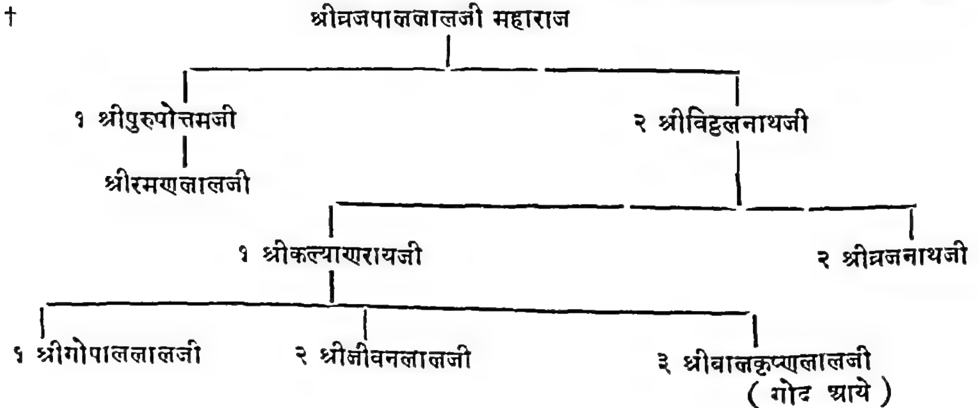
---

* जन्मकुंडली—

संवत् १६२४ शाके १७८६ प्रवर्तमाने वर्षे श्रावण कृष्ण १३ तिथौ चन्द्रवासरे इष्ट घटी ३८, ३३ सू० ३, १३, ४६, ४३ लग्न १०, २२, २७, ० श्रीयदुनाथवंशावतंस मथुरास्थ श्रीकल्याणरायात्मज श्रीबालकृष्णलालजी-जन्म



†





गो० श्रीबालकृष्णलालजी महाराज. कांकरोली
११ ति० प्रा० स० १६२४ श्रा० कृ० १३

गगा-फाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

सं० १६३२ में इनके पिता ने इनका उपनयन-संस्कार कर आवश्यक अध्ययन कराया। वालकृष्णलालजी में वालकपन से ही अच्छी प्रतिभा थी। वे कलाओं के प्रति अत्यधिक प्रेम रखते थे। साहित्य, संगीत दोनों में अच्छा अभिनिवेश करने के साथ ही उसके रहस्य-वेत्ता वनने की इनकी वड़ी इच्छा रहती थी। फलत' प्रत्येक विषय मे यह मनोयोग देने लगे। उस समय सनातन-धर्म के प्रचार और व्याख्यानों का युग था, अत इन्होंने भी उत्साह होने के कारण तदर्थ प्रत्येक विषय का अध्ययन किया, जिसका आगे चलकर अच्छा परिणाम निकला।

गोद आकर तिलका-यित होना

सं० १६३५ में कांकरोली के तिलकायित श्रीगिरिधरलालजी महाराज का गोलोकवास हो गया। उनके कोई सन्तति नहीं थी, अतः उनको गोद लेनेवाली पुरुषोत्तमजी महाराज की धर्मपत्नी श्रीपद्मावती माजी महाराज ने वालकृष्णलालजी को गोद लेकर कांकरोली का तिलकायित वनाने का विचार कर सं० १६३६ मे उदयपुर के महाराणा से सम्मति ली।

प्रस्तुत विषय मे गिरिधरलालजी की धर्मपत्नी श्रीकमलावती वहूजी का यह विचार था कि— वे किसी अन्य को गोद लें, पर सास की उपस्थिति में उनका यह निश्चय न चल सका और पद्मावतीजी माजी महाराज ने ही अपना अधिकार रखकर इन्हें गोद लिया। सं० १६३६ का० कृ० ७ गुरुवार के दिन महाराज श्रीवालकृष्णलालजा का कांकरोली तिलकायित के स्थान पर विराजना हुआ और महाराणा सज्जनसिंहजी ने कांकरोली आकर राजकीय दस्तूर कर भेंट की। इस समय महाराजश्री की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी, अत• ठिकाने की सारी जम्मेदारी माजी महाराज पर ही रही, और वे ही अपनी देख-रेख मे समस्त कार्य करने लगीं। उस समय उन्हीं के नाम से प्रवन्ध होता था। इसी दिन उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी द्वारा कांकरोली ठिकाने के लिये प्रवन्धार्थ १० कलमे मिलीं, जिसे हम आन्तरिक शासन की अधिकार-प्राप्ति कह सकते हैं।

महाराजश्री ने माजी महाराज की आज्ञानुसार श्रीद्वारकाधीश की सेवा और कांकरोली ठिकाने का प्रवन्ध करना सीखा। श्रीप्रभु की सेवा वे अत्यन्त मनोयोग के साथ करने लगे, और साथ ही विद्याव्यासंग भी।

विवाह और सन्तति

कुछ समय वाद सं० १६४० चैत्र कृ० ६ वालकृष्णलालजी का प्रथम विवाह हुआ। इनकी इन धर्मपत्नी का नाम श्रीपार्वती वहूजी था। विवाह करने के वाद महाराजश्री मथुरा गये और वहाँ से कांकरोली आये। यहाँ उन्होंने विवाह के उपलक्ष्य मे विट्ठलविलास-वाग मे नगर की गोठ की। सं० १६४२ फाल्गुन मास मे वंवई से द्विरागमन कराकर कांकरोली आए। कुछ समय वाद प्रथम पत्नी के दिवंगत हो

जाने पर संवत् १९४९ आषाढ़ शु० ४ सोमवार के दिन गो० मग्नलालजी महाराज की दौहित्री और करंजी-भूपतलालाजी की पुत्री श्रीमती सौंदर्यवती ❀ के साथ विवाह किया। जैसा प्रथम कहा जा चुका है, गिरिधरलालजी महाराज के समय सूरतवालों ने महाराणा की आज्ञा न मानी थी और उनके बुलाने पर वे नाथद्वारा से उदयपुर नहीं गये थे। इसी के परिणाम-स्वरूप मेवाड़वन्दी का उन्हे हुक्म दिया गया था। पर महाराज श्रीबालकृष्णलालजी ने महाराणा फतहसिंहजी से इसका खुलासा कराकर सूरतवालों के लिये श्रीनाथजी की सेवा का सौकर्य कर दिया।

महाराजश्री की द्वितीय धर्मपत्नी का नाम श्रीमती सौन्दर्यवती बहूजी, माजी महाराज है, जिन्होंने महाराजश्री के अनन्तर कांकरोली का प्रबन्ध कर वर्तमान महाराज श्रीव्रजभूपणलालजी की नाबालिगी में ठिकाने को उन्नत बनाया है।

बालकृष्णलालजी महाराज के द्वितीय धर्मपत्नी से निम्न-लिखित सन्तति हुई—

१ श्रीद्वारकेशलालजी	... .	प्रा० सं० १९६४ आषाढ़ कृ० ६
२ श्रीपुरुषोत्तमलालजी	.. ..	प्रा० सं० १९६६ कार्त्तिक कृ० ६
३ श्रीव्रजभूषणलालजी	...	,, ,, १९६८ फाल्गुन कृ० २
४ श्रीविट्ठलनाथजी	... ...	,, ,, १९७० माघ कृष्ण ९

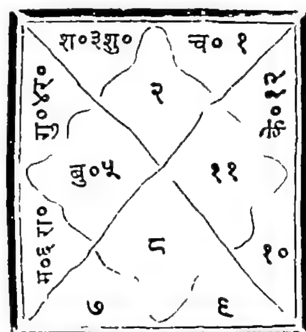
श्रीबालकृष्णलाजी महाराज के प्रथम पुत्र श्रीद्वारकेशलालजी का छोटी अवस्था मे ही गोलोकवास हो गया। उनका यावल्लब्ध चरित्र आगे लिखा जा रहा है। द्वितीय पुत्र पुरुषोत्तमलालजी का अपने पिता की उपस्थिति में ही सं० १९६९ चैत्र बदी ९ के दिन देहान्त हो गया। यह भी वडे सुन्दर और होनहार बालक थे।

महाराजश्री के तृतीय पुत्र श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज कांकरोली के वर्तमान भाग्यविधाता और तृतीय पीठ के तिलकायित तथा चतुर्थ पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी भी एक उत्साही, बुद्धिमान और उन्नति के इच्छुक नवयुवक हैं। इन दोनों का चरित्र आगे लिखा जा रहा है।

❀ जन्मकुडली—

पूज्य श्रीसौन्दर्यवती माजी महाराज

सवत् १९४१ शाके १८०६ प्रवर्तमाने वर्षे श्रावण मासे कृष्णपक्षे ७ तिथौ घटी ३३,१८ पर ८ जन्मतिथौ बुधवासरे भरणी ४९,५१ गंज ०,२६ पर वृद्धि वालवकरणे मेषराशौ सूर्योदयात् घटी ४७,३१ समये करंजी भट्ट श्रीभूपतिलालाजी (गन्नुलालाजी) गृहे श्रीसौन्दर्यवती जन्म।



सं० १६३६ में पद्मावती माजी महाराज के दिवंगत हो जाने पर महाराजश्री ने कांकरोली का स्वयं शासन करना प्रारंभ किया। गिरिधरलालजी महाराज की पत्नी श्रीकमलावती वहूजी अपनी सास की उपस्थिति मे ही सं० १६३८ में कांकरोली छोड़कर मथुरा जा बसी थीं। वहाँ उन्होंने श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में अपना निवास किया, और अन्तिम समय तक फिर कांकरोली नहीं गईं। महाराजश्री ने भी इनके लिये वहीं सब प्रकार की सुविधा प्रदान कर दी। महाराजश्री ने तिलकायित बनने के कुछ समय बाद ही प्रदेश-भ्रमण कर अपनी वैष्णव-सृष्टि को सँभालना शुरू कर दिया। यहाँ हम महाराजश्री की विशेष यात्रा और प्रदेश का वर्णन करेंगे।

प्रदेश-यात्रा और राज्यसन्मान

सर्वप्रथम सं० १६२७ भाद्रपद में पद्मावती माजीमहाराज चारभुजा की यात्रा करते हुए गुजरात का प्रदेश करने गईं। अन्नकूट का उत्सव कर महाराजश्री भी मार्ग० कृ० १२ सोम को प्रदेश करने पधारे। यह यात्रा पैदल रास्ते हुई, अतः मालूम कराने पर महाराणा ने मार्ग के सौकर्य के लिये उन्हें एक हाथी भेंट किया।

सं० १६३६ के अन्त में महाराजश्री अपना प्रथम विवाह करने बंबई पधारे और विवाह के बाद अहमदाबाद होते उन्होंने मथुरा जाकर राजाधिराज-मंदिर की व्यवस्था की, और बाद मे वहाँ से सं० १६४० मे भीलवाडा स्टेशन से पैदल रास्ते कांकरोली आये।

सं० १६४० माघ कृ० १० बुधवार को पुन. प्रदेश करने पधारे। जहाँ इन्होंने प्रत्येक गाँव और शहर में धार्मिक सभाओं की धूम मचाकर धर्म का प्रचार करते हुए हजारों वैष्णवों को दीक्षा दी।

सं० १६४१ माघ सुदी ५ के दिन महाराजश्री कांकरोली से उदयपुर पधारे और महाराणा फतहसिंहजी* के माघ शु० ७ के राज्याभिषेकोत्सव मे सम्मिलित होकर गुरुघर की ओर से राज्यतिलक का दस्तूर किया। माघ शु० १० के दिन महाराजश्री ने महाराणा को परंपरागत वैष्णव धर्म की दीक्षा देकर कंठी बाँधी और फाल्गुन कृ० ४ को विदा होकर वे कांकरोली आये। महाराणा फतहसिंहजी के साथ आगे चलकर महाराजश्री का अच्छा सम्पर्क रहा आया। यद्यपि महाराणा अपनी गंभीर प्रकृति और राजनैतिक व्यवहार के कारण किसी को विशेष आत्मीय नहीं बनाते थे, फिर भी कांकरोली के घर के प्रति उनका व्यवहार सदा श्रद्धा-भाव से परिपूर्ण रहा। महाराणा ने प्राचीन प्रथा के अनुसार अपने गुरुघर को सम्मान

---

* इनका जन्म स० १६०६ पौष शु० २, गद्दीनशीनी स० १६४१ पौष शु० ६ राज्याभिषेकोत्सव माघ शु० ७ तथा कैलासवास स० १६८७ ज्येष्ठ कृ० ११ को हुआ था।

प्रदान किया और अपने जीवन मे कई बार श्रीद्वारकाधीश के दर्शनार्थ कांकरोली आकर वहाँ की अनेक असुविधाएँ दूर कीं।

सं० १६४१ रावत सवाई मेघसिंहजी ने, वेगम ठिकाना मे जितनी भी जमीन यहाँ के रावजी महासिंहजी अथवा महाराणाओं द्वारा अलग-अलग भेंट की गई थी, उन सबकी इकट्ठी सनद आषाढ़ सुदी १५ के दिन लिखकर महाराजश्री के नाम कर दी ❋।

सं० १६४२ के प्रारंभ मे प्रदेश जाकर महाराजश्री कार्त्तिक बदी ५ को वापिस कांकरोली आये और श्रीद्वारकाधीश को नाथद्वारा पधराकर अन्नकूट का उत्सव किया।

सं० १६४४ में ही उदयपुर मे महाराणा फतहसिंहजी ने महाराणी विक्टोरिया की पचास-साला जुबिली का बड़ा भारी उत्सव मनाया। ऐसा प्रसिद्ध है कि—इस समय महाराजश्री अपने भाइयों के साथ उदयपुर गये, और महाराणा का आतिथ्य स्वीकार कर जलसा देखा। महाराणा ने महाराजश्री का योग्य सत्कार किया और उदयपुर के दर्शनीय स्थानों का निरीक्षण कराया। इसी वर्ष महाराजश्री मार्ग० शु० २ गुरु के दिन प्रदेश करने पधारे। डूँगरपुर मे कुछ दिनों उनका मुकाम हुआ। एक दिन महाराजश्री जब प्राचीन खँडहरों में भ्रमण कर रहे थे, एक टीले के नीचे से उन्हें प्राचीन मूर्ति प्राप्त हुई, जो श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप था। महाराजश्री ने उसे घर लाकर प्रतिष्ठित किया, और यथाविधि सेवा-पूजा चालू की। सं० १६५५ मे जब अलवर-नरेश की दादाजी श्रीइन्द्रकुँवरि ने ब्रह्मसम्बन्ध की दीक्षा लेकर अपने यहाँ मन्दिर बनवाया तब यही स्वरूप वहाँ पधरा दिया गया, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा।

सं० १६४८ माघ मास मे यह सोरों क्षेत्र की यात्रार्थ गये, और वहाँ कृष्ण १४ के दिन पुरोहित को वृत्तिपत्र प्रदान किया। इसी वर्ष चैत्र बदी १० को महाराजश्री वेगूँ रावजी के आग्रह पर उनके कुँवर अनूपसिंहजी को वैष्णव-धर्म की दीक्षा देने वेगूँ पधारे। वहाँ रावजी मेघसिहजी ने महाराजश्री का अच्छा सम्मान किया और उनकी आज्ञा से स्थानीय मन्दिर की सुव्यवस्था की। यहाँ से सं० १६४६ चैत्र शु० १४ को विदा होकर महाराजश्री कांकरोली आये।

रावत सवाई महासिहजी ने गिरिधरलालजी महाराज के समय मे अपने यहाँ वेगूँ मे मंदिर बनवाया, और साम्प्रदायिक सेवा प्रचलित की थी। इस मंदिर का सम्पूर्ण निरीक्षण काकरोली के महाराजश्री को सौंपा गया। आगे चलकर किसी प्रकार की अव्यवस्था न हो एतदर्थ सवाई मेघसिहजी ने महाराजश्री बालकृष्णलालजी के नाम सं० १६५१ पौ० शु० १० के दिन एक विस्तृत लिखित पत्र भेट किया, जिसका उल्लेख यहाँ अनावश्यक है। इसी वर्ष माघ कृष्ण ३ को रावजी सकुटुम्ब काकरोली दर्शनार्थ आये।

❋ ता० न० ४२

सं० १६५० के भाद्रपद मास के प्रारंभ मे महाराजश्री ने व्रज चौरासी कोस की यात्रा की। इस समय साथ में इनके भाई श्रीगोपाललालजी महाराज, श्रीजीवनलालजी महाराज, गिरिधरलालजी महाराज, श्रीमधुसूदनलालजी महाराज आदि प्राय. सभी निकटवर्ती आत्मीय विद्यमान थे । इस समय की यात्रा मे इन्होंने अपने नाम के अनुरूप खूब ही दान-पुण्य किया था । यथाविधि यात्रा समाप्त कर अन्नकूट के अवसर पर यह कांकरोली आये।

सं० १६५० मे महाराजश्री अपने भाई काशीस्थ गोपाल-मंदिर के अधिपति गो० श्रीजीवनलालजी महाराज के आग्रह पर काशी गये और यहाँ श्रीगोपाललालजी ठाकुरजी की सेवा तथा विविध मनोरथ कर तीर्थ-यात्रा की । यहाँ रहकर महाराजश्री ने अच्छी साहित्यिक प्रगति की, जिसका वर्णन आगे किया जायगा। इसी वर्ष इन्होंने अपने भाइयों के साथ बड़ी सजधज के साथ बहुत सा रुपया व्यय कर बुढ़वामंगल के मेला मे एक नई ही रंगत पैदा कर दी। कहते हैं कि—महाराजश्री की ओर से चारों ओर कपड़े रँगने का मुफ्त प्रबन्ध कर दिया गया था। मेला देखनेवाला कोई भी व्यक्ति बिना गुलाबी रंग के कपड़े पहिने नहीं आ सकता था। चारों ओर एक ही रंग दिख रहा था। इस प्रकार महाराज ने अपने रंग मे समस्त काशी को रँगकर जैसी वाहवाही लूटी वैसी आज तक किसी को भी नहीं मिली।

स० १६५४ म काशीवाले श्रीजीवनलालजी महाराज के माघ शु० १४ के दिन पुत्र-जन्म हुआ, जिसका समाचार कांकरोली आने पर पूर्णिमा के दिन महाराजश्री बालकृष्णलालजी काशी पधारे और यहाँ छट्ठी के मंगलमय प्रस्ताव मे सम्मिलित होकर वहाँ बड़ा उत्सव मनाया।

सं० १६५५ के मध्य मे महाराजश्री सपत्नीक अलवर पधारे और यहाँ अलवर-नरेश की दादीजी इन्द्रकुँवरीजी के आग्रह पर श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप पधराकर सेवा प्रचलित की। दादीजी महाराज ने श्रीप्रभु के लिये वहाँ विशाल मंदिर बनवाया था। सं० १६५४ कार्त्तिक वदी २ को मुक़ाम अलवर से लिखे गये श्रीकमलावती माजी और महाराजश्री के प्रति एक पत्र से ज्ञात होता है कि—दादीजी इस मंदिर को महाराजश्री और उनकी माता की इच्छानुसार बनवा रही थीं और उसके बनते समय देख-रेख के लिये उन्होंने एक मनुष्य कांकरोली से भी बुलवाया था। अत· यह मंदिर सं० १६५५ तक तैयार हो गया और उसमे स्वरूप की प्रतिष्ठा करने के लिये महाराजश्री को कार्त्तिक बाद आहून किया गया और पौष शु० ७ के दिन पाटोत्सव किया गया था। सं० १६६० आश्विन शु० १३ रविवार के दिन राज्य की ओर

से इस मंदिर की सेवा-पूजा के स्थायी प्रबन्ध की लिखा-पढ़ी की गई*। इस स्थान पर विराजमान श्रीठाकुरजी की सेवा, आभरण आदि की आवश्यक वस्तुएँ कांकरोली से भेजी

* श्रीरामजी

श्रीश्री मेरी डडवत मालुम होय
ये भेट पत्र नजर है सो मंजुर फरमावे।

सही

सीधश्री सरवोपमा वीराजमान लायक पुज्य श्रीगुसाईजी म्हाराज श्री५ बालकृष्णलालजी जोग्य अलवर थी दादीजी म्हाराज इदरकुँवरजी केन डडवत मालूम होय अैठा का समाचार आपकी कृपा करि भला छै। आपका सदा सरवदा आरोग्य चाहिजे जी अपरची हम श्रीदुवारकानाथजी म्हाराज विराजमान काकडोली की गादी के सेवक है उसके मुताविक हमने श्रीदुवारकानाथजी के सेवा के विचार से यहाँ मुकाम अलवर म्हल चौक में श्रीदुवारकाधीस म्हाराज का मदिर निरमाण कराया और आपसे अपने सेव्य ठाकुरजी म्हाराज कूँ यहाँ पधराने के वासते तथा आप यहाँ पधार करि सप्रदाय की रीत मुजब मदिर प्रतिष्ठा वा आयदा सेवा पूजा का क्रम चलू करने के वासते प्रार्थना करी जीस पर आपने अपने सेव्य स्वरूप श्रीदुवारकाधीसजी म्हाराज यहाँ पधराये और आपने यहाँ पधार कर प्रतिष्ठा वगैर का उतसव पोस सुदी ७ संवत् १९५५ कूँ बड़े आनन्द से कराया और सेवा पूजा भोगराग उतस्वादिक की रीत सप्रदाय की रीत मुताबिक जारी करके अपनी तरफ से अधिकारी मुखीया सेवक टहलवा मुकरर कीये जीससे हमारा सपूरण मनोरथ सिध हो गया ज्यो के श्रीदुवारकाधीसजी म्हाराज के भोगराग के वासते मुदायमी बदोबसत उस वकत न्हीं हो सका ईस सबब से उस वकत कोई लीखा-पढी न्हीं हुई। अब राज से रुपया २५० ढाई सै माहवार मुदायमी मुकरर हो गए हैं और आयदा भी कीसी तोर सै आमदनी ज्यादा आवै ईस वासते हसब तफसील जैल ये मदिर बतोर मालकान आपकी भेट करते हैं।

१ सेवा, शृंगार व रागभोग आचार वीचार मदिर ताइवा महसब कायदे वलभकुल सप्रदाय व रिवाज मुरवजै मदिर श्रीदुवारकाधीसजी म्हाराज वाकै काकडोली के हसब हूकुम आपकै जारी रहैगा।

२. ये मदिर हमेस्या तालकै आपकै या ज्यो कोई गदीनसीन आपका श्रीदुवारकाधीसजी म्हाराज वाकै काकडोली का होगा उनकै रहैगा यानै हमेस्या मालक मदिर टीकाई गादीनसीन रहैंगे।

३. मदिर वा जायदाद मुतअलकै मंदिर मनकूला व गैरमनकूला भेट है उसकूँ कीसी हालत मै मुनतकील करने का अखतीयार न्हीं है।

४ आपकूँ व आपके जायनसीन कूँ अखतीयार है गोलक की आमदनी जो श्रीठाकुरजी म्हाराज के सनमुख भेट आती है वो श्रीदुवारकाधीसजी म्हाराज वीराजमान काकडोली को ले जावै।

५ मदिर के काम करनेवाले अधिकारी वगैरे से लेकर मुखिया भीतरिया सेवावाले सब मुलाजमान की बहाली वेतरफी का अखतीयार आपकूँ वा आपके जानसीन कूँ हर हालत मे रहैगा।

६ श्रीम्हादेवजी म्हाराज ज्यो ईस मदिर के नीचे वीराजै हैं ऊनके पुजारी कूँ तनखा रुपिया ६।।।) पोणे सात माहवार हमेस्या ईन २५०) माहवार मुकररै राज सै देनी पड़ैगी ओर पुजारी मजकूर की बहाली बरतरफी का अखतीयार आपकूँ न्हीं होगा।

७. ज्यो मुबलीग २५०) माहवार मदिर खरच के वासतै राज सै मुकरर हुवे है वो अगर कीसी हालत

गई थीं, जिनका मूल्य दो हजार रु० के लगभग अलवर दादीजी साहब के नाम लिखा गया है। इस स्थान मे आवश्यक प्रबन्ध तथा सेवा-पूजा और भेट पधरावनी हो जाने पर महाराजश्री माघ कृष्ण ७ के दिन वापिस कांकरोली आये।

सं० १९६० (कार्त्तिकादि स० १९५९) वैशाख वदी ८ के दिन महाराजश्री को रावत सवाई मेघसिंहजी ने बेगूँ पधराकर बड़ी श्रद्धा के साथ उनका स्वागत सत्कार किया। इस समय वहाँ के कुँवर अनूपसिंहजी को यज्ञोपवीत मे महाराजश्री ने गायत्री की दीक्षा दी। इन्हे वैष्णव मत्र की दीक्षा महाराजश्री के द्वारा पहिले ही दी जा चुकी थी। इसी समय वहाँ श्रीव्रज-गोपालजी ठाकुरजी के छप्पनभोग का मनोरथ किया गया, जिसका प्रबन्ध महाराजश्री की देख-रेख और आज्ञानुसार हुआ। रावजी मेघसिंहजी ने महाराजश्री को विदा करते समय जमीन भेट की और उसका ताम्रपत्र लिख दिया ❀।

मैं कीसी वकत वद हो जावैगे तो उस वकत खास हमारी जानिव सै मदिरजी के खरचा का पुखता वदोवसत करेंगे ओर हमसे बी न हो सकै तो उस हालत मे आपकूँ वा आपके जानसीन कूँ अखती-यार है के चाहे आप श्रीठाकुरजी म्हाराज ममदूह कूँ यहाँ राखै चाहै ओर कहीं जीहाँ आप चाहै वहाँ पधरा ले जावै उस वकत हम मुजाहम न्हीं होंगे।

१९६० मी० आसोज सुद १३ रवीवार मु० ता० ४ अक्तूबर सन् १९०३ ईसवी।

द० गंगाबकस द० लाला सुखदेव मा०हुकम कै लिखा गया।

कितने ही वर्ष बाद महाराजा अलवर की अभिरुचि बदल जाने से यह मन्दिर राज्य मे जब्त कर लिया गया, जिसकी पुनःप्राप्ति के लिये कांकरोली से प्रयत्न किया जा रहा है।

❀ ता० नं० ४९ श्रीव्रजगोपालजी श्रीसुदर्शनजी

दसगत रावत सवाई मेघसिंह का
हात का रामसही का वदल

स्वस्तिश्री काँकडोलीजी श्रीश्रीश्रीगोसवामीजी श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीबालक्रसनजी माहाराज के चरणारवन्दो में वेगु से सेवग रावत सवाई मेघसींगजी की साष्टाग डंडवत मालम होवे अप्र च वेगम कुँवर अनोपसिंघ का जनेव हुवो ओर राज की आग्या से अठ छुप्पन भोग हुवो जीमराज को पदारवो हुवो जी म ईं मुजब ज्मीं भेट करी गई··· • ······ ······

१०० कवर अनोपसींघ जनेव लीदी जीवगतऊपदर १०० सो की गाम चेची मे। ७० वोर को कुडो पीवल बींगा १० दस कर नानज हेमाव्रत ३० रेवाडी का कुडामद थी पीवल ज्मी बी० ६ कर वलव्रत साकलोद ५ का पाच की जीरा रुपया ३० तीस • • ·· ··
• ··· • ······ ····· ·· १०० अखरे रुपया चीतोडी • ··· ·········

५० वदा की भेट म कुडो १ गाम कसोर पुरा मे धाकड जेचन्द का नाम को कर धाकड रामचन्द पीपडो। ४६ पीवल बी० ६।४ द्र. रु० ५।४ अक साखी बी० २।।४ अखरे पचास चीतोडी

१५० जम रुपय्या डोडसो का ऊपत की जमीं राज के भेट करी ऊप्र लखी मुजब जा काकडोली

की सवारी बडी धूमधाम से निकाला करते थे। पर अभी तक यहाँ उसके लिये कोई ऐसा स्थान नहीं था। इस स्थान में एक ही वर्ष उत्सव हो पाया था कि द्वितीय वर्ष जलसा की तैयारी मे वहाँ अग्नि का प्रकोप हो गया, जिसकी वरणी बैठाकर शान्ति की गई।

इनके पितृचरण महाराज श्रीगिरिधरलालजी ने 'विट्ठल-विलास वाग' मे मंदिर वनवाने का उपक्रम किया था, जिसके लिये प्रतिवर्ष सुविधानुसार व्यय किया जाता था। वे चाहते थे कि—उनके सामने ही यह मदिर तैयार हो जाय और वहाँ श्रीप्रभु को पधराकर विशाल छप्पन-भोग का मनोरथ किया जावे, पर उनकी यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी थी। उनके अनन्तर इन महाराजश्री के समय मे भी पद्मावती माजी महाराज ने अपने पति की इच्छानुसार उक्त कार्य चालू रक्खा। सं० १६३५ तक इस मदिर के तैयार होने मे १२,५०० रुपया लगा था। सं० १६४३ श्रावण सुदी १३ के दिन इसकी वास्तु-शान्ति हुई।

इसी वर्ष आश्विन कृष्ण १० के दिन छप्पनभोग के मनोरथ के लिये श्रीद्वारकाधीश प्रभु 'विट्ठल-विलास वाग' मे पधारे। इस समय महाराजश्री ने वैष्णववर्ग को दर्शनार्थ आहूत कर उनके लिये सब प्रकार का प्रबन्ध किया। बाग मे प्रभु के विविध मनोरथ और छप्पनभोग के दर्शन के लिये महाराणा फतहसिंहजी से विशेष आग्रह किया गया, जिससे वे आश्विन शुक्ल १३ के दिन उदयपुर से कांकरोली आये। इसी दिन वडे अपूर्व ढंग एवं सुव्यवस्था के साथ छप्पन भोग का मनोरथ हुआ *, जिसमें हजारों यात्रियों ने दर्शनों का आनन्द प्राप्त किया। महाराणा ने

* काशीवासी श्रीकृष्णलालजी (रससिन्धु कवि) ने छप्पनभोग की सवारी का एक कवित्त बनाया था, जो इस प्रकार है—

> चलत निसान आगे घोड़ा और हाथी तापै साँडनी-सवार भागे सजे खूब वेस हैं,
> कहै 'रससिन्धु' चारु नालकी हू पालकी हू महाजान जामजान देखे सब देस हैं।
> कोतल कतार घोड़ा वाजा अँगरेजी साथ पलटन सिपाही सो अति ही सुभेस हैं,
> पीछे झुड हाथिन के वहुत सवार घोडे, विट्ठल-विलास मे पधारे द्वारकेस हैं।

"इसी छप्पनभोग मे आर्य-कुल-कमल-दिवाकर हिन्दुपति महाराणा श्रीफतहसिंहजी उदयपुराधीश पधारे थे। गोस्वामीजी ने श्रीमहाराणा से नवनीतजी का भी परिचय कराया। उस अवसर पर श्रीमहाराणा की प्रशस्ति मे नवनीतजी ने यह कवित्त भेट किया, जिसके पुरस्कार मे १०१ सरूपशाही रुपये महाराणाजी की ओर से मिले—

> 'प्रगट प्रतच्छ तच्छ कुहर-कलेस काट, लच्छ-लच्छ कज-दीन मजु भे प्रकाशवान,
> चक्रवाक अच्छ खोल लोल भे विहार किये, दच्छ-भौर दारिद हटायो कर सुद्ध सान।
> स्वच्छ ह्वै सुरच्छन की पच्छ भये द्वारकेस, स्वच्छता हटाय वैन करत पियूष दान,
> पूरव उदयपुर मे उदयो अनन्त आज फतेहसिंह दूलह दिनेस सो विराजमान।'

'पद्मराग' (स्व० प० पद्मसिंहजी शर्मा रचित)"

भी इस उत्सव की सामग्री के लिये १००० रु० भेट किया। दीपावली का उत्सव भी बाग मे किया गया और अन्नकूट के दिन श्रीप्रभु यहाँ से नाथद्वारा पधारे। इस प्रकार कार्त्तिक शु० २ शुक्रवार के दिन प्रभु को बाग से पुन. अपने मन्दिर मे पधराकर महाराजश्री ने अपने पिता गिरिधरलालजी की आन्तरिक अन्तिम अभिलाषा की पूर्ति की।

सं० १६४५ कार्त्तिक सुदी १२ को महाराजश्री ने मंदिर के आगे भव्य विशाल दरवाजा (नगारखाना) की नींव डालकर उसे बनवाया, जिससे मंदिर की शोभा चौगुनी हो गई। यहाँ पहिले कच्चा दरवाजा तो था, पर चालू 'नगारखाना' नहीं था। सं० १६४१ मे जब बेगूँ रावजी सकुटुम्ब दर्शनार्थ कांकरोली आये, तब उन्होंने अपने ठिकाने के 'किशोरपुरा' गाम की आमदनी इस नगारखाने के सालाना खर्च के लिये भेंट कर दी थी। सं० १६५४ मे उस्ता मगनलाल की देख-रेख मे पांडे भगवानदासजी की तरफ से दरवाजे की छतरियाँ तैयार कराई गई, और उन पर सोने के कलश चढ़ाये गये।

सं० १६५१ फाल्गुन शु० १३ के दिन श्रीद्वारकाधीश प्रभु को महाराजश्री ने पुन. विट्ठल-विलासबाग मे पधराया। होली तथा डोल के उत्सव के बाद चैत्र कृष्ण १० के दिन द्वितीय छप्पनभोग का मनोरथ हुआ। सं० १६५२ चैत्र सुदी २ के दिन प्रभु बाग से वापिस कांकरोली के मंदिर मे पधारे। इस बार भी बाग में अन्य मनोरथ किये गये, पर गोपाष्टमी का उत्सव चैत्र सुदी १३ के दिन गोवर्द्धन-चौक मे हुआ। 'सिंह-पोल' के आगे सीढ़ियों पर भव्य चाँदी के बॅगले मे विराजमान श्रीप्रभु के आगे गोशाला की समस्त गाये सज-सिंगार कर चौक में हाजिर की गई, और हजारों नर-नारियों ने इस अभूतपूर्व मनोरथ के दर्शन किये।

अकाल और प्लेग के समय साहाय्य दान

"स० १६५६ में मेवाड़ मे भीषण अकाल पड़ा जिसका कारण समय पर वर्षा का न होना था। बोई हुई फसल के बिलकुल सूख जाने से अनाज का भाव बहुत ऊँचा चढ़ गया, इस कारण गरीब लोग शाक, पात एव वन्य पशु आदि खाकर ही निर्वाह करने लगे। घास के अभाव मे उन्होंने पशुओं को हथियाथूहर के पत्ते और दरख्तों की छाले खिलाना शुरू कर दिया। बहुत-से क्षुधातुर मनुष्यों ने अपने बच्चों को भी बेचकर पेट भरना शुरू कर दिया, जिससे राज्य में सर्वत्र हाहाकार मच गया। ऐसे संकट के समय महाराणा ने अपनी गरीब प्रजा को बचाने की यथासाध्य चेष्टा की। बाहर से अन्न मँगाकर खैरातखाने खोले, और इमदादी काम जारी किये गये। यथासाध्य व्यापारियो को मदद दी गई। परंतु ये सब उपाय निष्फल हुए। इस घोर दुर्भिक्ष मे लाखों मनुष्य और पशु मर गये, और मेवाड़ की बहुत हानि हुई [*]।"

* उदयपुर रा० इति० पत्र ८४६।

इस अकाल के समय में चारो ओर की प्रजा की रक्षा के लिये महाराजश्री ने अपना बहुत सा द्रव्य व्यय किया। बाहर से अनाज मॅगवाया जाने लगा। कांकरोली में सायंकाल होते भात और गेहूँ की घूघरी तैयार कराई जाती और सूरजपोल दरवाजे से लेकर आसोटिया तक भुखमरों को पंक्तिवार बैठाकर प्रतिदिन वितरण की जाती थी। रात्रि मे इस प्रकार अन्न वितरण कराने के आंतरिक हेतु से कई भले घर के आदमी भी क्षुधा शांत कर अपने जीवन की रक्षा कर पाये, जो प्रतिष्ठा के ख्याल से दिन मे किसी के आगे अपना हाथ पसार नहीं सकते थे। यद्यपि इस प्रकार महाराजश्री ने बहुत से अपाहिजों, बालकों तथा अनाथ स्त्रियों और मनुष्यों की रक्षा की, पर दुर्भिक्ष ने जो तांडव नृत्य दिखलाया, उसकी याद आज भी लोगों को विकल कर देती है।

"दूसरे वर्ष यथेष्ट वृष्टि होने से फ़सल तो अच्छी हुई, पर अच्छी तरह पक भी नहीं पाई थी कि लोगों ने उसे खाना आरंभ कर दिया, जिससे हैज़ा, पेचिश आदि रोगों की शिकायत उठ खड़ी हुई। इस अकाल और बीमारियों से स० १६४७ मे मेवाड़ मे जो जन-संख्या १८४५००८ थी, वह घटकर दस वर्ष में सिर्फ़ १०१८८०५ रह गई * ।"

इसी प्रकार स० १६६१ मे मेवाड़ मे प्रथम बार प्लेग का भयंकर प्रकोप होने पर महाराजश्री ने जनता की बहुत कुछ रक्षा का प्रबंध किया। यह रोग पहिले कोठारिये के पास राजियावास नामक गॉव मे शुरू हुआ और शनैःशनैः सारे मेवाड़-राज्य मे फैल गया। राज्य की ओर से हिदायतें जारी की गईं, पर लोगों के ध्यान न देने से मेवाड में हजारों आदमी प्रतिदिन मरने लगे। इस भयंकर बीमारी ने कांकरोली पर भी अपनी दृष्टि डाली और यहॉ भी हजारों मनुष्य मरे। प्रायः सभी लोग बाहर खेतों मे जा बसे, केवल श्रीद्वारकाधीश प्रभु ही कांकरोली मे विराजमान रहे, और उनकी सेवा-पूजा यथावस्थित इसी मन्दिर मे होती रही।

सं० १६६३ मे महाराजश्री ने प्रभु की सेवा के सौकर्य के लिये मंदिर के पीछे बालभोग की विशाल इमारत बनवाई। जिसके दूर से ही देखने पर कांकरोली और उसके मंदिर की शोभा चतुर्गुण होकर दृष्टिपथ मे आने लगी। श्रावण शु० १३ के दिन इसकी वास्तु-शान्ति की गई।

इस प्रकार महाराजश्री के समय मे कांकरोली की अच्छी श्रीवृद्धि हुई। यू० सी० आर० की लाइन खुलने पर कुछ समय के बाद सनवाड स्टेशन का नाम महाराजश्री के परामर्श से जन-सुविधा के लिये 'कांकरोली रोड' रक्खा गया और कांकरोली में पोस्ट-आफिस क़ायम किया गया। स्थानीय राजप्रासाद का नक़शा इन्हीं की इच्छानुसार तैयार होकर उसका अधिकांश भाग इन्हीं की उपस्थिति मे पूरा हुआ था। यह दर्शनीय होने के साथ मेवाड के ठिकानों मे

* उदयपुर रा० इति० पत्र ८४६।

सबसे अधिक उच्च एवं भव्य तथा विशाल भवन है। यात्रियों की सुविधा के लिये कांकरोली में धर्मशालाओं का निर्माण कराकर और प्रत्येक आगत यात्री को निःशुल्क महाप्रसाद मिलने की व्यवस्था कर महाराजश्री ने सम्प्रदाय मे एक अनुपम आदर्श की स्थापना की। जहाँ तक ध्यान है, यात्रियों के लिये विना मूल्य प्रसाद मिलने का सौकर्य भारत के किसी भी देवस्थान में नहीं है। महाराजश्री ने प्रभु की सेवा के लिये कांकरोली तथा निझरणा नामक स्थान मे विशाल गोशालाएँ वनवाई और महाराणा से निवेदन कर गोचर भूमि के लिये निझरणा का जंगल—जिसे वीडा कहते हैं—लिया। स्वकीय ग्रामों में शासन की देख-रेख के लिये समय-समय पर जाकर किसानों की पुकार सुनी तथा उनके कष्ट दूर किये। महाराजश्री के समय मे ही नियमित ज्युडीशियल कोर्ट और पुलिस की स्थापना की गई, जिससे प्रजा की रक्षा और न्याय की सुविधा हुई।

सं० १६६४ मे महाराजश्री की धर्मपत्नी श्रीमती सौन्दर्यवती वहूजी—सम्प्रति श्रीमाजी—महाराज के सीमन्त प्रस्ताव के लिये वैशाख वदी अमावस्या के दिन गोवर्द्धन-चौक मे एक विशाल मंडप का मुहूर्त किया गया। वहुत समय के वाद ऐसा अवसर आने के कारण महाराजश्री ने इस प्रस्ताव को वडे अच्छे ढंग और शान-शौकत के साथ किया। जिसमें अधिक संख्या में जातीय वन्धु एकत्र हुए, और कई गायक-गायिकाएँ आमन्त्रित की गईं। कहते हैं—इस अवसर पर सूरत का प्रसिद्ध 'रजाक वैन्ड' भी वुलाया गया था। वड़े उत्साह के साथ इस प्रस्ताव के सम्पन्न हो जाने पर आषाढ़ कृष्ण ६ के दिन महाराजश्री के प्रथम पुत्र का प्राकट्य हुआ। वड़ी धूमधाम के साथ उनकी छठी और वरही का प्रस्ताव हुआ और वालक का नाम 'श्रीद्वारकेशलालजी' रक्खा गया। इसी वर्ष महाराजश्री ने श्रीप्रभु के शय्या-मंदिर की दीवार, छत तथा दरवाजे आदि मे कॉच और उस पर चॉदी की फ्रेम का काम कराया, जिसमें २५५८ तोले चॉदी लगी और २५३२ रु० के लगभग खर्च हुआ।

श्रीमथुरेशजी का उत्सव

सं० १६६५ में कोटास्थ प्रथम पीठाधीश्वर गो० श्रीरणछोड़लालजी महाराज ने श्रीमथुरेशजी को नाथद्वारा वड़ी धूमधाम के साथ पधराया। उक्त महाराजश्री की इच्छा थी कि—श्रीनाथजी के पास अधिक से अधिक स्वरूप पधराकर सव प्रकार के मनोरथ किये जायँ। परन्तु श्रीनाथजी के पास श्रीमथुरेशजी, श्रीविट्ठलनाथजी तथा श्रीद्वारकाधीशजी और श्रीनवनीतलालजी ये ४ स्वरूप ही पधार सके। अस्तु उन्होंने नाथद्वारा मे विविध मनोरथ कर अपने सद्विचार को कार्यरूप मे परिणत किया। कार्त्तिक मास मे नाथद्वारा मे अन्नकूट का उत्सव हुआ। जिसमे श्रीनाथजी के पास मथुरेशजी, विट्ठलनाथजी, द्वारकाधीशजी तथा नवनीतलालजी ये चार स्वरूप पधारे। यहाँ कोटा के

तिलकायित गो० श्रीरणछोडलालजी महाराज ने श्रीनाथजी तथा नवनीतलालजी के यहाँ मथुरेशजी के विविध मनोरथ किये। लालबाग मे भी दोनों स्वरूपों को पधराकर मनोरथ किये गये।

इस पुण्य आयोजन के बाद बालकृष्णलालजी महाराज ने रणछोड़लालजी महाराज से मथुरेशजी को द्वारकाधीश के पास कांकरोली पधराने का आग्रह किया, जिसके परिणाम-स्वरूप मार्गशीर्ष ४ के दिन मथुरेशजी सवारी के साथ कांकरोली पधारे। महाराजश्री ने बडे उत्साह और हर्ष के साथ सोने-चाँदी के फूल बरसाकर प्रभु को मन्दिर मे विराजमान किया। इस समय दर्शन करने के लिये उदयपुर से महाराणा फतहसिहजी भी कांकरोली आये। उन्होंने कांकरोली में सम्पन्न हुए मनोरथों के दर्शन किये और सेवार्थ द्रव्य भेट किया। कांकरोली और कोटा के दोनों तिलकायितों ने बडे हर्ष के साथ दोनों स्वरूपों की सेवा कर विविध मनोरथ किये। मार्गशीर्ष शु० १२ के दिन मंदिर में गोवर्द्धन-पूजा के चौक मे मंडप में दोनों स्वरूप विराजे और दीपावली का मनोरथ हुआ। इस प्रकार कांकरोली में द्वारकाधीश के साथ मथुरेशजी ग्यारह दिन तक एक ही सिहासन पर विराजे और दोनों स्वरूपों की साथ ही सेवा हुई। यहाँ से मथुरेशजी पुन नाथद्वारा पधारे। मार्गशीर्ष शुक्ल १४ के दिन द्वारकाधीश भी नाथद्वारा पधारे और वहाँ छप्पनभोग का मनोरथ लालबाग मे बडे समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। पौष कृष्ण ७ के दिन मथुरेशजी से विदा होकर द्वारकाधीश प्रभु कांकरोली पधारे।

इस प्रसंग मे तिलकायित गोवर्द्धनलालजी ने जब नवनीतलालजी के उक्त छप्पनभोग के उत्सव मे द्वारकाधीश को नाथद्वारा पधराने का आग्रह किया, तब महाराजश्री ने यह कहकर निषेध कर दिया कि—नवनीतलालजी यदि कांकरोली पधारें, तो हमारे प्रभु नाथद्वारा पधार सकते हैं। समय की स्वल्पता के कारण अंत मे यह निश्चय हुआ कि—द्वारकाधीश के मन्दिर नाथद्वारा मे ही नवनीतलालजी को पधराकर उत्सव किया जाय और बाद मे द्वारकाधीश भी उनके छप्पनभोग के मनोरथ के लिये लालबाग मे पधारें। फलत महाराजश्री ने अपने मंदिर मे नवनीतलालजी और द्वारकाधीश का साथ मे मनोरथ किया। यहीं तिलकायित गोवर्द्धनलालजी महाराज ने सब स्वरूपों को छप्पनभोग का निमंत्रण देकर पधारने का आग्रह किया, जिसके बाद लालबाग मे तीनों स्वरूपो का छप्पनभोग का मनोरथ किया गया, और बाद मे नवनीतलालजी के मंदिर मे भी सब स्वरूपों के मनोरथ समाप्त हो जाने पर महाराजश्री ने द्वारकाधीश को कांकरोली पधराया।

स० १९६६ वैशाख कृष्ण ७ के दिन महाराजश्री ने विट्ठल-विलास बाग मे बड़ी सजावट

के साथ द्वारकाधीश तथा मथुरेशजी का खसखाना का मनोरथ किया, जिसमे रायसागर से नहर लाकर खूब जल भरवाया गया था। इस समय मथुरेशजी पुन कांकरोली पधारे और यहाँ से वे कोटा गये थे।

विद्वत्सम्मान और हिंदी-साहित्यिक प्रचार

महाराजश्री ने सं० १६५० चैत्र कृष्ण ३ के दिन काशी के गोपाल-मंदिर मे समस्त विद्वानों की एक महती सभा की, और सभी विषय के पंडितों से विविध विषयों पर, मनोविनोद के लिये, शास्त्र-चर्चा सुनी थी। उन्होंने तथा उनके भाई जीवनलालजी महाराज ने सभा मे अपनी विबुध-प्रश्रय वृत्ति का अच्छा परिचय दिया, तथाच उपस्थित विद्वानों का गन्धाक्षत, माला से पूजन कर प्रत्येक को आठ-आठ रुपया, धोती, उपरणा, प्रसाद और अणुभाष्य की पुस्तके प्रदान की थीं। उस समय की लिखी गई एक नामावली से विदित होता है कि इस सभा मे ११६ पडितों ने भाग लिया था, जिसमे ६२८) रुपया की नकद दक्षिणा, ३४८) रुपया की पुस्तकें और ५८०) रुपया के वस्त्र आदि सब मिलाकर २०००) रुपया व्यय हुआ था।

काशी मे निवास करते हुए महाराजश्री ने हिन्दी-साहित्य को भी विशेष प्रोत्साहित करने का आयोजन किया। वहाँ उन्होंने हिन्दी के तत्कालीन कवियों और विद्वानो का महान् संगठन कर सं० १६५० मे माघ शुक्ल पंचमी के शुभ दिन 'काशी-कवि-समाज' की स्थापना की। महाराजश्री इस समाज के अध्यक्ष, और इनके भाई जीवनलालजी महाराज सभापति तथा बाबू रामकृष्ण वर्मा इसके मंत्री थे। समाज के प्रत्येक मास के अधिवेशन मे स्थानीय तथा बाहर के कवियों की समस्या-पूर्तियाँ तथा स्वतन्त्र रचनाएँ सुनाई जाती थीं। जिसकी सविस्तर मासिक रिपोर्ट महाराजश्री के पास कांकरोली आती थी। महाराजश्री जब काशी पधारते, तब विशाल अधिवेशन होता और इनकी ओर से कवियो को पुरस्कार-वितरण किया जाता था।

इस समाज की प्रथम, द्वितीय एव तृतीय वर्ष तक की वार्षिक समस्या-पूर्तियाँ पुस्तकाकार मुद्रित उपलब्ध होती हैं। इसी समाज की देखादेखी भारत मे उस समय कई कवि-समाज और मंडल स्थापित हुए। इस प्रकार महाराजश्री ने साहित्य को जो प्रोत्साहन दिया, वह हिन्दी-काव्य-जगत् के लिये एक ऋण है। दु ख है कि—स्व० पद्मसिह शर्माजी को छोड़कर हिन्दी के किसी भी इतिहास-लेखक ने महाराजश्री की छिपी हुई इस काव्याभिरुचि पर कुछ भी प्रकाश डालने की चेष्टा नहीं की। महाराजश्री स्वयं भी "कृष्ण" और "कान्ह" इस नाम से कविता करते थे, जिनका संग्रह सरस्वती-भंडार मे है। सं० १६५३ पौष वदी १ (ता० २१ दिसम्बर सन १८९६) के एक विवरण-पत्र के देखने से विदित होता है कि—उस समय इस समाज मे अच्छे-अच्छे करीब १०० कवियों की कविताएँ आया करती थीं। अयोध्या के

के व्रजभाषा-साहित्य के गुरु नवनीतजी ही थे। कविवर रत्नाकरजी ने महाराजश्री की आज्ञानुसार काशी-कवि-समाज के ज्ञान-संवर्द्धनार्थ 'घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर'-नामक पुस्तक बनाई, और स० १६५४ भा० शु० ५ के दिन प्रकाशित कर सदस्यों को बिना मूल्य वितरण की।

इस प्रकार महाराजश्री ने जहाँ संस्कृत के विद्वानों को अपना आश्रय दिया, वहाँ हिन्दी के कवियों को भी उन्होंने विस्मृत नहीं कर दिया। ध्यान रखने की बात है कि—हिन्दी-साहित्य के लिये यह वह समय था, जब इसे संस्कृत के विद्वान् 'भाखा' कहकर पुकारा और हेय दृष्टि से देखा करते थे। इधर उर्दू-फारसी युक्तप्रान्त की राज्यभाषा और लोकभाषा बनती चली जा रही थी। ऐसे समय महाराजश्री ने जहाँ संस्कृतज्ञ-समाज का आदर किया, वहाँ हिन्दी काव्य-कला को भी जीवन प्रदान किया। इसी समय से भारत मे साहित्य-गोष्ठियों का जन्म होने लगा और वे संगठित होकर कार्य करने लगीं, जिससे कई साहित्यिक व्यक्ति महाराजश्री के परिचय मे आये। साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्तजी व्यास, महाराजश्री के भ्राता गो० श्रीजीवनलालजी महाराज के साथ प्रायः प्रदेश मे जाया करते थे। ये उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् उपदेशक और कवि गिने जाते थे। इनकी प्रतिभा और ज्ञान की चारों ओर प्रशंसा थी। जीवनलालजी महाराज के संपर्क के द्वारा इनका परिचय बालकृष्णलालजी से हुआ, और वे दोनों आपस मे अत्यन्त घनिष्ठ हो गये। महाराजश्री ने

आँसू घूँटकर रह जाता हूँ। "प्रीतम के सग ही उमगि उड़ि जैवे कों न, ऐसी अग अंगनि परन्द पंखियाँ दई।" आप ही समझिये, कहाँ तो वह धूमधाम और कहाँ यह सन्नाटा, अस्तु, किया क्या जाय, बेबसी है, देखें, अब कब ईश्वर ऐसा अवसर कृपा कर उपस्थित करता है कि आपका दर्शन-लाभ हो।

साहित्य-सुधानिधि के नम्बर और समस्या-पूर्ति की पुस्तकें अभी इसी कारण से नहीं भेजी कि मुझे यह ठीक निश्चित नहीं है कि इस समय आप कहाँ हैं। यह पत्र अनुमान से काकरोली भेजता हूँ। इसका उत्तर आते ही तत्क्षण सेवा मे भेज दूँगा। साहित्य-सुधानिधि के नवें अक के साथ एक प्रति हिंडोले की सेवा मे भेजी थी। आशा है कि दृष्टिगोचर हुई होगी। कृपा करके सूरसागर जो आपके पुस्तकालय मे है, उसके पदों की गिनती अवश्य कराइयेगा और अपने कथनानुसार पठान सुलतान की कुडलिया का ग्रन्थ भेज दीजिये।

आपका कृपाकाक्षी
जगन्नाथदास

एक बात और आपको सूचित करना आवश्यक है। आपके पत्र से विदित हुआ था कि फोटो और समस्यापूर्ति का व्यय तो पत्र के साथ ही भेजा जाता है और साहित्य-सुधानिधि की सहायतार्थ काकरोली से प्रबंध किया जायगा। पर मेरे पास अभी फोटो इत्यादि कुछ भी नहीं पहुँचा। कहीं डाक मे तो कुछ गड़बड़ नहीं हुई? J N Dass

व्यासजी की विद्वत्ता की कद्र की और स० १६५१ मे काशी मे विद्वानों की महती सभा मे उन्हे 'भारतरत्न' की सम्मानोपाधि और एक सुवर्ण-पदक प्रदान किया*।

महाराजश्री के लिये यदि संक्षेप मे यह कह दिया जाय कि—वे साहित्य, संगीत और कला की प्रतिमूर्ति थे, तो कोई अत्युक्ति न होगी। उन्होने तत्कालीन सभी प्रसिद्ध पुरुषों के परिचय और चित्र तो प्राप्त किये ही थे, पर जिनसे उन्हे मिलने का संयोग नहीं आ पाया, उनके भी चित्र उन्होंने अपने संग्रह मे एकत्रित किये थे।

महाराजश्री की कलाप्रियता

महाराजश्री को चित्र-संग्रह का भी अच्छा शौक था। प्राचीन चित्र, जो कला और इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे, उन्होंने एकत्रित किये थे। कई आवश्यक चित्र महाराजश्री ने स्वयं तैयार कराये थे। आज 'द्वारकेश-चित्रशाला' मे जो विशाल चित्रों का संग्रह है, वह महाराजश्री की कलाप्रियता का परिचायक है। उन्होंने ऐसी कई सुन्दर दर्शनीय अन्यत्र अनुपलब्ध बहुमूल्य वस्तुओं, प्राचीन स्वर्ण-रजत की मुद्राओं, वस्त्रों तथा अलभ्य ग्रन्थो आदि का संग्रह किया था, जिनका एक संग्रहालय 'द्वारकेश-विश्ववस्तु-संग्रहालय' के नाम से सम्प्रति प्रस्तुत किया जा रहा है।

महाराजश्री स्वयं भी कविता करते थे। उनका कविता का उपनाम 'कृष्ण' और कान्ह था। इनके रचित पद, कीर्तन तथा कवित्त विद्यमान हैं। महाराजश्री को उर्दू-फारसी का भी अच्छा परिज्ञान था। शेर और ग़ज़ले बनाना और उत्कृष्ट शायरो की कविता का संग्रह उनका एक साहजिक गुण था। उन्होंने अनेक नाटक भी स्वय अपने हाथ से लिखे थे, जो सरस्वती-भंडार मे विद्यमान हैं। प्राचीन और नवीन कविताओं का संकलन चार श्रेणियों मे किया था, जिसे उन्होने फर्स्ट, सेकन्ड, इन्टर और साधारण क्लास का नाम दे रक्खा था।

महाराजश्री संगीत और वाद्यविद्या के भी प्रेमी ही नहीं, पारगत व्यक्ति थे। अच्छे-अच्छे गवैये तथा रंडियाँ भी उनकी मर्मज्ञता के कायल थे। कांकरोली, मथुरा और काशी तीनो स्थानो मे से जहाँ कहीं महाराजश्री का मुकाम होता था, सभी गुणी जन उनके पास हाजिरी देने आया करते थे। वह भी विशेषता की कद्र कर उन्हे अपना बना लेते थे।

संगीत और नाट्यकला की प्रियता मे महाराजश्री ने बडा भाग लिया था। कहते है—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी से भी उनका अच्छा परिचय था। भारतेन्दुजी के सहयोग अथवा उनके दृष्टिकोण से महाराजश्री ने स्वय एक परिमार्जित नाटक मडली तैयार की थी, जिसमे कला-दृष्टि से अभिनयात्मक ढंग पर विशेष जोर दिया जाता था। 'द्वारकेश-चित्रशाला'

---

* उक्त व्यासजी द्वारा लिखित 'बिहारी-बिहार की जीवनी' (पत्र ६) मे।

कांकरोली में ऐसे तात्कालिक फोटू-चित्रों का संग्रह है, जिसमें महाराजश्री अपने भ्राताओं के साथ नाटकीय वेश-भूषा और भावभंगी से सज्जित खड़े हैं*।

महाराजश्री साथ में अपनी निजी एक गायक-मंडली भी रक्खा करते थे। जिनमें मुख्य गायक श्रीचन्दनजी चतुर्वेद थे। इन्हें निजाम-सरकार ने भी गान-विद्या पर प्रसन्न होकर अच्छा पारितोषिक दिया था। इसी प्रकार चौबेजी गणपतजी लालन उस्ताद आदि वाद्य-विशेषज्ञ महाराजश्री के आश्रित ही थे। जब यह सब मंडली बैठती थी, तब महाराजश्री हारमोनियम बजाते और कभी स्वयं गाते भी थे।

मथुरा-निवासी चतुर्वेद गणेशीलालजी एक लब्धप्रतिष्ठ गायक हो गये हैं, जो जयदेवजी की अष्टपदी और वाल्मीकि-रामायण ही गाया करते थे। इनके गायन पर बडे-बड़े संगीतज्ञ आश्चर्य किया करते थे। कहते हैं—इन पर भैरवजी प्रसन्न थे। एक बार महाराजा नेपाल ने अपने यहाँ बुलाया और संगीत सुनकर इन्हें बहुत-सा द्रव्य दिया था। जिस समय ये मथुरा आये, इनका स्वागत करने लाखों व्यक्ति पहुँचे। अपनी प्रशसा सुनकर इन्होंने सारा रुपया कंगाल, फकीर और साधुओं को दे डाला था। कहने का अर्थ यह कि—ये किसी सेठ, साहूकार और धनी व्यक्ति को कुछ समझते ही नहीं थे, और न किसी के घर जाकर गाना ही जानते थे। ऐसे स्वाभिमानी गुणी ने भी गुणग्राहता से कायल होकर मथुरा में महाराजश्री को अपनी विद्या का चमत्कार दिखलाया था।

इन सब गुणों के साथ महाराजश्री में उत्कृष्ट वक्तृत्व-कला भी विद्यमान थी। बड़ी-बडी धार्मिक सभाओं में नि शंक होकर बोलना उनका सहज गुण था। व्याख्यानवाचस्पति प० दीनदयालुजी इस विषय में इनके विशेष संपर्क में आये थे। महाराजश्री के उत्साह और पूर्ण साहाय्य से ही 'भारतधर्म-महामंडल' की स्थापना हुई थी। इनके समीप मंडल की रिपोट आया करती थी। इन दिनों आर्य-समाज का विशेष जोर था और चारों ओर उसके साथ शास्त्रार्थ की गूँज उठा करती थी। फलत' महाराजश्री का आश्रय पाकर कई उपदेशकों ने घूम-घूमकर सनातनधर्म-सभाएँ स्थापित कीं और धर्म का प्रचार किया।

सं० १९७२ में मथुरा में अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्म-महासम्मेलन का द्वितीय अधिवेशन हुआ जिसमें व्याख्यानवाचस्पति पं० दीनदयालुजी का प्राधान्य था। स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी महाराजश्री उनके आग्रह से सभा में सम्मिलित हुए और कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित किया।

सनातनधर्म-सम्मेलन के बाद यहीं पर अखिल भारतवर्षीय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का

* मथुरा-निवासी जवाहरलालजी चतुर्वेदी के द्वारा विज्ञात।

अधिवेशन हुआ, जिसमे महाराजश्री ने भी सम्मिलित होकर संस्कृत-साहित्य के प्रति अपना उत्कट प्रेम दिखाया। इस समय महाराजश्री का स्वास्थ्य विशेप विगड़ा हुआ था, अत जैसा चाहिये, वे उसमे भाग न ले सके, फिर भी समागत पंडितो और विद्वानों को उन्होने सत्कृत किया था।

एक वार स्व० महाराजा वड़ोदा-नरेश श्रीसयाजीराव की अध्यक्षता मे विशाल धार्मिक सभा हुई, जिसमें सभी धर्म और मतों के व्याख्याताओं को आमन्त्रित किया गया था। इस समय महाराजश्री भी सभा मे पधारे। शु० सम्प्रदाय के प्रखर विद्वान स्व० मगनलालजी शास्त्री एम० ए० और महाराजश्री का पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों पर भाषण हुआ, जिससे श्रोतागण अत्यधिक प्रसन्न हुए, और महाराजा सयाजीराव पर भी महाराजश्री के व्यक्तित्व और विद्वत्ता का अच्छा प्रभाव पड़ा।

महाराजश्री ने जहाँ सनातनधर्म, हिन्दी-साहित्य और गायन-विद्या को प्रश्रय दिया, वहाँ उन्होंने अपने साम्प्रदायिक वैष्णव धर्म का भी खूब प्रचार किया था। श्रीमगनलालजी शास्त्री एम्० ए०, भारत मार्तण्ड श्रीगट्टूलालाजी, शीघ्रकवि भट्ट श्रीनन्दकिशोरजी शास्त्री, साम्प्रदायिक ग्रन्थों के सर्वप्रथम प्रकाशक और संशोधक प० रत्नगोपालजी शास्त्री आदि को महाराजश्री ने एतद्विषयक सहयोग देकर भी वैष्णव-धर्म के उपदेशो का जाल सा फैला दिया था। महाराजश्री के समीप भी एक-दो शास्त्री रहा करते थे, जो अच्छे विद्वान् और शास्त्रार्थी पंडित थे।

इन सब गुणो के साथ महाराजश्री मे मुक्त-हस्त होकर दान देने का भी एक गुण था। इसका परिणाम यहाँ तक पहुँचता था कि—कई वार उन्हे अर्थ-संकोच भी उठाना पडा। यही कारण था कि आगत गुणियों के आदर-सत्कार, अपनी विलासशील प्रकृति एवं अस्वस्थता के कारण ये अंतिम समय मे एक वड़ा ऋण भी छोड गये थे।

महाराजश्री का व्यक्तित्व

जैसा कहा जा चुका है, महाराजश्री अपना पृथक् ही वैशिष्ट्य रखते थे। जहाँ वे परम उदार, चतुर-चिंतामणि और गुणग्राहक तथा रसिक व्यक्ति थे, वहाँ पात्रापात्र का विचार रखनेवाले, नीति-विशारद और गुणी एवं श्रीद्वारकाधीश प्रभु के अनन्य सेवाभिलापी भी थे। जहाँ इनका आदर विद्वान् और कलावन्त करते थे, वहाँ वडे-वडे धनी व्यक्ति भी इनकी दानशीलता देखकर अचंभा करते थे। कवि जहाँ अपनी कविता के लिये इनसे प्रशंसा पाते थे, वहाँ स्वयं इनकी मर्मज्ञता और कविता सुनकर विचार-निमग्न हो जाया करते थे। जहाँ इनका ठाठवाट किसी नरेश से कम नहीं रहता था, वहाँ धर्माचार्य भी इनका स्वरूप और विद्वत्ता देखकर गौरव किया करते थे। जहाँ यह स्वकीय आश्रित एवं

स्वीकृत व्यक्ति का निभाव कर लेते थे, वहाँ न्याय करने मे कभी हिचकिचाते नही थे, फिर भी महाराजश्री के कुछ निकटस्थ व्यक्ति कई मनुष्यों को लोक-व्यवहार मे खटका करते थे। अन्त मे महाराजश्री ने उनका ऐसा त्याग किया, जिसकी उनको त्रिकाल मे भी आशा नहीं थी।

कई वार ऐसे भी प्रसंग आए, जहाँ कुछ लालाटिकों ने महाराणा श्रीफतहसिंहजी के मन मे भी महाराजश्री के प्रति कुछ विषम भाव भरने की चेष्टा की, पर उन्होंने व्यवहार और नीतिचातुर्य से अपनी वही प्राचीन मान-मर्यादा कायम रक्खी और समय पाकर महाराणा के हृदय मे सद्भावना उत्पन्न कर दी। धनी-मानी, सेठ-साहूकारों के साथ राजा महाराजा आदि जिस किसी का भी महाराजश्री से परिचय और सहयोग हुआ, वे सब उनका आदर करते थे। ब्रिटिश गवर्नमेंट की बबई-हाईकोर्ट ने भी अदालत मे किसी भी प्रसंग मे अनिवार्य उपस्थिति की महाराजश्रो को छूट दे दी थी, और प्रसंग आने पर वह कमीशन भेजकर उनका मन्तव्य लिवाया करती थी।

अस्वास्थ्य और गोलोकवास

सं० १९७२ के लगभग महाराजश्री का स्वास्थ्य बिगड़ने लग गया, अत· उन्होंने अपनी यात्रा, प्रचार आदि बंद कर दवा करना प्रारंभ किया, पर उससे भी कोई लाभ प्रतीत नहीं हुआ। मथुरा मे रहकर बहुत-से प्रसिद्ध डाक्टर, नामी वैद्य राधारमणजी आदि से चिकित्सा कराई गई, पर उससे कोई लाभ न हुआ। अवश्यंभावी अन्तिम समय, किसी रोग को निमित्त बनाकर अपना विपैला प्रभाव शरीर पर प्रतिदिन अधिक-अधिक डालता जाता है। महाराजश्री के लिये भी यही चरितार्थ हुआ। अन्त मे स्वकीय वियोग मे समस्त परिवार, राज्यकर्मचारी तथा अपार वैष्णव-समाज को छोड़कर स० १९७३ आपाढ़ वदी ८, तदुपरान्त ९ शुक्रवार को सायंकाल चार बजे श्रीराजाधिराज-मन्दिर मथुरा मे महाराजश्री का नित्यलीला प्रवेश हो गया। उन्होंने इस नश्वर देह का त्याग करते हुए अलौकिक कीर्तिरूप से विद्यमान होकर श्रीद्वारकाधीश के चरणकमलों मे स्थान प्राप्त किया। इनके इस असामयिक निधन से मथुरा नगरी मे अपार शोक छा गया था।

अन्तिम यात्रा मे क्या हिन्दू, क्या पारसी, क्या जैन और क्या मुसलमान सभी सम्मिलित हुए थे। वास्तव मे महाराजश्री के गोलोकवास हो जाने से समाज मे जो स्थान रिक्त हुआ, उसकी फिर पूर्ति नही हो सकी। जो आश्रित थे, वे चरितार्थ चलने के लिये नहीं, प्रत्युत महाराजश्री के सौजन्यपूर्ण व्यवहार के लिये, जो गुणी थे, वे दानवृत्ति से नहीं, अपितु उनकी गुणग्राहकता के लिये और सर्वसाधारण प्रख्याति अथवा धनिक होने से नहीं, वस्तुत· महाराजश्री की सहृदयता के लिये विलाप करते थे। महाराजश्री के इस अवितर्कित गोलोकवास से कांकरोली को तो जिस अवस्था का अनुभव करना पडा, उसका दिग्दर्शन नहीं कराया जा सकता। इस

अप्रिय समाचार से समस्त भारतवर्ष मे एक अप्रत्यक्ष विपाद-घटा छा गई थी, जिसका परिचय सामयिक समाचार-पत्रों से मिलता है❀।

महाराजश्री की और्ध्वदैहिक क्रिया के सम्पन्न हो जाने पर श्रावण शु० १० के दिन उनका परिवार कांकरोली आया। उनके बाद प्राय. एक वर्ष तक उनके ज्येष्ठ पुत्र गो० श्रीद्वारकेशलालजी और तदनन्तर तृतीय पुत्र गो० श्रीव्रजभूपणलालजी महाराज वर्तमान तिलकायित हुए, जिन्होने अपनी पूज्य मातृश्री की देखरेख श्रीद्वारकाधीश की सेवा और ठिकाने का कार्य सँभालकर पुन' सुख-साम्राज्य की स्थापना की।

परिशिष्ट—१

महाराजश्री द्वारा संस्थापित मन्दिर

श्रीवालकृष्णलालजी महाराज वैष्णवों की इच्छा का बडा ध्यान रखते थे। उनके हृदय मे भक्ति-भाव की वृद्धि के लिये वे उपदेश प्रदान कर यत्र-तत्र मंदिर भी बनवाकर ठाकुरजी की सेवा पधरा दिया करते थे। महाराजश्री ने अपने समय मे कई मन्दिरों की स्थापना की, जिनका उल्लेख कर देना आवश्यक है—

१ अजमेर एक स्थान पर चित्र-सेवा स्थापित की। २ खंडवा वालकृष्णलालजी ठाकुरजी का स्वरूप पधराकर मन्दिर बनवाया। ३ चौपड़ा (खानदेश), ४ धार (मालवा), ५ ऊँभा

❀ महाराजश्री के गोलोकवास से कविरत्न नवनीतजी चतुर्वेद को जो हार्दिक दु'ख हुआ, उसकी शब्दात्मक प्रतिमूर्ति इस प्रकार है—

सूखि गयौ कैधौं कामना को कल्पवृच्छ आज, साहित-सुधा को सुधाकर सौ अथै गयो ,
'नवनीत' कैधौं राजनीति को पुनीत नाह, चाह चित रीति प्रीति पथिक पथै गयो।
कैधौं वेद भेद औ मथैया वाकचातुरी को, आतुरी दिखाय 'कान्ह' कविता कथै गयो ,
है कै वालकृष्ण वालकृष्ण ज्यों वियोगिन को छॉड़ि वल कृष्ण बालकृष्ण ज्यों रथै गयो ॥१॥

काह एसो दुर्दिन दिसान मे दिखाई देत, निर्मल गगन धूलि धुवराति धारे हैं ,
'नवनीत प्यारे' नर नारिन की कौन कहै, जीव-जन्तु मानौ सव जग के दुखारे हैं।
मथुरा पुरी में का अमगल सो देखियतु, घनहू तें आज काहे टूटत सितारे हैं ,
आज नित्यलीला के निमित्त बालकृष्णलाल भूतल को त्यागि गऊलोक को सिधारे हैं ॥२॥

मानयुत खान वेदव्यास ज्यों पुरान बॉचि सॉच पुष्टिमारग को ओज सो उभरिगौ ,
'नवनीत प्यारे' राजनीति को पुनीत वृच्छ अच्छन समच्छ सोक दच्छन मे भरिगौ।
हरिगौ सरोज सुख सरस सँगीत ही को, प्रीति परतीति ही को वारिद उघरिगौ।
नेह निरवाहक, सुचाहक सभी को, यह हाय! गुनगाहक जहान तें निकरिगौ ॥३॥

१९४९	माघ सुदी १०	महाराणा फतहसिंहजी उदयपुर से जनाना के साथ आए, और फाल्गुन वदी १ को चारभुजाजी गए।
१९५०	कार्त्तिक सुदी १	बिजोलिया कुँवरजी आए।
,,	माघ कृष्ण ५	देवगढ़ रावजी श्रीकिशनसिहजी आए। मंगलभोग से लेकर सेन तक की सामग्री के लिये द्रव्य भेट किया।
,,	फाल्गुन कृष्ण १३	इंदौर-सरकार हुल्कर की तरफ़ से बाई शोभाबाई की ओर से सिरस्ता की गंगाजल की शीशी और भेट आई।
१९५१	माघ कृष्ण ३	बेगम रावजी श्रीमेघसिंहजी सकुटुम्ब आए।
१९५१	चैत्र कृष्ण ४	कानौड रावजी नाहरसिहजी।
१९५२	वैशाख सुदी ११	बहूजी साहब जेसलमेराजी आए।
,,	श्रावण सुदी १४	अलवरवाले माजी साहब राठौरजी (किशनगढ के बाईजी) शृंगार बाईजी आए।
१९५२	फाल्गुन कृष्ण ३	देवगढ़ से ध्रांगधरावाले रानीजी तथा भँवरबाईजी ने नाम सुना तथा भेट चढ़ाई।
१९५३	वैशाख कृष्ण १४	बिजोलिया रावजी किशनसिंहजी उदयपुर तलवार बँधाने जाते समय आए।
,,	फाल्गुन कृष्ण ११	इन्दौर हुल्कर सरकार की ओर की गंगाजल की शीशी तथा सिरस्ताई भेट आई।
१९५५	माघ सुदी ३	महाराणा तथा राणीजी और कुँवरजी सहित आये।
१९५८	मार्गशीर्ष सुदी २	बेगम रावजी तथा कुँवरजी आये।
,,	पौष सुदी ८	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी उदयपुर जाते समय कंठी बँधाने (नाम सुनने) आये।
१९६०	चैत्र सुदी १३	कोठारिया रावजी श्रीजवानसिंहजी आये।
,,	मार्गशीर्ष वदी ५	आगरया ठाकुर श्रीउग्रसिंहजी नाम सुनने आये। कोशीथलवाले भुवाजी सरस कुँवरबाई (गाम पारडीवाले ठाकुर इन्द्रसिंहजी की ठकुरानी) आये और भेट चढ़ाई।
१९६२	भाद्र कृष्ण १४	वडी सादडी के रावजी आये।
,,	फाल्गुन कृष्ण १	राणागाँव के रावजी के कुँवर रत्नसिहजी की भेट आई।

१८६२	फाल्गुन कृष्ण ३	देवगढ़ माजी साहिब मेरतनीजी की ओर से सोने का हार भेट आया।
१६६३	चैत्र सुदी १३	कानोड रावजी श्रीनाहरसिंहजी और उनके कुँवर केसरीसिंहजी दर्शनार्थ आये और कुँवरजी के जनेऊ की पहिरावनी आदि भेट की।
,,	श्रावण कृष्ण ३०	विजोलिया रावजी किशनसिंहजी की तरफ से भेट।
१६६४	कार्त्तिक सुदी ६	विनौता रावजी श्रीविजयसिंहजी आये।
१६६४	पौष कृष्ण १४	उदयपुर महाराणा के दादीजी तथा माजी साहब आये।
१६६५	मार्गशीर्ष सुदी ११	उदयपुर महाराणा फतहसिंहजी मथुरेशजी तथा द्वारकाधीश के मनोरथ के दर्शनार्थ आये और पौष कृष्ण ३ के दिन मनोरथ के लिये ६३२१ रु० भेट किया।
,,	,, १२	विजोलिया रावजी आये।
,,	,, १३	महाराणा ने चि० श्रीद्वारकेशलालजी को पैर में सोना के लंगर भेट किये।
,,	पौष बदी ३	महाराणा साहब ने मनोरथ के दर्शन कर विदा होते समय भेट की।
,,	फाल्गुन सुदी १०	बड़ी सादड़ी के राजराणा श्रीदुलहसिंहजी ने कंठी बँधवाकर नाम सुना और भेट की।
,,	चैत्र वदी २	खिड़कीपुर के राणाजी जोधपुरीजी की तरफ से भेट आई।
,,	चैत्र कृष्ण ६	बानसी रावजी श्रीतखतसिंहजी आए।
१६६६	चैत्र सुदी १	मोरवी दरबार सर वाघजी बहादुर आए और भेट की।
,,	,, १५	देवगढ़वाले माजी मेरतनीजी साहब आईं।
,,	आश्विन सुदी ७	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी आये और कंठी बँधवाकर भेट चढ़ाई।
,,	पौष सुदी १५	बदनौर ठाकुर श्रीगोविन्दसिंहजी आए।
१६६७	वैशाख वदी ३०	बनेड़ा राजाजी श्रीअमरसिंहजी की भेट आई।
,,	आषाढ़ वदी २	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी आए।
,,	श्रावण सुदी ८	बड़ौदा गायकवाड़ सरकार की ओर से गाम सारंजा की सालाना राजभोग की सामग्री के १२११ रु० आए।

१९६८	ज्येष्ठ कृष्ण ३	आउयावाले रानीजी श्रीराजकुँवरबाई तथा घानोरावाले रानीजी (प्रतापकुँवरबाई) आए।
,,	,, ,, ८	देलवाड़ा राज श्रीमानसिंहजी आए।
१९६८	ज्येष्ठ कृष्ण ६	देवगढ रावजी विजयसिंहजी आए।
,,	श्रावण सुदी ११	भींडर महाराज श्रीमाधवसिंहजी आए।
,,	भाद्रपद सुदी ११	भरतपुर महाराजा श्रीकिशनसिंहजी सकुटुम्ब। आये।
,,	चैत्र बदी ४	खिलचीपुर महाराज के दादीजी तथा उनके भतीजा आए।
१९६९	प्र० आषाढ़ शु० १५	कानोड रावजी नाहरसिंहजी हरिशरण हुए सो भेट तथा घोड़ा आया।
,,	भाद्रपद कृष्ण ३०	देवगढ़ रावजी विजयसिंह के माजी महाराज आए।
,,	कार्त्तिक कृष्ण १०	मनाय राजाजी श्रीशार्दूलसिंहजी आए।
,,	फाल्गुन कृष्ण ६, ७	महाराणा फतहसिंहजी आये। उस समय पुन्याहवाचन महाराजश्री ने किया। महाराणा के दोनों बाईजी तथा श्रीराणाजी तथाच महाराजकुमार श्रीभूपालसिंहजी आए। छोटे बाईजी साहब ने १ जोधपुरवाले ने १ हजार का आभरण भेट किया। महाराजकुमार का जन्म दिन फाल्गुन बदी १० को नौचौकी पर हुआ। तब महाराजश्री को पधराये और दूसरे दिन श्रीप्रभु का दिन भर का मनोरथ किया। एकादशी के दिन बिदा होते सभी ने भेट की।
,,	फाल्गुन कृ० १०	भेसरोडगढ़ रावजी आये।
१९७०	ज्येष्ठ सुदी १५	देवगढ रावजी विजयसिहजी आये।
,,	आषाढ़ सुदी ३	माजी साहब श्रीमेडतानीजी (देवगढ़वाले) आये।
,,	मार्गशीर्ष वदी ४	झालरापाटन दरबार श्रीजालिमसिंहजी के रानीजी आये। सोना की लंगर जोडा १ भेट की।
,,	पौष वदी ४	बिजोलिया रावजी पृथ्वीसिंहजी के उनके पुत्र श्रीकेसरीसिंहजी की गद्दीनशीनी के समय भेट आई।
,,	फाल्गुन शु० १५	भदेसर रावजी श्रीभूपालसिंहजी तथा उनके पुत्र श्रीतखतसिंहजी आये।
१९७१	आषाढ़ सुदी १	देवगढ़ रावजी, उनके कुँवर तथा माजी साहब आये।

१९६७	वैशाख वदी ३०	जेसलमेरदरवार के हरिशरण होने पर १ घोड़ा भेट आया।
१९७२	चैत्र सुदी १४	झाबुआ राजाजी उदयसिंहजी आये।
,,	प्र० वैशाख शु० १५	आमेट रावजी श्रीशिवनाथसिंहजी आये।
,,	फाल्गुन शु० १४	आमेट रावजी अर्जुनसिंहजी आये।

प्राचीन रोकड़ और चौपड़ों से यह उद्धरण लिया गया है, जिसके कार्त्तिकादि संवत् और अमान्त तिथि को यहाँ चैत्रादि और पूर्णिमान्त बतला दिया गया है। जो यहाँ दर्शनार्थ आये, उनका उल्लेख है और जिनकी भेट आई, उसका निर्देश किया गया है।



चि० श्रीद्वारकेशलालजी (द्वा० ति०)

(प्रा० सं० १६६४, ति० सं० १६७३, नि० सं० १६७४)

—— ०· ——

चि० श्रीद्वारकेशलालजी का जन्म सं० १६६४ आषाढ़ कृष्ण ६ सोमवार * के दिन कांकरोली मे हुआ था। यह अपने पिता श्रीबालकृष्णलालजी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र थे, और इनकी माता का नाम श्रीसौन्दर्यवती बहूजी महाराज है।

जन्म-सस्कार और शिक्षा

जैसा प्रथम कहा जा चुका है, श्रीद्वारकेशलालजी के अन्य तीन भ्राता और हुए, जिनमे इनसे छोटे श्रीपुरुषोत्तमलालजी का छोटी वय मे ही गोलोकवास हो गया। इनके तृतीय भ्राता इनके अनन्तर कांकरोली के तिलकायित-पद पर प्रतिष्ठित हुए, एवं चतुर्थ स्थानीय श्रीमथुरेशजी के मंदिर के अधिपति श्रीगोपाललालजी तथा मथुरा के श्रीमदनमोहनजी-मंदिर के अधिष्ठाता श्रीगोपाललालजी महाराज के स्थान पर विराजमान हैं।

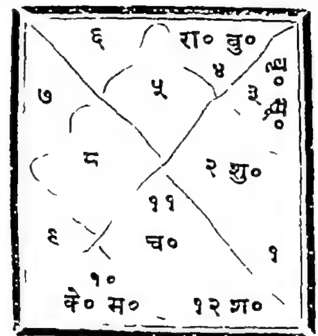
द्वारकेशलालजी के प्राकट्य से महाराज श्रीबालकृष्णलालजी, उनके परिकर तथा वैष्णव-समाज को अत्यन्त हर्ष हुआ, क्योंकि इस पीठ पर तीन पीढ़ी के बाद औरस पुत्र की प्राप्ति हुई थी, अतः स्वभावत उस समय बडा आनंद मनाया गया और श्रीद्वारकाधीश प्रभु का मनोरथ किया गया। छट्ठी और बरही का मंगलमय प्रस्ताव बड़ी सजधज के साथ सम्पन्न हुआ, जिसमे अधिक सख्या मे आत्मीय और जाति-बन्धु एकत्रित हुए थे।

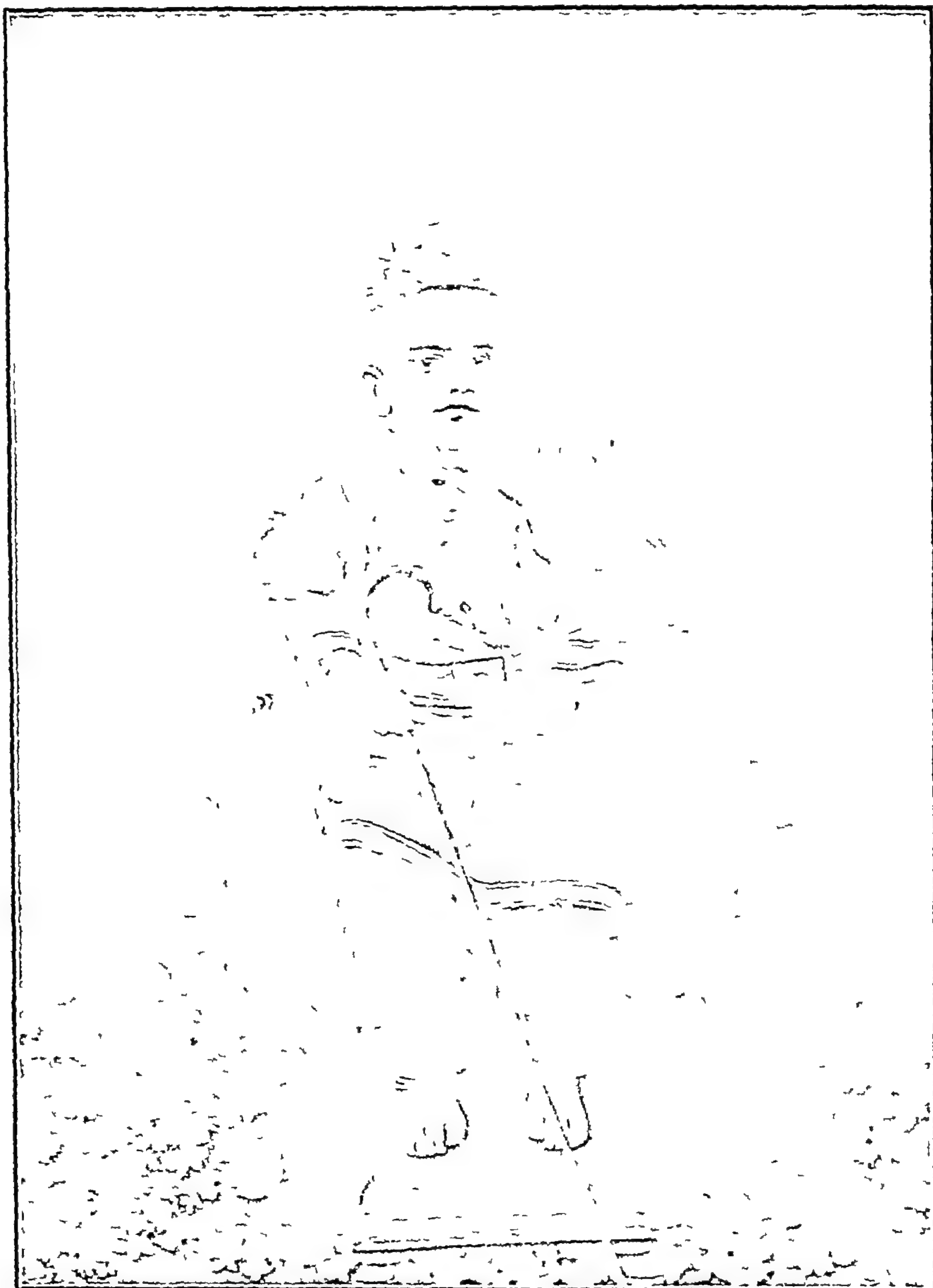
इसी वर्ष माघ वदी ८ के दिन इनके पिता बालकृष्णलालजी महाराज प्रदेश-यात्रा करने पधारे, अतः साथ मे जाने के कारण गुजरात के वैष्णव समाज ने इनके दर्शन कर अपने को कृतार्थ माना।

---

* जन्मकुडली

सवत् १६६४ शाके १८२६ वर्षे प्रवर्तमाने आषाढमासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ चन्द्रवासरे इष्टघटी १०। १५। सू० २। १५। ३५। ८ लग्न ४। १२। ४२। ३२ समये श्रीबालकृष्णप्रथमात्मज चि० श्री-द्वारकेशलालजी जन्म।





चि० श्रीद्वारकेशलालजी

प्रा० सं० १९९२, आषाढ कृष्ण ६

गंगा-फाइनआर्ट प्रेस, लखनऊ

सं० १६६५ मार्गशीर्ष मास मे कांकरोली मे मथुरेशजी के पधारने से श्रीद्वारकाधीश के साथ वड़ा भारी उत्सव मनाया गया, जिसमें दर्शनार्थ उदयपुर से महाराणा फतहसिंहजी आये। गुरुघर मे औरस पुत्र के जन्म होने के कारण महाराणा ने भी हर्ष प्रकट किया, और प्राचीन परंपरा की प्रथा को चालू रखते हुए, चि० श्रीद्वारकेशलालजी के लिये सोने के लंगर की एक जोडी—जिसका वजन ५३। तोला और मूल्य १७७५) था—प्रदान की। सं० १६६६ माघ शु० १२ के दिन महाराज श्रीवालकृष्णलालजी ने इनका चौल-संस्कार बड़े उत्साह से किया, और प्रदेश-परिभ्रमणार्थ पधारे। यह यात्रा सं० १६६७ कार्त्तिक वदी १३ को समाप्त हुई।

राज्य-मान

सं० १६६७ मे इनका अक्षराभ्यास प्रारंभ कराया गया, और यह अध्ययन करने लगे। प्रतिभाशाली और प्रखरबुद्धि होने एवं अभिभावकों की सतर्कता से इनकी विद्या के प्रति अच्छी अभिरुचि हो गई। ये अपनी १० वर्ष की अवस्था में ही लघुकौमुदी तथा पच महाकाव्यों मे से तीन का अध्ययन समाप्त कर चुके थे। साम्प्रदायिक समस्त स्तोत्र इन्हे कंठस्थ थे। श्रीद्वारकाधीश की सेवा मे इनकी इतनी अभिरुचि थी कि कभी सेवा का समय नहीं चूकते थे। जहाँ तक वनता, प्रत्येक सेवा और शृंगार स्वय करते थे। यदि किसी कारण से शंखनाद होने में देर होती और मुखियाजी न आ सकते थे, तो स्वयं स्नान कर सेवा चालू कर दिया करते थे। प्रवन्ध करने और नौकरों-चाकरों की त्रुटि पकड़ने मे इतने सतर्क थे कि लोग इनकी इस वात पर आश्चर्य करते थे। इनमे स्वाभाविक कवित्व-शक्ति भी थी। वालकों के लिये इन्होंने एक गीत वनाया था, जो आज भी कांकरोली में वडे प्रेम से गाया जाता है।

विद्या और सेवा की अभिरुचि

अष्टम वर्ष मे ही चि० द्वारकेशलालजी का यज्ञोपवीत-संस्कार कर देने का इनके अभिभावकों का विचार था, पर ज्योतिषियों के कथनानुसार वह दस वर्ष के अनंतर तक टाल दिया गया। क्योंकि इनका यह समय आयुष्य के लिये अनिष्टकारक वतलाया गया था। अस्तु।

पितृ-वियोग

सं० १६७३ आषाढ़ वदी ६ को मथुरा मे वाल्यावस्था मे ही इनके पितृचरण का गोलोकवास हो गया। जिससे इनकी अभ्युन्नति होने मे वहुत कुछ ठेस लगी। अपने पिता की उत्तर क्रिया समाप्त हो जाने पर श्रावण शु० १० को यह कांकरोली आये। इस समय इनकी वय १० के लगभग थी। वाल्यावस्था होने पर भी इन्होंने श्रीप्रभु की सेवा और मंदिर की व्यवस्था पर अच्छा ध्यान देना प्रारंभ किया, जिससे इनसे आगे के लिये वडी-वडी आशाएँ

बाँधी जाने लगीं। इस समय इनकी मातृश्री का धैर्य, त्याग और सावधानता प्रशंसनीय थी। वे अपनी देख-रेख मे समस्त कार्य इनके द्वारा कराने लगीं।

यज्ञोपवीत-संस्कार के अभाव मे द्विजत्व-प्राप्ति न होने से यद्यपि श्रीद्वारकेशलालजी इस पीठासन पर अभिषिक्त नहीं हो सके, और इसी कारण महाराणा द्वारा भी राजकीय दस्तूर नहीं किया जा सका, फिर भी पिता के अनन्तर प्राप्त अधिकार से यह इस घर के १२वे तिलकायित माने गए।

प्रदेश-यात्रा

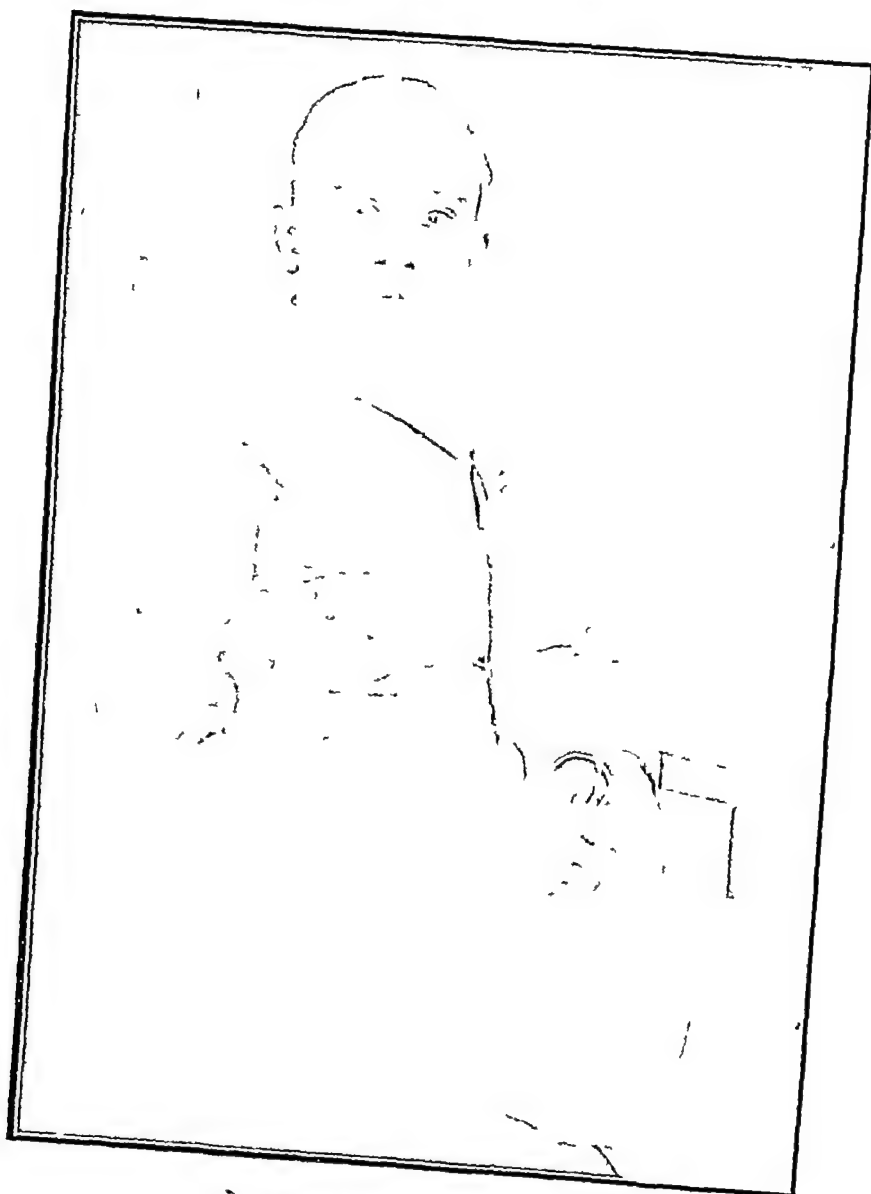
इसी वर्ष माघ शु० १० के दिन द्वारकेशलालजी वैष्णव-समाज के आग्रह एवं आमत्रण पर गुजरात का प्रदेश करने पधारे और खंभात, नार, तारापुर आदि स्थानों मे जाकर वैष्णव-सृष्टि को सँभाला। 'नार' गाम मे जब वैष्णवो की एक विशाल धार्मिक सभा इनकी अध्यक्षता मे हो रही थी, ये स्वयं भी अपनी शक्ति के अनुसार सिद्धान्तों के ऊपर भाषण देने लगे थे—अत कुछ उपद्रवी व्यक्तियों ने इनकी बाल्य वय का अनुचित लाभ उठाकर वैष्णवों मे असन्तोष पैदा करना चाहा। परन्तु साथ के उपदेशक शास्त्रियों ने उन्हे ऐसा मुँहतोड उत्तर दिया, जिससे उन आर्यसमाजियों को विफल-प्रयत्न हो जाना पड़ा। इससे श्रीलालबाबा का जय-जय-नाद होने लगा।

इस प्रकार इस यात्रा द्वारा इन्होंने अपनी छोटी वय मे ही कीर्ति-लाभ किया और श्रीद्वारकाधीश की सेवार्थ द्रव्य संग्रह कर ये सं० १६७४ के प्रारंभ मे कांकरोली आए।

नित्यलीला-प्रवेश

दैव के विधान से इसी वर्ष (सं० १६७४) इन्हें शीतला का प्रकोप हुआ, जिससे स्वास्थ्य खराब होते-होते अन्त मे आषाढ़ कृष्ण १४ सोमवार को इनका भगवल्लीला-प्रवेश हो गया। इनके असामयिक निधन से परिवार और विशेषकर इनकी मातृश्री को जो आन्तरिक विषम वेदना उठानी पड़ी, वह अवर्णनीय थी। एक होनहार प्रतिभा-सम्पन्न बालपीठाधीश्वर के वियोग से वैष्णव-समाज मे भी शोक छा गया। इनके अनन्तर इनके भाई गो० श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज सं० १६७६ मे तिलकायित-पद पर विराजमान हुए, और इनकी मातृश्री ने सब प्रकार का प्रबन्ध अपने निरीक्षण में चालू किया।





गो० श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज
प्रा० स० १९९८ फा० कृ० २

गगा-फाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

दशम प्रकरण

(सं० १९७६ से १९९६ वर्तमानकाल)

——:०:——

श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (त्रयोदश ति०)

(जन्म-सं० १९६८, ति० सं० १९७६ विराजमान)

——:०:——

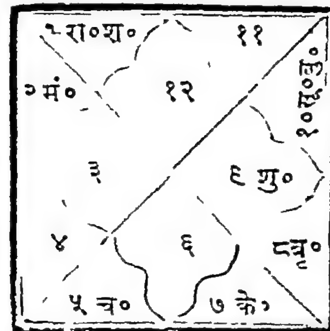
गो० श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (च०) का जन्म सं० १९६८ फाल्गुन कृष्ण २ रविवार* के दिन अहमदाबाद मे हुआ। आपके पिता श्रीबालकृष्णलालजी महाराज उस समय गुजरात का प्रदेश-भ्रमण करने के कारण वहाँ विराजमान थे। ये उक्त महाराजश्री के तृतीय आत्मज हैं। इनसे प्रथम श्रीद्वारकेशलालजी और श्रीपुरुषोत्तमलालजी दो बड़े भाई विद्यमान थे, और बाद मे स० १९७० माघ कृष्ण ६ के दिन छोटे भाई श्रीविट्ठलनाथजी का जन्म हुआ। इस जन्मोत्सव के समय अहमदावाद तथा आस-पास की वैष्णव-सृष्टि मे अतिशय आनन्द मनाया गया। जन्मोत्सव के समाचार से कांकरोली मे भी उत्साह की लहर दौड़ गई और श्रीद्वारकाधीश प्रभु का मनोरथ किया गया।

जन्म, शिक्षा और सस्कार

सं० १९६९ मे इनकी छै मास की वय हो जाने पर महाराज श्रीबालकृष्णलालजी अपनी प्रदेश-यात्रा समाप्त कर भाद्रवदी ६ सोमवार के दिन कांकरोली पधारे। जहाँ जन्म के बाद पहिलेपहिल ही पधारने के कारण पुण्याहवाचन हुआ और नवमी के दिन बडे उत्साह से आपका अन्नप्राशन संस्कार कराया गया। बालकृष्णलालजी महाराज ने समस्त बालकों के लालन-पालन और शिक्षा आदि की ओर विशेष ध्यान दिया था। पर सं० १९७३ मे इनके असामयिक लीला-प्रवेश हो जाने से

---

* जन्मकुंडली
सवत् १९६८ शाके १८३३ प्रवर्तमाने वर्षे फाल्गुन कृष्ण २ रवि-वासरे इष्टघटी ६, ४५ सू० ६, २१, २४, ४० लग्न ११, १२, ४८, २७ समये श्रीबालकृष्ण-तृतीयात्मज श्रीव्रजभूषणलालजी जन्म।



व्रजभूषणलालजी महाराज को ४-५ वर्ष की वय तक ही पितृसुख प्राप्त हो सका। इधर सं० १६७४ मे बडे भ्राता श्रीद्वारकेशलालजी का भी दस वर्ष की वय में गोलोकवास हो गया। ऐसी अवस्था मे वर्तमान महाराजश्री ही माता श्रीसौंदर्यवती वहूजी महाराज, परिजन, पुरजन एवं वैष्णव-समाज के प्रेम और वात्सल्य के केन्द्र हुए। अत सभी समुदाय इनकी उन्नति और भावी आदर्शप्राप्ति की आशा बँधाये हुए श्रीप्रभु से इनके चिरजीवी होने की प्रार्थना करने लगा। यद्यपि इस समय आपके अभिभावक पिता और ज्येष्ठ भ्राता के असामयिक निधन से एक आन्तरिक अशान्ति और चिन्ता व्याप्त हो रही थी, फिर भी आपकी मातृश्री ने अपने पतिवियोग की दारुण व्यथा को हृदय के किसी निभृत कोण में छिपाकर जो धैर्य और गाम्भीर्य प्रकाशित किया, वह एक आदर्श था, और इसका प्रभाव महाराणा फतहसिंहजी-जैसे गंभीर प्रकृति के नरेश पर भी पूर्णरूपेण पड़ा था।

ऐसा होने पर भी महाराजश्री की मातृश्री ने इनकी शिक्षा दीक्षा पर जो ध्यान दिया, वह ऐसी अवस्था और राजवैभव मे बहुत कम माताएँ अपनी लाड़ली सन्तान के लिये दिया करती हैं। महाराजश्री की बाल-अवस्था मे किसी पुरुष अभिभावक की दृष्टि तो थी ही नहीं, केवल मातृश्री की आन्तरिक दृष्टि और सतर्कता थी। इनके लालन-पालन के लिये बालकृष्णलालजी महाराज के कृपापात्र गिरिराजजी चतुर्वेद नियत थे। वे ही दोनों भाइयों की बाल्यावस्था के खेल कूद और रहन-सहन मे अधिकांश ध्यान दिया करते थे। कहना पडेगा कि—इस अवस्था मे उक्त स्वर्गीय चौबेजी ने जिस त्याग-भावना और सेवावृत्ति से कष्ट उठाकर सतर्कता रक्खी, वह अपना विशेष स्थान रखती है।

सं० १६७१ माघ शु० १० सोम के दिन महाराजश्री का चौल-संस्कार और अक्षरारंभ का मुहूर्त सम्पन्न किया गया। प्राथमिक अक्षर-परिचयादि की शिक्षा हो जाने पर कुछ समय बाद हिंदी-भाषा के साथ आपके संस्कृताध्ययन के लिये गोधरानिवासी पं० बापूदेव शास्त्री की नियुक्ति की गई, और शब्दरूपावली, अमरकोश आदि प्रारंभिक लघु ग्रंथ पढ़ाए जाने लगे। बाल्यावस्था मे ही इनके लिये 'पूत के पॉव पालने'वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। जिससे थोडे ही वर्षों मे महाराजश्री को व्याकरण, काव्य, छन्द आदि विषयों के संस्कृत-ग्रंथ और गणित, भूगोल आदि हिंदी के आवश्यक विषय पढ़ाए जाने लगे।

मुन्सरमात का प्रबंध और सुविधा

महाराज श्रीबालकृष्णलालजी के अनन्तर ही मेवाड़-राज्य के नियमानुसार महाराणा फतहसिंहजी ने कांकरोली-ठिकाने पर नाबालिग होने के कारण मुंसरमात क़ायम की। इस समय महाराणा ने जिस सौजन्य और सहूलियत से स्थानीय व्यवस्था बँधवाई और समय-समय पर जिन आव-

श्यकताओं की पूर्ति की, उससे उनके गुरुवर के प्रति श्रद्धा और भक्तिभाव का अपूर्व निदर्शन होता है। महाराणा ने इस समय ठिकाने को पूरा सहारा दिया, और राजकीय कठोर वर्ताव का कभी भी मौका नहीं आने दिया। महाराणा ने बाबू मदनमोहनलालजी और वैद्यराजजी फूलशंकरजी जैसे योग्य व्यक्तियों को ही इस स्थान पर मुंसरिम बनाकर भेजा, जिन्होंने महाराजश्री की मातृश्री के निर्देश के अनुसार कार्य किया और उन्हे कोई असुविधा नहीं आने दी। उक्त दोनों ही स्वर्गीय महानुभाव जितने विद्वान्, सरल स्वभाव, साधु प्रकृति के पुरुष थे, उतने ही त्यागी, गंभीर एवं न्यायप्रिय थे।

महाराणा की इस सौम्य दृष्टि का ही परिणाम था कि—महाराजश्री के बाल्य समय मे ठिकाना और उसकी प्रजा को न तो किसी अन्याय अथवा कष्ट का शिकार होना पडा और न श्रीद्वारकाधीश प्रभु की सेवा मे किसी प्रकार का व्यतिक्रम ही आया। महाराजश्री की इस अल्पवयस्कता के समय उनकी शिक्षा-दीक्षा पर महाराणा ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। वे योग्यतम तिलकायित बन सकें, इसका सारा उत्तरदायित्व उनकी मातृश्री पर ही छोड़ दिया था।

तिलकायितत्व और यज्ञोपवीत-प्रस्ताव

महाराजश्री के पितृचरण के बाद लगभग एक वर्ष तक इनके बड़े भाई श्रीद्वारकेशलालजी इस पीठ के तिलकायित रहे, पर सं० १६७४ मे उनका गोलोकवास हो गया। महाराजश्री की ८ वर्ष की वय हो जाने पर शास्त्रीय नियमानुसार उपनयन का काल आया, जिससे महाराणा ने पूरा सहयोग देकर इस शुभ कार्य को पूरा कराने का प्रबन्ध किया। इधर इस घर के धनी-मानी वैष्णव-समाज ने भी कांकरोली आकर श्रीमाजी महाराज सौन्दर्यवतीजी के आदेशानुसार से सुचारु रूप से उसकी व्यवस्था बॉधी।

सं० १६७६ वैशाख शुक्ल ३ के शुभ मुहूर्त मे महाराणा ने भी कांकरोली पधारकर महाराजश्री को तिलकायित की गादी पर विराजमान कर तिलक और भेट का दस्तूर किया। इसके बाद जुलूस के साथ गोशाला के लिये सवारी हुई, जिसमे महाराणा भी सम्मिलित हुए। वैशाख शुक्ल ५ के दिन मंगलमय मुहूर्त मे महाराजश्री का उपनयन-संस्कार हुआ, और आपके काका गो० श्रीगिरिधरलालजी महाराज बडोदावालो ने गायत्री की दीक्षा दी। इस प्रस्ताव मे महाराणा ने बड़े हर्ष से उपस्थित होकर भिक्षा प्रदान करते हुए भक्तिभाव से भेट रक्खी। महाराजश्री के इस उपनयन-संस्कार के उत्सव मे कई गोस्वामिबालक, सजातीयवर्ग वृत्तेश्वरी, सेठ-साहूकार ठिकाने के रावजी, महाराणा के भाईबन्द तथा पंडित, दर्शनार्थी हजारों वैष्णव एकत्रित हुए थे। इन सबका समस्त स्वागत-सत्कार का प्रबन्ध संस्थान की ओर से किया गया था, जिसकी आज भी प्रशंसा सुनी जाती है। इस समय सनवाड़-स्टेशन पर उतरकर पैदल रास्ते से कांकरोली आना पड़ता था,

अत. स्टेशन और मार्ग में यात्रियों की सभी सुविधा और रक्षा का प्रबन्ध ठिकाने द्वारा उत्तम ढंग से किया गया था। इस यज्ञोपवीत-प्रस्ताव के समय कांकरोली में महाराजश्री का वरघोडा की सवारी निकली, जिसमें अपना राजकीय लवाजमा सम्मिलित कर महाराणा भी महाराजश्री की हाथी की सवारी में उपस्थित हुए।

उपनयन-संस्कार हो जाने के बाद काशीनिवासी पं० काशीनाथजी उपाध्याय ने महाराजश्री को संध्या-वन्दन, नित्यकर्म, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन आदि की शिक्षा दी। यज्ञोपवीत के दिन द्विजत्व संस्कार हो जाने पर महाराजश्री के पितृव्य गो श्रीगिरिधरलालजी महाराज ने श्रीद्वारकाधीश प्रभु के सम्मुख आपको वैष्णव-धर्म ब्रह्मसम्बन्ध की दीक्षा दिया और गोपालमंत्र का अनुष्ठान बतलाया, जिससे वैष्णव-समाज को ब्रह्मसम्बन्ध-दीक्षा देने का अधिकार महाराजश्री को प्राप्त हुआ।

छप्पनभोग का मनोरथ

यज्ञोपवीत-संस्कार के उपलक्ष्य मे महाराजश्री की मातृश्री ने श्रीद्वारकाधीश प्रभु का महान् छप्पनभोग करने का विचार किया, जिसमे महाराणा तथा उनके भाई-बन्धु और हजारों वैष्णवो को दर्शनों का लाभ मिल सके। अत. इसी वर्ष प्रस्तुत मनोरथ के लिये वैशाख शु० १२ के दिन श्रीप्रभु की सवारी ठाट-बाट के साथ विट्ठल-विलासबाग मे पधारी, और वहाँ विविध मनोरथों के बाद ज्येष्ठ कृष्ण ५ के दिन विशाल छप्पनभोग हुआ। उक्त मनोरथ-समारोह के सम्पन्न हो जाने पर ज्येष्ठ कृष्ण ७ को प्रभु की सवारी उक्त बाग से सुन्दर-निवासबाग मे पधारी, जहाँ रेवारीजी की ओर से हिंडोले का मनोरथ कराया गया *।

प्रदेश-यात्रा

महाराजश्री के इस प्रकार तिलकायित स्थान पर विराजमान और उपवीत-संस्कार हो जाने से वैष्णव-सृष्टि को बहुत लाभ हुआ। कारण कि बालकृष्णलालजी महाराज के बाद वैष्णवो को ब्रह्मसम्बन्ध-दीक्षा प्राप्त करने की सुविधा नहीं रही थी, अत. अब वैष्णव-समाज महाराजश्री को अपने-अपने प्रदेश मे पधारने का आग्रह करने लगा। इधर महाराजश्री के पिताश्री अपने अन्तिम समय मे बहुत-सा ऋण छोड गये थे, जिसका कारण उनकी अस्वस्थता एवं दानशीलता थी। इसके बाद यज्ञोपवीत-जैसे

---

* यह बाग और यहाँ के माकान इसी वर्ष मे बनकर तैयार हुए थे। यहाँ एक सफेद पत्थर का ऊँचा हिंडोला बनवाया गया था। यह बाग और मकान रेवारीजी—बालकृष्णलालजी महाराज के कृपापात्र—ने वैष्णवों से अर्थ-साहाय्य एकत्रित कर बनवाया था। वैशाख कृष्ण १३ को इसकी वास्तु-शान्ति की गई थी।

विशाल समारोह में भी द्रव्य का अधिकांश व्यय हुआ था। अतः इसकी पूर्ति के लिये महाराजश्री अपने भ्राता विट्ठलनाथजी के साथ सर्वप्रथम प्रदेश गये, वैष्णव-वर्ग ने महाराजश्री की स्थान-स्थान पर पधरावनी कर पुष्कल द्रव्य भेट किया और धनी-मानी सेठों ने आवश्यक साहाय्य द्रव्य भेट कर ऋण की चिन्ता से उन्हे उन्मुक्त कर दिया। इस समय महाराजश्री के शुभचिन्तक सेठ डोसाभाई विट्ठलदास, अभिभावक फूफाजी महाराज व्रजनाथलालजी तथा मामाजी महाराज गोपालकृष्णलालजी आदि ने ठिकाने के प्रति बड़ी सावधानी रक्खी और सतत प्रयत्न कर उसे शीघ्र ही किसी आर्थिक संकट मे बचा लिया।

यज्ञोपवीत-प्रस्ताव के अनन्तर सं० १६७६ श्रावण शु० ५ के दिन सकुटुम्ब महाराजश्री प्रदेश करने पधारे, और यहाँ वैष्णव-सृष्टि मे धार्मिक प्रचार कर कार्त्तिक कृ० ८ को पाटन से कांकरोली आये। इसके बाद अन्नकूट का उत्सव कर मन्दसोर (मालवा) की यात्रा की।

इस समय से महाराजश्री अपनी माता तथा भ्राता श्रीविट्ठलनाथजी के साथ प्रतिवर्ष प्रदेश-परिभ्रमण करने लगे, क्योंकि अपने घर की वैष्णव-सृष्टि को सँभालना, आर्थिक प्रश्न सुलझाना और श्रीप्रभु की सेवा का यथावस्थित क्रम प्रचलित रखते हुए ठिकाने की आवश्य-कताओं की पूर्ति करते रहना आपके तथा आपके अभिभावकों के सामने सर्वदा से एक समस्या रहती आई है।

जैनियो के मन्दिर का झगडा

नित्यलीलास्थ गो० श्रीबालकृष्णलालजी महाराज एक प्रजाप्रिय शासक थे और वे सभी धर्मानुयायियो की धार्मिक भावनाओं को प्रश्रय दिया करते थे। जिसके फलस्वरूप देवस्थान होने पर भी कांकरोली में मुसलमानो को मसजिद बनाने की इजाज़त मिल गई थी। इसी तरह कुछ समय बाद कांकरोली-निवासी जैनियों की प्रार्थना पर संस्थान मे एक जैन-मंदिर बनवाने की आज्ञा भी नित्यलीलास्थ महाराजश्री ने दी थी। इनके साथ यह शर्त रक्खी गई थी कि—मन्दिर पर न तो शिखर बनाया जाय और न ध्वजा फहराई जाय। इस प्रतिज्ञा के साथ कांकरोली मे कुछ वर्ष पूर्व एक छोटा-सा जैन-मन्दिर बनवाया गया और वहाँ नियमानुसार सेवा-पूजा होने लगी।

सं० १६७६ के ग्रीष्मकाल मे महाराजश्री बुरहानपुर (मध्यप्रदेश) तथा आस-पास के गाँवों मे धर्म-प्रचार करते हुए खँडवा पधारे। इस समय कांकरोली मे एक आन्तरिक उपद्रव उठ खड़ा हुआ, जिससे स्थानीय वैष्णव, व्रजवासी और जैनमतावलंबी जनता मे पारस्परिक तनातनी बढ़ जाने से राजनैतिक विषम परिस्थिति पैदा हो गई, जो 'घुम्मट का झगड़ा' नाम से प्रख्यात हुई। जिसका वृत्तान्त इस प्रकार सुना जाता है—

महाराजश्री की अनुपस्थिति और बाल्यावस्था का अनुचित लाभ उठाने के लिये कुछ जैन-मतानुयायियों में भीतर ही भीतर विचार होने लगा कि—मंदिर का शिखर बनाकर ध्वजा चढा देनी चाहिये। फलत: जाति एकत्रित कर किसी उत्सव के बहाने कांकरोली मे जैनियों का विशाल समुदाय एकत्रित हुआ, और रात्रि मे ही शिखर बनाकर ध्वजा चढ़ा लेने का प्रबन्ध कर डाला गया। सहसा एक दिन प्रात:काल ब्रजवासियों ने देखा, तो जैन मंदिर पर शिखर बनाकर ध्वजा चढ़ाने की तैयारी की जा रही थी।

श्रीद्वारकाधीश के साथ ब्रज से आये हुए ब्रजवासियों की जाति अपनी प्राचीन मर्यादा की रक्षा और ठिकाने की आन रखने के लिये सदा से प्रसिद्ध है। राज्यकर्मचारियों की ओर से जब तक प्रस्तुत विषय मे कुछ कार्यवाही हो, कुछ उपद्रवियों ने बिना परिणाम सोचे एक दम हल्ला बोलकर जैन-मंदिर पर जाकर उसका शिखर और ध्वजा, पताका, तोरण, बन्दवार आदि तोडना और लूटना शुरू कर दिया। इधर परस्पर के मनोमालिन्य, आपस की मारामारी-हाथापाई के अशान्तिमय समय मे किसी कलहप्रिय मनुष्य ने मंदिर में प्रतिष्ठापित पारसनाथजी की मूर्ति भी गायब कर दी, जिससे जैनियों मे खलबली मच गई और बडे भारी उत्पात की आशंका आ खड़ी हुई। स्थानीय कर्मचारियों के आवश्यक रोकथाम करने पर भी हुल्लड़शाही बढ़ती गई और जैनियों की ओर से द्वारकाधीश के मंदिर पर धावा बोले जाने की अफवाह सुनाई पड़ने लगी।

इस आन्तरिक विग्रह का समाचार महाराजश्री के पास खँडवा भेजा गया। महाराणा ने भी सूचना पाते ही आवश्यक सेना-बल भेजकर मंदिर की रक्षा का प्रबध कर दिया और जैनमंदिर को राज्य के नियन्त्रण मे ले लिया। शीघ्र ही महाराजश्री के कांकरोली आ जाने पर उदयपुर से एक कमीशन आया और जाँच-पडताल की जाने लगी। इस विषय में गुरुभक्ति के ख्याल से महाराणा-कहीं पक्षपात न कर बैठे—इस प्रकार की आशंका से जैनियों ने उनकी न्यायप्रियता से विश्वास उठाकर चारों ओर तार भेजकर जैन-समाज मे खलबली मचा दी। इन्दौर के सेठ सर हुकुमचन्द-जैसे धनी-मानी व्यक्ति भी यथेच्छ धन खर्च करके इसका आवश्यक प्रतीकार करने को सन्नद्ध हो गये, और जैनियों की स्पेशल ट्रेन आने का इंतिजाम होने लगा। पर महाराणा ने सघर्ष बढ जाने की आशंका से उन सबका मेवाड मे आना रोक दिया।

इस उत्तेजना का एक कारण यह भी था कि—जैनियों में इस प्रकार का भ्रम फैल गया था कि—कांकरोली के समीप रायसागर के किनारे, पहाडी पर बना हुआ पुराना जैनमंदिर तोडा गया है, जिसे दयालशाह ने सं० १७३२ के लगभग बनवाया था। पर जाँच करने पर विदित हुआ कि—यह गलत है, कांकरोली के निवासी जैनियों ने ही अपनी शर्त तोड़कर एक नये मंदिर मे शिखर बनाया और ध्वजा चढ़ाई थी।

इस वास्तविक रहस्य के प्रकट हो जाने पर वातावरण शान्त हो गया, और बाह्य जैनसमाज की क्षुब्ध वृत्ति शान्त हो गई। इधर आये हुए कमीशन ने जाँच कर उपद्रवियो पर मुकद्मा चलाया, जो कई वर्षों तक चलता रहा। अन्त में वर्तमान महाराजश्री के पुत्र-प्राकट्य के हर्ष मे सं० १९९४ मे जैन प्रजा के आपसी समझौता कर लेने से महाराणा भूपालसिंहजी ने उसे उठा देने की तजवीज कर दी है, ऐसा सुना जाता है। इस प्रकार सं० १९७९ से चले हुए इस विषम वातावरण के सं० १९९४ मे शान्त हो जाने पर कांकरोली की उभयविध जनता मे फिर से सद्भाव और प्रेम का प्रचार हो गया है।

विवाह-प्रस्ताव

सं० १९८० चैत्र शुक्ल ११ के दिन लघुभ्राता श्रीविट्ठलनाथजी के यज्ञोपवीत-संस्कार के अनन्तर महाराज श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज का विवाह-प्रस्ताव नाथद्वारा के तिलकायित श्रीगोवर्द्धनलालजी महाराज के आग्रह से उनकी दौहित्री के साथ निश्चित किया गया। इस समय महाराजश्री की वय यद्यपि १२ वर्ष की थी, और उनका विद्याध्ययन का क्रम प्रचलित था, तथापि मातृश्री के वात्सल्य और नाथद्वाराधीश के अतिशय आग्रह से यह मंगलमय प्रस्ताव निश्चित हो गया और बडे साज और रंग-ढंग के साथ इसकी तैयारियाँ की जाने लगीं।

सं० १९८० वैशाख शुक्ल ४ के दिन नाथद्वारा में महाराजश्री का विवाह बागरोदी व्रजभूषण-लालाजी जयपुर-निवासी की आयुष्मती कन्या से सम्पन्न हुआ। जिसमे वैष्णव-सृष्टि का विशाल समुदाय इस शुभ प्रस्ताव का आनन्द लेने के लिये कांकरोली और नाथद्वारा मे एकत्रित हुआ। इस समय गोवर्द्धनलालजी महाराज और महाराजश्री की मातृश्री ने मन खोल-कर इस शुभ प्रस्ताव को सम्पादित किया, और आगत समाज का स्वागत तथा प्रबन्ध किया।

शास्त्रियो की नियुक्ति और अध्ययन

इसी समय के लगभग महाराजश्री के अध्यापक पं० बापूदेव शास्त्री के कार्यवश कांकरोली छोडकर अपने स्थान पर चले जाने और महाराजश्री के प्रौढ़ अध्ययन की आवश्यकता होने से प्रतापगढ़-निवासी पं० जगन्नाथ शास्त्री काव्य-तीर्थ की नियुक्ति की गई। कुछ समय के अनन्तर प्रतापगढ़ के नरेश द्वारा आह्वान आ जाने पर जब यह भी चले गये, तब संप्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् विद्याभूषण दतिया-निवासी प० बालकृष्ण शास्त्रीजी की नियुक्ति हुई। जिन्होंने दोनो भाइयों को साम्प्र-दायिक पद्धति और सिद्धान्त की शिक्षा देते हुए उनकी दैनिक चर्या का भी क्रम बाँधा। लगभग तीन वर्ष तक अध्यापन का कार्य करने के बाद वृद्धावस्था एव प्रदेश के सतत भ्रमण की असामर्थ्य से उन्हें भी इस स्थान को छोड़कर जाना पड़ा। यद्यपि महाराजश्री की

मातृश्री ने उनका केवल निरीक्षण ही पर्याप्त समझा था, पर दतिया-नरेश श्रीगोविन्दसिंहजी के आग्रह के कारण वे यहाँ निवास न कर सके।

संयोगवश सं० १६८१ के प्रारंभ मे महाराजश्री तथा उनकी मातृश्री के समक्ष इस इतिहास के लेखक का परिचय हुआ। फलत पं० बालकृष्ण शास्त्रीजी के छुट्टी लेकर घर जाने के समय दो-तीन मास के लिये महाराजश्री के अध्यापक-पद पर इस व्यक्ति की नियुक्ति की गई। आगे चलकर कुछ ऐसा सयोग जुडा कि उपदेश, व्याख्यान और अध्यापन की शैली तथा नियमित दिनचर्या आदि की व्यवस्था से सन्तुष्ट होकर महाराजश्री की मातृश्री ने सर्वदा के लिये महाराजश्री के समीप शास्त्री रूप मे इस व्यक्ति की स्थायी नियुक्ति कर दी। कहना न होगा कि—महाराजश्री तथा उनके भ्राता दोनों की विद्याभिरुचि और अभिभावकों की सतर्क-पूर्ण देखरेख से ऐसा फल हुआ, जिससे महाराजश्री की विद्वत्ता की चारो ओर प्रशंसा होने लगी। साम्प्रदायिक तत्त्वज्ञता, व्याख्यान-शैली और व्यवहार-दक्षता आदि सभी गुणों में महाराजश्री ने अपनी छोटी वय से ही योग्यता व्यक्त की, जिससे वे समय पर एक आदर्श न्यायप्रिय, विद्याकला-प्रेमी, उत्तम उपदेष्टा और व्यवहारकुशल विद्वान् और संस्थान के योग्य तिलकायित हो सके। 'मयूर की सन्तति निसर्ग से ही चित्रित हुआ करती है, उसके लिये केवल समय की आवश्यकता होती है', बस यही बात महाराजश्री के लिये चरितार्थ हुई। उनको शिक्षा-दीक्षा आदि के लिये किसी निमित्त की आवश्यकता थी, जिसे पाकर समय ने उन्हे स्वय योग्यता के सिंहासन पर विराजमान कर दिया।

महाराजश्री और उनके भ्राता की अध्ययन-क्रम की विभिन्नता प्रतीत होने पर सं० १६८२ मे किसी द्वितीय सहकारी अध्यापक की आवश्यकता होने लगी। परिणामतः महाराजश्री के मातुलवर्य करंजी श्रीगोपालकृष्णलालाजी महाराज के परामर्श से छै मास के लिये मथुरानिवासी पं० गोपालजी चतुर्वेद की नियुक्ति की गई, और इनके बाद सं० १६८३ मे आफानिवासी प० जटाशंकर शास्त्रीजी को नियुक्त किया गया।

इस समय से उक्त शास्त्रीजी को महाराजश्री के छोट भ्राता विट्ठलनाथजी का और इस लेखक को महाराजश्री के अध्यापन का पृथक्-पृथक् भार सौंपा गया, और साथ ही प्रतिवर्ष होनेवाले प्रदेश-परिभ्रमण मे महाराजश्री के द्वारा धार्मिक उपदेश, कथा, प्रवचन आदि की व्यवस्था की गई।

सं० १६८५ ईस्वी सन् १६२८ मे महाराजश्री ने मथुरा जाकर बनारस-गवर्नमेन्ट-संस्कृत-कालेज की व्याकरण-प्रथमा परीक्षा देकर अच्छे नबरों से उत्तीर्णता प्राप्त की। यद्यपि पीठाधीश्वर की इस प्रकार परीक्षा देने की नवीनता के कारण कई हितचिन्तक कुमन्य

समीपवर्ती महानुभावों ने इसका विरोध किया, फिर भी अभिभावकों की निश्चल वृत्ति से इसमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम न होने पाया। महाराजश्री ने मथुरा हाईस्कूल-केन्द्र में अपने साथ परीक्षा में बैठनेवाले सभी छात्रों को अधिकारी लज्जाशंकरजी के द्वारा पारितोषिक रूप में प्रसाद और द्रव्य बाँटकर अपनी विद्याभिरुचि का परिचय दिया।

इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के बाद महाराजश्री ने व्याकरण मध्यमा और शुद्धाद्वैत-सिद्धान्तों के आकर ग्रंथों का अध्ययन किया। इसके साथ में गणित, इँगलिश, हिंदी-साहित्य आदि का अध्ययन कर अन्य सर्वविध आवश्यक परिज्ञान प्राप्त किया।

प्रदेश-परिभ्रमण

सं० १९८१ के शीतकाल और सं० ८२ के ग्रीष्मकाल में महाराजश्री ने कृष्णगढ़, बीकानेर, साँभर, डाकोर, उमरेठ, ठासरा और नन्दीसर तथा सोत्रालिया और वाडासीनोर की यात्रा और प्रदेश किया। जहाँ आपने धार्मिक जागृति उत्पन्न कर वैष्णव-सृष्टि को सँभाला। स्थान-स्थान पर जनता ने आपका भव्य स्वागत किया और घर-घर पधरावनी आदि कर श्रीप्रभु की सेवार्थ द्रव्य भेंट किया।

सं० १९८३ में महाराजश्री प्रदेश करने बोरसद, बहादरपुर, संखेडा आदि स्थानों में गये, जहाँ वैष्णव-समाज ने आपका जुलूस निकालकर स्वागत किया और कई दिनों तक अपने-अपने स्थानों पर निवास कराकर कथा, उपदेश, व्याख्यानादि का लाभ लिया। इसी वर्ष बहादरपुर में वहाँ की जनता ने श्रीद्वारकाधीश के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया, जिसमें लगभग ७५ हजार रुपया लगाकर उसे भव्य और विशाल बनवाकर महाराजश्री की आज्ञा से उसकी स्थायी व्यवस्था की। वैशाख शु० १५ के दिन नवीन मंदिर में श्रीप्रभु के पधराने का उत्सव महाराजश्री के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। बड़े ठाटबाट से प्रभु की नगर में सवारी निकाली गई और आस-पास से आये हुए हजारों व्यक्तियों को महाप्रसाद लिवाया गया।

इस वर्ष के भाद्रपद मास के अन्त तक बडौदा, भरूच, सोजीत्रा, वसो और उसके आस-पास के छोटे-छोटे गामों में पधारकर महाराजश्री ने धार्मिक उपदेश देकर हजारों नर-नारियों को वैष्णव-धर्म की दीक्षा दी। अन्त में वैष्णवों द्वारा समर्पित सेवा ग्रहण कर कार्त्तिक के प्रारंभ में वे कांकरोली आये। इसी वर्ष पौष मास में सूरत में गो० श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज के द्वि० पुत्र चि० मधुसूदनलालजी का यज्ञोपवीत-प्रस्ताव और नाथद्वारास्थ गो० श्रीदामोदरलालजी महाराज के सभापतित्व में सम्पन्न हुए 'बालकृष्ण शुद्धाद्वैत महासभा' के अधिवेशन में महाराजश्री अपने विद्वानों के साथ सम्मिलित हुए।

सं० १९८४ के ग्रीष्म-ऋतु में महाराजश्री ने बंबई, औरंगाबाद, बीजापुर, वड़नगर बीम-नगर, अहमदाबाद आदि स्थलों के आस-पास प्रदेश किया। औरंगाबाद के पास उन्होंने

प्राचीन विशाल पर्वतीय गुफाओं का निरीक्षण किया और अपने ऐतिहासिक ज्ञान की अभिवृद्धि की। इसी समय से महाराजश्री को ऐतिहासिक गवेषणा और प्राचीन वस्तु-संकलन से प्रेम हो गया, जिसके कारण अब से प्रत्येक प्रदेश मे प्राचीन चित्र, पुस्तक, मूर्तियाँ, मुद्रा और दर्शनीय वस्तुओं का संग्रह किया जाने लगा है।

वड़नगर मे प्राचीन मन्दिर के स्थान पर एक सुन्दर नवीन मन्दिर बनवाया गया, और वैशाख शु० ६ के दिन उसके उद्‌घाटन तथा श्रीप्रभु के पधराने का उत्सव महाराजश्री ने सम्पादित किया। इन सब स्थानों मे इसी घर के मन्दिर कुछ प्राचीन काल और कुछ वर्तमान काल मे प्रतिष्ठित किये गये हैं, जिनका यथास्थान उल्लेख किया गया है। इस प्रदेश मे भी महाराजश्री ने जनता में धार्मिक जागृति पैदा की। अब हम आगे प्रत्येक प्रदेश-यात्रा की इस धार्मिक जागृति और प्रचार का उल्लेख न कर विशेष स्थलों का ही वर्णन करेंगे। इसी प्रकार महाराजश्री की प्रायः प्रत्येक वैष्णव के घर पधरावनी, उनके प्रति स्वागत, भक्तिभाव, आदर-सत्कार का भी विशेष वर्णन न किया जा सकेगा। प्रदेश के प्रत्येक स्थल मे जहाँ निवास होता है, कहीं-कहीं तो दिन में पचीस-पचीस और पचास-पचास घरों में प्रतिदिन महाराजश्री की पधरावनी की जाती है, क्योंकि प्रत्येक शिष्य अथवा प्रतिष्ठित व्यक्ति अपने घर पर उन्हे पधराकर उसे पवित्र कराना चाहता है। कई स्थानों पर तो महाराजश्री का दिन-भर एक ही घर मे सकुटुम्ब सपरिकर निवास होता है, जिसे साम्प्रदायिक परिभाषा मे "तपेली अरोगना" कहते हैं। महाराजश्री और उनके परिकर के भोजनादि हो जाने पर घर का स्वामी श्रद्धा के साथ उनकी पधरावनी करता और भेट चढाता है, तथा समस्त परिकर को यथायोग्य वस्त्रादि से पुरस्कृत करता है। अस्तु।

इसी वर्ष कालोल, हालोल आदि का प्रदेश हुआ। हालोल मे भी द्वारकाधीश के प्राचीन मन्दिर के स्थान पर विशाल नया मन्दिर बनाया गया, जिसमे महाराजश्री ने बडे जुलूस के साथ प्रभु को पधराकर विराजमान किया।

मथुरा मे श्रीराजाधिराज (श्रीद्वारकाधीश) के मन्दिर मे श्रावण मास मे हिन्डोले के समय अच्छी धूमधाम रहती आई है। यहाँ लाखों यात्री जाकर प्रभु के दर्शन करते हैं। मथुरा मे यही एक स्थान ऐसा है, जिससे नगरी की शोभा और प्रतिष्ठा है। इस वर्ष सुवर्ण के हिन्डोले का विशेष आयोजन हुआ था। प्रारंभ से लेकर इस समय तक मन्दिर मे विशाल सम्पत्ति होते हुए भी सोने का हिन्डोला नहीं था, पर अधिकारीजी लज्जाशंकरजी के सुप्रबन्ध के कारण ऐसा सौकर्य प्राप्त हुआ, जिससे उनके आग्रह पर महाराजश्री ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया। यह सोने का हिन्डोला

राजाधिराज का सुवर्ण-हिन्डोला-महोत्सव

डेढ़ लाख रुपये की लागत का बम्बई में तैयार कराया गया और इस वर्ष श्रावण मास के प्रारंभ से इसे प्रभु के विनियोग में लाया गया। सं० १६८४ आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन महाराजश्री सकुटुम्ब हालोल मुकाम से इस मनोरथ को सम्पन्न करने मथुरा पधारे।

मथुरा पधारने पर राजाधिराज के सेठों, नागरिकों और राज्यकर्मचारियों के द्वारा महाराजश्री का स्वागत किया गया और जुलूस के साथ उनको मंदिर ले जाया गया। श्रावण कृष्ण प्रतिपद् से ही बड़े साजबाज के साथ सोने के हिंडोले का मनोरथ हुआ, जिसमें लगभग २० हज़ार दर्शनार्थियों ने दर्शन किए। यहाँ रहते समय महाराजश्री ने स्थानीय विद्वानों का आमन्त्रण कर मंदिर में एक विद्वत्सभा की। विद्वानों की शास्त्रचर्चा सुनकर स्वयं उन्होंने अपने हाथ से दक्षिणादि से उनका सम्मान किया। इसी समय मंदिर के अधिकारी पं० लज्जाशंकरजी ने व्यक्तिगत रूप से महाराजश्री को एक अभिनंदन-पत्र भेंट किया। दो-तीन दिन मंदिर के विशाल चौक में सार्वजनिक धार्मिक सभाएँ हुईं, जिसमें महाराजश्री तथा विद्वानों के भाषण हुए।

इस उत्सव के अनन्तर श्रावण वदी १० के दिन महाराजश्री मथुरा से कांकरोली जाते समय यात्रा-विश्राम के लिये महाराजा-कृष्णगढ़ के अत्यन्त आग्रह से कृष्णगढ़ उतरे। महाराजा श्रीयज्ञनारायणसिंहजी ने स्टेशन पर उपस्थित होकर स्वागत किया और स्वयं छत्र लेकर महाराजश्री के पीछे चौकड़ी में बैठकर उनका शहर में जुलूस निकाला। इस गुरुभक्ति को देखकर नगर-निवासी जन तथा यात्रीगण चकित रह गए। यह महाराजा परंपरा से कट्टर वैष्णव हैं। इनके यहाँ राजमहल के मंदिर में जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य का वह प्राचीन चित्र विराजमान है जो सिकन्दर लोदी की आज्ञा से 'होनहार' चित्रकार ने बनाया था।

कृष्णगढ़-नरेश द्वारा सम्मान

कृष्णगढ़ के मंदिर तथा प्राचीन भवनों का स्वयं निरीक्षण कराकर महाराजा ने राजमहल में बड़ी सजावट कर महाराजश्री की पधरावनी की और श्रद्धा के साथ उनके चरणों को केशर-मिश्रित जल से अभिषेक कराकर महाराजश्री का तिलक, माला, आरती और भेंट आदि के द्वारा पूजन किया। इसके अनन्तर महाराजश्री तथा उनके दोनों विद्वानों का धार्मिक उपदेश और व्याख्यान हुआ। अन्तिम दिन विदा होते समय महाराजा-कृष्णगढ़ ने महाराजश्री तथा उनके विद्वानों तथा परिकर का यथायोग्य सत्कार किया।

सं० १६८४ के शीतकाल में महाराजश्री प्रदेश करते हुए सोजीत्रा, भादरवा आदि ग्रामों में पधारे, जहाँ धार्मिक प्रचार कर द्वा० पुस्तकालय की स्थापना की। चैत्र वदी २ को अहमदाबाद जाकर ठाकुरजी श्रीनटवरलालजी श्यामलालजी के नए मन्दिर में पधराने के उत्सव-समारोह

वहाँ की जनता ने भी अतिशय आह्लाद के साथ स्वागत किया और महाराजश्री के धर्मोपदेश से लाभ उठाया। यहाँ की सभा मे कुछ रामानुजसम्प्रदाय के अनुयायियों मे भ्रमात्मक धारणा फैल गई थी, जिसे व्याख्यानों द्वारा दूर किया गया। प्राय डेढ़ मास निवास कर यहाँ से महाराजश्री अपनी इस वर्ष की यात्रा समाप्त कर कांकरोली पधारे।

काशी का ब्राह्मण-महासम्मेलन

स० १६८५ मे काशी मे धर्मप्राण पं० लक्ष्मणशास्त्रीजी द्राविण के अथक प्रयत्न और त्यागभावना के फलस्वरूप 'अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण-महासम्मेलन' के प्रथमाधिवेशन का आयोजन किया गया। इस समय धार्मिक कई समस्याएँ ऐसी उलझी हुई थीं, जिनके लिये समस्त भारतवर्ष के विद्वत्समाज का एकमत होकर निर्णय देना आवश्यक था।

इस संगठन मे सबसे बडी समस्या थी, धर्माचार्यों का सम्मान-पूर्वक एकत्र सम्मिलन। पर यह उग्र तपस्वी, नि स्वार्थ धर्म-सेवक नीतिचतुर उक्त शास्त्रीजी का ही प्रयत्न था, जो इतिहास मे ऐसा अभूतपूर्व समारोह किया जा सका। इसी के फल-स्वरूप चारों सम्प्रदायों के आचार्य और गद्दीधर महन्त तथा प्रख्यातनामा प्राय· सभी विद्वान् काशी में एकत्रित हुए, और धर्म-प्रचार के प्रेमी काशी-नरेश, दरभंगा-नरेश और कृष्णगढ-नरेश आदि नृपतियों ने स्वयं उपस्थित होकर उसमें आवश्यक भाग लिया।

आमन्त्रण आने पर नाथद्वारा से तिलकायित श्रीगोवर्द्धनलालजी महाराज के प्रतिनिधि-स्वरूप उनके पुत्र श्रीदामोदरलालजी महाराज और कांकरोली से व्रजभूषणलालजी महाराज वल्लभाचार्य-सम्प्रदाय के आचार्य-स्वरूप मे विजया दशमी के दिन प्रस्थानित हुए, और स्पेशल ट्रेन से मार्ग मे प्रयाग मे सविधि तीर्थस्नान करते हुए काशी पहुँचे। स्वागत-सभा की ओर से नगर मे उनका बड़ा भारी जुलूस निकाला गया, जिसमे दामोदरलालजी महाराज के साथ नाथद्वारा से आये हुए घुड-सवारों और सिपाहियो की तड़क-भड़क एव शान-शौकत देखने लायक थी।

महासम्मेलन के खुले अधिवेशन के पूर्व तीन दिन तक विद्वानों की विचार-सभा हुई, जिसमे समयोचित प्रश्नों के लिये शास्त्रार्थ रूप से निर्णय तैयार किया गया। इस समय सभी आचार्यों एवं पंडित-समाज ने सहयोग देकर एक धर्मशास्त्रीय व्यवस्था लिखकर प्रकाशित की। कार्त्तिक कृष्ण ६, १०, ११ इन तीन दिनों तक विशाल अधिवेशन हुआ, जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती। वेद भगवान् की अनुपम सवारी और धर्माचार्यों के भव्य जुलूसों ने काशी नगरी मे एक वार फिर प्राचीन धर्मप्रियता का दृश्य दिखला दिया। इस विद्वत्समवाय मे म० म० अनन्तकृष्ण शास्त्री, म० म० हाराणचन्द्र शास्त्री, म० म० पचाननतर्करत्न एवं म० म० लक्ष्मण शास्त्री और उनके सुपुत्र राजराजेश्वर शास्त्रीजी विद्वद्वर की भाषण-शैली के साथ सर्वशास्त्र की पारंगतता



श्रीमन्महाराणा मेदपाटेश्वर स्वर्गीय

श्री फतहसिंहजी महोदय ।

उदयपुर (मेवाड)

दर्शनीय थी। सम्मेलन मे उपस्थित प्रखर विद्वानों की सौजन्य-पूर्ण प्रकृति, सादी वेश-भूषा तथा अविच्छिन्न संस्कृत-भाषा का सप्रमाण धारावाहिक भाषण भारत की गौरव-वृद्धि करता था। इस अभिनव एवं अभूतपूर्व समारोह मे सम्मिलित होकर महाराजश्री को भारत के प्रायः सभी प्रखर विद्वानों के परिचय एवं दर्शन का अवसर मिला। इस सम्मेलन के अनन्तर फिर ऐसे दर्शनीय समारोह का अवसर नहीं आया, और न निकट भविष्य मे उसके आने की संभावना ही है। अस्तु।

इस समारोह के अनन्तर काशी-निवासी जनता ने सभी धर्माचार्यों का यथायोग्य सत्कार किया, और वैष्णव-धर्म के अनुयायियों ने अपने सम्प्रदाय के अधिपति श्रीदामोदरलालजी महाराज तथा व्रजभूषणलालजी महाराज को अपने-अपने घर पधराकर सम्मानित किया। महाराजा हथुवा-नरेश ने रात्रि के दो बजे अपने स्थान पर बडे सत्कार के साथ पधरावनी की, जो समय की विभिन्नता से अपना विशेषत्व रखती थी।

उदयपुर मे राज्य-सम्मान

सं० १६८६ आश्विन शुक्ल ४ के दिन स्व० महाराणा फतहसिंहजी के आमंत्रण पर महाराजश्री नाथद्वारा, एकलिंगजी होते हुए उदयपुर पधारे। नगर से लगभग ३ माइल की दूरी पर वर्तमान 'तीन रहट की बावड़ी' नामक स्थान पर महाराणा की ओर से स्वागत की आवश्यक तैयारी की गई। बीच सडक पर बिछायत की जाकर महाराजश्री के लिये गादी और महाराणा के लिये सम्मुख बैठने को एक आसन पर सफेदी (दोवड़ी) बिछाई गई। जब भी महाराणा महाराजश्री के लिये स्वागतार्थ प्रस्तुत होते हैं, तब उनकी बैठक परंपरा से इसी प्रकार की निर्धारित है। राज्य के नियमानुसार रियासत की पुलिस, छड़ीदार, घोटादार और काकरोली के मुन्सरिम बाबू मदनमोहनलालजी तथा सम्भ्रान्त पदाधिकारी उपस्थित थे। इधर महाराजश्री के पीछे छडी, छत्र और चमर आदि राजकीय चिह्न विद्यमान थे।

महाराणा के आने के कुछ समय पूर्व महाराजश्री अपनी गद्दी पर विराजमान हुए और उनके समीप दोनो शास्त्री और श्रीकृष्ण-भंडार के अधिकारी बैठे। महाराणा की मुलाक़ात मे वे ही लोग बैठ सकते हैं, जिनके लिये बैठक की स्वीकृति मिली होती है। उक्त स्थान पर मोटर से आकर बीस-बाईस हाथ की दूरी पर उतरकर महाराणा अपने भाई-बन्धु, आवश्यक कर्मचारी एवं परिकर के साथ महाराजश्री के सामने पैदल पधारे। राजपूती आदर्श की विशिष्ट अभिव्यक्ति के साथ निर्धारित समय (सायंकाल पाँच बजकर पच्चीस मिनट) पर महाराणा का आगमन हुआ और महाराजश्री ने खडे होकर उनका सम्मान किया। महाराणा ने समीप आकर दोनों हाथ जोड़े और महाराजश्री ने उन्हे आशीर्वाद प्रदान किया।

महाराजश्री के गादी और महाराणा के आसन पर विराजमान हो जाने के बाद महाराणा

ने भेट रक्खी। दोनों ओर से कुशलता और मार्ग-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हो जाने पर महाराणा ने सिंहावलोकन के द्वारा महाराजश्री के समीपवर्ती परिकर का निरीक्षण किया। नगर मे पधारने की विनय कर महाराणा विदा हुए, और महाराजश्री ने चार बीड़ा प्रदान कर उनका सम्मान किया। महाराजश्री की ओर अभिमुख होकर महाराणा पीछे मोटर तक जाकर नित्य-नियम के अनुसार वहाँ से घूमने चले गये।

इस प्रकार अगवानी हो जाने पर महाराजश्री सवारी के साथ नगर मे पधारे। प्राचीन प्रथा के अनुसार छडी, चमर, नकीब-बोलना आदि राजकीय सम्मान उनके प्रति यथावस्थित रक्खा गया, और महता फतहलालजी की वाडी मे राज्य की ओर से निवासार्थ समस्त प्रबन्ध कराया गया।

दूसरे दिन प्रात:काल से लेकर सायंकाल तक, जब जिसको समय मिला, और जब तक महाराजश्री का मुक़ाम उदयपुर मे रहा, सभी राज्यकर्मचारी, महाराणा के भाई-बन्धु, प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा ठिकाने के रावजी, कवि, पंडित आदि महाराजश्री के समीप उपस्थित होते रहे। दशहरे का अवसर होने से नियमानुसार मेवाड के सभी ठिकानों के सरदार उस समय उदयपुर मे हाज़िर थे, अत समय-समय पर महाराजश्री के समीप आकर उन्होंने अपनी-अपनी भक्ति, श्रद्धा, स्वागत एव सम्मान प्रकट किया।

उदयपुर में महाराणा के प्रबन्ध से महाराजश्री के लिये महत्त्व-पूर्ण सभी स्थानों के निरीक्षण का ख़ास इन्तजाम किया गया था। महाराजश्री ने भी नगर, आस-पास और दूर के सभी ऐतिहासिक, प्राचीन एवं नवीन दर्शनीय स्थानों का अवलोकन किया। इस कार्य के सम्पादन के लिये महाराणा की ओर से महताजी फतहलालजी निर्वाचित किये गये थे। दरबार के शास्त्री पं० शोभालालजी ने भी 'विक्टोरिया मेमोरियल' मे संगृहीत उन सभी वस्तुओं को दिखलाया, जो अपना विशेष महत्त्व रखती हैं।

सनातन धर्म-महासम्मेलन

इन्हीं दिनो उदयपुर मे स्थानीय सभा ने एक विशाल सनातन-धर्म-सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमे कई उपदेशक बुलाये गये थे। म० म० पं० गिरिधर शर्माजी चतुर्वेद, पं० अखिलानन्दजी कविरत्न, युक्तिविशारद पं० कालूराम शास्त्रीजी आदि को प्रभावशाली भाषण देने के लिये आमंत्रित किया गया था। इस अवसर पर कार्यकर्ताओं ने महाराजश्री को उसका संरक्षक बनाकर अधिवेशन मे पधराया। उन्होने भी कार्त्तिक कृष्ण ४ और ५ के दिन सम्मिलित होकर अन्तिम दिन एक लिखित भाषण दिया, जिसे उपस्थित विद्वानों और श्रोताओं ने बडे उत्साह से सुना। यह भाषण बाद मे कानोड रावजी तथा महता फतहलालजी की ओर से मुद्रित कराया जाकर

विना मूल्य वितरण किया गया। अधिवेशन की समाप्ति पर महाराजश्री ने वाहर से आये हुए उपदेशकों को अपने स्थान पर वुलाकर दक्षिणा वस्त्रादि से सत्कृत किया। जितने दिन उदयपुर मे महाराजश्री का निवास हुआ, अधिकांश दिनों मे सर्वसाधारण के लिये उनके तथा उनके छोटे भाई श्रीविट्ठलनाथजी के प्रवचन और धार्मिक उपदेश होते रहे।

कार्त्तिक कृष्ण ८ के दिन वापजीराज—वर्तमान महाराणा—श्रीभूपालसिंहजी महाराजश्री से मुलाक़ात करने उनके निवास-स्थान पर पधारे। इस समय भी महाराणा के समान ही बैठक का प्रवन्ध किया गया था। दोनों ओर से यथायोग्य व्यवस्था और उचित शिष्टाचार हो जाने के वाद श्रीभूपालसिंहजी महोदय ने भेट रक्खी। सामयिक वार्तालाप के वाद महाराजश्री के शास्त्री और कवियों ने संस्कृत और हिन्दी की कविताएँ महाराजकुमार को सुनाईं। महाराजाश्री और वापजीराज की यह मुलाक़ात भी अपने ढंग की उसी राज्य-नियम के अनुसार हुई, जैसी परंपरा से होती चली आई है।

वापजीराज और महाराणा की मुलाकात

कार्त्तिक कृष्ण ११ के दिन सायंकाल महाराणा स्वयं अपने लवाजमा और आवश्यक परिकर के साथ महाराजश्री के मुकाम पर मिलने आये, जिसमे पूर्व-प्रथानुसार प्रवन्ध किया गया था। महाराणा ने महाराजश्री से आवश्यक प्रश्न और प्रवन्ध-सम्वन्धी वार्तालाप कर निर्धारित भेट रक्खी, इसके अनन्तर महाराजश्री के शास्त्री, कवियों ने महाराणा की प्रशंसा और स्वागत-यश आदि के संस्कृत-हिंदी-पद्य[1] सुनाये। पंडितों को खडे होने का निषेध कर बैठे ही बैठे कविता सुनाने का आदेश देकर महाराणा ने वडे ध्यान से सुनकर उनका अर्थ पूछा। महाराणा वे कविताएँ अपने साथ ले गये और वाद मे उन्होंने पुरस्कार भेजा। लगभग आधा घन्टे मुलाक़ात हो जाने के वाद विदा होकर महाराणा अपने राजमहल पधारे। इस प्रकार महाराणा ने आकर महाराजश्री के प्रति स्वकीय शिष्टाचार प्रकट किया।

कार्त्तिक कृष्ण १२ को रात्रि में महाराजश्री के निरीक्षणार्थ महलों मे दीपावली की विशेष रोशनी की गई। उन्होंने उसका अवलोकन कर वापजीराज श्रीभूपालसिंहजी से महलों मे जाकर मुलाक़ात की। यहाँ कुर्सियों पर वैठकर कांकरोली के सम्वन्ध मे दोनों का वार्तालाप हुआ। वापजीराज ने भेट धरकर महाराजश्री को विदा देकर स्वकीय शिष्टाचार प्रदर्शित किया।

कार्त्तिक कृष्ण १३ को महाराजश्री दीपावली और अन्नकूट की सेवा के लिये उदयपुर से कांकरोली आये और नाथद्वारा आदि की सेवा का संयोग पूर्ण कर का० शु० ६ के दिन वापिस उदयपुर पधारे, क्योंकि महाराणा के यहाँ से विदाई नहीं की गई थी। कांकरोली से आते समय महाराजश्री ने नाथद्वारा और एकलिंगजी मे सामयिक दर्शन कर भेट चढ़ाई।

कार्त्तिक शु० ६ रविवार के दिन महाराणा की सूचना पर लवाजमा और राजकीय चिह्नों के साथ राजमहल मे महाराजश्री की पधरावनी हुई। 'शिव-निवास' महल मे महाराणा की गद्दी के सम्मुख ही महाराजश्री की गद्दी लगवाई गई थी। यह वह मुलाक़ात थी, जिसमे हिंदुवासूर्य महाराणा राजसी ठाट मे होते हुए भी अपने गुरु के प्रति सश्रद्ध भक्ति-भाव प्रकट करते हैं। महाराजश्री के सम्मुख आते ही महाराणा ने गद्दी से उठकर कुछ आगे आकर स्वागत किया और उनके विराजमान हो जाने पर उन्होंने भी आसीन होकर नियमानुसार भेट रक्खी। आवश्यक वार्तालाप के बाद महाराजश्री ने महाराणा को विदा-स्वरूप बीडा भिलाए। महाराणा ने भी अभ्युत्थान देकर उन्हे ससम्मान विदा किया।

राजमहल मे पधरावनी

राजमहल में पधरावनी का दस्तूर हो जाने पर आसपास के जागीरदार रावजी आदि के स्थानों पर भी महाराजश्री की पधरावनियाँ शुरू हुईं, और सभी ने अपने-अपने स्थानों पर उन्हे पधराकर भक्ति-भाव व्यक्त किया। वेदला, बदनौर, देलवाड़ा, बिजोलिया, सलूम्बर, कानौड, देवगढ़, सादडी आदि के सरदारों ने स्वागत का अच्छा प्रबध किया और महता फतहलालजी ने अपने घर पधराते समय बडी सजावट की थी। इस प्रकार सुविधानुसार कई दिनों तक यह क्रम चालू रहा। महाराजश्री के बाद इनके मातृश्री और श्रीबहूजी की भी राजमहल तथा सभी ठिकानों मे जनाना महलों मे पधरावनी की गई।

मार्गशीर्ष कृष्ण १ के दिन महाराणा की मुहूर्त की शिकार का दरबार था, अत. महाराणा ने विशेषतया महाराजश्री को दरबार मे पधारने का आमंत्रण दिलाया, और साथ मे आज के दरबार की खास पोशाक अमरसाही पाग, पछेवड़ी तथाच रूमाल अपनी ओर से भिजवाकर अपने खास दरजी द्वारा महाराजश्री को धारण करवाई। महाराजश्री ग्यारह बजे राजसी जुलूस के साथ दरबार मे सम्मिलित होने के लिये शंभु निवास के दरबार-हॉल मे पधारे, जहाँ राज्यकर्मचारियों ने आगे आकर सम्मान-सहित उनका स्वागत किया। इस दरबार मे १६,३२ उमराव और जागीरदार अपने क्रम से यथास्थान बैठे थे और महाराणा विशाल मसनद पर राजसी मर्यादा के साथ विराजमान थे। प्राचीनता के एक भव्य राजपूती परिदर्शन-स्वरूप इस दरबार मे महाराजश्री के पधारने पर महाराणा तथा समस्त दरबारी लोगों ने अभ्युत्थान देकर उनके प्रति स्वागत-सम्मान प्रकट किया। महाराणा के प्रणाम करने पर महाराजश्री ने आशीर्वाद दिया। सम्मुख बिछी हुई गद्दी पर महाराजश्री के विराजमान हो जाने के बाद महाराणा ने भी आसीन होकर उनसे कुशल प्रश्नादि किये।

राजदरबार मे आमन्त्रण

शिकार की सवारी के ठीक समय पर महाराजश्री ने महाराणा को प्रसादी कुंकुम से तिलक किया, और मुक्ताक्षत लगाकर माला पहिनाई। इसके बाद महाराणा ने भी महाराजश्री

को माला पहिनाई। शिकार की सवारी का समय समीप आया जान महाराजश्री महाराणा से विदा होकर मोटर द्वारा चिड़ियाखाना पधारे, और वहाँ से महाराणा की ओर से किये गये इन्तिज़ाम से उनकी सवारी का जुलूस देखा, जो अपनी पृथक विशेषता रखता था। सवारी मे भी महाराणा ने सामने होकर निकलते समय घोड़े पर बैठे बैठे ही महाराजश्री को प्रणाम किया और सवारी आगे चलाई। सवारी के आगे निकल जाने और निश्चित स्थान पर पहुँच जाने पर महाराजश्री ने दूर से शिकार का हाका देखा, जिसके लिये महाराणा की ओर से इन्तिजाम करा दिया गया था।

आज ही सायंकाल को महाराजकुमार बापजीराज श्रीभूपालसिंहजी महाराजश्री से फिर मिलने के लिये उनके स्थान पर आये और बाकायदा मुलाकात ली। प्रणाम, भेट, वार्तालाप आदि का दस्तूर हो जाने पर महाराजश्री ने उन्हें विदा दी।

महाराणा से विदाई और अधिकार-प्राप्ति

मार्गशीर्ष कृष्ण ३ मंगलवार के दिन महाराणा ने महाराजश्री के घर पर पधारकर उदयपुर से विदाई का राजकीय दस्तूर किया। महताजी की वाड़ी मे ही पूर्व-प्रथा के अनुसार बिछायत आदि का प्रबन्ध किया गया था। महाराणा ने मध्याह्न मे आकर नियमानुसार प्रणाम कर महाराजश्री के आगे भेट रक्खी। आशीर्वाद, कुशल-प्रश्नादि हो जाने पर प्रथम महाराजश्री की ओर से विदाई के दस्तूर मे श्रीद्वारकाधीश के प्रसादी सेला, पटका, गदल आदि वस्त्र तथा माला-बीड़ा के द्वारा महाराणा का सम्मान किया गया और बाद मे महाराणा ने भी अपने नियमानुसार प्रथम महाराजश्री को और बाद मे उनके भ्राता को दुशाला उढ़ाकर भेट रक्खी। इसी प्रकार उन्होंने श्रीमाजी महाराज और महाराजश्री के बहूजी आदि के लिये भी भेट भेजकर प्रणाम मालूम कराया। इस प्रकार विदाई की प्रथा पूर्ण हो जाने पर नियमानुसार महाराणा के साथ आये हुए विशिष्ट भाई-बंधुओं ने महाराजश्री को भेट रक्खी, उन्होंने भी सेला-पटका बीड़ा प्रदान कर उन्हे सम्मानित किया।

इस प्रकार महाराणा ने महाराजश्री को उदयपुर बुलाया और राजकीय शिष्टाचार से उनका सम्मान किया। उन्होंने महाराजश्री की योग्यता, विद्वत्ता और वयस्कता का परिचय पाकर मार्गशीर्ष कृष्ण ४ बुध सं० १९८६ तदनुसार ता० २०, ११, १९२९ के दिन कांकरोली से मुंसरमान उठा देने का आदेश निकाला और महाराजश्री को उनके संस्थान के सम्पूर्ण स्वायत्त शासन का अधिकार प्रदान कर अपने गुरुघर के प्रति सद्भावना प्रदर्शित की। आज ही सायंकाल महाराजकुमार श्रीभूपालसिंहजी से गुलाब बाग के समीप के मकान मे महाराजश्री ने मुलाकात कर अन्य आवश्यक वार्तालाप किया।

मार्गशीर्ष कृष्ण ६ के दिन महाराजश्री महाराणा के प्रति स्वकीय शासन-प्राप्ति की कृतज्ञता के प्रकाशनार्थ 'केवड़ा की नाल'-नामक स्थान मे पधारे, जहाँ उस दिन महाराणा का शिकार के लिये मुक़ाम था। उचित कुशल-प्रश्नादि हो जाने पर महाराणा को धन्यवाद पूर्वक प्रसादी सेला-बीडा आदि प्रदान करते हुए एक अभिनन्दन-पत्र भेट किया गया, जिसे इस लेखक ने पढ़कर सुनाया था। इसी समय महाराणा को 'विद्या-विभाग कांकरोली' द्वारा प्रकाशित पुस्तके भी भेट की गई और उसकी कार्य-प्रणाली से परिचित कराया गया।

मार्गशीर्ष कृष्ण ८ रवि के दिन महाराजकुमार श्रीभूपालसिंहजी महाराजश्री के स्थान पर विदा होने पधारे, और नियमानुसार दोनों ओर से बिदा का दस्तूर किया गया।

इस प्रकार अपनी सकुटुम्ब उदयपुर-यात्रा मे महाराणा द्वारा स्वकीय शासनाधिकार प्राप्त कर धार्मिक प्रचार करते हुए महाराजश्री मार्ग० कृष्ण १२ गुरु (ता० २८, ११, १९२९) के दिन उदयपुर से चलकर एकलिंगजी नाथद्वारा होते हुए कांकरोली आए। इस प्रकार महाराणा फतहसिंहजी ने अपनी विद्यमानता मे ही महाराजश्री को उदयपुर पधराकर गुरुघर के प्रति प्राचीन मर्यादा का स्वरूप प्रदर्शित किया और वर्तमान समाज तथा राजकर्मचारियों के लिये एक आदर्श की स्थापना की।

म० फतहसिंहजी का कैलासवास

सं० १९८७ ग्रीष्मकाल मे महाराणा श्रीफतहसिंहजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया, जिससे महाराजश्री उनकी कुशल-वृत्ति का समाचार लेने और मिलने के ज्येष्ठ कृ० ८ के दिन उदयपुर गए। दोनों भ्राताओं ने 'शंभु-निवास-महल' मे महाराणा से मिलकर उनके स्वास्थ्य समाचार पूछे। महाराणा इस समय अत्यन्त अशक्त होने से पलँग पर लेटे थे, और महाराजश्री के लिये समीप ही कुर्सियों पर छोटी गादी बिछा दी गई थी। महाराजश्री के इस सौजन्य से महाराणा बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने कृतज्ञता तथा उचित शिष्टाचार के अभाव मे स्वकीय असमर्थता प्रकट की। इसके बाद महाराजश्री महाराजकुमार श्रीभूपालसिंहजी से मिले। इस सामयिक शिष्टाचार एवं समवेदना-प्रकाशन से महाराजकुमार के हृदय पर जो श्रद्धा का भाव उदित हुआ, उससे आगे अच्छा प्रभाव पडा, दोनों की अत्यन्त घनिष्ठता हो गई। इस समय की रुग्णता से महाराणा का शरीर ठीक नही हुआ, और वह आदर्श राजर्षि, प्रसिद्ध हिन्दुवों-सूर्य सं० १९८७ ज्येष्ठ वदी ११ के दिन सर्वदा के लिये आँखों से ओझल हो गया, जिससे मेवाड क्या समग्र भारतवर्ष मे शोक की एक लहर छा गई। महाराणा के देवलोक हो जाने पर ज्येष्ठ शु० ६ के दिन महाराजश्री ने उदयपुर जाकर श्रीभूपालसिंहजी—वर्तमान महाराणा—के पास प्रीतम-निवास महल मे हार्दिक समवेदना प्रकट करने के लिये बैठने का दस्तूर किया।

इसी वर्ष और इसी मास में ज्येष्ठ वदी १२ के दिन राज्य के नियमानुसार श्रीभूपालसिंहजी राज्यासन पर आसीन हुए। गुरुघर की प्रथानुसार महाराजश्री अपने भ्राता श्रीविट्ठलनाथजी महाराज के साथ ज्येष्ठ शु० ८ बुधवार के दिन कांकरोली से उदयपुर पधारे। पूर्व प्रथा के अनुसार 'तीन रेहट की बावडी' पर महाराणा की ओर से स्वागतार्थ रत्नसिंहजी सुराणा उपस्थित हुए, जिन्होंने भेंट धर कर महाराणा की ओर से प्रणाम मालूम किया और राज्य से आई हुई चार घोडों की बग्घी में विराजमान कराकर महाराजश्री को मुकाम पर पधराया।

राज्या-भिषेकोत्सव

ज्येष्ठ शु० ६ (ता० ५, जून १९३०) के दिन श्रीभूपालसिंहजी के राज्याभिषेकोत्सव के लिये महाराजश्री इस समय की निर्धारित पोशाक अमरसाई पाग, जामा और समयोचित आभूषणों से सज्जित हो राज्य की ओर से आई चौकड़ी में बैठकर प्रातःकाल महलों में पधारे। इस समय महाराजश्री के साथ नौबत, निशान, चमर-छत्र, मोरछल आदि सभी राजकीय चिह्न विद्यमान थे। 'गणेशड्योढ़ी' तक लवाजमा के साथ जाकर ऊपर बडे दरीखाना में पहुँचने पर उपस्थित सभी जागीरदार और राज्यपदाधिकारियों ने महाराजश्री का स्वागत किया। कुछ समय बाद वे इस महोत्सव के विशाल प्रांगण में अपने लिये परंपरा से निर्धारित उस विशेष स्थान में गद्दी पर विराजमान हुए, जिसे 'पानेरी की ओवरी' के सामने 'बड़ा चौकठा' कहते हैं। यहाँ से उन्होंने राज्याभिषेक की क्रियाकलाप का निरीक्षण किया। कहना न होगा कि—यहाँ भी महाराजश्री के राज्यचिह्न चमर, मोरछल आदि विद्यमान थे, जिन्हें महाराणा के सिवा अन्य कोई भी धारण नहीं कर सकता था।

आवश्यक देव-पूजनादि के उपरान्त सर्वप्रथम एकलिंगजी के महन्तजी ने महाराणा को आशिका बँधाई और बाद में परम्परा से चले आये हुए गुरुघर के तिलक का क्रम आया। इस समय महाराजश्री के विराजने के स्थान पर महाराणा आये और उनकी गद्दी के आगे 'दोवटी आसन' पर आसीन हुए। आवश्यक प्रणाम-आशीर्वाद और कुशल-प्रश्न के अनन्तर उक्त तिलक की प्रथा सम्पादित की गई, जिसमें महाराजश्री ने महाराणा को प्रसादी कुंकुम और मुक्ताक्षत लगाकर गहल, चीरा, पटका, सेला और माला धारण कराकर चार बीड़ा प्रदान किये, जिसे उन्होंने बडी श्रद्धा-भक्ति से स्वीकार किये। इसके बाद नाथद्वारा के तिलकायित श्रीगोवर्द्धनलालजी महाराज की ओर से उनके मुखिया ने दस्तूर हाजिर किया, क्योंकि प्राचीन प्रथा के अनुसार उनकी उपस्थिति इस समय नहीं हो सकती थी।

गुरुघर द्वारा राज्यतिलक

इस प्रकार राज्याभिषेकोत्सव के सम्पन्न हो जाने के उपरान्त महाराजश्री ने विदा ली,

जिसमे महाराणा ने दो नारियल और मुहरें भेट चढ़ाकर उनका आशीर्वाद लिया। आज सायंकाल नियमानुसार महाराणा की सर्वप्रथम 'हरिया' की सवारी हुई, जिसे देखने के लिये उनकी ओर से महाराजश्री के लिये विशेष प्रबन्ध किया गया था।

ज्येष्ठ शु० १३ के दिन सायंकाल महाराणा श्रीभूपालसिंहजी महाराजश्री के स्थान पर विदा होने आये। नियमानुसार आवश्यक प्रबन्ध हुआ, और कुशल-प्रश्न, भेट आदि के अनन्तर महाराजश्री के शास्त्री एवं कवियों ने अपनी-अपनी सामयिक कविताओ के द्वारा महाराणा को दीर्घायुष्य और शासन-समृद्धि का आशीर्वाद दिया। आवश्यक वार्तालाप हो जाने पर महाराणा ओर महाराजश्री, पूर्व-पद्धति से परस्पर विदा का दस्तूर कर अपने-अपने स्थान पर पधारे ❀।

सं० १९८७ कार्त्तिक शु० ५ के दिन 'मावली - मारवाड़' यू० सी० आर० लाइन के उद्‌घाटनार्थ और राज्याभिषेक के बाद प्रथम ही श्रीद्वारकाधीश के दर्शनार्थ महाराणा श्रीभूपालसिंहजी का स्पेशल ट्रेन से कांकरोली स्टेशन पर शुभागमन हुआ। नवचौकी होकर राजभोग के दर्शन के समय महाराणा मंदिर मे पधारकर गोवर्द्धन चौक मे मोटर से उतरे। यद्यपि यहाँ से पैदल ही ऊपर जाने का रिवाज है, पर महाराणा के श्रीअंग मे स्थायी अस्वास्थ्य होने से वे ताम-झाम के द्वारा कान्हतिवारी के आगे आये। सिंहपोली पर उन्होंने अपने राज्यचिह्न दूर करवा दिये और तलवार भी अपने पास के व्यक्ति को सौंप दी।

महाराणा का कांकरोली मे प्रथम पदार्पण

'कान्हतिवारी' में महाराणा के आते ही महाराजश्री ने आगे बढकर उनका स्वागत किया और कुशल-प्रश्न करते हुए उनको मंदिर के चौक मे साथ लाये। श्रीप्रभु के दर्शन मे कुछ समय का विलंब होने से महाराणा जमीन पर ही बैठे, क्योंकि ठाकुरजी के मन्दिर मे किसी को आसन बिछाया नहीं जा सकता। दर्शन खुलने पर मणि कोठा के बाहर बैठकर महाराणा ने श्री के दर्शन किये और सम्मुख भेट रक्खी। इसके बाद चौक मे महाराजश्री के द्वारा प्रसादी माला बीडा लेकर वह श्रीमथुरेशजी के और छोटे द्वारकाधीश के दर्शनार्थ गये, जहाँ महाराजश्री के भाई श्रीविट्ठलनाथजी ने माला पहिनाकर चार बीडा प्रदान किये। इन दोनों मन्दिरों मे इसी

❀ इस प्रकार की प्राचीन प्रथा से सम्पन्न होनेवाले राज्याभिषेक की रीति-रिवाज एवं महाराणा तथा महाराजश्री के आगत-स्वागत देखने का पहिला ही अवसर साथ मे उपस्थित होने से इस लेखक को प्राप्त हुआ, जिससे प्राचीन ऐतिहासिक उन प्रसगों का स्पष्टीकरण होता है, जो इस गुरुघर और उदयपुर-नरेश मे सम्बन्ध रखते आये हैं।

समय महाराणा को उक्त महाराजश्री ने विदा का दस्तूर करते हुए प्रसादी वस्त्रादि प्रदान किये, और महाराणा ने भी भेट धरकर उन्हे भी दुशाला उढ़ाया । मध्याह्न मे महाराजश्री के आग्रह पर प्राचीन प्रथा को आदर देते हुए महाराणा ने मन्दिर मे ही अपने मुकाम पर तलाव की शोभा देखने के वाद महाप्रसाद लिया । यद्यपि ऐसे समय महाराजश्री स्वयं अपने हाथ से उनको महाप्रसाद परोसते हैं, पर इस समय पिंडम्न (जनना शौच) होने के कारण वे ऐसा न कर सके । महाराणा के अरोगते समय उनके सामने ही बैठे हुए आवश्यक पूछताछ वार्तालाप की ।

सायंकाल महाराणा विदा होने के लिये महाराजश्री की बैठक मे पधारे । जहाँ वे अपनी स्थानीय गद्दी पर बैठे, और महाराणा परपरानुसार दोवटी पर । पास मे महाराजश्री तथा महाराणा के वही व्यक्ति बैठे थे, जिन्हे इस समय बैठक प्राप्त थी । प्रणाम-आशीर्वाद होने और भेट आदि धर चुकने के वाद स्थानीय विद्वान् और कवियों ने महाराणा के स्वागतार्थ कविताएँ सुनाई, जिस पर उन्होंने पारितोषिक प्रदान करवाया । वार्तालाप के वाद महाराजश्री और महाराणा की ओर से परस्पर नियमानुसार विदाई का दस्तूर किया गया और महाराणाश्री प्रभु के दर्शन कर सायंकाल उदयपुर पधारे ।

इस प्रकार महाराणा भूपालसिंहजी ने भी राज्याभिषेक के अनन्तर और वाद मे कई वार काकरोली आकर अपनी गुरुघर की मान-मर्यादा की पुनरावृत्ति की और सौजन्य के द्वारा इस ठिकाने के वहुत कुछ उलझे हुए मामलों को सुलझाया । राज्याभिषेक के अनन्तर प्रथम दर्शनार्थ आने पर ऐसा नियम है कि— महाराणा ठिकाने के लिये कुछ स्थायी भेट करते चले आये हैं । फलत श्रीभूपालसिंहजी ने भी ऐसी वहुत-सी सुविधाएँ इस ठिकाने को प्रदान कीं, जिनका यहाँ उल्लेख करने से लेख-विस्तर होगा ।

प्राचीन परंपरा के अनुसार राज्याभिषेक होने के पूर्व कुँवर पद मे अथवा उसके अनन्तर प्रत्येक महाराणा इस घर के तिलकायित मे वैष्णव-धर्म की दीक्षा लेता आया है, जैसा कि पूर्व-चरित्रो मे कहा जा चुका है ।

महाराणा की वैष्णव-धर्म-दीक्षा

इसी प्रकार महाराणा भूपालसिंहजी ने भी दीक्षा लेना अपना आवश्यक धर्म समझा, और इस कार्य को गुरुघर काकरोली मे ही सम्पन्न करने का विचार कर समय निर्धारित किया । तदनुसार महाराणा के यथायोग्य स्वागत-सत्कार के लिये नगरी की आवश्यक सजावट की गई ।

सं० १९८६ कार्त्तिक शु० ८ के दिन मध्याह्न मे महाराणा का राजनगर मे शुभागमन हुआ । वे आवश्यक परिकर और राज्य-चिह्नों के साथ सायंकाल पाँच वजे कांकरोली मे

जिसमे महाराणा ने दो नारियल और मुहरें भेट चढ़ाकर उनका आशीर्वाद लिया। आज सायंकाल नियमानुसार महाराणा की सर्वप्रथम 'हरिया' की सवारी हुई, जिसे देखने के लिये उनकी ओर से महाराजश्री के लिये विशेष प्रबन्ध किया गया था।

ज्येष्ठ शु० १३ के दिन सायंकाल महाराणा श्रीभूपालसिंहजी महाराजश्री के स्थान पर विदा होने आये। नियमानुसार आवश्यक प्रबन्ध हुआ, और कुशल-प्रश्न, भेट आदि के अनन्तर महाराजश्री के शास्त्री एवं कवियों ने अपनी-अपनी सामयिक कविताओं के द्वारा महाराणा को दीर्घायुष्य और शासन-समृद्धि का आशीर्वाद दिया। आवश्यक वार्तालाप हो जाने पर महाराणा और महाराजश्री, पूर्व-पद्धति से परस्पर विदा का दस्तूर कर अपने-अपने स्थान पर पधारे *।

महाराणा का कांकरोली मे प्रथम पदार्पण

सं० १९८७ कार्तिक शु० ५ के दिन 'मावली - मारवाड़' यू० सी० आर० लाइन के उद्‌घाटनार्थ और राज्याभिषेक के बाद प्रथम ही श्रीद्वारकाधीश के दर्शनार्थ महाराणा श्रीभूपालसिंहजी का स्पेशल ट्रेन से कांकरोली स्टेशन पर शुभागमन हुआ। नवचौकी होकर राजभोग के दर्शन के समय महाराणा मंदिर मे पधारकर गोवर्द्धन चौक में मोटर से उतरे। यद्यपि यहाँ से पैदल ही ऊपर जाने का रिवाज है, पर महाराणा के श्रीअंग में स्थायी अस्वास्थ्य होने से वे ताम-भाम के द्वारा कान्हतिवारी के आगे आये। सिंहपोली पर उन्होंने अपने राज्यचिह्न दूर करवा दिये और तलवार भी अपने पास के व्यक्ति को सौंप दी।

'कान्हतिवारी' में महाराणा के आते ही महाराजश्री ने आगे बढकर उनका स्वागत किया और कुशल-प्रश्न करते हुए उनको मंदिर के चौक मे साथ लाये। श्रीप्रभु के दर्शन मे कुछ समय का विलंब होने से महाराणा जमीन पर ही बैठे, क्योंकि ठाकुरजी के मन्दिर मे किसी को आसन बिछाया नहीं जा सकता। दर्शन खुलने पर मणि कोठा के बाहर बैठकर महाराणा ने श्री के दर्शन किये और सम्मुख भेट रक्खी। इसके बाद चौक मे महाराजश्री के द्वारा प्रसादी माला बीडा लेकर वह श्रीमथुरेशजी के और छोटे द्वारकाधीश के दर्शनार्थ गये, जहाँ महाराजश्री के भाई श्रीविट्ठलनाथजी ने माला पहिनाकर चार बीडा प्रदान किये। इन दोनों मन्दिरों मे इसी

---

* इस प्रकार की प्राचीन प्रथा से सम्पन्न होनेवाले राज्याभिषेक की रीति-रिवाज एवं महाराणा तथा महाराजश्री के आगत-स्वागत देखने का पहिला ही अवसर साथ मे उपस्थित होने से इस लेखक को प्राप्त हुआ, जिससे प्राचीन ऐतिहासिक उन प्रसंगों का स्पष्टीकरण होता है, जो इस गुरुघर और उदयपुर-नरेश मे सम्बन्ध रखते आये हैं।

समय महाराणा को उक्त महाराजश्री ने विदा का दस्तूर करते हुए प्रसादी वस्त्रादि प्रदान किये, और महाराणा ने भी भेट धरकर उन्हे भी दुशाला उढ़ाया । मध्याह्न मे महाराजश्री के आग्रह पर प्राचीन प्रथा को आदर देते हुए महाराणा ने मन्दिर मे ही अपने मुकाम पर तलाव की शोभा देखने के बाद महाप्रसाद लिया । यद्यपि ऐसे समय महाराजश्री स्वयं अपने हाथ से उनको महाप्रसाद परोसते हैं, पर इस समय पिंडरू (जनना शौच) होने के कारण वे ऐसा न कर सके । महाराणा के अरोगते समय उनके सामने ही बेठे हुए आवश्यक पूछताछ वार्तालाप की ।

सायंकाल महाराणा बिदा होने के लिये महाराजश्री की बेठक में पधारे । जहाँ वे अपनी स्थानीय गद्दी पर बैठे, और महाराणा परपरानुसार दोवटी पर । पास मे महाराजश्री तथा महाराणा के वही व्यक्ति बैठे थे, जिन्हे इस समय बैठक प्राप्त थी । प्रणाम-आशीर्वाद होने और भेट आदि धर चुकने के बाद स्थानीय विद्वान् और कवियो ने महाराणा के स्वागतार्थ कविताएँ सुनाईं, जिस पर उन्होने पारितोषिक प्रदान करवाया । वार्तालाप के बाद महाराजश्री और महाराणा की ओर से परस्पर नियमानुसार बिदाई का दस्तूर किया गया और महाराणाश्री प्रभु के दर्शन कर सायंकाल उदयपुर पधारे ।

इस प्रकार महाराणा भूपालसिहजी ने भी राज्याभिषेक के अनन्तर और बाद मे कई बार काकरोली आकर अपनी गुरुघर की मान-मर्यादा की पुनरावृत्ति की और सौजन्य के द्वारा इस ठिकाने के बहुत कुछ उलझे हुए मामलों को सुलझाया । राज्याभिषेक के अनन्तर प्रथम दर्शनार्थ आने पर ऐसा नियम है कि— महाराणा ठिकाने के लिये कुछ स्थायी भेट करते चले आये है । फलत॰ श्रीभूपालसिंहजी ने भी ऐसी बहुत-सी सुविधाएँ इस ठिकाने को प्रदान कीं, जिनका यहाँ उल्लेख करने से लेख-विस्तर होगा ।

प्राचीन परंपरा के अनुसार राज्याभिषेक होने के पूर्व कुँवर पदे मे अथवा उसके अनन्तर प्रत्येक महाराणा इस घर के तिलकायित से वैष्णव-धर्म की दीक्षा लेता आया है, जैसा कि पूर्व-चरित्रों मे कहा जा चुका है ।

महाराणा की वैष्णव-धर्म-दीक्षा

इसी प्रकार महाराणा भूपालसिहजी ने भी दीक्षा लेना अपना आवश्यक धर्म समझा, और इस कार्य को गुरुघर काकरोली मे ही सम्पन्न करने का विचार कर समय निर्धारित किया । तदनुसार महाराणा के यथायोग्य स्वागत-सत्कार के लिये नगरी की आवश्यक सजावट की गई ।

सं० १६८६ कार्त्तिक शु० ८ के दिन मध्याह्न मे महाराणा का राजनगर मे शुभागमन हुआ । वे आवश्यक परिकर और राज्य-चिह्नो के साथ सायंकाल पाँच बजे कांकरोली मे

श्रीद्वारकाधीश के दर्शनार्थ पधारे। निर्दिष्ट स्थान 'कान्हतिवारी' मे महाराजश्री तथा उनके भ्राता विट्ठलनाथजी ने आगे आकर उनका स्वागत किया। पारस्परिक शिष्टाचार के अनन्तर दर्शन खुलने पर महाराणा ने दर्शन कर श्रीप्रभु के सम्मुख भेट चढ़ाई और नियत समय तक दर्शन का आनन्द लिया। महाराजश्री ने मंदिर से प्रसादी माला बीडा प्रदान कर उनका सम्मान किया। इस प्रकार लगभग छ दिनों तक महाराणा सुविधा के अनुकूल राजनगर से प्रतिदिन एक-दो दर्शन करने पधारते रहे। दर्शनो के बीच मे जितना समय खाली रहता, उनके समय वह अपने लिये नियत रायसागर के तट स्थित बॅगले मे विराजमान होकर उसकी प्राकृतिक शोभा का निरीक्षण किया करते थे।

का० शु० ११—(प्रबोधिनी) के दिन रेवारीजी द्वारा वैष्णव-साहाय्य से बनवाई गई कांकरोली की नवीन गोशाला मे महाराजश्री के साथ महाराणा का पधारना हुआ, जहाँ महाराणा की ओर से ही गायों के लिये थूली का प्रबध किया गया था। लगभग ५०० सुन्दर और स्वस्थ गायों का निरीक्षण कर महाराणा अत्यन्त हर्षित हुए और अपनी उदयपुर की गोशाला के लिये दो सुन्दर दर्शनीय विजार ले जाने की इच्छा व्यक्त की, जिसे महाराजश्री ने बडे हर्ष से पूरा किया।

कार्त्तिक शु० १३ शुक्रवार के दिन महाराणा का दीक्षा लेने का मुहूर्त राज्य-ज्योतिषियों द्वारा निकाला गया था। मन्दिर के समीप ही 'श्रीभूपाल हॉल' (सम्प्रति विद्याविभाग) को विशेष सजाकर उत्तराभिमुख महाराजश्री की गद्दी और उनके सम्मुख ही महाराणा का आसन लगाया गया। ठीक १० बजे महाराजश्री के पास महाराणा आये और समयोचित शिष्टाचार के बाद दोनो भ्राताओं को उन्होंने प्रणाम कर भेट रक्खी। इस समय महाराणा अपने राजोचित वेश मे और महाराजश्री अपने वैष्णवोचित आवश्यक वेश मे विराजमान थे। महाराजश्री के पास उनके दोनो शास्त्री तथा अधिकारीजी और महाराणा के पास उनका आवश्यक परिकर और पुरोहितजी उपस्थित थे। दीक्षा के समय महाराणा तथा दोनो महाराजश्री और एक पुरोहितजी ही वहाँ विद्यमान रहे। नियत मुहूर्त पर महाराजश्री ने महाराणा को 'अष्टाक्षर-मन्त्र' की दीक्षा देकर कठी बाँधी। इसके बाद आवश्यक परिकर के उपस्थित हो जाने पर महाराणा ने गुरु-भेट चढ़ाई, और बाद मे नियमानुसार गाँव भेट करने अथवा उसके स्थान पर अन्य आवश्यकता की पूर्ति कर देने का वचन दिया। महाराजश्री ने प्रसादी ४ बीडा देकर उन्हे सत्कृत किया। मध्याह्न मे नियमानुसार महाराणा ने मन्दिर का महाप्रसाद लिया, जिसमे महाराजश्री ने बडे प्रेम के साथ उनके लिये स्वय परोसा और समीप बैठकर मनोरजन करते हुए शिष्टाचार किया।

इसी दिन महाराणा ने विद्या - विभाग मे पधारकर द्वा० पुस्तकालय एवं द्वा०

चित्रशाला की दर्शनीय पुस्तकों, प्राचीन चित्रों तथा अन्य वस्तुओं का निरीक्षण किया, और वेद की प्राचीन पुस्तकें इस लेखक से निकलवाकर देखीं। इन्हे देखकर महाराणा ने हर्ष और उत्साह के साथ उत्तम अभिप्राय प्रकट किया और चित्रशाला की व्यवस्था देखकर उसे मेवाड़ की अद्वितीय संस्था बतलाया। कार्त्तिक शु० १३ के दिन ही सायंकाल दोनो ओर से नियमानुसार विदाई का दस्तूर हो जाने पर महाराणा उदयपुर पधारे।

व्रजमंडल-परिक्रमा

सं० १९८९ मे महाराजश्री ने प्राचीन प्रथा के अनुसार ८४ कोस की व्रज-यात्रा करने का विचार कर समस्त वैष्णव-समाज को उसकी सूचना और आमन्त्रण-पत्र भेजे। यात्रा का समस्त प्रबन्ध मथुरा-राजाधिराज मन्दिर के अधिकारी पं० लज्जाशंकरजी के तत्त्वावधान मे कराया गया। कहना न होगा कि—महाराजश्री की व्रजयात्रा के लिये हजारों वैष्णव बहुत समय से बाट जोह रहे थे। अतः निश्चय हो जाने पर चारो ओर से मथुरा मे भीड़ एकत्रित होने लगी। यद्यपि ग्रीष्म काल के आधिक्य और वर्षा के अभाव से पहिले मथुरा के कलेक्टर ने इजाजत नहीं दी, पर अधिकारीजी के प्रयत्न से यह प्रतिबन्ध दूर कर दिया गया।

इस यात्रा मे जनसमूह के अधिक रूप में एकत्रित होने की संभावना से अतिशय सतर्कता और व्यय करके सब प्रकार का प्रबन्ध किया गया। सफाई, रोशनी, समाधान, सेवा और रक्षा तथा निवास आदि की व्यवस्था के लिये अलग-अलग विभाग स्थापित किये गए, जिनमे योग्य कर्मचारियों को पूर्ण सत्ता दी गई थी। पुलिस, अस्पताल, पोस्ट-ऑफिस और स्वास्थ्य-रक्षा के महकमों का विशेष सरकारी इन्तिजाम था। उदयपुर के 'प्रताप स्वयंसेवक-दल' ने यात्रा मे जनता की बहुत परिश्रम से सेवा की। इस सेवा-भाव की परा काष्ठा उस समय हो गई, जब यात्रा मे हैजे का रोग बहुत कुछ सावधानी रखने पर भी फैल गया था। इस दल के स्वयंसेवकों ने निर्भय होकर लावारिस अथवा असहाय व्यक्तियों का अन्तिम संस्कार किया। इस प्रकार यात्रा मे सभी आवश्यक कार्यों के लिये कर्मचारियों ने बड़ी तत्परता बतलाई, जिससे उपस्थित यात्रि-समाज को कष्ट का अनुभव नहीं करना पड़ा। जान-माल की रक्षा के लिये जिस सतर्कता का प्रयोग किया गया, वह वास्तव मे अभिनन्दनीय था।

सर्वविध आवश्यक प्रबन्ध हो जाने के अनन्तर महाराजश्री अपने परिकर के साथ भाद्रपद शु० १ गुरुवार के दिन कांकरोली से प्रस्थानित हुए और बीच मे एक दिन कृष्णगढ़ में विश्राम कर भाद्र० शु० ३ के दिन प्रात मथुरा पहुँचे। स्टेशन पर अपार जन-समाज ने उपस्थित होकर स्वागत किया और महाराजश्री का जुलूस निकाला। जनता के आग्रह करने पर भी महाराजश्री यात्रा के निमित्त पधारने के कारण व्रजभूमि को

प्रणाम कर पैदल ही जुलूस के साथ प्रधान मार्ग से अपने निवास-स्थल राजाधिराज के मन्दिर मे पधारे। एक विशेषता इस समय से यह हुई कि—जहाँ प्रतिदिन प्रचंड सूर्य का आतप जन-समाज को विकल कर देता था, और जिसके कारण यात्रा की एक अनिश्चितता-सी अनुभासित होती थी, वहाँ महाराजश्री के आने के दिन से ही मथुरा मे घनघटाएँ उठने लगीं, जिससे मनुष्यों को वर्षा-ऋतु की आशा होने लगी।

भाद्र० शु० ५ के दिन प्रातःकाल महाराजश्री, उनके भ्राता, स्वजन-सम्बन्धियों ने विश्रान्त घाट पर श्रीमहाप्रभुजी की सेवा-पूजा की और यमुनाजी का पूजन करते हुए यात्रा का नियम और संकल्प लिया। महाराजश्री के अनन्तर अन्य यात्रियों ने भी "नियम संकल्प" लिया, और यात्रा प्रारंभ की।

भाद्र० शु० ६ के दिन मथुरापुरी की अन्तर्ग्रही परिक्रमा बडे उत्साह के साथ सम्पन्न हुई, जिसमे लगभग ६-७ हजार यात्रियों ने भाग लिया। इस परिक्रमा मे महाराजश्री तथा यात्रिवर्ग ने प्राय सभी मंदिरों मे जाकर भेट-पूजा चढ़ाई, और यात्रा-नियम ग्रहण करने की विधि पूर्ण की। प्रारंभ में जहाँ ग्रीष्म के आतप से मार्ग मे पैर रखना मुश्किल था, वहाँ परिक्रमा मे ऐसी वृष्टि हुई कि जन-समाज को गलियों मे से निकलना मुश्किल हो गया। इस दैवी परिवर्तन से यात्रा की सफलता और महाराजश्री की महानुभाविता पर लोगों की दृष्टि जम गई। प्रतिदिन यात्रा के सभी स्थलों से अच्छी वरसात होने के समाचार आने लगे, जिससे जलकष्ट और रोगोपद्रव उठ खड़े होने की आशंका सर्वथा लुप्त हो गई।

भाद्र० शु० ७ के दिन मथुरा से यात्रा का मुकाम उठा और निर्दिष्ट स्थलों के लिये प्रयाण प्रारंभ हुआ। निश्चयानुसार यात्रा के विविध स्थलों पर—जो लगभग एक दूसरे से पाँच या सात कोस की दूरी पर हुआ करते थे—एक दिन पहिले ही डेरा-तम्बू लगवाने का प्रबंध कर दिया जाता था। महाराजश्री, उनके कुटुम्बियों, परिकर तथा कर्मचारियों एवं यात्रियों के लिये अलग-अलग निवास-स्थल नियत कर दिए गए थे। प्रत्येक स्थल पर लगभग ५०० से ६०० की संख्या में तम्बू, डेरे, छोलदारियाँ लग जाया करती थीं। अधिकाश वैष्णववर्ग ने सुविधानुसार अपना-अपना स्वयं प्रबंध कर लिया था। इस यात्रा में लगभग ७००० की संख्या मे जन-समाज साथ चलता था, जिसके भोजन आदि सामग्री के लिये सभी प्रकार की दूकानें साथ मे रहा करती थीं।

यात्रा में नित्य-क्रम के अनुसार प्रातःकाल ७ बजे मुक़ाम उठता और मध्यवर्ती स्थलों मे दर्शन, स्नान, आचमन, पूजन, दान आदि करते हुए मध्याह्न अथवा सायंकाल के पूर्व अपने नियत मुक़ाम पर पहुँच जाता था। रात्रि को विविध स्थलों की लीला के निदर्शक प्रसंग

रासमंडली द्वारा दिखाए जाते थे, और दिन मे समाज यथासाध्य भजन-कीर्तन आदि कर समय यापन करता था। निर्धारित क्रम के अनुसार यात्रा के मुकाम पर एक खास नगर बस जाया करता था, और उसके उठ जाने पर वहाँ उजाड़ नजर आता था। यात्रा मे कई दिनों तक तो अतिशय वृष्टि होने से यात्रियो को बडी तकलीफ उठानी पड़ी, पर जल का सर्वत्र सौकर्य हो जाने से किसी प्रकार की व्याधि होने की संभावना नहीं रही।

आश्विन कृष्ण ४ के दिन गिरिराजजी मे महाराजश्री ने दान का मनोरथ किया, जिसमे गिरिराजजी के पूजन के बाद उन्हे भोग लगाया गया। इस समय सारा यात्री-समुदाय दर्शनो को उलट पड़ा, जिसके लिये कर्मचारियों ने तथा स्वयंसेवकों ने बडी सावधानी से काम किया। आश्विन कृष्ण ५ के दिन चिर प्रतीक्षित 'कुनवाडे' का मनोरथ हुआ। जिसमे नाना प्रकार की सामग्री गिरिराज प्रभु को भोग लगाई गई। यात्रा मे यही सबसे बडा मनोरथ हुआ, जिसके दर्शनार्थ लगभग १०००० जन-समाज एकत्रित हुआ था। इस समय इतनी बहुत सामग्री बनाई गई थी कि स्थान-संकोच के कारण भोग मे एक साथ नहीं आ सकी, और भोग लगाकर यथास्थान रखवा देनी पड़ी थी। बाद मे यह सब प्रसाद समस्त आगत यात्रियों में योग्यतानुसार वितरण किया गया और लगभग बारह हजार मनुष्यों को भोजन कराया गया।

इस स्थल पर तीन-चार दिन से यात्रा मे हैजे का प्रकोप शुरू हो गया, जिसके लिये बड़ी सावधानी बरती जाने लगी। स्वास्थ्य-विभाग की सतर्कता से इसका ज्यादा प्रसार नहीं हो पाया, फिर भी यात्रा के पीछे-पीछे इसका अनुगमन होता ही रहा। इसमे विशेष असावधानी उन यात्रियों की थी, जो समय-असमय चाहे जैसा भोजन करने की त्रुटि करते थे।

इस प्रकार नियमित सभी स्थलों की यात्रा करते हुए कार्त्तिक कृष्ण ६ के दिन यात्रा की पूर्ति और मथुरा मे पुन प्रवेश हुआ। सप्तमी के दिन मथुरापुरी की बाह्य परिक्रमा की गई, जिसमे सवारी और जुलूस का प्राधान्य रहा। इसके बाद विश्रांत घाट पर महाराजश्री ने नियम-समाप्ति की विधि पूर्ण की। यात्रा मे महाराजश्री की ओर से खूब दान-पुण्य किया गया और समस्त चौबे अभ्यागत ब्राह्मणों को प्रारंभ दिन से अन्त तक भोजन पेटिया दिया गया। इसके बाद कार्त्तिक कृष्ण ८ के दिन मथुरा के विद्वानो की सभा की गई, जिसमे महाराजश्री ने उपस्थित सभी विद्वानो का दक्षिणादि से सत्कार किया। महाराजश्री ने यात्रा की समाप्ति पर कर्म-चारियो को उनकी प्रबन्ध-कुशलता से प्रसन्न होकर यथायोग्य पारितोषिक और स्वर्ण-रजत-पदक आदि प्रदान किए।

कार्त्तिक कृष्ण १० के दिन महाराजश्री ने मथुरा से प्रस्थान कर एक दिन जयपुर में विश्राम किया, और कार्त्तिक कृष्ण १२ सं० १९८९ मंगलवार के दिन वे कांकरोली वापिस आये। इस यात्रा में लगभग अस्सी हज़ार रुपया व्यय हुआ।

काशी, कलकत्ता और जगदीश-यात्रा

स० १९९१ के प्रारंभ मे महाराजश्री ने सविधि काशी की यात्रा की, और वहाँ जातीय प्रस्ताव में सम्मिलित हुए। जगदीश-यात्रा का विचार हो जाने से वे सकुटुम्ब, सपरिवार यहाँ से कलकत्ता गये, जहाँ वैष्णवों के आग्रह से उनको लगभग डेढ़-दो मास निवास करना पड़ा। इधर श्रीजगदीश की रथयात्रा का विशेष दर्शनीय उत्सव भी उसी समय के आसपास आता था। अस्तु। कलकत्ता की वैष्णव जनता ने नगर के दर्शनीय स्थानों के परिभ्रमण कराने के साथ महाराजश्री का भव्य स्वागत सत्कार कर अपने-अपने घर पधरावनियाँ कीं।

रथयात्रा का समय समीप आ जाने पर आषाढ़ शुक्ल पक्ष के प्रारंभ मे महाराजश्री जगदीश गये और वहाँ सविधि, सपरिकर यात्रा के स्थलों मे स्नान, दान आदि किया। स्नान-यात्रा के बाद पट खुलने पर प्रथम बार श्रीप्रभु के दर्शन-चरणस्पर्श कर उनकी भेट करते हुए सश्रद्ध भेट चढ़ाई।

श्रीजगदीश की रथयात्रा का महोत्सव समग्र भारत में प्रसिद्ध है। इस समय जो जनसमुदाय वहाँ एकत्रित होता है, उसकी संख्या का अनुमान लगाना बुद्धि से बाहर की बात हो जाती है। महाराजश्री ने प्रभु की इस अनुपम भव्य रथयात्रा, जनकपुर जाकर वहाँ के उत्सव का अवलोकन, एवं विशाल गगनचुम्बी रथ पर चढ़कर प्रभु के चरणस्पर्श आदि किये, और प्रभु के 'अटका' के लिये द्रव्य भेट करते हुए वहाँ के पंडा पुरोहितों को दान-दक्षिणा प्रदान की। यहीं गुच्छिकार श्रीकृष्ण पुरोहित के वंशजी के पास अपने कुल के प्राचीन पुरुषों के हस्ताक्षरों का अन्वेषण किया, जिसमें श्रीवल्लभाचार्य के प्रथम पुत्र श्रीगोपीनाथजी की यात्रा का वह पत्र भी सहसा मिल गया, जिसका अभी तक पता नहीं था और न पुरोहित को ही जिसकी खबर थी। इस पत्र से वल्लभाचार्य के उस शास्त्रार्थ का पता लगता है, जो सं० १५४५ मे जगदीशपुरी मे हुआ था *। यहाँ की यात्रा समाप्त कर महाराजश्री वापिस कलकत्ता आये और वहाँ कुछ समय रहकर बम्बई पधारे।

सन्तति-प्राकट्य

सं० १९९२ आश्विन मास मे आश्विन शु० १३ के दिन महाराजश्री की धर्मपत्नी श्रीचन्द्रलता बहूजी का सीमन्त-प्रस्ताव हुआ। इस प्रस्ताव के पूर्व मन्दिर के गोवर्द्धन चौक मे प्राचीन कच्चा मंडप हटाया जाकर पक्का विशाल मंडप

* यह पत्र वल्लभाचार्य के चरित्र पत्र २६ में इसी इतिहास मे प्रकाशित किया गया है।

वनवाया गया, जिसमें इस प्रकार के सभी उत्सव और सभा आदि सम्पन्न हो सकें। इस समय तैयार हो जाने पर उसमे आश्विन शु० ८ के दिन श्रीप्रभु को पधराकर विशाल मनोरथ किया गया, जिसमे हज़ारों वैष्णवों ने दर्शन किये। इसी समय आगत वैष्णव-समाज और यात्रियों की सुविधा के लिये कांकरोली में 'द्वारकेश-स्वयंसेवक-मंडल' की स्थापना की गई, जिसने वड़ी तत्परता से इस शुभ अवसर पर काम किया। इस प्रस्ताव के बाद मार्गशीर्ष अमावास्या के दिन महाराजश्री के चि० कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम श्रीनवनीतप्रिया वेटीजी रक्खा गया।

सं० १९९४ में आश्विन शु० ८ के दिन महाराजश्री के प्रथम पुत्र का प्राकट्य हुआ, जिसमें वड़ा भारी उत्सव मनाया गया। वालक का षष्ठीपूजन तथा नामकरण का प्रस्ताव वड़े उत्साह से महाराजश्री की मातृश्री ने सम्पन्न कराया और वालक का नाम चि० श्रीगिरिधरगोपाल रक्खा गया। महाराणा की ओर से भी नियमानुसार राज्य का दस्तूर आया। इस घर में वहुत समय वाद तिलकायित के पुत्र-प्राकट्य से चारों ओर आनन्द का विस्तार हो गया। वास्तव मे इस समय के हर्ष-उत्साह को परंपरा ने जो मूर्तिमान् रूप धारण किया, वैसा आज तक देखने-सुनने मे नहीं आया। चि० वालक के जन्म के अनन्तर जो सभी प्रकार के उत्सव-समारोह हुए, उनका यहाँ संक्षेप मे उल्लेख किया जाता है।

मनोरथ-समारोह और छप्पनभोग

पुत्र-प्राकट्य-हर्ष के उपलक्ष्य में महाराजश्री की मातृश्री ने श्रीद्वारकाधीश प्रभु के विविध मनोरथ करने का विचार किया, जिससे तदर्थ तैयारियाँ की जाने लगीं। निश्चय हुआ कि—विट्ठल-विलास वाग मे प्रभु को पधराकर अभूतपूर्व छप्पनभोग किया जाय। सर्वत्र इसकी निमन्त्रण रूप मे छपी सूचनाएँ भेजी गईं, जिससे हज़ारों वैष्णवों के आने की संभावना से उनके निवास और भोजनादि की व्यवस्था की जाने लगी। महाराजश्री के अनुज गो० श्रीविट्ठलनाथजी महाराज ने अपनी अध्यक्षता मे स्थानीय तथा वाहर के द्वा० स्वयंसेवक-मंडलों का संगठन किया, और यात्रियों के स्वागत, निवास तथा भोजन और दर्शन कराने की सुव्यवस्था की।

इस महोत्सव मे कांकरोली आने के लिये महाराणा से प्रार्थना की गई, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। इस समय लगभग ६००० वैष्णवों का समुदाय कांकरोली मे वाहर से आया। वाग के चौगान मे महाराणा से डेरा-तम्बू आदि की सहायता लेकर और स्थानीय मकानों का प्रवन्ध कर वैष्णवो के रहने की सुविधा की गई। आगत जन-समाज को सभी प्रकार की सुविधा हो, एतदर्थ महाराजश्री ने पृथक्-पृथक् विभागों की स्थापना की और उनकी देख-रेख का भार स्वयं अपने ऊपर रक्खा।

सं० १६६४ कार्त्तिक कृष्ण ११ (प्रबोधिनी) के दिन प्रातःकाल बड़े भारी जुलूस और सवारी के साथ श्रीद्वारकाधीश प्रभु विट्ठल-विलास बाग़ मे पधारे। वहाँ आज से प्रारंभ कर प्रतिदिन भाँति-भाँति के मनोरथ किये जाने लगे। महाराणा—जो इस उत्सव-समारोह के लिये पहिले ही कांकरोली आ गये थे—बीच के अवकाश के दिनों में सकुटुम्ब चारभुजाजी की यात्रा समाप्त कर प्रभु के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। इस समय महाराणा बीकानेर-नरेश की स्वर्णजयन्ती के उत्सव पर बीकानेर जाने के निश्चय से कांकरोली अधिक न ठहर सके और आवश्यक दर्शन कर महाराजश्री से बिदा हुए। इसी प्रसग मे महाराणा ने विद्या-विभाग के संस्थासमुद्घाटन-समारोह में जो भाग लिया था, उसका वर्णन पृथक् रूप मे किया जा रहा है।

महाराजश्री के उत्साह और मातृश्री की प्रेरणा से कई दिनों तक बाग में प्रभु के नाना प्रकार के मनोरथ-उत्सव हुए, जिनसे वैष्णव-समाज के आनन्द का पारावार नहीं रहा। मार्गशीर्ष कृष्ण ६ के दिन विशाल छप्पनभोग का मनोरथ किया गया, जिसमे बाग के मन्दिर का विशाल चौक महाप्रसाद के टोकरों से भरा हुआ था, और जिसके बनाने के लिये कई दिनों से विशेष आयोजन तथा देखरेख रक्खी गई थी। उक्त दिन श्रीप्रभु चाँदी के विशाल बँगला मे विराजमान हुए और लगभग चार घंटे तक हजारों यात्रियों ने दर्शन किये। इस समय की भीड़ का कोई ठिकाना नहीं था। इस उत्सव के बाद दूसरे दिन आगत समस्त यात्रियों को महाप्रसाद लिवाया गया। मनोरथ समारोह में प्रायः सभी प्रकार के उत्सव बडी सजावट के साथ सम्पन्न हो जाने पर श्रीप्रभु मार्गशीर्ष कृ० १२ के दिन पुन. मन्दिर मे पधारे।

विद्या-विभाग का सस्था-समुद्घाटन

जैसा पहिले कहा जा चुका है, इसी पुत्रोत्सव के उपलक्ष्य में महाराजश्री की आज्ञा और साहाय्य से विद्या-विभाग के संस्थासमुद्घाटन-महोत्सव का आयोजन किया गया। इस समय उक्त संस्था को दस वर्ष पूर्ण हुए थे, अत उसका 'दशाब्दी-महोत्सव' करने का प्रबन्ध किया जाने लगा। महोत्सव के प्रधान मन्त्री महाराजश्री के लघु भ्राता गो० विट्ठलनाथजी महाराज ने सस्थाओं के उद्घाटन का कार्यारंभ महाराणा के करकमलों द्वारा कराने का प्रयत्न किया और स्वय उदयपुर जाकर उनसे विचार-विनिमय कर उसकी तिथि निश्चित की। यद्यपि विद्या-विभाग के अन्य सम्पादित होनेवाले उत्सवों के आयोजन के साथ यह समारोह भी पौष मास मे करने का निश्चय किया गया था, पर उस समय महाराणा की उपस्थिति कांकरोली मे न हो सकने के कारण उनके प्रदत्त समय के अनुसार वह कार्त्तिक माम मे ही निर्धारित किया गया।

अपनी यात्रा के कार्य-क्रम के अनुसार महाराणा कार्त्तिक शुक्ल पक्ष मे कांकरोली

आये और चारभुजा की यात्रा की। वहाँ से लौटकर श्रीद्वारकाधीश प्रभु के उत्सवों के दर्शनार्थ तथा उद्घाटन-समारोह को सम्पादित करने के लिये उन्होंने चार-पाँच दिन कांकरोली राजनगर मे निवास किया।

कार्त्तिक शु० ११ के दिन सायंकाल ५ बजे महाराणा ने 'श्रीबालकृष्ण-विद्याभवन' का समुद्घाटन किया। यह भवन बालकों के अध्ययन के लिये महाराजश्री ने अपने और वैष्णव-वर्ग द्वारा प्रदत्त द्रव्य-साहाय्य से लगभग १२००० रु० लगाकर बनवाया था। इस समय आवश्यक सजावट कराकर भवन मे महाराणा को पधराकर महाराजश्री ने स्वागत किया, और आवश्यक वक्तव्य के अनन्तर उन्हें एक अभिनन्दनपत्र समर्पित किया। महाराणा ने लगभग १ घंटे तक बालकों के व्यायाम-सम्बन्धी खेल देखे और भवन का चाँदी का ताला अपने हाथ से खोलकर उसका निरीक्षण किया। यद्यपि उस समय यह भवन पूरा बन नहीं पाया था, फिर भी इसकी विशालता देखकर वे अतिशय प्रसन्न हुए। अन्त मे महाराणा की ओर से उनके प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू रामगोपालजी ने महाराजश्री के अभिनन्दनपत्र का उत्तर पढ़कर सुनाया और उचित स्वागत-सत्कार होने पर यह कार्य समाप्त हुआ।

कार्त्तिक शु० १२ के दिन पूर्वनिश्चयानुसार महाराणा ने 'श्रीद्वारकेश व्यायामशाला' मे आकर 'श्रीद्वा०शु०ब्रह्मचर्याश्रम' का समुद्घाटन किया। यहाँ भी महाराजश्री ने सपरिकर महाराणा का यथोचित स्वागत किया। समयोचित वक्तव्य के अनन्तर महाराणा के कर-कमलों द्वारा बालकों को वस्त्र, पुस्तक तथा पात्रादि प्रदान किये गये, और उन्होंने स्थान पर जाकर संस्था के बोर्ड का परदा अपने हाथ से खोलते हुए इस आयोजन को पूर्ण किया।

इसी दिन सायंकाल विट्ठल-विलास बाग मे प्रभु के दर्शन कर महाराणा ने निश्चयानुसार 'सुखपाल के बँगला' नामक स्थान मे आकर श्रीद्वा०बालिका-विद्यालय का उद्घाटन किया जहाँ गो० श्री० विट्ठलनाथजी ने आवश्यक परिचय देकर महाराणा की सौजन्य-व्यवहार की प्रशंसा की। महाराणा ने बालिकाओं द्वारा बनाई हुई कसीदा आदि की कला देखकर अतिशय प्रसन्नता प्रकट की, और अपने हाथ से बालिकाओं को पारितोषिक देते हुए संस्था के नाम का समुद्घाटन किया।

जहाँ तक ध्यान है, महाराणा ने अपने हाथ से किन्ही अन्य संस्थाओं का उद्घाटन नहीं किया है, पर यह कांकरोली का सौभाग्य था कि—उनके द्वारा यहाँ तीन-तीन संस्थाओं का उद्घाटन-समारोह सम्पन्न हुआ। महाराणा विद्या विभाग के कार्य-कलाप से अच्छे प्रकार परिचित तो थे ही, इधर महाराजश्री के प्रति इनकी सद्भावना ने भी ऐसा सयोग उपस्थित कर दिया। उदयपुर के प्रधान राज्य-कर्मचारियों ने, जिन्होंने इस महान कार्य की सयोजक-समिति के सदस्य बनकर

अपना सहयोग देते हुए परोक्ष रूप से साहाय्य दिया था, उनमे प्राइम मिनिस्टर तेजसिंहजी महता, रेवन्यु-कमिश्नर पं॰ कमलाकरजी दुवे, वैद्यराज पं॰ रविशंकरजी, महताजी फतहलालजी आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। महाराणा ने महाराजश्री से विदा होने के बाद विद्या-विभाग के लिये ३००० रुपया चित्तौड़ी सहायता रूप मे प्रदान किया।

पूर्व-निश्चय के अनुसार इसी वर्ष 'विद्या-विभाग का दशाब्दी-महोत्सव' करने का समय पौष कृष्ण ६ के दिन से निर्धारित किया गया, और एतदर्थ एक सप्ताह का कार्य-क्रम तैयार हुआ। आगत व्यक्तियों, विद्वानों तथा कवियों के स्वागत आदि के लिये विद्या-विभाग की संयोजक-समिति के द्वारा पृथक्-पृथक् उपसमितियाँ बनाई गईं, एवंच सम्पन्न होनेवाले अलग-अलग कार्यों के अर्थ तद्विषयों के विज्ञ व्यक्तियों को कार्य-भार सौंपा गया।

विद्या-विभाग का दशाब्दी-महोत्सव

पौष कृष्ण ६ के दिन से मन्दिर के विशाल चौक मे बनाए हुए भव्य मंडप मे रात्रि के समय से इस महोत्सव का कार्यारंभ हुआ। प्रथम तीन दिन के धार्मिक व्याख्यान-समारोह में कई महोपदेशकों ने अपने भाषण द्वारा सुन्दर विषयों का प्रतिपादन कर धर्म के अनेक जटिल प्रश्नों को सुलझाया, और जनता को उत्साहित किया। इसके बाद अखिल भारतवर्षीय 'हिंदी-कवि-सम्मेलन' हुआ, जिसमे चारों ओर के प्रख्यात कवियों ने भाग लेकर अपनी काव्य-धारा बहाकर महोत्सव को सफल बनाया। कवि-सम्मेलन के दो दिनों मे ही 'संस्कृत-कवि-सम्मेलन' का आयोजन भी किया गया, जिसमें बाहर से कई विद्वानों ने भाग लेकर संस्कृत-साहित्य और उसकी काव्य-कला का चमत्कार बतलाया। एक दिन 'श्रीद्वारकेश-विश्ववस्तु-संग्रहालय' का समुद्घाटन हुआ, जिसमे दर्शनीय प्राचीन और नवीन ऐतिहासिक वस्तुओं का प्रदर्शन किया गया था। इसी सप्ताह मे 'श्रीद्वारकेश-हॉकी और वॉलीबाल' के मेवाड़-टूर्नामेन्ट भी किये गए, और स्थानीय द्वा॰ व्यायामशाला का बडे अच्छे ढंग से वार्षिकोत्सव मनाया गया। महाराजश्री की ओर से इन सभी कार्यों मे जी खोलकर द्रव्य लगाया गया, और प्रत्येक विषय के विज्ञ सर्वश्रेष्ठ पुरुषों का पारितोषिक द्वारा सत्कार किया गया। समागत विद्वानों, कवियों और व्याख्याताओं को यथायोग्य पुरस्कृत कर महाराजश्री ने अपनी विद्याप्रियता और गुणग्राहिता का परिचय दिया। इस उत्सव-समारोह मे लगभग दो हज़ार मनुष्यो की उपस्थिति हुई थी।

इस प्रकार का अनुष्ठान, जिसमें धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक एवं विनोदात्मक आयोजन किया गया हो, मेवाड मे बहुत कम एक साथ सम्पादित किया गया होगा। विद्या-विभाग और उसके इस भव्य समारोह का परिचय उसके मुद्रित कार्य विवरण से जाना जा सकता है।



(१) चि० लालबाबा **श्री यदुनाथजी** प्रा स १९८८ चैत्र शु० ९ (२) चि० लालबाबा **श्री कृष्णकुमार** प्रा स १९९० माघ शु० ४
(३) श्री नवनीतप्रियाबेटीजी (४) चि० लालबाबा **श्री गिरधरलालजी** प्रा स १९९४ आश्विन शु० ८

यहाँ इतना कह देना अप्रासंगिक न होगा कि—महाराजश्री के पितृचरण श्रीबालकृष्णलालजी महाराज ने जिस प्रकार साहित्य-कला को प्रोत्साहित किया था, उसी प्रकार उनके आत्मज ने भी किया है।

सं० १९६५ फा० कृष्ण १० के दिन महाराजश्री महाराणा श्रीभूपालसिंहजी के जन्मदिवसोत्सव में सम्मिलित होने के लिये उदयपुर गए। नियमानुसार महाराणा ने नियत स्थान पर उपस्थित होकर उनकी अगवानी की। भेट आदि रखकर नगर मे पधारने का निवेदन करने पर महाराजश्री मुकाम पर पधारे।

महाराणा के जन्मदिन पर उदयपुर-यात्रा

फा० कृष्ण ११ के दिन (महाराणा का जन्मदिन) प्रातःकाल महाराजश्री अपने लवाजमा के साथ महलों में जाकर मार्कण्डेय-पूजा-समारोह मे सम्मिलित हुए। पूजन हो जाने के बाद महाराणा ने उपस्थित होकर महाराजश्री को प्रणाम किया और भेट चढ़ाई। महाराजश्री की ओर से भी उनका यथायोग्य समाधान-सम्मान किया गया। सायंकाल त्रिपोलिया दरवाजा पर जन्म-दिन का शानदार दरबार भरा गया, जिसके देखने के लिये महाराजश्री के लिये समीपवर्ती महलों के गोखड़े मे प्रबंध किया गया था। राज्य-दरबार मे महाराणा की नजर-भेट हो जाने पर हाथियों की लड़ाई दिखाई गई।

इन्हीं दिनों महाराणा ने अपने समीपवर्ती कौटुम्बिक बालक श्रीभगवतीसिंहजी को गोद लेकर युवराज-पद पर अभिषिक्त किया था, अतः महाराजश्री ने प्रथा के अनुसार नवीन युवराज का सम्मान किया और बधाई दी। युवराजकुमार ने भी यथापद्धति अपनी भक्ति बतलाते हुए प्रणाम, भेट आदि की। फा० कृष्ण १३ के दिन महाराजश्री के स्थान पर महाराणा पधारे और दोनो ओर से यथा-नियम परस्पर विदाई का दस्तूर हुआ। महाराणा से अनुज्ञा लेकर महाराजश्री कांकरोली आए।

सं० १९९६ चैत्र मास मे महाराजश्री ने अपने भतीजे चि० श्रीयदुनाथलालजी का यज्ञो-पवीत-संस्कार और उसके बाद स्वजातीय 'शुद्धाद्वैत वैष्णव वेल्लनाटीय महासभा' का षष्ठाधिवेशन करने का विचार किया। महाराजश्री के द्वारा कांकरोली मे सर्वप्रथम सम्पन्न होनेवाला यही मांगलिक प्रस्ताव था, अतः इसके लिये खूब तैयारियाँ की गईं। इस समय कांकरोली मे वैष्णवों, यात्रियों और जातीय व्यक्तियों का महान् समुदाय एकत्रित हुआ, जिसके लिये पृथक्-पृथक् स्वागत-सत्कार की व्यवस्था की गई। चैत्र शुक्ल ९ के दिन बड़े ठाट-बाट से चि० यदुनाथलालजी के जन्मदिन की मार्कण्डेय-पूजा हुई और दशमी के दिन उनका उपनयन-संस्कार। महाराजश्री की मातृश्री ने अपने पौत्र के इस प्रथम प्रस्ताव को बड़े हर्ष और उत्साह से सम्पादित किया और जी खोलकर समागत मनुष्यों

चि० यदुनाथलालजी का उपनयन-संस्कार

का यथायोग्य सम्मान किया। इसी प्रस्ताव के उपलक्ष्य में मंडप मे वैशाख कृष्ण प्रतिपद् के दिन श्रीद्वारकाधीश प्रभु को वडे ठाट-बाट से पधराकर मनोरथ किया गया, जिसमे हजारों यात्रियों ने उपस्थित होकर दर्शन किये।

इस महोत्सव के समय महाराजश्री ने जातीय प्रगति का भी आयोजन किया। फलतः चैत्र शुक्ल १०, ११, १२ के दिन शुद्धाद्वैत वै० वे० युवक-मंडल का प्रथम वार्षिक अधिवेशन कांकरोली में किया गया, जिसकी स्वागत-समिति के सभापति का पद महाराजश्री को और अधिवेशन के अध्यक्ष का पद गोस्वामि श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज (सूरत) के ज्येष्ठ पुत्र गो० श्रीगोविन्दरायजी को समर्पित किया गया था। मंडल के मंत्री गो० विट्ठलनाथजी महाराज के सहयोग से महाराजश्री ने सर्वविध साहाय्य देकर अधिवेशन की सुव्यवस्था की और जातीय आवश्यक प्रश्नों पर विचारकर उन्हें सफल बनाने का प्रयत्न किया।

जातीय सभा का आयोजन

इसके अनन्तर शु० वैष्णव वे० महासभा के षष्ठ अधिवेशन की तैयारी की गई, जिसकी स्वागत-समिति के सभापतित्व का भार महाराजश्री ने वडे हर्ष से लेकर इस कार्य का सम्पादन किया। वैशाख कृष्ण २ से लगातार चार दिन तक कांकरोली मे महासभा की बैठक हुई, जिसमें सूरतस्थ गो० श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज के सभापतित्व और कामवनस्थ गो० श्रीवल्लभलालजी महाराज के मन्त्रित्व में महासभा ने अपना कार्यकलाप सम्पादित किया। महाराजश्री ने इस समय स्वागत-सम्बन्ध मे एक सुललित समयोचित भाषण दिया, जो मुद्रित कराकर वितरण किया गया था।

यहाँ इतना कह देना अप्रासंगिक न होगा कि—महाराजश्री प्रारंभ से ही जाति-हित के कार्यों में भाग लेते और उसे यथाशक्ति साहाय्य प्रदान करते आये हैं। सं० १९७६ मे सर्वप्रथम उक्त महासभा की स्थापना हुई और सं० १९७७ वैशाख मास मे बम्बई मे प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसमें महाराजश्री ने जातीय विद्यालय-फंड मे एक हजार रुपया दान दिया था। सं० १९८० के द्वि० अधिवेशन (नाथद्वारा), सं० १९८१ के त्रि० अधिवेशन (बंबई) में भी महाराजश्री उपस्थित हुए, और सं० १९९१ के पंचम अधिवेशन (अहमदाबाद) में उन्होंने विशेष भाग लेकर उसका कार्य संपादित किया था। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उसके छठे अधिवेशन का आमन्त्रण महाराजश्री ने कांकरोली के लिये दिया और आवश्यक व्यय कर उसे सफल बनाया।

इसी प्रकार प्रथमाधिवेशन कांकरोली के ठीक एक वर्ष पूर्व जब 'जातीय युवक-मंडल' की स्थापना अहमदाबाद मे हुई, उस समय भी महाराजश्री ने उसे आवश्यक अर्थ-साहाय्य प्रदान कर उज्जीवित किया था। महाराजश्री बाल्यावस्था से ही जाति-हित-सम्बन्धी कार्यों मे मनोयोग से भाग लेते आये हैं। आज से लगभग ६-७ वर्ष पूर्व नाथद्वारास्थ तिलकायित नि०

श्रीगोवर्द्धनलालजी महाराज के एकमात्र पुत्र श्रीदामोदरलालजी ने संस्थान, जाति, सम्प्रदाय और धर्म के विरुद्ध आचरण कर वैष्णव-समाज, धार्मिक समुदाय, एवं जाति-संघ मे एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित कर दिया था, जिसका एक अलग इत्तिवृत है। उनके स्वर्गवासी हो जाने पर तत्पुत्र, नाथद्वारा के एकमात्र उत्तराधिकारी, वर्तमान तिलकायित चि० श्रीगोविंदलालजी महाराज का जातिसम्मेलन का प्रश्न जटिल हो गया। इधर दामोदरलालजी के पूर्व ही उनके पिताश्री का गोलोकवास हो गया था, जो दामोदरलालजी को अपने उत्तराधिकार से च्युत कर अपने पौत्र गोविंदलालजी को तिलकायित निर्वाचित कर गये थे, परन्तु दामोदरलालजी के संसर्ग में कुछ समय तक रहने के कारण अल्पवयस्क होने पर भी उनका प्रायश्चित्त-प्रसंग आ खड़ा हुआ था, और उन्हें नियमानुसार तिलकायित बनाने का प्रश्न जातीय महापुरुषों के हाथ में था निकटस्थ स्वजन होने के कारण महाराजश्री को भी इसके लिये विशेष प्रयत्न करना पड़ा। जिसके परिणाम-स्वरूप उनके द्वारा प्रायश्चित्त-व्यवस्था तैयार कराई गई। सं० १६६५ के ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष में महाराजश्री मथुरा पधारे और वहाँ से अन्य जातीय महानुभावों के साथ चि० गोविंदलालजी को सोरों ले जाकर गंगास्नान एवं गोकुल मे ठकुरानी घाट पर उनका प्रायश्चित्त करवाया। जिससे उनकी जातिव्यवहार्यता सिद्ध हो सकी। इस विषय मे महाराजश्री ने आवश्यक व्यय कर नाथद्वारा के साथ सहयोग का वर्ताव किया, जो परंपरा से दोनो ठिकाने के तिलकायितों मे होता चला आया है। प्रस्तुत प्रसंग मे महाराजश्री को आर्थिक हानि भी उठानी पड़ी, पर साम्प्रदायिक उत्कर्ष रखने के लिये उन्होंने उसकी परवाह नहीं की।

कांकरोली मे अन्नकूट का प्रसंग

इसी प्रसंग मे तिलकायित श्रीगोवर्द्धनलालजी महाराज के नित्यलीला-प्रवेश हो जाने और दामोदरलालजी के स्वाधिकार से वंचित कर दिये जाने पर नाथद्वारा मे श्रीनाथजी की परिचारकी का प्रश्न उठा, जिसके तय हुए बिना अन्नकूट के अवसर पर श्रीद्वारकाधीश को नाथद्वारा पधराने की समस्या भी आ खड़ी हुई। बात यह थी कि—किसी गोस्वामिबालक परिचारक की अनुपस्थिति मे स्वयं उपस्थित रहते मुखियाजी श्रीनाथजी की आरती आदि करें, ऐसा महाराजश्री नहीं चाहते थे। ऐसा होने देना एक प्रकार से श्रीनाथजी पर से समस्त गोस्वामिबालकों का परंपराप्राप्त स्वत्व का हटाना और साथ ही एक प्रकार का अपमान भी था। परन्तु इसी बात को लेकर नाथद्वारा के तात्कालिक कर्मचारियों में इस प्रकार का एक दुराग्रह हो गया कि—कांकरोलीवाले महाराजश्री को मुख्य सेवा का अधिकार न दिया जाय और उसे मुखियाजी ही पूरा करें।

इस स्वाधिकार की रक्षा के लिये महाराजश्री ने अन्नकूट पर श्रीद्वारकाधीश को नाथद्वारा नहीं पधराया और लगातार तीन वर्ष तक—जब तक मुख्य परिचारक का प्रश्न हल नहीं हो

गया—कांकरोली मे ही अन्नकूट का उत्सव किया। प्रथम वर्ष (सं० १६६१) तो अन्नकूट का इतना कम समय रह गया था कि—उसकी सामग्री भी तैयार नहीं की जा सकती थी, फिर भी महाराजश्री ने प्रभु को परिश्रम न हो और समय पर ही उत्सव किया जा सके, एतदर्थ अपने तत्त्वावधान में शीघ्र से शीघ्र सब व्यवस्था करवाई, जिससे नियत दिन ही श्रीद्वारकाधीश प्रभु कांकरोली मे ही विराजकर अन्नकूट आरोगे। इस प्रकार सं० १६६१ से लेकर ६३ तक कांकरोली में ही यह उत्सव होता रहा, जो नाथद्वारावालों के लिये एक विषम समस्या हो गई। अन्त में महाराणा के द्वारा इस प्रश्न का निवटारा किया जाकर इन्दौर के गो० श्रीकृष्णरायजी महाराज को परिचारक नियत किया गया और सं० १६६४ से द्वारकाधीश अन्नकूट पर पुन: नाथद्वारा पधारने लगे।

सं० १६६६ प्रथम श्रावण कृष्ण मे महाराजश्री मथुरा पधारे। वहाँ श्रीराजाधिराज के मन्दिर

राजाधिराज-मन्दिर में चित्रोद्‌घाटन

में जगमोहन मे प्राचीन समय से चित्रकारी की हुई थी, जो बहुत ही प्राचीन हो जाने से अस्पष्ट हो गई थी। वर्तमान अधिकारी पं० लज्जाशंकरजी ने महाराजश्री से आज्ञा लेकर उसका पुनरुद्धार का कार्य कराया और लगभग २०,०००) रु० व्यय कर एक साल में उसे नवीन रूप मे तैयार कराया। नाथद्वारा के चित्रकारों के द्वारा वहाँ की कला के अनुसार साम्प्रदायिक ढंग पर यह कार्य सम्पादित किया गया। जिसमें सम्प्रदाय के १० सेव्य स्वरूप, सातों तिलकायित, सपुत्र श्रीवल्लभाचार्य, तथा एक ओर मन्दिर के संस्थापक पारिखजी से लेकर सेठों की वर्तमान परम्परा तक के चित्र चित्रित किये गये हैं। इसी प्रकार प्रारंभ से लेकर वर्तमान समय तक तृतीय पीठ के समस्त तिलकायित चित्रों मे प्रतिष्ठापित किये गये हैं। संक्षेप मे यह चित्रावली जहाँ संयुक्त प्रान्त में एक ही होने के कारण दर्शनीय है, वहाँ सम्प्रदाय और मन्दिर के इतिहास का चित्रमय परिदर्शन भी है। जहाँ तक ध्यान है, वर्तमान समय मे इतिहास, धर्म तथा कला की दृष्टि से ऐसी चित्रकारी भारत मे उपलब्ध नहीं है। महाराजश्री ने जहाँ समय-समय पर वैभव-वृद्धि कर श्रीराजाधिराज की प्रतिदिन सेवा मे आनेवाले पात्र भी चाँदी और सोने के बनवा दिये हैं, वहाँ उसकी आन्तरिक व्यवस्था को सुचारु रूप से परिमार्जित करने के साथ ही मन्दिर को दर्शनीय और आकर्षक ढंग से सज्जित कर दिया है। इस चित्रकला की प्रतिष्ठा से विशालता के साथ मन्दिर की शोभा भी चौगुनी हो गई है। इस कलात्मक संग्रह के पूर्ण प्रस्तुत हो जाने पर प्रथम श्रावण कृष्ण १२ के दिन महाराजश्री ने मथुरा जाकर बडे आकर्षक ढंग से इसका उद्‌घाटन किया। जिसके अवलोकनार्थ विशाल जनसमुदाय उपस्थित हुआ था।

सं० १९९६ पौष शु० १० के दिन सायंकाल महाराजश्री के द्वितीय पुत्र का प्राकट्य हुआ।

द्वि० पुत्र का प्राकट्य और बीकानेर-यात्रा

महाराजश्री के प्रथम पुत्र चि० श्रीगिरिधरगोपाल का एक वर्ष के बाद देहांत हो जाने से परिवार में जो एक उदासीनता छाई हुई थी, वह द्वि० पुत्र चि० श्रीव्रजेशकुमार के जन्म से अन्तर्हित हो गई। महाराजश्री की मातृश्री ने इसे श्रीप्रभु की कृपादृष्टि समझकर बड़े उत्साह से 'छट्ठी' एवं 'बरही' का प्रस्ताव सम्पन्न कराया। इस आनन्द के उपलक्ष्य में महाराजश्री के फाल्गुन कृ० २ के दिन जन्मोत्सव-दरबार में स्वजन संबंधियों और राज्यकर्मचारियों को वस्त्राभरण प्रदान किये गये। इसके साथ ही महाराजश्री की आज्ञानुसार प्रायः एक लाख तीस हजार की वसूली की छूट देने का एलान किया गया, जिससे निर्धन कृषक प्रजा के प्रति उनका अनुराग और वात्सल्य प्रकट होता है।

इसी वर्ष फाल्गुन में उदयपुर-महाराजकुमार श्रीभगवतीसिंहजी के शुभ विवाहोत्सव पर बीकानेर पधारने के लिये महाराणा ने महाराजश्री के पास आमंत्रण-पत्र भेजा, और आग्रह प्रदर्शित किया। तदनुसार फाल्गुन कृ० ५ के दिन महाराजश्री परिकर-सहित बीकानेर पधारे, जहाँ महाराणा की सूचना के अनुसार बीकानेर-राज्य की ओर से स्वागत-निवासादि का प्रबन्ध किया गया। फा० कृ० ६ के दिन बीकानेर में महाराणा उदयपुर और उनके कुमार की भव्य सवारी निकाली गई, जो दोनों राज्यों की विशिष्टता के साथ घनिष्ठता की द्योतक थी। सायंकाल 'राजविलास' में महाराणा के अतिशय आग्रह पर आचार्य-वेश में ही महाराजश्री उनसे मिलने पधारे। फाल्गुन कृ० ७ के दिन 'वरयात्रा' होने के पूर्व नियमानुसार सम्मान एवं मर्यादा-पूर्वक 'राजविलास' में जाकर महाराजश्री ने महाराणा और राजकुमार को आशीर्वादादि प्रदान कर प्रभु से मंगल-कामना की। इसके अनन्तर राज्य की ओर से निर्धारित 'सुखविलास' स्थान में विराजमान होकर महाराजश्री ने अपने भ्राता-सहित 'वरयात्रा' का जुलूस और सवारी देखी, जो आप ही अपनी उपमा थी।

फा० कृ० ८ के दिन महाराणा साहब के मुक़ाम पर पधारकर महाराजश्री ने विदा का दस्तूर किया, और आवश्यक दर्शनीय स्थानों का निरीक्षण कर नवमी के दिन कांकरोली को प्रस्थान किया। फा० कृ० ११ के दिन महाराणा का जन्मदिन मेवाड की सीमा "खांमली घाट" स्टेशन पर मनाया गया। इस निमित्त मध्याह्न में उनकी स्पेशल आने पर महाराजश्री ने कांकरोली स्टेशन पर पधारकर प्रसादी माला, बीडा, वस्त्र और प्रसाद भिलाकर उनका ससम्मान समाधान किया।

इस प्रकार महाराणा के साथ महाराजश्री को यह प्रथम ही अवसर प्राप्त हुआ, जब उनके आग्रह पर यात्रा की गई हो। महाराणा ने भी समयोचित सम्मान के साथ बाहर भी अपने गुरुघर को गौरव प्रदान किया, जो उनके सौजन्य का निदर्शक है।

वर्तमान महाराजश्री व्रजभूषणलालजी के जीवन-चरित्र के विषय मे इन प्रासंगिक कार्यों के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? महाराजश्री नीतिपरायण, प्रतिभासम्पन्न, कलाप्रिय, साहित्य के उन्नायक और विद्याविलासी व्यक्ति हैं, जिनके उक्त कार्यों के द्वारा उनकी मानसिक भावना और अभिरुचि का पता लगता है। वे जहाँ धर्मपरायण, भगवत्सेवा-रसिक और स्वतन्त्रप्रकृति, प्रशान्तचेता हैं, वहाँ कट्टर मातृभक्त और उनकी आज्ञा के परिपालक हैं। वास्तव में उनके वर्तमान जीवन पर जो सात्त्विक, गंभीर और शान्त वातावरण का प्रभाव पड़ रहा है, वह उनकी पूज्य मातृश्री की देन, अथच सत्कार्यों के अनुष्ठान के प्रति जो अभिरुचि है, वह इनका पैत्रिक परंपरा-प्राप्त गुण ही है।

महाराजश्री का व्यक्तित्व

इस स्वल्प समय मे भी महाराजश्री के द्वारा ठिकाने की जो उन्नति हुई है, वह एक अभिनन्दनीय कार्य है। मन्दिर की सुव्यवस्था, उसके आवश्यक प्राचीन मकानों का जीर्णोद्धार, नवीन भवनों का निर्माण जहाँ ठिकाने की श्रीवृद्धि करते हैं, वहाँ कई धर्मशालाओं, विद्याभवन और सार्वजनीन संस्थाओं की स्थापना और निर्माण से जनता का उपकार भी हुआ है। नगर मे बिजली की रोशनी, लाउड स्पीकर द्वारा जनता को विविध शिक्षा-प्रदान, श्रमजीवियों के लिये रात्रि-पाठशाला, पुस्तकालय और वाचनालय के द्वारा जो जनहित का कार्य किया जा रहा है, वह वास्तव में समयोचित प्रगति है। इन्हीं के समय महाराणा ने रेलवे स्टेशन, चारों ओर यातायात की सुविधा के लिये पक्की सड़कें तथाच राजसमुद्र को 'एम्पीरियल एयरवेज' का स्टेशन बनवाकर जो कांकरोली को अभ्युन्नति का अवसर प्रदान किया है, वह स्मरणीय है। इसी समय यहाँ टेलिग्राफ आफिस खुल जाने से जनता को जो सहूलियत मिल गई है, वह भी एक चिरकांक्षित आशा की पूर्ति है।

वर्तमान महाराणा और महाराजश्री का सहयोग गुरुशिष्य-भाव के होते हुए भी जिस रूप मे वर्तमान है, उससे कांकरोली को बहुत कुछ आशाएँ हैं।



परिशिष्ट—१

महाराजश्री के द्वारा संस्थापित मन्दिर

१. पेटलाद श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर, श्रीद्वारकेशलालजी को सं० १६७३ मे भेट हुआ था। २. चराडा श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर, सं० १६७४। ३. सरढव श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर, सं० १६७४। ४ बिलोदरा श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर, प्रथम यहाँ चित्रसेवा थी, सं० १६७४ में स्वरूप-सेवा पधराई गई। ५. सांगली श्रीद्वारकानाथजी के दो मन्दिर, सं० १६७५। ६. लागणेज श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर, सं० १६८०। ७. जैतपुर श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर सं० १६८६। ८. कुकरवाड़ा श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर, यहाँ प्रथम चित्रसेवा थी, १६८८ में स्वरूप-सेवा पधराई। ९. टंकारिया श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर, सं० १६६४, बाद मे बन्द हो गया। १०. कंजरी श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर, सं० १६६४।

इसके अतिरिक्त जिन मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया गया है, उनका नाम-निर्देश महाराजश्री के चरित्र मे यथास्थान किया गया है।

परिशिष्ट—२

आगत राजा-महाराजा तथा उमराव अथवा उनकी भेट

संवत्	मिती	नाम
१६७३	कार्त्तिक सुदी ५	लखतर दरबार महाराजा करणसिंहजी।
,,	माघ वदी ११	आमेट रावजी शिवनाथसिंहजी।
१६७४	वैशाख वदी ६	बिजोलिया रावजी केशरीसिंहजी।
,,	ज्येष्ठ सुदी १३	धरयावद रावजी जसवन्तसिंहजी।
१६७४	कार्त्तिक सुदी ५	फतहगढ़ माजी साहब चूडावतजी तथा मेजा माजी साहब चौहानजी।
,,	,, ,, ११	मेजा रावजी के कुँवरजी तथा खेमसल 'मारवाड़' के ठाकुर साहब।

१९७६	वैशाख कृष्ण २	महाराणा फतहसिंहजी आये और महाराजश्री की गादी का दस्तूर किया। बाद में पंचमी के दिन महाराणा तथा रानीजी ने महाराजश्री के यज्ञोपवीत-सस्कार की खोल आदि का दस्तूर किया।
,,	कार्त्तिक बदी ८	कुरावड रावजी।
,,	आश्विन बदी १४	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी।
,,	पौष सुदी १०	,, ,, ,, ,,
१९७७	आषाढ सुदी ५	महाराणा फतहसिंहजी की ओर से सं० १९७५ से प्रतिवर्ष गायों के चारे के लिये १००० रु० निश्चित किया गया, सो सं० ७५ तथा ७६ का भेट किया गया।
,,	भाद्रपद बदी ११	कृष्णगढ़-नरेश महाराजा यज्ञनारायणसिंहजी।
,,	आश्विन बदी१४	देवगढ रावजी विजयसिंहजी।
,,	माघ सुदी ३	उदयपुर महाराणा फतहसिंहजी तथा महाराजकुमार भूपालसिंहजी।
,,	माघ सुदी ७	ध्रांगधरा के रानीजी, आमेट रावजी के बाईजी।
,,	फाल्गुन सुदी २	कानोड रावजी केशरीसिंहजी सकुटुम्ब आये, कुँवर को कंठी-बँधाई।
,,	चैत्र बदी १	गोगुन्दा रावजी मनोहरसिंहजी।
१९७८	मार्ग० बदी २	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी।
१९७९	कार्त्तिक सुदी ४	शाहपुरा राजाधिराज नाहरसिंहजी।
,,	माघ सुदी १५	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी तथा उनके माजी साहब।
१९८०	वैशाख वदी १३	गढ़ा डूँगरपुर वाँसवाड़ा रावजी हिम्मतसिंहजी रायसिहजी तथा उनके माजी साहब।
,,	मार्ग-कृष्ण ६	पीपलाद ठाकुर भरतसिंहजी ने कंठी बँधाई।
,,	पौष सुदी ८	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी जनाना-सहित।
१९८१	वेशाख वदी ३०	वनेडा (शाहपुरा के पास) राजाजी के कुँवर प्रतापसिंहजी।
१९८२	आषाढ़ वदी १४	उनियारा के माजी सीसोसदयानीजी। (गुमानसिंहजी की रानी और वनेडा के बाईजी)
१९८२	आश्विन सुदी १२, १३	देवगढ़ रावजी के कुँवर माजी तथा रानी साहब।
१९८३	पौप वदी २	पोरबन्दर तथा भावनगर के रानीजी।
१९८४	ज्येष्ठ सुदी १४	काँकरवा ठाकुर के कुँवरजी महेन्द्रसिंहजी।

१६८४	श्रावण सुदी ६	आमेट रावजी गोविन्दसिंहजी।
,,	आश्विन सुदी ३	,, ,, ,, तथा माजी साहब।
,,	माघ वदी १०	देलवाड़ा रावजी जसवन्तसिंहजी जनाना-सहित।
१६८५	श्रावण वदी २	भींडर महाराजा मानसिंहजी।
,,	फाल्गुन सुदी ३	वानसी रावजी तख्तसिंहजी।
,,	चैत्र वदी ५	बेगूँ रावतजी सवाई अनूपसिंहजी की तरफ से नगद तथा सोना-चाँदी के दागीना भेट।
१६८६	ज्येष्ठ सुदी ३	आमेट रावजी गोविन्दसिंहजी तथा माजी।
१६८७	,, १२	गाम मसोदा (जिला अजमेर) के ठाकुर रावजी विजयसिंहजी।
,,	आषाढ़ वदी १	आमेट रावजी गोविंदसिंहजी, केलवा ठाकुर दौलतसिंहजी और जालोला ठाकुर।
,,	,, सुदी १०	खिलचीपुर (रामपुरा) रानीजी तथा माजी साहब।
,,	ज्येष्ठ सुदी १	महाराणा फतहसिंहजी के देवलोक हो जाने पर सामान-सहित घोड़ा-हाथी तथा ३० गाएँ भेट।
१६८८	आषाढ़ सुदी ४	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी।
१६८७	कार्त्तिक सुदी ५	महाराणा भूपालसिंहजी।
१६८८	,, सुदी ३	वांसी रावजी तथा गोगुंदा रावजी।
,,	फाल्गुन सुदी ४	वनेडा राजाजी अमरसिंहजी।
१६८६	भाद्र वदी २	हथुवा-नरेश गुरु महादेवप्रसाद आश्रम शाही (ज़िला सारंग)
,,	कार्त्तिक सुदी ८	महाराणा भूपालसिंहजी। कार्त्तिक सुदी १३ के दिन महाराजश्री से नाम सुनकर कंठी बँधवाई।
१६६०	फाल्गुन सुदी १२	बोयडा रावजी नाहरसिंहजी।
१६६१	,, वदी १२	ज्ञानगढ़ रावजी शंभूसिंहजी।
,,	कार्त्तिक सुदी २	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी।
,,	,, ३, ४	किशनगढ़-नरेश यज्ञनारायणसिंहजी।
१६६२	चैत्र सुदी ११	धर्मपुर (जिला सूरत) के महाराणा विजयदेवजी।
,,	वैशाख वदी ८	सीतामऊ महाराजा रामसिंहजी।
,,	,, सुदी ५	गाम विदासद के ठाकुर प्रतापसिंहजी हीरासिंहजी।
१६६१	पौष कृष्ण ६	गाम सावर (जिला अजमेर) के दरबार वंशप्रदीपसिंहजी।

१९९२	पौष सुदी ७	देवगढ़ रावजी विजयसिंहजी।
”	” ८	महाराणा भूपालसिंहजी।
१९९३	कार्त्तिक बदी १४	लखतर दरबार के कुँवरजी गंभीरसिंहजी।
”	” सुदी १	बिजोलिया रावजी केशरीसिंहजी।
”	माघ बदी ३०	दरभंगा-नरेश के भाई बलेश्वरसिंहजी।
”	माघ बदी ६	लखतर दरबार के बड़ी रानी बडे कुँवर सकुटुम्ब।
१९९४	कार्त्तिक सुदी ३	भीडर-महाराजा मानसिंहजी।
”	” ६	महाराणा भूपालसिंहजी सकुटुम्ब। नाथद्वारा मे द्वारकाधीश के अन्नकूट पर दर्शन किए, और फिर यहाँ आकर चारभुजा गये, बाद में विद्या-विभाग की संस्थाओं का उद्‌घाटन किया।
”	फाल्गुन बदी ३०	बमबोरा ठाकुर शंभूसिंहजी।
१९९५	कार्त्तिक बदी ९	बनेडा राजाजी अमरसिंहजी।
”	पौष सुदी ३०	गाम तानाराज रत्नसिंहजी सकुमार।
१९९६	आषाढ़ सुदी ८	उदयपुर महाराजकुमार भगवतीसिंहजी। जो इसी वर्ष महाराजकुमार बनाये गये*।

परिशिष्ट—३

श्रीलाडिलेशजी (बुरहानपुर) के सम्बन्ध में आख्यायिका और विचार

यह लाडिलेशजी का स्वरूप—जिनका बुरहानपुर के प्रतापपुरा में मन्दिर है—महावन की एक क्षत्राणी वैष्णव को यमुनाजी मे प्राप्त हुए थे। उसने ले जाकर उन्हें श्रीवल्लभाचार्य के पास पधरा दिये। इस विषय मे ऐसा लिखा है†—

जियादास क्षत्री सूरत का निवासी था। यह वल्लभाचार्य के द्वारा प्राप्त लाडिलेशजी की सेवा चार प्रहर ही कर पाया था कि गत हो गया। इसके बाद उसके पुत्र पुरुषोत्तमदास और छबीलदास ने सेवा की। बाद मे उसके मामा कृष्णदास चौपड़ा और उसके भी गत हो जाने पर

* प्राचीन रोकड़ों के आधार पर। † ८४ वैष्णव की वार्ता स० १६।

उसके मित्र हरिजी और मथुरामल्ल ने साथ रहकर सेवा की। हरिजी ने डेढ़ साल तक सेवा कर इस स्वरूप को गुसाईंजी के घर पधरा दिया था।

विट्ठलनाथजी गुसाईंजी के द्वारा यह स्वरूप तृतीय पुत्र बालकृष्णजी को प्राप्त हुआ और द्वारकाधीश के समीप विराजा।

बालकृष्णजी (तृ० पुत्र) के वंश मे उनके तृतीय पुत्र व्रजभूषणजी के पौत्र वल्लभजी* हुए, जिनका जन्म सं० १६७१ फा० शु० १२ है (कहीं १६६१ भी मिलता है)। इनके पुत्र व्रजभूषणजी और गोपालजी हुए। ये 'काका गोपालजी' इस नाम से प्रसिद्ध हुए और बडे भाई व्रजभूषणजी (प्र०) के साथ कांकरोली आये। इनके पुत्र द्वारकानाथजी के बाद कोई वंश-परंपरा नहीं चली।

इसके बाद कांकरोली के तिलकायित गिरिधरलालजी द्वि० (भवाईवालों) के तृतीय पुत्र वल्लभजी हुए, जिनका जन्म सं० १७८१ वैशाख कृष्ण ६ है। ये कांकरोली के मथुरानाथजी के मंदिर के मालिक हुए। इनके पुत्र गोपालजी (द्वि०) हुए और उनके प्रथम पुत्र श्रीवल्लभजी (द्वि०) हुए, जिनका जन्म सं० १८४३ चैत्र वदी ३ है।

जैसा आगे कहा जायगा, वल्लभजी के किसी उत्तराधिकारी के अभाव में लाडिलेशजी ठाकुरजी को वेरावलवाले गो० गोकुलनाथजी चुराकर ले गये। इन गोकुलनाथजी के पुत्र मगनलालजी महाराज, उनके नृसिंहलालजी महाराज और उनके गोवर्द्धनलालजी महाराज निवास बंबई मे था।

तिलकायित व्रजभूषणजी (द्वि०) ने अपने छोटे भाई वल्लभजी को मथुरानाथजी का स्वरूप देकर उनके साथ सं० १७९८ मे बटवारा कर लिया था†। इसके बाद तीन पीढ़ी तक इनकी परंपरा बराबर चली आई और बाद मे द्वारकेशजी के गोपाललालजी महाराज (लालालहरी) कोटा से गोद आये, और उनके बाद गो० विट्ठलनाथजी महाराज, जो सम्प्रति मथुरानाथजी के मन्दिर के स्वामी हैं।

यदि गिरिधरजी (द्वि०) के तृतीय पुत्र वल्लभजी को बुरहानपुर के इस मन्दिर का संस्थापक माना जाय, तो वह मन्दिर सम्प्रति मथुरानाथजी के अन्तर्गत होना चाहिये, न कि द्वारकाधीश के घर की अधीनता मे। अत ऐसा मानने को विवश होना पड़ता है कि—व्रजभूषणजी (द्वि०) ने इस मन्दिर को बटवारे में अपने भाई वल्लभजी (प्र०) को न देकर अपने स्वामित्व मे ही रक्खा, जो उसी समय से परंपरा से इसी घर की अधीनता मे चला आया है। उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति में ठाकुरजी के चोरी चले जाने का अवसर काका गोपालजी

* इनके हस्ताक्षर की कई पुस्तकें विद्या-विभाग मे विद्यमान हैं, जिनमें सबसे प्राचीन सं० १६९२ माघ वदी २ की लिखी पुस्तक (स० पु० बन्ध ५६, ७) है, जिससे इनका समय इसके बाद माना जा सकता है।

† देखो प्रस्तुत इतिहास, पत्र १७२।

के पुत्र द्वारकानाथजी (ज० सं० १७४८ भा० शु० १) के अनन्तर ही आ सकता है, जो वल्लभजी के पौत्र थे।

एक वल्लभजी (ज० सं० १७१३ कार्त्तिक शु० ७) तृतीय पुत्र बालकृष्णजी के* पंचम पुत्र व्रजालंकारजी के पौत्र और विट्ठलरायजी के पुत्र हुए हैं, परंतु इनकी संतति-परम्परा बराबर चली गई है। इन्हीं विट्ठलरायजी के द्वितीय पुत्र रणछोड़जी के द्वितीयात्मज एक वल्लभजी (ज० सं० १७४६ चैत्र शु० ४) और भी हुए हैं, जिनका वंश नहीं चला। संभव है, इनके बाद उनकी पत्नी (माजी महाराज) ने लाडिलेशजी को बालकृष्णजी की परंपरा होने के कारण कांकरोलीवालों को सौंप दिया हो। फिर भी इसका यथार्थ निर्णय नहीं किया जा सकता, जब तक कि पूर्ण गवेषणा न कर ली जावे।

'गोवर्द्धनलालजी महाराज के ४२ वचनामृत' नामक पुस्तक में लाडिलेशजी के चोरी जाने के प्रसंग का सारांश इस प्रकार दिया है—

"मथुरेशजी के मन्दिर (कोटा) के तिलकायित गोवर्द्धनरायजी के छोटे भाई गोकुलनाथजी किसी खटपट से अलग होकर जूनागढ़ में गुसाईंजी के सेव्य श्रीमदनमोहनजी का मन्दिर बनवाकर रहने लगे। प्रदेश करते हुए वे बुरहानपुर गये और वहाँ मन्दिर में लाडिलेशजी की सेवा करने लगे। यह स्वरूप महाप्रभुजी का सेव्य था। अत. उसे ले जाने का उन्होंने विचार किया। इस समय मन्दिर में कोई गोस्वामिबालक उत्तराधिकारी नहीं था, केवल वैष्णवों की देखरेख ही थी। गोकुलनाथजी ने वैसा ही दूसरा स्वरूप बनवाकर वहाँ रख दिया, और उक्त स्वरूप को एक डोकरी के साथ अपने स्थान वेरावल भिजवा दिया। कुछ दिनों बाद वहाँ से स्वयं भी चले गये, और वेरावल जाकर उन्होंने लाडिलेशजी का मन्दिर बनवाया और सेवा की।"

इस प्रसंग मे बुरहानपुर के वैष्णव-समाज द्वारा ज्ञात हुआ था कि—जब गोकुलनाथजी ठाकुरजी को चुराकर रवाना हो गये, तो वहाँ के वैष्णवों ने दूसरे दिन अगले पड़ाव पर जाकर ठाकुरजी को छीन लिया और वापिस मन्दिर में ले जाकर पधराया था। इस प्रकार दोनों पक्षों का कथन है कि—असली ठाकुरजी हमारे पास हैं और दूसरे के पास उनके प्रतिनिधि। वास्तव मे क्या ठीक है, कहा नहीं जा सकता। अस्तु।

"लाडिलेशजी को चुराकर ले जानेवाले गोकुलनाथजी के कोई पुत्र नहीं था, अत. उन्होंने वृद्धावस्था मे गोवर्द्धनलालजी (४२ वचनामृतकर्ता) के पितामह द्वारकेशजी को ठाकुरजी देकर वेरावल मे रखना चाहा, पर उन्होंने नाथद्वारा मे रहकर श्रीनाथजी की सेवा करने के कारण इसे स्वीकार नहीं किया। तब गोकुलनाथजी ने अपना यह मन्दिर और ठाकुरजी लाडिलेशजी

* देखो वंशानुक्रम स० ३, प्रस्तुत ग्रंथ।

गो० मगनलालजी महाराज को दे दिया, जो सम्प्रति (४२ वचनामृत के रचयिता के समय) सेवा करते हैं।"

उक्त वचनामृत मे इस प्रकार उल्लेख किया गया है। स्थानीय वैष्णव-समाज के द्वारा ज्ञात हुआ था कि—इस मन्दिर मे बहुत समय तक किसी माजी महाराज (गोस्वामिनी, विधवा वहूजी) ने अपने पति के बाद सेवा की थी, और उनके अनन्तर यह मन्दिर कांकरोली के अन्तर्गत हुआ था। मन्दिर में अब भी माजी महाराज की गद्दी है।

प्रस्तुत वृत्तान्त के सिवा अभी यह तय नहीं हो सका है कि—(१) 'तापीपुरस्थ' इस शब्द को लिखनेवाले वल्लभजी महाराज कौन थे ? (२) बुरहानपुर मे मन्दिर की स्थापना किसने कब की ? (३) लाड़िलेशजी ठाकुरजी चोरी कब गये, और (४) यह माजी महाराज कौन थे, तथा (५) यह मन्दिर कांकरोली के तिलकायितों की अधीनता मे कब आया। फिर भी जो संकेत मिला है, उसका यहाँ उल्लेख कर दिया गया है।

परिशिष्ट—४

तिलकायित महाराजश्री और समकालीन महाराणा

तिलकायित सं०	महाराजश्री	महाराणा
३	गिरिधरजी (प्र०) गोकुल	जगतसिंहजी (प्र०)
	ज० सं० ति० सं० नि० सं०	ज०सं०रा०सं०देवलोक सं०
	१६६७ । १६७० । १७१८,१६	१६६४ । १६८४ । १७०६
४	व्रजभूषणजी (प्र०) आसोटिया	राजसिंहजी (प्र०)
	१७०० । १७१८,१६ । १७५८	१६८६ । १७०६ । १७३७
		जयसिंहजी
		१७१० । १७३७ । १७५५
५	गिरिधरजी (द्वि०) कांकरोली	अमरसिंहजी (द्वि०)
	१७४५ । १७५८ । १८०३	१७२६ । १७५५ । १७६७
		संग्रामसिंहजी (द्वि०)
		१७४७ । १७६७ । १७६०
६	व्रजभूषणजी (द्वि०)	जगतसिंहजी (द्वि०)
	१७६५ । १८०३,४ । १८३३	१७६६ । १७६० । १८०८

		प्रतापसिंहजी (द्वि०) १७८१ । १८०८ । १८१०
		राजसिंहजी (द्वि०) १८०० । १८१० । १८१७
		अरिसिंहजी (द्वि०) १७९७ । १८१७ । १८२९
७	विट्ठलनाथजी १८११ । १८३४ । १८४८, ४९	हमीरसिंहजी १८१८ । १८२९ । १८३४
८	व्रजभूषणजी (तृ०) १८३५ । १८४९ । १८७६	भीमसिंहजी १८२४ । १८३४ । १८८५
९	पुरुषोत्तमजी १८४७ । १८७६ । १९०३	जवानसिंहजी १८५७ । १८८५ । १८९५
		सरदारसिंहजी १८५५ । १८९५ । १८९९
१०	गिरिधरलालजी (च०) १८९८ । १९०८ । १९३५	सरूपसिंहजी १८७१ । १८९९ । १९१८
		शम्भूसिंहजी १९०४ । १९१८ । १९३१
११	बालकृष्णलालजी १९२४ । १९३६ । १९७३	सज्जनसिंहजी १९१६ । १९३१ । १९४१
१२	द्वारकेशलालजी १९६४ । १९७३ । १९७४	फतहसिंहजी १९०६ । १९४१ । १९८७
१३	श्रीव्रजभूषणलालजी (च०) वर्तमान तिलकायित १९६८ । १९७६ । विराजमान	श्रीभूपालसिंहजी वर्तमान महाराणा १९४० । १९८७ । विराजमान

सर्वप्रथम महाराणा जगतसिंहजी (प्र०) गोकुल में महाराजश्री गिरिधरलालजी (प्र०) की वैष्णव-दीक्षा लेकर शिष्य हुए। 'आसोटिया' गाँव इसी समय भेट आया। इसके अनन्तर वर्तमान समय तक सभी महाराणा राज्याभिषेक के पहिले अथवा बाद में उक्त दीक्षा लेते आये हैं, और राज्याभिषेक के समय काकरोली के तिलकायित उदयपुर जाकर महाराणा को तिलक करते आये हैं, जिसका यथास्थान उल्लेख किया गया है।

—.०.—

श्रीविट्ठलनाथजी महाराज

(जन्म सं० १६७०, विराजमान सं० १६६६)

——.०:——

जन्म और शिक्षा

गो० श्रीविट्ठलनाथजी महाराज का जन्म सं० १६७० माघ कृष्ण ६ भोमवार के दिन * अहमदाबाद मे हुआ। जैसा प्रथम कहा जा चुका है, इनकी मातृश्री का नाम श्रीसौन्दर्यवती माजी महाराज है, और पिता का नाम श्रीवालकृष्णलालजी महाराज। यह कुल चार भ्राता थे, जिनमे इनसे बड़े श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज कांकरोली के तिलकायित-पद पर विराजमान हैं, और शेष दो का छोटी वय मे ही नित्यलीला-प्रवेश हो गया था। सं० १६७३ मे पिताश्री के गोलोकवास के समय इनकी अवस्था लगभग ३ वर्ष की थी।

विट्ठलनाथजी और उनके ज्येष्ठ भ्राता गो० श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज का प्रारंभ से ही साहचर्य रहता आया है, और इसी कारण इनका जीवन-चरित्र धारावाहिक रूप मे साथ साथ ही चला जाता है, अतः विशेष प्रसंगों को छोड़कर शिक्षा, अध्ययन, प्रदेश-भ्रमण, यात्रा और धर्मप्रचार के विषय में यहाँ कुछ न कहकर हम पाठकों का ध्यान इनके ज्येष्ठ भ्राता के चरित्र की ओर आकृष्ट करते हैं। साथ रहने के कारण इनकी मातृश्री और अन्य अभिभावकों की जहाँ दोनों भाइयों पर एक-सी ही वात्सल्यमयी दृष्टि रही आई है, वहाँ महाराणा द्वारा प्राप्त सम्मान मे भी कुछ खास प्रसंगों को छोड़कर प्राय. समान ही वर्ताव होता आया है। अस्तु। यहाँ आवश्यक बातें लिख देना ही प्रासंगिक प्रतीत होता है।

---

* जन्मकुंडली—

संवत् १६७० शाके १८३५ प्रवर्तमाने वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ भौम वासरे इष्ट घटी २४, १० सू० ६, ५, ३० लग्न २, ५, २५ समये श्रीवालकृष्ण चतुर्थात्मज श्रीविट्ठलनाथजी जन्म—



संं० १६७४ कार्त्तिक शुक्ल ८ गुरुवार के दिन श्रीमथुरेशजी (छोटे मन्दिर) की सामयिक अधिष्ठात्री श्रीमहाराणी वहूजी महाराज ने इनको गोद लेकर अपने पति श्रीगोपाललालजी महाराज का उत्तराधिकारी बनाया। यह वहूजी श्रीगोपाललालजो महाराज (जिन्हे 'लालालहरी' और 'बडाल्लावाले' महाराज भी कहते थे) की द्वितीय धर्मपत्नी थीं, और अपने पति के अनन्तर मन्दिर का कार्य चलाती थीं। इनका विचार पहिले महाराजश्री के द्वि० ज्येष्ठ भ्राता पुरुषोत्तमलालजी को गोद लेने का था, पर उनके असामयिक निधन हो जाने से विट्ठलनाथजी महाराज को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी बनाया और आवश्यक लिखा-पढ़ो कर महाराणा श्रीफ़तहसिंहजी से इसकी स्वीकृति ली।

गोद जाना

कांकरोली मे विद्यमान छोटा मन्दिर—जिसमे श्रीमथुरेशजी का स्वरूप विराजता है—अपनी पृथक् विशेषता रखता है, जिसका प्रासंगिक वर्णन इस प्रकार है—

पूर्व वंशपरंपरा

श्रीमथुरेशजी अथवा मथुरानाथजी के मन्दिर के अधिपति गोस्वामिबालक, तृतीय पीठ के प्रथम तिलकायित श्रीबालकृष्णलालजी महाराज की वंशपरम्परा में है। उनके प्रथम पुत्र की वंश-समाप्ति पर उन्हीं के पौत्र कांकरोली के तृ० तिलकायित गिरिधरजी (प्र०) ने सं० १७१७ मे व्रजभूषणजी (प्र०) को दत्तक लिया, जो वालकृष्णजी के तृतीय पुत्र व्रजभूषणजी के पौत्र वल्लभजी (प्र०) के प्रथम पुत्र थे। व्रजभूषणजी के छोटे भाई गोपालजी का जन्म सं० १७१० * आश्विन कृष्ण १४ को हुआ था। सं० १७१७ में इनके भाई व्रजभूषणजी (प्र०) श्रीद्वारकाधीश के घर के तिलकायित हुए, और कौटुम्बिक झगड़े के कारण गोकुल छोडकर अहमदाबाद और वहाँ से आसोटिया (कांकरोली) आये। यह भी कांकरोली में आकर अपने भाई के साथ रहने लगे। अत. उस समय तक, जब तक इनके बड़े भाई विद्यमान रहे, इन्हे अपना पृथक् मन्दिर स्थापित करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। इनके समीप वंशानुक्रम से सेवार्थ श्रीमथुरानाथजी का स्वरूप विराजता था, जो वल्लभाचार्य के सेव्य और 'गोविन्द भल्ला' के ठाकुरजी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सं० १७५८ मे व्रजभूषणजी (प्र०) के अनन्तर तत्पुत्र गिरिधरजी (द्वि०) तृतीय पीठ के तिलकायित हुए, जो गोपालजी के भतीजा थे। इसी समय से यह 'काकाजी गोपालजी' इस नाम से और इनके रहने का स्थान 'काकाजी का कोठा' नाम से विदित हुआ, जो आज भी विद्यमान है।

* स० १७२५ का लिखा हुआ इनका जन्म-काल घटनाक्रम से ठीक नहीं जँचता।

काका गोपालजी ने अपने भाई व्रजभूषणजी (प्र०) के गोलोकवासी हो जाने पर आगे कोई वंश मे झगड़ा न हो, एतदर्थ अपने सेव्य स्वरूप मथुरानाथजी का अलग प्रवन्ध करने का विचार किया। उन्होंने प्रदेश परिभ्रमण द्वारा राजा-महाराजाओं से परिचय वढ़ाया और इस प्रकार ज़मीन-जागीर प्राप्त की:—

ज़मीन, जागीर और गाँव

सं० १७६१ मार्गशीर्ष २ शनिवार के दिन उदयपुर के महाराणा अमरसिंहजी ने महाराजश्री को वडाल्ला (वराडडा) (परगना कोठारिया) नामक गॉव भेट किया।

सं० १७६८ (कार्त्तिकादि १७६७) चैत्र सुदी ३ को कोटा के महारावजी भीमसिंहजी ने मौज़ा गॉवडी (परगना कोटा) भेट किया।

सं० १७७२ वैशाख वदी १० के दिन उदयपुर के महाराणा संग्रामसिहजी ने जवास्या (परगना गंगार) भेट किया, और इसी वर्ष मार्ग० वदी अमावस के दिन जयपुर के महाराजा सवाई जयसिहजी ने लाखनपुरा (परगना लालसोट) भेट किया। यह गॉव सोमवती अमावस्या के दानपुण्य मे त्रिवेणी नदी (परगना भोरासा ?) पर संकल्प कर प्रदान किया था, जिससे विदित होता है कि—उस समय महाराजश्री भी जयपुर-नरेश के साथ यात्रा में विद्यमान थे।

सं० १७७३ आश्विन शु० १० गुरुवार के दिन महाराजा दलसिंहजी ने अपने दलसिहपुरा मे से ५१ वीघा जमीन महाराजश्री को हरिद्वार मे गंगास्नान करते समय संकल्प करके दी, जिससे उनकी उस समय उपस्थिति विज्ञात होती है। इस प्रकार इन्होंने परिश्रम कर अपने ठाकुरजी मथुरानाथजी के सेवा-सौकर्य के लिये आवश्यक जायदाद पैदा कर ली थी।

ऐसा विदित होता है कि—यह काका गोपालजी सं० १७७५—८० तक विद्यमान रहे। इनके कोई सन्तति नहीं थी, अतः गोलोकवासी हो जाने के वाद सम्पत्ति के अधिकारी इनके भतीजे गिरिधरलालजी (द्वि०) हुए, जो उस समय कांकरोली के पंचम तिलकायित थे।

वंश-परम्परा और बटवारा

गिरिधरजी (द्वि०) के प्रथम पुत्र व्रजभूषणजी (द्वि०) नीतिवाले, (जन्म सं० १७६५) द्वितीय पुत्र वालकृष्णजी (ज० सं० १७६८ आपाढ़ शु० ८) और तृतीय पुत्र वल्लभजी (द्वि० ज० सं० १७८१ ज्ये० कृष्ण ६) हुए। वल्लभजी (द्वि०) को सं० १७९८ ज्येष्ट शु० १५ को जयपुर के मदनमोहनजी मन्दिर के गोस्वामि श्रीव्रजोत्सवजी सोमायाजी ने गोद लिया और इसी वर्ष गिरिधरजी महाराज (द्वि०) की इच्छानसार उनके वडे पुत्र व्रजभूपणजी (द्वि० नीतिवाले) ने दोनो भाइयों के लिये आपसी वटवारा कर लिखत-पढ़त कर ली *।

* स० १७९८ मार्गशीर्ष शु० ५ के दिन लिखी गई यह फारकती व्रजभूषणजी (द्वि०) के चरित्र—पत्र १७२—मे प्रकाशित की गई है।

इससे विदित होता है कि—इसी समय से मथुरानाथको का अलग मन्दिर वनना शुरू हुआ। महाराजश्री वल्लभजी (द्वि०) ने व्रजभूपणजी से मॉगकर कांकरोली मे जमीन ली, जहाँ अपना अलग निवासस्थान भी साथ मे वनवाना शुरू किया। इन्होंने प्रदेश परिभ्रमण कर सेवार्थ खूब द्रव्य एकत्रित किया और राजा-महाराजाओं से मिलकर गॉव और जमीनें प्राप्त कीं।

सं० १८०५ मे जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिंहजी ने गद्दी पर वैठने के वाद सं० १७७२ मे दिये हुए अपने पिता के गामों की दाख़िल ख़ारिज इनके नाम पर की *। जिससे अवगत होता है कि—इस समय के पूर्व काका गोपालजी का नित्यलीला प्रवेश हो चुका था।

सं० १८१० ज्येष्ठ सुदी १३ के एक पत्र से विदित होता है कि—इस वर्ष व्रजभूषणजी (द्वि०) ने काकाजी गोपालजी के नाम पर प्राप्त हुए पॉच गॉव कर्ज से निकालकर अपने भाई वल्लभजी (द्वि०) को सौंपे और उनसे ११००१ रु० का ख़त लिखवा लिया। यह झगड़ा माजी महाराज मित्रवृन्दा बहूजी ने आपस मे तय कराया था। †

सं० १८१५ आषाढ़ बदी ५ के दिन कोटा के महारावजी शत्रसालसिहजी ने भी काका गोपालजी के नाम पर सं० १७६८ मे और स० १७७२ में दिये गये दोनों गॉवों का दाख़िल ख़ारिज वल्लभजी (द्वि०) के नाम कर दिया, जिसकी सालाना उपज क्रमशः २५०० और १५०० थी।

वल्लभजी (द्वि०) के सं० १८२६ ज्येष्ठ कृष्ण १ के दिन पुत्र गोपालजी (द्वि०) का जन्म हुआ। ये बड़े प्रतापी हुए। इन्होंने प्रदेश परिभ्रमण कर अच्छा द्रव्य एकत्रित किया। ऐसा प्रसिद्ध है कि—इन्होंने कोटा का भ्रमण कर वहाँ के नरेश से घनिष्ठता बढ़ाई, जिसके फलस्वरूप इन्हें बहुत-सी जागीर मिली थी। जिसमें से कई गॉव इन्होंने श्रीनाथजी के लिये भेट कर दिये थे।

श्रीगोपालजी महाराज (द्वि०) के निम्न-लिखित पुत्र हुए—

१ वल्लभजी (तृ०)	प्रा० सं० १८४३ चैत्र कृष्ण ३
२ व्रजवल्लभजी	,, ,, १८४६ चैत्र कृष्ण १३
३ व्रजपालजी	,, ,, १८६० वैशाख शु० ५

इनमें वल्लभजी (तृ०) अपने पिता गोपालजी (द्वि०) के अनन्तर मथुरानाथजी के मन्दिर के अधिपति हुए, और व्रजपालजी जयपुर के मदनमोहनजी के मन्दिर में गोद चले गये।

वल्लभजी (तृ०) के सं० १८७५ माघ शु० ५ के दिन पुत्र द्वारकेशजी का जन्म हुआ। जो

* लिखित परवाना स० १८०५ प्र० भाद्रपद सुदी ५ का है।

† व्रजभूपणजी (द्वि०) के चरित्र-पत्र १८० में मुद्रित पत्र।

अपने पिता के बाद मन्दिर के मालिक हुए और उसकी वैभव-वृद्धि की। इनके कोई पुत्र नहीं हुआ अथवा जीवित नहीं रहा। अतः अपने अन्तिम समय में इन्होंने कोटा की गोस्वामि-परम्परा से गोपाललालजी को गोद लिया।

श्रीगोपाललालजी महाराज का प्राकट्य सं० १८१२ भाद्रपद कृष्ण १४ को हुआ था। ये आगे चलकर 'लाला लहरी' नाम से प्रख्यात हुए। अपनी इच्छानुसार काम करना और उसके परिणाम की ओर ध्यान न देना यह इनकी विशेषता थी, अतः स्वजन-सम्बन्धी इन्हें इस नाम से संबोधित किया करते थे। ये संगीत और वाद्यविद्या के पारंगत थे। सितार बजाने में उस समय इनके समान कोई व्यक्ति नहीं था। ये महानुभाव और चमत्कारी पुरुष थे और प्रदेश में कई व्यक्तियों ने इनके कुछ चमत्कार देखे थे, ऐसा कहा जाता है। अपने जीवन के विशेष समय मे इन्होंने श्रीनाथजी की परिचारकी की सेवा की, और 'हरिभक्तिचन्द्रिका' नामक सेवा-शृंगार का एक ग्रन्थ लिखवाया, जो सरस्वती-भंडार कांकरोली में विद्यमान है।

इनके सामयिक कांकरोली के तिलकायित श्रीगिरिधरलालजी महाराज (च०) हुए।

बड़ाल्ला जाकर बसना

सं० १८३० में इनसे और गोपाललालजी महाराज से आपसी झगड़ा हो गया। कांकरोली के तिलकायितों को महाराणा की ओर से जो सम्मान प्राप्त है, वह इस छोटे मन्दिर के महाराजश्री को नहीं है, क्योंकि श्रीद्वारकाधीश का घर महाराणा का गुरुघर है। इस कारण एक समय मान-मर्यादा के प्रश्न को लेकर दोनों में तनातनी बढ़ गई और कुछ समीपवर्ती मनुष्यों ने दोनों ओर अशान्ति फैलाकर अपना मतलब निकाला।

कांकरोली के तिलकायित अथवा ठाकुरजी की सवारी मे प्राचीन प्रथा के अनुसार नगाड़ा-निसान चलता आया है। चमर, छत्र, छड़ी, घोटा आदि राजकीय चिह्न कांकरोली के महाराजश्री के अतिरिक्त कांकरोली मे अन्य किसी को रखने का अधिकार नहीं है। जहाँ तक दोनों मन्दिरों के गोस्वामिबालकों में सौजन्य-पूर्ण भ्रातृभाव विद्यमान रहता आया, तब तक यह समस्या उपस्थित नहीं हुई। पर इस समय किन्हीं बातों को लेकर बड़े मन्दिरवाले महाराज श्रीगिरिधरलालजी और छोटे मन्दिरवाले महाराज श्रीगोपाललालजी मे मनोमालिन्य बढ़ गया।

महाराज श्रीगोपाललालजी ने गिरिधरलालजी की देखादेखी कांकरोली मे अपनी भी सवारी निकालना और राज्य-चिह्न धारण करना शुरू कर दिया। मन्दिर के चौक मे जहाँ महाराजश्री या महाराणा को छोड़कर किसी अन्य को सवारी मे बैठकर आने का मान प्राप्त नहीं है, वहाँ एक दिन गोपाललालजी ने अपनी सवारी सजाकर उपस्थित की। यह बात गिरिधरलालजी

महाराज को उचित नहीं जँची। इसकी रोक करने पर गोपाललालजी महाराज ने बुरा माना और अपनी जबरदस्ती बतलाई, जिससे मामला बढ़ गया। जिसके फलस्वरूप नियमानुसार महद्राज-सभा उदयपुर में इसका मुक़दमा चलना शुरू हुआ। इसी झगडे के कारण श्रीगोपाललालजी महाराज ने अपने ठाकुरजी मथुरानाथजी को कांकरोली के मन्दिर से ले जाकर 'बडाल्ला' गाम में विराजमान किया, जो महाराणा अमरसिंहजी के समय मे प्राप्त हुआ था। यहाँ मन्दिर और आवश्यक मकान महाराजश्री ने बनवा लिये थे। यह मुक़दमा उदयपुर मे कई वर्ष तक चलता रहा। इस बीच में गोपाललालजी महाराज ने सं० १६३६, आश्विन मास के लगभग एक और भी उपद्रव उठाया। चालीस-पचास हथियारबन्द सिपाहियों को लेकर वे कांकरोली पर चढ़ आये और उन्होंने अपने स्थान पर अधिकार जमाना चाहा। उपद्रव की आशंका से कांकरोली-मन्दिर के दरवाजा आदि बन्द करवा दिये गये, जिससे एक अशान्ति पैदा हो गई, पर गिरिधर-लालजी के शान्त स्वभाव से बखेड़ा आगे बढ़ने नहीं पाया। इस प्रकार के अनियमित कार्य के लिये उदयपुर महद्राजसभा से गोपाललालजी के नाम द्वि० आसोज सुदी १५ गुरुवार को एक आदेश आया, जिसमे अपनी इस हरकत से बाज आने के लिये उनको सम्बोधित किया गया था। सं० १६३६ तक यह मुकदमा चलता रहा। अन्त मे महाराणा के हुक्म से आपसी समझौता कराने के लिये मेहता तखतसिंहजी नियत किये गये। उन्होंने दोनों से मिलकर आपस में कुछ बातें तय कराकर मथुरानाथजी को वापिस कांकरोली के मन्दिर में पधराने का प्रबन्ध करा दिया। जिसके परिणाम-स्वरूप इसी वर्ष श्रावण कृष्ण १२ के दिन मथुरानाथजी बडाल्ला (बराडडा) से वापिस आकर कांकरोली के अपने प्राचीन मन्दिर मे विराजे।

यद्यपि गोपाललालजी महाराज ने दो विवाह किये थे, पर किसी से पुत्र-सन्तति नहीं हुई।

गोपाललालजी का लीला-प्रवेश और उत्तराधिकार

प्रथम पत्नी श्रीमित्रवृन्दा बहूजी से एक कन्या श्रीहरिप्रिया बेटीजी का जन्म हुआ, पर द्वितीय पत्नी (शुभलक्ष्मी) उपनाम महाराणी बहूजी से कुछ भी सन्तति नहीं हुई। हरिप्रिया बेटीजी का विवाह बागरोदी मोहन-लालाजी के साथ हुआ। इनके भी कोई सन्तति नहीं हुई थी। इन्हें महाराज श्रीगोपाललालजी ने छोटे द्वारकाधीश का मन्दिर और कुछ सम्पत्ति प्रदान की, परन्तु अन्तिम समय मे किसी उत्तराधिकारी के अभाव मे उन्होंने भी अपनी सम्पत्ति और यह मन्दिर महाराजश्री विट्ठलनाथजी को सौंप दिया, जिससे सं० १६७५ वैशाख शु० ११ भौमवार के दिन महाराजश्री के नाम इसकी लिखा पढ़ी हुई।

सं० १६५२ में गोपाललालजी महाराज का नित्यलीला-प्रवेश हो न

ने
सी
थजी
इसकी



चि० श्रीयदुनाथजी
प्रा० सं० १६८८ चै० शु० ६

गगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

पत्नी महाराणी वहूजी इस जागीर और मन्दिर की मालिक हुईं *, और उन्होंने सं० १६७४ कार्त्तिक शु० ८ गुरुवार के दिन श्रीविट्ठलनाथजी महाराज को गोद लेकर अपने पति के कुल को प्रतिष्ठित किया।

मथुरा के मदनमोहनजी-मंदिर का स्वामित्व

सं० १६७५ वैशाख शु० ३ (ता० २३-५-१६१८) के दिन विट्ठलनाथजी को मथुरा-वाले श्रीगोपाललालजी महाराज की वहूजी श्रीमती लावण्यवती वहूजी ने अपने पति की सम्पत्ति और श्रीमदनमोहनजी दाऊजी का मन्दिर प्रदान कर उसका उत्तराधिकारी नियत किया। श्रीगोपाललालजी कांकरोली के तिलकायित वालकृष्णलालजी महाराज के बड़े भाई थे। यद्यपि वालकृष्णलालजी कांकरोली के घर में दत्तक आ गये थे, पर सहोदर भाई होने से दोनों का प्रेम अत्यन्त घनिष्ठ था। गोपाललालजी महाराज के कोई सन्तति नहीं थी, अत. वह अपने उन्हीं भाई के पुत्र को गोद लेने का विचार कर रहे थे। इस बीच मे सं० १६७३ में बालकृष्णलालजी और उनके कुछ समय वाद गोपाललालजी का भी नित्यलीला-प्रवेश हो गया, जिससे यह कार्य पूरा न हो सका, इसके पहिले ही कांकरोली में महाराणी बहूजी ने विट्ठलनाथजी को गोद ले लिया था, अतः यह दूसरे ठिकाने गोद नहीं जा सकते थे। अत. मथुरावाली श्रीलावण्यवती वहूजी महाराज ने अपने पति की इच्छा के अनुसार इन्हीं के नाम पर वख्शिशनामा कर अपना उत्तराधिकारी वनाया।

शिक्षा, विवाह और सन्तति

सं० १६७५ माघ शु० ५ के दिन विट्ठलनाथजी का विद्याभ्यास शुरू हुआ और यह अपने बड़े भाई के साथ हिन्दी, संस्कृत, गणित आदि का अभ्यास करने लगे। सं० १६८० चैत्र-शु० ११ के दिन कांकरोली मे इनका यज्ञोपवीत-सस्कार हुआ, जिसमें वड़ा उत्सव मनाया गया। अहमदावादवाले इनके काका श्रीमधुसूदन-लालजी ने इन्हें गायत्री और ब्रह्म-सम्बन्ध की दीक्षा दी। इस उत्सव के निमित्त श्रावण वदी ६ के दिन विट्ठल-विलास वाग मे मथुरानाथजी तथा छोटे द्वारकाधीश को पधराकर उत्सव किया गया।

सं० १६८१ में यद्यपि महाराजश्री की वय ११ वर्ष की थी, पर नाथद्वारा के तिलकायित गोवर्द्धनलालजी महाराज के आग्रह पर मातृश्री को इनका विवाह वहाँ जाकर करना पडा। फलतः

* श्रीमथुरानाथजी छोटा मन्दिर के अन्तर्गत निम्नलिखित स्थानों पर मन्दिर विद्यमान हैं, जिनका यहीं से प्रवन्ध होता है:—१ वड़ोदा—श्रीमथुरानाथजी, २ नाथद्वारा—श्रीगोपाललालजी, ३ चरनामी—श्रीमथुरानाथजी, ४ धरमज—श्रीमथुरानाथजी, ५ पारोला—श्रीद्वारकानाथजी।

करंजी श्रीबलदेवलालाजी की आयुष्मती कन्या के साथ''''''उत्साह से विवाह सम्पन्न हुआ। सं० १६८४ में द्विरागमन हुआ और समयानुसार सन्तति हुई। जिसमें से निम्न-लिखित विद्यमान है—

१ चि० लालजी यदुनाथजी १६८८ चैत्र शु० ६। २ चि० माधुरी बेटीजी १६६२।

३ चि० कृष्णकुमार १६६४ माघ शु० ४।

व्यक्तित्व

महाराजश्री की शिक्षा-दीक्षा के विषय मे हम पृथक् कुछ न कहकर पाठकों का ध्यान उनके बडे भ्राता के चरित्र की ओर आकृष्ट करते है, क्योंकि यह पहिले कहा जा चुका है कि—इस विषय की सावधानी उनके मातृश्री ने उसी प्रकार रक्खी है, जिस प्रकार अपने ज्येष्ठ पुत्र की। फिर भी इतना कह देना अप्रासंगिक न होगा कि महाराजश्री में वे सब गुण विद्यमान हैं, जो वर्तमान काल के एक होनहार नवयुवक धर्माचार्य मे होने चाहिये। कथा, प्रवचन, धर्मोपदेश आदि एवं विद्या-सम्बन्धी कार्यकलाप की पूर्ति के लिये तो यह एक उत्साह की प्रतिमूर्ति हैं।

सं० १६६४ में कांकरोली मे जो साहित्यिक, धार्मिक और कलात्मक समारोह हुआ था, उसका सारा आयोजन इन्हीं के प्रधान मन्त्रित्व से सम्पादित हुआ था। महाराणा भूपालसिंहजी-जैसे मान्य महापुरुषों को कांकरोली-संस्था-समुद्घाटन के लिये ले आना इन्हीं के प्रयत्न का फल था।

इनके समय मे जिस प्रकार कांकरोली के मथुरानाथजी का मन्दिर आमूल नवीन बनकर तैयार हुआ है, उसी प्रकार मथुरा का मदनमोहनजी का मन्दिर भी एक बड़ी लागत लगाकर विशाल और भव्य रूप में बनाया गया है। जिसमें बड़े मनोरथ एवं उत्साह के साथ प्रभु को पधराकर विराजमान किया गया है। इस समय भागवत की १०८ साप्ताहिक पारायणें बैठाकर जो मथुरा में धार्मिक वातावरण उत्पन्न किया था, वह भी स्मरणीय था।

जैसा पहिले कहा जा चुका है—यह अपने बड़े भ्राता श्रीव्रजभूषणजी महाराज के साथ ही प्रदेश-यात्रा और परिभ्रमण करते हैं, यद्यपि इनकी भी पृथक् शिष्यसृष्टि है, और उसमें धार्मिक प्रचार की आवश्यकता है, फिर भी मातृश्री के वात्सल्य से कांकरोली मे ही आपका विशेष निवास रहता है। अतएव क्या यात्रा, क्या भ्रमण, क्या राज्य-सम्मान—सभी मे दोनों भ्राताओं का प्राय: साहचर्य रहता है। इस कारण हम अन्य सब विशेषताओं के लिये यहाँ पृथक् वर्णन करना आवश्यक एव उचित नहीं समझते। कांकरोली के साथ विशेष सम्बन्ध न होने के कारण मथुरा के श्रीगोपाललालजी और उनके मदनमोहनजी तथा दाउजी के मन्दिर का विशेष ऐतिहासिक वर्णन यहाँ नहीं किया गया है।

अब हम अन्त में इस प्रकरण को समाप्त करते हुए श्रीद्वारकाधीश प्रभु से अंजलिबद्ध-पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि—वे अपने संस्थान की उन्नति, उत्कर्ष और सौष्ठव के लिये कांकरोली के वर्तमान तिलकायित गो० श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज तथा उनके भ्राता गो० श्रीविट्ठलनाथजी महाराज को सकुटुम्ब-सपरिकर स्वस्थ, प्रसन्न एवं उत्कर्षाभिमुख रहने का बल प्रदान करे। महाराजश्री के समय में जहाँ अन्य शुभोदर्क आयोजनों का अनुष्ठान हुआ है, वहाँ इस इतिहास के संकलन और प्रकाशन का भी। अन्य कई सदाशाएँ अपने हृदय के अन्तस्तल में रखकर समय-समय पर उनके कार्यरूप में परिणत होते रहने का मनोरथ लेकर इस लेख से विराम ग्रहण करता हूँ। शुभम्।

